आचार्यश्रीनेमिचन्द्रसूरिग्रथितः

आख्यानकमणिकोशः

श्रीमदाम्रदेवसूरिसन्दृब्धया वृत्त्या समलङ्कृतः ।

भाग - २



संशोधकः पुनःसम्पादकश्च :
मुनिपुण्यविजयः

पुनःसंपादन - संस्कृत छाया :
मुनि पार्श्वरत्नसागरः

आचार्य ओमकारसूरि ज्ञानमंदिर ग्रंथावली क्रमांक-८०

आचार्यश्रीनेमिचन्द्रसरिग्रथितः

आख्यानकमणिकोशः

श्रीमदाम्रदेवसूरिसन्दृब्धया वृत्त्या समलङ्कृतः ।

भाग - २

संशोधकः पुनःसम्पादकश्च
मुनिपुण्यविजयः

: पुनःसंपादन - संशोधन - संस्कृत छाया :
मुनि पार्श्वरत्नसागरः

: प्रकाशक :
आ. ॐकारसूरी आराधना भवन
आ. ॐकारसूरि ज्ञानमंदिर, गोपीपुरा, सुरत

वीर संवत् : २५३८ विक्रम संवत् : २०६९ इस्वीसन् : २०१३

ग्रंथ का नाम : **आख्यानकमणिकोशः (संस्कृत छाया सह)**

भाग : २

आवृत्ति : **प्रथम सं. २०६९**

प्रकाशक : **आ. ॐकारसूरी आराधना भवन**
गोपीपुरा, सुरत

मूल्य : **३०० रूपये**

प्रत : ५००

प्राप्तिस्थान : ● **आचार्य श्रीॐकारसूरिज्ञानमंदिर**
आचार्य श्रीॐकारसूरि आराधनाभवन,
सुभाषचोक, गोपीपुरा, सुरत
फोन : ९८२४१५२७२७
E-mail : omkarsuri@rediffmail.com / mehta_sevantilal@yahoo.co.in

● **आचार्य श्रीॐकारसूरि गुरुमंदिर**
वावपथकनी वाडी, दशापोरवाड सोसायटी,
पालडी चार रस्ता, अमदावाद-३८० ००७
फोन : ०७९-२६५८६२९३

● **विजयभद्र चेरिटेबल ट्रस्ट**
पार्श्वभक्तिनगर, नेशनल हाईवे नं. १४,
भीलडीयाजी, जि. बनासकांठा-३८५५३५
फोन : ०२७४४-२३३१२९, २३४१२९

● **सरस्वती पुस्तक भंडार**
हाथीखाना, रतनपोल, अमदावाद-३८० ००१

मुद्रक : **किरीट ग्राफीक्स**
४१६, वृन्दावन शोपींग सेन्टर, रतनपोळ, अमदावाद-१, दूरभाष : २५३३००९५

प्रकाशकीय

आख्यानकमणिकोश बृहद्गच्छीय सैद्धांतिक शिरोमणि आ.श्री नेमिचन्द्रसूरिजीओ विक्रमना बारमा सैकामां रचेलो उपदेशकथाओनो अनूठो संग्रह छे.

मात्र बावन गाथामां १४६ कथाओनो उल्लेख कर्यो छे. आ 'आख्यानकमणिकोश' ग्रंथ उपर तेओना ज विद्वान शिष्यरत्न आ.आम्रदेवसूरिजीओ वि.सं. १२०९मां १४००० श्लोक प्रमाण वृत्ति रची छे. आ वृत्तिमां मूळ ग्रंथनी बधी गाथाओनी संस्कृतमां व्याख्या तो छे ज ते उपरांत ग्रंथकारे गाथाओमां उल्लिखित बधी कथाओने अति मनोहर शैलिमां रजू करी छे. मोटा भागनी (१२७ मांथी ११७) कथाओ प्राकृत-पद्यमां छे. बे-त्रण कथाओ क्रमांक २३, ४३ (७३ आंशिक) १४, १७, १२४ आ त्रण कथाओ संस्कृत-गद्यमां छे. ३९, ६४, १०९, १२२ क्रमांकनी कथाओ संस्कृत-पद्यमां छे.

आ ग्रंथनुं संपादन आगमप्रभावक मुनिश्री पुण्यविजयजी म.सा.ओ करेलुं. प्राकृत ग्रंथ परिषद् तरफथी ओनुं प्रकाशन वि.सं. २०१८मां थयेलुं. मुनिश्री पार्श्वरत्नसागरजीओ ग्रंथनी बधी ज प्राकृत कथाओनी संस्कृत छायारचनापूर्वक पुनः संपादन कर्युं छे. आ ग्रंथने ४ विभागमां प्रगट करतां अमे अत्यंत आनंद अनुभवीओ छीओ. विदुषी सा. महायशाश्रीजीओ बधा प्रुफो जोई आप्या छे. संस्कृत छायानुं संशोधन कर्युं छे.

आ ग्रंथ उपर श्रीविमल बाफणा Ph.D. करी रह्या छे ओवा समाचार मुनिश्री वैराग्यरति वि.म. द्वारा मळतां आ.मुनिचन्द्रसूरि म.ओ श्री बाफणाने प्रस्तावना लखवा जणावेल जे अहीं भाग-१मां प्रगट थई रही छे.

आख्यानकमणिकोशना प्रथम अधिकार (कथा १ थी ४) अने तेनो डो. तारा डागाओ करेल हिन्दी अनुवादनुं प्रकाशन ई.स. २०१३मां प्राकृत अध्ययन शोध केन्द्रम् राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम् जयपुर द्वारा प्रगट थयुं छे. आ संस्करणमां डो. तारा डागानो लेख प्राकृत कथासाहित्य परंपरा एवं आख्यानकमणिकोशमांथी केटलीक उपयोगी विगतो पण डो. तारा डागाना नामे ज प्रथम भागमां प्रकट थई रही छे. आ माटे अमे डो. तारा डागा अने संस्थाना आभारी छीए. ग्रंथ प्रकाशन माटे बधा लाभार्थी संघोना अमे आभारी छीओ.

अभ्यासीओ आ ग्रंथनो अभ्यास करी आत्मकल्याणने वरे अेज प्रार्थना.

ली.

प्रकाशक

• • •

आवकार

'अक्खाणयमणिकोस' (आख्यानकमणिकोश) प्राकृत कथासाहित्यनुं अेक अणमोल नझराणुं छे. प्राकृत ग्रंथोनो अभ्यास वधारवा संस्कृतछाया बनाववानो प्रचार हमणांथी वध्यो छे. आ कारणे प्राकृत ग्रंथोनुं वांचन वध्युं होय अेवुं पण जाणवा मळ्युं छे.

मुनिश्री पार्श्वरत्नसागरे आ ग्रंथनी संस्कृत छाया बनावी छे. आ पूर्वे 'पउमचरियं'नी संस्कृत छाया पण तेमणे बनावेली. गया वर्षे आज संस्था द्वारा प्रगट थई छे.

साध्वीश्री सत्यरेखाश्रीना शिष्या विदुषी साध्वीश्री महायशाश्रीजीअे बधा प्रुफो जोया छे. संस्कृत छायानुं संशोधन कर्युं छे.

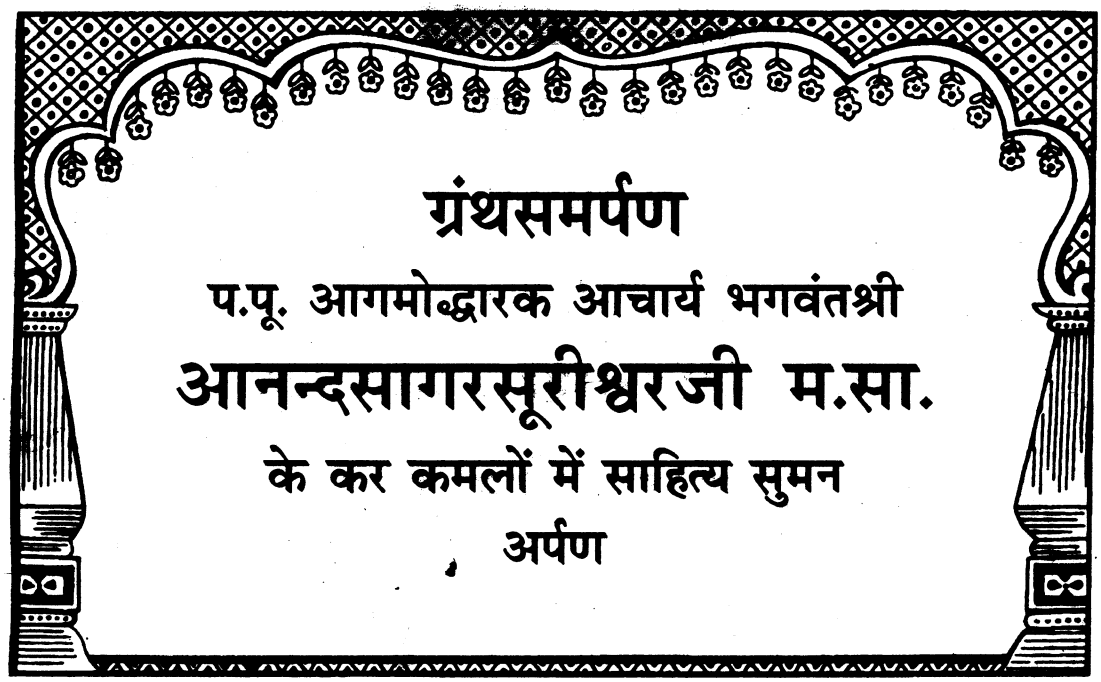
मुनिश्री वैराग्यरति वि.म.अे जणाव्युं के श्री विमल बाफणा आ ग्रंथ उपर Ph.D. करी रह्या छे. अमारी सूचनाथी तेओअे श्री बाफणा पासे प्रस्तावना लखावीने मोकली आपी छे. जे अहीं (भाग-१)मां प्रसिद्ध थई रही छे.

डो. तारा डागाअे 'आख्यानकमणिकोश'नुं हिन्दी भाषांतर करवानुं शरु कर्युं छे. अेक भाग (प्रथम अधिकार) प्रगट थयो छे ते तेओअे अमने मोकल्यो छे. अेमांथी पण उपयोगी विगत अहीं (प्रथम भागमां) आपवामां आवी छे.

अभ्यासीओने विनंती के - मूळ प्राकृत भाषानी मजा माणवा जेवी छे. ज्यां क्लिष्ट के न समजाय त्यां ज संस्कृत छायानो उपयोग करशो. प्राकृत भाषाना संस्कृत रुपांतरो घणां थई शकता होवाथी छायाकार ग्रंथकारना भावो न समजी शक्या होय अने भिन्न रुपांतर थयुं होय अेवुं पण संभवे छे. उपयोगपूर्वक अध्ययन करी अभ्यासीओ ग्रंथकारना हार्दने पामे, कथा रचना द्वारा विविध गुणो वाचकोने पमाडवानो कर्ताश्रीनो आशय छे तेने सफळ करे अने आत्मकल्याणने पामे अेज अभिलाषा.

- आ.विजय मुनिचन्द्रसूरि

• • •



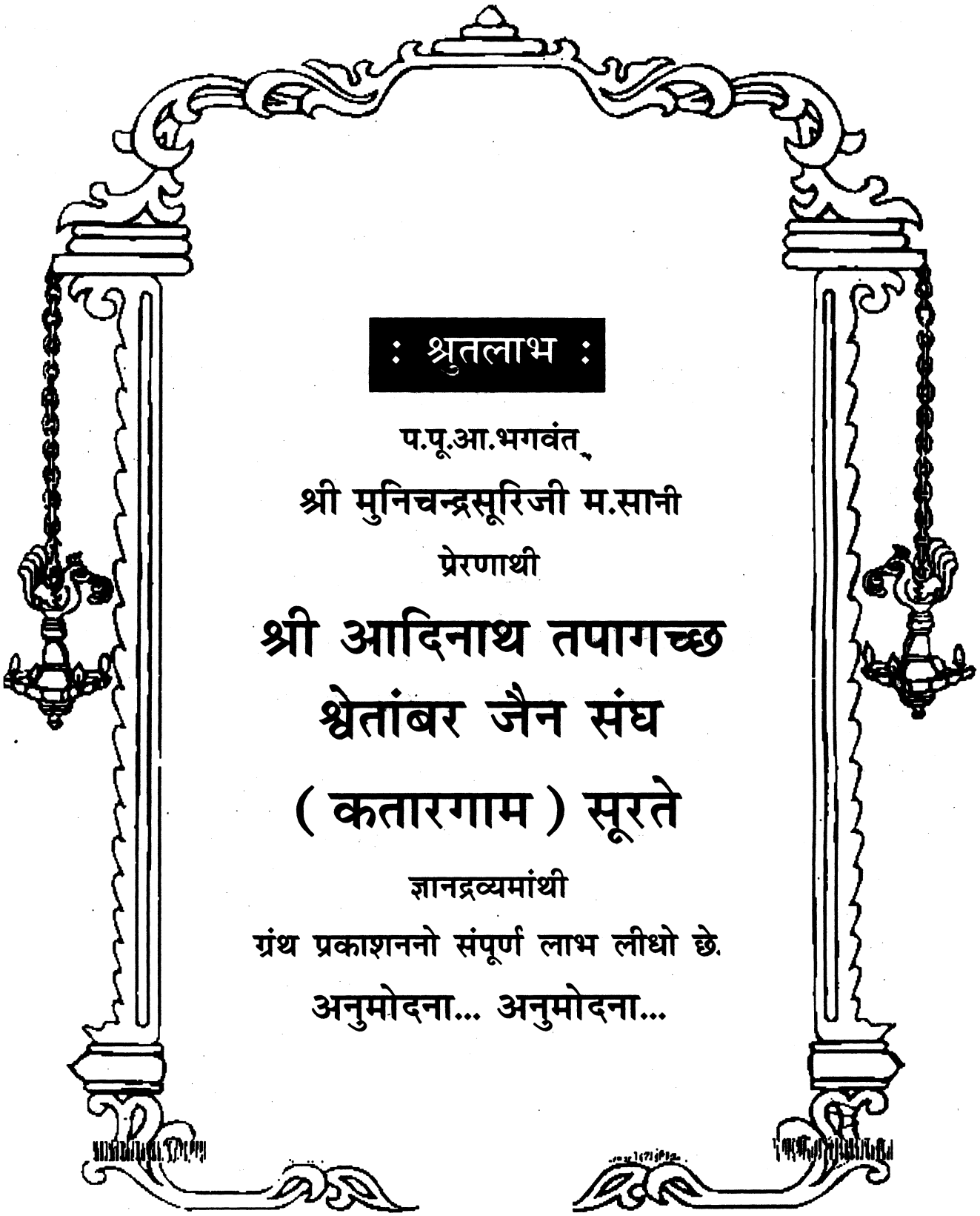
ग्रंथसमर्पण

प.पू. आगमोद्धारक आचार्य भगवंतश्री

आनन्दसागरसूरीश्वरजी म.सा.

के कर कमलों में साहित्य सुमन

अर्पण



: श्रुतलाभ :

प.पू.आ.भगवंत

श्री मुनिचन्द्रसूरिजी म.सानी

प्रेरणाथी

श्री आदिनाथ तपागच्छ श्वेतांबर जैन संघ

(कतारगाम) सूरते

ज्ञानद्रव्यमांथी

ग्रंथ प्रकाशननो संपूर्ण लाभ लीधो छे.

अनुमोदना... अनुमोदना...

संपादक की कलम से...

वर्तमानकाल में जहां ज्ञानोपार्जन - अध्ययन आदि का भौतिकरूपसे मात्र व्यवहारिक शिक्षा को लक्ष बनाकर पठन-पठनादि अपनी सीमाएँ लांघ रहा है वहां, जैनशासन के नमोमंडलमें पूर्व आचार्यों द्वारा रचे गए कई महामूल्यवान ग्रंथ अभीतक मात्र हस्तलिखित ताडपत्रों में बंध पड़ा हैं । इनमें से कई ग्रंथो का आगम प्रभाकर पूज्य मुनिराज श्री पुण्यविजयजी म.सा. काफी महेनत करके प्रकाशित करनेका अनुमोदनीय एवं अपकारणीय प्रयास किया है । उन ग्रंथतलिकामें एक ग्रंथ यहभी है "आख्यान मणिकोश"।

पूज्यपाद आचार्य नेमिचन्द्रसूरि म.सा.ने इस ग्रंथकी श्लोकबद्ध प्राकृत भाषामें रचना की थी और उनकी ही परंपरा के पू. आचार्य जिनचन्द्रसूरि के शिष्य पू. आचार्य आम्रदेवसूरिने इस ग्रंथ के श्लोकों में बताये गये दृष्टांतो के नाम उल्लेखों को कथानक में ग्रथन करके पद्यशैलीसे करीब १२७ कथानको को विशिष्ट शैलीओमें प्राकृत - संस्कृत - देश्य एवं अप्रभंश भाषाओंमें विभिन्न छेदालङ्कार - विभिन्नरस - विभिन्न इतिहासों आदी से अत्यंत मनमोहक बनाया है, इस पद्यबद्ध वृत्ति की रचना से ही पूज्यवरकी कवित्व शक्ति एवं भाषाके लय की विशिष्ट छबी उपस्थित होती है ।

मूल केवल ५३ गाथाओं मे रचे गए १४००० श्लोक प्रमाण विस्तृतवृत्ति की अद्‌भूत रचनावाले इस महाग्रंथ को ४१ अधिकारों में कुशलतापूर्वक बांटा गया हैं ।

वर्तमान में अपभ्रंश भाषा एवं देश्य शब्दो का प्रयोग काफी कम दिखाई देता है, वत्तिकारने सूक्ष्मबुद्धि से विभिन्न स्थलों पर अनेक देश्य शब्दों का इतनी बेखुबी से प्रयोग कीया है की जो तदानी काल की भाषाशैली की सुंदरता बयान करती है ।

देश्य शब्दों का भंडार एवं अपभ्रंश शैलीके कथानकों का रसथाल होने के कारण यह ग्रंथ वाचक वर्ग को पढने में काफी मुश्कील है, इतना रोचक और अद्‌भूतग्रंथ भाषा का पूर्ण ज्ञान न होने की वजह से संपादन होने के बादभी वाचक वर्गमें खास पढ़ा नहीं जाता है ।

आगे मैने पूर्वधर श्री विमलसूरि के द्वारा वीर सं. ५३० की साल में रचे गए 'पउमचरिय' ग्रंथकी संस्कृत छाया करने का प्रयत्न प.पू. शास्त्रसंशोधक आ.भ.श्री मुनिचन्द्रसूरि म.सा. के निर्देश के अनुसार कीया था । जो ग्रंथ चार विभागोमें छप चूका है । और उस कार्य को देखकर पू. आचार्य भगवंतश्रीने मुझे इस ग्रंथकी महत्ता बताकर ग्रंथ के अंदर के प्राकृत एव अपभ्रंश दृष्टांतो की संस्कृत छाया करने की बात कही और इस ग्रंथकी भी संस्कृत छाया करनेका मुझे लाभ मिला ।

और इस ग्रंथ को विशेष शुद्धि करके पू. साध्वीवर्या श्री महायशाश्रीजीने भी मुज पर उपकार कीया है । साथमें हर जगह जहां-जहां मुश्कीलें आई वहां पू. आ.भ.ने भी सामग्री हस्तप्रतकी नकल एवं योग्य सलाह लेकर बहोत बड़ा उपकार कीया है ।

इस ग्रंथ प्रकाशनका संपूर्ण लाभ श्री उवसग्गहरं पार्श्वनाथ तीर्थ एवं अ.भा. कल्याणमित्र सभाने लिया है श्रुत भविन इस कार्य के लिए भूरि भूरि अनुमोदना ।

पुस्तक मुद्रण कार्यको सुंदर सहयोग के साथ संपन्न करने के लिए 'किरीट ग्राफिक्स' के सुश्रावक श्री गिरीटभाई एवं सुश्रावक श्री श्रेणिकभाई को भी खुब खुब धन्यवाद ।

ग्रंथ प्रकाशक के रूप में संपूर्ण सहयोग देने के लिए श्री ऊँकार सूरी आराधना भवन की भी अनुमोदना ।

अंतमें इस ग्रंथकी संस्कृत छाया करते समय मतिदोष एवं प्रेसदोष से कुछ क्षति रह गई हो तो विरुद्धर्य पूज्यों से निवेदन है की सुधारकर पढ़े एवं मुझे क्षतियों से वाकेफ कराएँ ।

अपने अध्ययन - अध्यापनमें इसग्रंथ को सामिल करके जिनशासनमें घटित घटनाओं को कथानकों के माध्यमसे जानकर सभी स्व-पर उपकार करके ज्ञानावरणीवादि कर्मो का क्षय करके अक्षय स्थानको प्राप्त करें ऐसी शुभेच्छा ।

श्रावण वदी ०॥
राजनांद गाँव (छ.ग.)

- मुनि पार्श्वरत्न सागर

● ● ●

विषयानुक्रम

	विषय	पृष्ठ संख्या
(८)	**जिनपूजाफलवर्णनाधिकारः**	२५३-२७७
२८	दीपकशिखाख्यानकम्	२५३
२९	नवपुष्पकाख्यानकम्	२६१
३०	पद्मोत्तराख्यानकम्	२६३
३१	दुर्गानार्याख्यानकम्	२७६
(९)	**जिनवन्दन कलाधिकारः**	२७८-२९६
३२	बकुलाख्यानकम्	२७८
३३	सेदूवकाख्यानकम्	२८०
३४	नन्दाख्यानकम्	२९४
(१०)	**साधुन्दन कलवर्णनाधिकारः**	२९७-३०२
३५	हर्याख्यानकम्	२९७
(११)	**सामायिक कलवर्णनाधिकारः**	३०३-३०८
३६	सम्प्रत्याख्यानकम्	३०३
(१२)	**जिनागमनश्रवण कलाधिकारः**	३०९-३१८
३७	चिलातीपुत्राख्यानकम्	३०९
३८	रौहिणेयकाख्यानकम्	३१२
(१३)	**नमस्कार परावर्त्तनकलाधिकारः**	३१९-३५४
३९	गोकथानकम्	३१९
४०	पड्डुयाख्यानकम्	३२४
४१	फण्याख्यानकम्	३२७
४२	सोमप्रभाख्यानकम्	३२८
४३	सुदर्शनाख्यानकम्	३४१
(१४)	**स्वाध्यायाधिकारः**	३५५-३५८
४४	यवसाध्वाख्यानकम्	३५५
(१५)	**नियमविधान फलाधिकारः**	३५९-३९०
४५	दामन्नकाख्यानकम्	३५९
४६	बाह्मण्याख्यानकम्	३६८

	४७	चण्डचूडाख्यानकम्	३७२
	४८	गिरिडुम्बाख्यानकम्	३७४
	४९	राजहंसाख्यानकम्	३७८
(१६)	**मिथ्यादुष्कृतदानफलाधिकारः**		**३९१-४०४**
	५०	क्षपकाख्यानकम्	३९१
	५१	चण्डरुद्राख्यानकम्	३९६
	५२	प्रसन्नचन्द्राख्यानकम्	३९९
(१७)	**विनयफलवर्णनाधिकारः**		**४०५-४०९**
	५३	चित्रप्रिययक्षाख्यानकम्	४०५
	५४	वनवासियक्षाख्यानकम्	४०८
(१८)	**प्रवचनोन्नत्यधिकारः**		**४१०-४२७**
	५५	विष्णुकुमाराख्यानकम्	४१०
	५६	वैरस्वाम्याख्यानकम्	४१५
	५७	सिद्धसेनाख्यानकम्	४१६
	५८	मल्लवायाख्यानकम्	४२०
	५९	समिताख्यानकम्	४२३
	६०	आर्यखपूटाख्यानकम्	४२४
(१९)	**जिनधर्माराधनोपदेशाधिकारः**		**४२८-४३१**
	६१	योत्कारमित्राख्यानकम्	४२८
(२०)	**नरजन्मरक्षाधिकारः**		**४३२-४३४**
	६२	वाणिजकतनयाख्यानकम्	४३२
(२१)	**उत्तमजनसंसर्गिगुणवर्णनाधिकारः**		**४३५-४४५**
	६३	प्रभाकराख्यानकम्	४३५
	६४	कम्बल-शम्बलाख्यानकम्	४४३
(२२)	**इन्द्रियवशवर्त्तिप्राणिदुःखवर्णनाधिकारः ।**		**४४६-४५८**
	६६	उपकोशागृहगततपस्याख्यानकम्	४४६
	६७	भद्राख्यानकम्	४४९
	६८	नृपसुताख्यानकम्	४५१
	६९	नरादाख्यानकम्	४५२
	७०	सुकुमारिकाख्यानकम्	४५३
(२३)	**व्यसनशतजनकयुवत्यविश्वासवर्णनाधिकारः**		**४५९-५३८**
	७१	नूपुरपण्डिताख्यानकम्	४५९
	७२	दत्तकदुहित्राख्यानकम्	४६८
	७३	भावभट्टिकाख्यानकम्	४७२

• • •

[८. जिनपूजाफलवर्णनाधिकारः ।]

व्याख्यातं जिनबिम्बदर्शनम् । तच्च सम्यगदृष्टिना दृष्टं सद् यथाशक्त्या पूजनीयम् इत्यनेन सम्बन्धेनाऽऽयातां तत्पूजां. व्याख्यानयन्नाह –

जे जिणवराण पूयं कुणंति ते हुंति सयलसुहभागी ।
दीवय सिह नवफुल्लय-पउमुत्तर-दुग्गनारि व्व ॥ १३ ॥

व्याख्या - 'ये' केचन 'जिनवराणां' तीर्थकृतां 'पूजाम्' अभ्यर्चनं 'कुर्वन्ति' सम्पादयन्ति 'ते' जीवाः 'भवन्ति' जायन्ते सकलसुखभाजनम् । दृष्टान्तानाह-दीपकशिखश्च-कर्मकरीजीवः नवपुष्पकश्च-मालाकारजीवः पद्मोत्तरश्च-नौवित्तककर्मकरजीवः दुर्गनारी च- कायन्दीवास्तव्यवृद्धा ता दीपकशिख-नवपुष्पक-पद्मोत्तर-दुर्गनार्यः ता इव इत्यक्षरार्थः ॥ १३ ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तानि चामूनि।

तत्र तावद् दीपकशिखाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

सेयवियाए पुरीए कम्मयरी आसि गंगदत्त त्ति । अह अन्नया य जिणदीवदाणपुन्नं सुयंतीए ॥१॥

तथा हि-

जो देइ भत्तिनिब्भरचित्तो जिणनाहदीवयं तस्स । जायंति सयलकल्लाणयाइं सहलाइं पुन्नेण ॥२॥

नाओवज्जियतेल्लेण भत्तिपब्भारनिब्भरंगीए । दीवूसवम्मि देवस्स दीवओ दिन्नो तीए ॥३॥

दीपकशिखाख्यानकम् - ॥ २८ ॥

श्वेताम्बिकायां पूर्यां कर्मकर्यासीद्गङ्गदत्तेति । अथान्यदा च जिनदीपदानपुण्यं श्रुण्वन्त्याः ॥ १ ॥

तथा हि-

यो ददाति भक्तिनिर्भरचित्तो जिननाथदीपकं तस्य । जायन्ते सकलकल्याणकानि सफलानि पुण्येन ॥ २ ॥

न्यायोपार्जिततैलेन भक्तिप्राग्भारनिर्भराङ्ग्याः । दीपोत्सवे देवस्य दीपको दत्तस्तया ॥ ३ ॥

सुहपरिणामवसेणं समज्जियं तीए भोगफलकम्मं । कालक्कमेण मरिउं तीए नयरीए नाहस्स ॥४॥
सिरिविजयधम्मरन्नो भज्जाए जयाभिहाए कुच्छीए । उप्पन्ना पुत्तत्तेण तयणु सा सुविणयं नियइ ॥५॥
किर पज्जलंतजालाकलावनिट्ठवियतिमिरपब्भारो । निद्धूमो मुहकुहरेण पविसए पावओ उयरे ॥६॥
तत्तो सुहसंबुद्धाए तीए पइणो पयासिओ सुविणो । फुरियपयावो पुत्तो तुह होही राइणा भणियं ॥७॥
गब्भे पवड्ढमाणे संजाओ तीए दोहलो एसो । कयरयणालंकारा दीणाणं देमि जह दाणे ॥८॥
तो तीए पुहइपालेण पूरिओ दोहलो अह कमेण । जाओ य पवरपुत्तो पसत्थतिहिकरणसंजोए ॥९॥
दीवसिहामलनियगत्ततेयपडिहणियभवणतमपसरो । दीवयसिहो त्ति नामं विहियं सुपसत्थदिवसम्मि ॥१०॥
संगहिओ कुमरेणं कलाकलावो कमेण ससिण व्व । पत्तो य हरिणनयणीहिययहरं जोव्वणारंभं ॥११॥
एत्तो य महीमहिलाकंचीदामं व कंचियानयरी । गुरुविक्कमेक्करसिओ विक्कमसेणो निवो तत्थ ॥१२॥
तस्साऽऽसि पढमजोव्वणमणोहरा रायहंसगइगमणा । गंधव्वदत्तनामा धूया रूवाइगुणकलिया ॥१३॥
वीणाविन्नाणेणं जो मं निज्जिणइ तस्स हं घरणी । इय एरिसा पइन्ना तीए कया गरुयगव्वेण ॥१४॥
तीए तीए पइन्नाए नियय्विन्नाणगुरुमरट्टा वि । निज्जिणिया अइबहुया नरेसरा एरिसं सोउं ॥१५॥
दीवयसिहकुमरेणं जणओ भणिओ अहं पि पेच्छामि । वीणाविन्नाणं से तो नरवइणा कयाणून्नो ॥१६॥
सिंधुर-तुरंग-गुरुरयरहरयणारूढरायकुमरेहिं । अणुगम्मंतो पत्तो कंचिपुरिं गुरुपयाणेहिं ॥१७॥

शुभपरिणामवशेन समर्जितं तथा भोगफलकर्म । कालक्रमेण मृत्वा तस्या नगर्या नाथस्य ॥ ४ ॥
श्रीविजयधर्मराज्ञो भार्याया जयाभिधानायाः कुक्षौ । उत्पन्ना पुत्रत्वेन तदनु सा स्वप्नं पश्यति ॥ ५ ॥
किल प्रज्वलज्ज्वालाकलापनिष्ठापिततिमिरप्राग्भारः । निर्धूमो मुखकुहरेण प्रविशति पावक उदरे ॥ ६ ॥
ततः सुखसम्बुद्धया तया पत्युः प्रकाशितः स्वप्नः । स्फुरितप्रतापः पुत्रस्तव भविष्यति राज्ञा भणितम् ॥ ७ ॥
गर्भे प्रवर्धमाणे सञ्जातस्तस्या दोहद एषः । कृतरत्नालङ्कारा दीनेभ्यो ददामि तथा दानम् ॥ ८ ॥
ततस्तस्याः पृथिवीपालेन पूरितो दोहदोऽथ क्रमेण । जातश्च प्रवरपुत्रः प्रशस्ततिथिकरणसंयोगे ॥ ९ ॥
दीपशिखामलनिजगात्रतेजःप्रतिहतभवनतमःप्रसरः । दीपकशिख इति नाम विहितं सुप्रशस्तदिवसे ॥ १० ॥
सङ्गृहीतः कुमारेण कलाकलापः क्रमेण शशिनइव । प्राप्तश्च हरिणनयनीहृदयहरं यौवनारम्भम् ॥ ११ ॥
इतश्च महिमहिलाकाञ्चिदामेव कञ्चिकानगरी । गुरुविक्रमैकरसिको विक्रमसेनो नृपस्तत्र ॥ १२ ॥
तस्यासीत्प्रथमयौवनमनोहरा राजहंसगतिगमना । गन्धर्वदत्तानामा दुहिता रुपादिगुणकलिता ॥ १३ ॥
वीणाविज्ञानेन यो मां निर्जयति तस्याहं गृहिणी । इतीदृशा प्रतिज्ञा तथा कृता गुरुकगर्वेण ॥ १४ ॥
तथा तथा प्रतिज्ञया निजकविज्ञानगुरुगर्वा अपि । निर्जिता अतिबहुका नरेश्वरा ईदृशं श्रुत्वा ॥ १५ ॥
दीपकशिखकुमारेण जनको भणितोऽहमपि पश्यामि । वीणाविज्ञानं तस्यास्ततो नरपतिना कृतानुज्ञः ॥ १६ ॥
सिन्धुर-तुरङ्ग-गुरुराजरथरत्नारुढराजकुमारैः । अनुगम्यमानः प्राप्तः काञ्चिपुरिं गुरुप्रयाणैः ॥ १७ ॥

आवासिओ य तन्नयररायअप्पियपकिट्ठपासाए । काऊण कामिणीनयणमोहणं सयलसिंगारं ॥१८॥
आरुहिय गरुयसिंधुरबंधुरखंधेसु धीरिमाकलिओ । पत्तो य रायमग्गेण सुहडसंकिण्णमत्थाणं ॥१९॥
महियलमिलंतभालयलमणहरं तेण नरवई नमिओ । उवविट्ठो य तयाऽऽणाए रइयसिंहासणे रम्मे ॥२०॥
दिट्ठा य तत्थ सज्जियसरस्स मयरद्धयस्स वासगिहं । लायण्णजलहिलहरीललणालीलाए कुलभवणं ॥२१॥
गंधव्वदत्तकुमरी अमरी विय सयलसुंदरावयवा । दीवयसिहकुमरो वि हु तिए मयणो व्व सच्चविओ ॥२२॥
दोण्हं पि नयणभमरा परोप्परं ताण वयणकमलेसु । निरुवमलायन्नमहुं पियंति अणुवरयमणवंछा ॥२३॥
पुव्वं पि पुहइपालेण तिन्नि दिवसाणि निरसणो हत्थी । विहिओ आसि तओ सो आणीओ रायभवणम्मि ॥२४॥
तो तस्स करे कवलो समप्पिओ गुरुछुहाकिलंतस्स । आसारिया य वीणा कुमरीए करेणुसन्नेज्झे ॥२५॥
ताहे रणंतवीणासरं सुणेउं करी कवलमवसो । मोत्तुं कुमरिसयासम्मि पत्थिओ सद्दवसवत्ती ॥२६॥
तीए वीणाविन्नाणकोसलं पासिऊण विउसयणा । तग्गुणकित्तणपवणा संजाया धुणियसिरकमला ॥२७॥
कुमरो वि पुण पयंपइ विन्नाणमिमीए सुंदरं किंतु । तंती इमा न सुद्धा वेणु वि हु वाल-उवलेहिं ॥२८॥
अह भणियं नरवइणा कह नज्जइ ? तो झड त्ति कुमरेण । उव्वेढिउण तंती पकड्ढिओ कोमलो वालो ॥२९॥
मज्झाओ वेणुदंडस्स दंसियं निवइणो उवलखंडं । तत्तो य सज्जिऊणं वीणादंडं सुबुद्धीए ॥३०॥
आसारिऊण तंती वाएउं जा पयत्तओ लग्गो । तो तीए सवणसुहयं सद्दं सोउं सुयइ हत्थी ॥३१॥

आवासितश्च तन्नगरराजार्पितप्रकृष्टप्रासादे । कृत्वा कामिनीनयनमोहनं सकलशृङ्गारम् ॥ १८ ॥
आरुह्य गुरुकसिन्धुरबन्धुरस्कन्धेषु धैर्यकलितः । प्राप्तश्च राजमार्गेण सुभटसङ्कीर्णमास्थानम् ॥ १९ ॥
महितलमिलद्भालतलमनोहरं तेन नरपति र्नतः । उपविष्टश्च तदाज्ञया रचितसिंहासने रम्ये ॥ २० ॥
दृष्टा च तत्र सर्जितशरस्य मकरध्वजस्य वासगृहम् । लावण्यजलधिलहरीललनालीलायाः कुलभवनम् ॥ २१ ॥
गन्धर्वदत्ताकुमारी अमरीव सकलसुन्दरावयवा । दीपकशिखकुमारोऽपि खलु मदन इव दृष्टः ॥ २२ ॥
द्वयोरपि नयनभ्रमराः परस्परं तयो र्वदनकमलयोः । निरुपमलावण्यमधु पिबन्ति अनुपरतमनोवाञ्छाः ॥ २३ ॥
पूर्वमपि पृथिवीपालेन त्रिणि दिनानि निरशनो हस्ती । विहित आसीत्ततः स आनीतो राजभवने ॥ २४ ॥
तदा तस्य करे कवलः समर्पितो गुरुक्षुधाक्लान्तस्य । अवसारिता च वीणा कुमार्या करेणुसान्निध्ये ॥ २५ ॥
तदा रणद्वीणास्वरं श्रुत्वा करी कवलमवशः । मुक्त्वा कुमारीसकाशे प्रस्थितः शब्दवशवर्त्ती ॥ २६ ॥
तस्या वीणाविज्ञानकौशल्यं दृष्ट्वा विदुषजनाः । तद्गुणकीर्त्तनप्रवणाः सञ्जाताः धुनितशिरःकमलाः ॥ २७ ॥
कुमारोऽपि पुनः प्रजल्पति विज्ञानमस्याः सुन्दरं किन्तु । तन्त्रीमा न शुद्धा वेणुरपि खलु बालोपलैः ॥ २८ ॥
अथ भणितं नरपतिना कथं ज्ञायते ? ततः शीघ्रमिति कुमारेण । उद्वेष्ट्य तन्त्रीं प्रकृष्टः कोमलो वालः ॥ २९ ॥
मध्याद्वेणुदण्डस्य दर्शितं नृपतेरुपलखण्डम् । ततश्च सज्जित्वा वीणादण्डं स्वबुद्ध्या ॥ ३० ॥
अवसार्य तन्त्रीं वादितुं यावत्प्रवृत्तकः लग्नः । ततस्तस्याः श्रवणसुखकं शब्दं श्रुत्वा स्वपिति हस्ती ॥ ३१ ॥

विन्नाणाइसएणं कुमरस्स नरिंदपमुहपुरलोगो । जाओ उब्भूयपभूयहरिसपरिपूरियसरीरो ॥३२॥
रन्ना वि पसत्थमुहुत्त-करण-सुहवार-लग्गम्मि । काराविओ कुमारो पाणिग्गहणं समं तीए ॥३३॥
तो तत्थेव य कइय वि दिणाणि पीणत्थणीए तीए समं । भुंजंतो विसयसुहं ठिओ कुमारो अहऽन्नदिणे ॥३४॥
सम्माणिओ समाणो सद्धिं गंधव्वदत्तकुमरीए । नियबलभरपरियरिओ विसज्जिओ नरवरिंदेण ॥३५॥
वच्चंतो संपत्तो कमेण कुमरो पुरे पइट्ठाणे । आवासिओ य तप्परिसरम्मि एत्थंतरे तत्थ ॥३६॥
कक्कनरेसरकुमरी नियरूवविणिज्जियामरी अहिणा । दट्ठा मय त्ति निज्जइ दाहनिमित्तं मसाणम्मि ॥३७॥
डिंडिमसद्दं सोउं उल्लविया पणइणी कुमारेण । निस्सारिज्जइ सुंदरि ! सजीवमाणुसमिमं नियमा ॥३८॥
कह पिययमो वियाणइ ? इय भणिए तीए जंपइ कुमारो । डिंडिमसद्दविसेसेण तयणु सा भणइ कहमेयं ? ॥३९॥
कुमरेण कहियमहिणा दट्ठा तो तीए जंपियं एयं । जीवाविउं वियाणसि ? तेणुत्तं अत्थि ता मंतो ॥४०॥
जइ एवं जीवावसु पिययम ! एयं पयंपियं तीए । नियपुरिसं पट्ठाविय कुमरेण धरावियं मडयं ॥४१॥
कारावियं चियाए पच्चासन्नम्मि तेण मंडलयं । तो तत्थ गओ दिट्ठो कक्कमहीसामिणा कुमरो ॥४२॥
कहियं च तस्स रन्ना कन्ना लीलावई इमा मज्झ । दट्ठा कसिणभुयंगेण कुणसु ता निव्विसं एयं ॥४३॥
मिल्लाविया य मंडलयमज्झभायम्मि सा कुमारेण । काऊण सिहाबंधं सरिउं विसनासणं मंतं ॥४४॥
भणिया एसा उट्ठित्तु देहि मुहसोयणं सजणणीए । तत्तो समुट्ठिया सा कंचणतंबालुयं घेत्तुं ॥४५॥

विज्ञानातिशयेन कुमारस्य नरेन्द्रप्रमुखपुरलोकः । जात उद्भूतप्रभूतहर्षपरिपूरितशरीरः ॥ ३२ ॥
राज्ञापि प्रशस्तमुर्हूत-करण-शुभवार-वरलग्ने । कारितः कुमारः पाणिग्रहणं समं तस्याः ॥ ३३ ॥
ततस्तत्रैव च कतिपयान्यपि दिनानि पीनस्तन्या तया समम् । भुञ्जन् विषयसुखं स्थितः कुमारोऽथान्यदिने ॥ ३४ ॥
सन्मानितः सन् सार्द्धं गन्धर्वदत्ताकुमार्या । निजबलभरपरिकरितो विसर्जितो नरवरेन्द्रेण ॥ ३५ ॥
व्रजन् सम्प्राप्तः क्रमेण कुमारः पुरे प्रतिष्ठाने । आवासितश्च तत्परिसरे ऽत्रान्तरे तत्र ॥ ३६ ॥
कक्कनरेश्वरकुमारी निजरुपविनिर्जितामरी अहिना । दृष्टा मृतेति नीयते दाहनिमित्तं स्मशाने ॥ ३७ ॥
डिण्डिमशब्दं श्रुत्वोल्लपिता प्रणयिनी कुमारेण । निसार्यते सुन्दरि ! सजीवमानुषमेमां नियमा ॥ ३८ ॥
कथं प्रियतमो विज्ञायते ? इति भणिते तथा जल्पति कुमारः । डिण्डिमशब्द विशेषेण तदनु सा भणति कथमेतत् ? ॥ ३९ ॥
कुमारेण कथितमहिना दृष्टा तदा तया जल्पितमेतत् । जीवायितुं विजानासि ? तेनोक्तमस्ति तावन्मन्त्रः ॥ ४० ॥
यद्येवं जीवय प्रियतम ! एतत्प्रजल्पितं तया । निजपुरुषं प्रस्थाप्य कुमारेण धारितं मृतकम् ॥ ४१ ॥
कारितं चितायाः प्रत्यासन्ने तेन मण्डलकम् । ततस्तत्र गतो दृष्टः कक्कमहीस्वामिना कुमारः ॥ ४२ ॥
कथितं च तस्य राज्ञा कन्या लीलावतीमा मम । दृष्टा कृष्णभुजङ्गेन कुरु तावन्निर्विषामेनाम् ॥ ४३ ॥
मेलयिताश्च मण्डलकमध्यभागे सा कुमारेण । कृत्वा शिखाबन्धं स्मृत्वा विषनाशनं मन्त्रम् ॥ ४४ ॥
भणितैषोत्थाय देहि मुखशोचनं स्वजनन्याः । ततः समुत्थिता सा कञ्चनताम्बुलकं गृहीत्वा ॥ ४५ ॥

दिन्नं मुहसोयणयं तं दट्ठुं हरिसिओ जणो सव्वो । वज्जावियं च वद्धावणयं कुमरेण पडिसिद्धं ॥४६॥
भणियं च मए तुम्हाण दंसियं मंतकोउयं एयं । अज्ज वि सविसा एसा इय जंपंतस्स तस्स तओ ॥४७॥
पडिया सा मंडलए तो भणिओ सायरं नरिंदेण । कुमरो तेणावि कया कुमरी मंतेहिं विसवियला ॥४८॥
कुमरिं पच्चुज्जीवियमवलोएउं पहरिसिओ राया । सो वि हु नाओ सिरिविजयधम्मरन्नो सुओ त्ति इमो ॥४९॥
नीओ य नियभवणम्मि निवइणा पारितोसियं दाणं । दिन्ना कुमरी कुमरस्स तत्थ तेणावि परिणीया ॥५०॥
तीए सह विसयसोक्खं उवभुंजेऊण कइय वि दिणाणि । संचलिओ नियपुरिं पत्तो य कमेण उज्जेणिं ॥५१॥
जाए संझासमए सुवन्नजालेसरस्स उवकंठे । दिट्ठा चिया जलंती तीसे जालाविसेसेण ॥५२॥
एसा सजीवमडया एयं देवीण साहिउं कुमरो । अंधारपडं पावरिय करयले कलिय करवालं ॥५३॥
एगेण भडेण समं गओ चियासन्नपायवतलम्मि । जा तत्थ ठिओ ता तक्खणेण गयणंगणग्गाओ ॥५४॥
अवयरिओ सोयामणिपुंजो व्व सिहि व्व दिणयररहो व्व । नियतेयपज्जलंतो चियाए कावालिओ एगो ॥५५॥
जालावली चियाए नट्ठा मंडलयमालिहेऊण । मन्तुच्चारपुरस्सरमप्फालइ डमरुगं एसो ॥५६॥
तो उद्दामरडमरुगसद्दं सोउं चियाए मज्झाओ । हा ताय ! त्ति भणंती समुट्ठिया कन्नया एगा ॥५७॥
भयकंपिरसव्वंगा घेत्तुं केसेसु कड्ढिया तेण । संठविया मंडलए हढेण भिउडीए भेसित्ता ॥५८॥
करकलियकत्तिएणं भणिया संभरसु देवयं इट्ठं । एत्तियमेत्तो जम्हा होही तुह जीवलोओ त्ति ॥५९॥

दत्तं मुखशोचनकं तद्दृष्ट्वा हर्षितो जनः सर्वः । वादयित्तं च वर्धापनकं कुमारेण प्रतिषिद्धम् ॥ ४६ ॥
भणितं च मया युष्मान्दर्शितं मन्त्रकौतुकमेतत् । अद्यापि सविषैषेति जल्पतस्तस्य ततः ॥ ४७ ॥
पतिता सा मण्डलके ततो भणितः सादरं नरेन्द्रेण । कुमारस्तेनापि कृता कुमारी मन्त्रै र्विषविकला ॥ ४८ ॥
कुमारिं प्रत्युपजीवितामवलोक्य प्रहर्षितो राजा । सोऽपि खलु ज्ञातः श्रीविजयधर्मराज्ञः सुत इत्ययम् ॥ ४९ ॥
नीतश्च निजभवने नृपतिना पारितोषिकं दानम् । दत्ता कुमारी कुमारस्य तत्र तेनापि परिणीता ॥ ५० ॥
तथा सह विषयसौख्यमुपभुज्या कत्यपि दिनानि । सञ्चलितो निजकपुरिं प्राप्तश्च क्रमेणोज्जैनीम् ॥ ५१ ॥
जाते सन्ध्यासमये सुवर्णजलाशयस्योपकण्ठे । दृष्टा चिता ज्वलन्ती तस्या ज्वालाविशेषेण ॥ ५२ ॥
एषा सजीवमृतकेतद् देव्योः कथयित्वा कुमारः । अन्धारपटं प्रावृत्य करतले कलितकरवालः ॥ ५३ ॥
एकेन भटेन समं गतश्चितासन्नपादपतले । यावत्तत्रस्थितस्तावत्तत्क्षणेन गगनाङ्गगात् ॥ ५४ ॥
अवतरितः सौदामिनिपुञ्ज इव शिखीव दिनकररथ इव । निजतेजःप्रज्वलंश्चितायाः कापालिक एकः ॥ ५५ ॥
ज्वालावलिश्चिताया नष्टा मण्डलमालिख्य । मन्त्रोच्चारपुरस्सरमास्फालयति डमरुकमेषः ॥ ५६ ॥
तत उद्दामडमरुकशब्दं श्रुत्वा चिताया मध्यात् । हा तात ! इति भणन्ती समुत्थिता कन्यकेका ॥ ५७ ॥
भयकम्पमानत्सर्वाङ्गा गृहीत्वा केशैः कृष्टा तेन । संस्थापिता मण्डलके बलाद्भृकुट्या भेषयित्वा ॥ ५८ ॥
करकलितकर्त्तिकेन भणिता स्मर देवतामिष्टाम् । एतावन्मात्रो यस्माद्भविष्यति तव जीवलोक इति ॥ ५९ ॥

तो भामिंतो जमरायभूलयासमकरालकरवालं । मा साहसं भणंतो संपत्तो झत्ति कुमरो वि ॥६०॥
तत्तो कवालिएणं अद्धत्थंभीकओ विचिंतेइ । एसो महप्पभावो को वि तओ ईसि संखुद्धो ॥६१॥
भणिओ कवालिएणं महाणुभावा ! न जुज्जए तुज्झ । मम विग्ध (करण) मेवं कवालिओ भारभूइ अहं ॥६२॥
पारद्धं थीरयणायरिसणमंतस्स साहणं अज्ज । बारसमासपमाणा कया मए पुव्वसेवा वि ॥६३॥
इण्हिं पुण पारद्धा पहाणसेवा नरिंदकन्नाए । दिज्जइ बली तओ इह एसा अप्फेरछउमेण ॥६४॥
कन्ना अवन्तिवद्धणनरवइणोऽवंतिणि त्ति नामेणं । मंतेण कया[1] सुनिरुद्धचेयणा आणिया एत्थ ॥६५॥
भयवं करालजालो वि हुयवहो थंमिउं कओ सोमो । एवं विहिए मंतो सिज्झइ ता मा कुणसु विग्घं ॥६६॥
दीवयसिहो वि जंपइ थीवज्झा गरहिया महाभाग ! कारणमिणं महंत्तस्स पावपब्भारभवणस्स ॥६७॥
ता किं सिद्धेणं पि हु मंतेणं नरयकारिणा इमिणा ? पडिसिद्धं तुम्हारिसपुरिसाण जओ विसेसेणं ॥६८॥
ता किं तुमए ववसियमणज्जजणजोग्गमेरिसं पावं ? एवं वुत्तो कुमरेण लज्जिओ जंपिउं लग्गो ॥६९॥
एवमिणं जं तुमए पयंपियं सव्वहा कओ मज्झ । गरुओ अणुग्गहो पावपडलपब्भारपिहियस्स ॥७०॥
एरिसकुमंतकरणेण किह मए पेच्छ मइलिओ अप्पा ? । ता मन्ने मह सुद्धी न अत्थि नरए वि पडियस्स ॥७१॥
ता दुव्विलसियमेयं परिचत्तं सव्वहा मए इण्हिं । पायच्छित्तं सिरिपव्वयम्मि गंतुं चरिस्सामि ॥७२॥

ततो भ्रामयन्यमराजभृलतासमकरालकरवालम् । मा साहसं भणन्सम्प्राप्तः शीघ्रं कुमारोऽपि ॥ ६० ॥
ततः कापालिकेनार्द्धस्तम्भीकृतो विचिन्तयति । एष महाप्रभावः कोऽपि तत ईषत्संक्षुब्धः ॥ ६१ ॥
भणितः कापालिकेन महानुभावः ! न युज्यते तव । मम विघ्नकरणमेवं कापालिको भारभूतिरहम् ॥ ६२ ॥
प्रारब्धं स्त्रीरत्नाकर्षणमन्त्रस्य साधनमद्य । द्वादशमासप्रमाणा कृता मया पूर्वसेवापि ॥ ६३ ॥
इदानीं पुनः प्रारब्धा प्रधानसेवा नरेन्द्रकन्यायाः । दीयते बली तत इहैषोप्फेरछद्मना ॥ ६४ ॥
कन्यावन्तिवर्धननरपतेरवन्तिनीति नाम्ना । मन्त्रेण कृता सुनिरुद्धचेतनानीतात्र ॥ ६५ ॥
भगवन् ! करालज्वालोऽपि हुतवहः स्तम्भित्वा कृतः सौम्यः । एवं विधिना मन्त्रः सिध्यते ततो मा कुरु विघ्नम् ॥ ६६ ॥
दीपकशिखोऽपि जल्पति स्त्रीहत्या गर्हिता महाभाग ! । कारणमिदं महतः पापप्राग्भारभवनस्य ॥ ६७ ॥
ततः किं सिद्धेनापि खलु मन्त्रेण नरककारिणानेन ? । प्रतिषिद्धं युष्मादृशपुरुषाणां यतो विशेषेण ॥ ६८ ॥
ततः किं त्वया व्यवसितमनार्यजनयोग्यमीदृशं पापम् ? । एवमुक्तः कुमारेण लज्जितो जल्पितुं लग्नः ॥ ६९ ॥
एवमिदं यत्वया प्रजल्पितं सर्वथा कृतो मम । गुरुकोऽनुग्रहः पापपटलप्राग्भारपिहितस्य ॥ ७० ॥
इदृशकुमन्त्रकरणेन कथं मया पश्य मलिनित[2] आत्मा ? । ततो मन्ये मम शुद्धि र्नास्ति नरकेऽपि पतितस्य ॥ ७१ ॥
ततो दुर्विलसितमेतत्परित्यक्तं सर्वथा मयेदानीम् । प्रायश्चित्तं श्रीपर्वते गत्वा चरिष्यामि ॥ ७२ ॥

---

१. या सन्निरु०—खं० रं० । २. मैला करना ।

तुमए समप्पियव्वा रन्नो कन्ना पभायसमयम्मि । उचियमिणं सप्पुरिसाण जंपियं दीवयसिहेण ॥७३॥
कम्स न चुक्कं खलियं समेइ भववासमहिवसंतस्स । पुणरवि तह जइयव्वं जहा न मइलिज्जए अप्पा ॥७४॥
संपाडिस्सामि अहं भवओ आणं पयंपियं तेण । तत्तो गओ कवाली कुमरेण वि कन्नया नीया ॥७५॥
नियया वासे देवीण साहिओ तीए वइयरो सव्वो । सोऊण तयं विम्हियमणाओ जायाओ ताओ वि ॥७६॥
गोसे अवंतिवद्धणनिवस्स कुमरेण अप्पिया कन्ना । कहिओ य असेसो वि हु कावालियविहियवुत्तंतो ॥७७॥
सोऊण तयं कन्नाए वइयरं पमुइओ पुहइपालो । तं चिय कन्नारयणं वियरइ सुपसत्थदिवसम्मि ॥७८॥
महया महूसवेणं कओ विवाहो ठिओ तहिं कुमरो । कइय वि दिवसे विसए पंचपयारे अणूहवेउं ॥७९॥
नियदेसे संचलिओ पत्तो पउमावईए नयरीए । आवासिओ य परिसरघराए वणराइरुइराए ॥८०॥
नाओ कंचिनरिंदेण सो वि तस्सम्मुहो समणुपत्तो । नीओ य नियय अत्थाणमंडवे विहियसम्माणो ॥८१॥
जाया तत्थ ठियाणं नरिंद-कुमराण एवमुल्लावा । जंपइ[1] कुमरो अत्थेत्थ नत्थि वा संपयं थोभो ॥८२॥
मज्झ मएणं नत्थि त्ति राइणा जंपिए भणइ कुमरो । अत्थि तओ आह निवो जइ होइ मिलंतयं पत्तं ॥८३॥
दीवयसिहो पयंपइ अमिलंते वि हु करेमि पत्ते हं । तत्थ करिज्जसु जमहं पत्तं अप्पेमि भणइ निवो ॥८४॥
पडिवन्ने कुमरेणं तत्तो य दुइज्जवासरे राया । कामलयं नियकन्नं मूयगपत्तं समप्पेइ ॥८५॥

त्वया समर्पितव्या राज्ञे कन्या प्रभातसमये । उचितमिदं सत्पुरुषाणां जल्पितं दीपकशिखेन ॥ ७३ ॥
कस्य न च्युतं स्खलितं समैति भववासमधिवसतः । पुनरपि तया यतितव्यं यथा न मलीयते आत्मा ॥ ७४ ॥
सम्प्राप्स्याम्यहं भवत आज्ञां प्रजल्पितं तेन । ततो गतः कपाली कुमारेणापि कन्यका नीता ॥ ७५ ॥
निजकावासे देव्योः कथितस्तस्या व्यतिकरः सर्वः । श्रुत्वा तकं विस्मितमनसौ जांते तेऽपि ॥ ७६ ॥
प्रत्यूषे अवन्तिवर्धननृपस्य कुमारेणार्पिता कन्या । कथितश्चाशेषोऽपि खलु कापालिकविहितवृत्तान्तः ॥ ७७ ॥
श्रुत्वा तकं कन्याया व्यतीकरं प्रमुदितः पृथिवीपालः । तदेव कन्यारत्नं वितरति सुप्रशस्तदिवसे ॥ ७८ ॥
महता महोत्सवेन कृतो विवाहः स्थितस्तत्र कुमारः । कतिपयानपि दिवसान् विषयान् पञ्चप्रकाराननुभूय ॥ ७९ ॥
निजदेशे सञ्चलितः प्राप्तः पद्मावत्यां नगर्याम् । आवासितश्च परिसरधरायां वनराजिरुचिरायाम् ॥ ८० ॥
ज्ञातः काञ्चिनरेन्द्रेण सोऽपि तत्सम्मुखः समनुप्राप्तः । नीतश्च निजकास्थानमण्डपे विहितसन्मानः ॥ ८१ ॥
जातास्तत्र स्थितयो नरेन्द्र-कुमारयोरेवमुल्लापाः । जल्पति कुमारोऽस्त्यत्र नास्ति वा साम्प्रतं स्तोभः[2] ॥ ८२ ॥
मम मतेन नास्तीति राज्ञा जल्पिते भणति कुमारः । अस्ति तत आह नृपो यदि भवति मिलन्तं पत्रम् ॥ ८३ ॥
दीपकशिखः प्रजल्पति अमिलन्ते अपि खलु करोमि पत्रेऽहम् । तत्र कुरु यदहं पत्रमर्पयामि भणति नृपः ॥ ८४ ॥
प्रतिपन्ने कुमारेण ततश्च द्वितीयवासरे राजा । कामलतां निजकन्यां मूयगपत्रं समर्पयति ॥ ८५ ॥

---

१. इ राया ओ०—खं० रं । २. वस्तु विशेषःप्रायो दृश्यतेऽत्र ।

तस्स तओ मंडलए निवेसिया तेण विहियसियवेसा । तो तेए पत्तदेवयमवयारइ मंतसरणेण ॥८६॥
जाव न जंपइ किं पि हु ता सो उवउत्तमाणसो होउं । गाढयरं परिवत्तइ मंतं चित्तस्स मज्झम्मि ॥८७॥
तत्तो कालविलंबेण पत्तदेवी पयंपिउं लग्गा । सा जंपिया कुमारेण कहसु किं एत्तिया वेला ? ॥८८॥
तो पत्तदेवयाए पयंपियं मूयगं इमं पत्तं । भणियव्वं पुण पणकरणजोगओ तो मए झत्ति ॥८९॥
गंतुं हिमवंताओ आणेउमिमीए मूलिया दिन्ना । जह जंपणस्स सत्ती जायइ एयाए तो मज्झ ॥९०॥
जाओ कालविलंबो एत्तियमेत्तो तओ कुमारेण । काउं विणोयमेयं विसज्जिया देवया नमिउं ॥९१॥
सा मूयगा पयंपिउमारद्धा मूलियापभावेण । तत्तो हरिसियहियएण कंचिरन्ना कुमारस्स ॥९२॥
दिन्ना कन्ना तेण वि विवाहिया तत्थ कइयवि दिणाणि । उवभुंजिऊण पंचप्पयारविसए स तीए समं ॥९३॥
बुद्धीहिं जहा अभओ नीईहिं निवो भुयाहिं गोविंदो । तह दीवयसिहकुमरो संजुत्तो चउहिं दइयाहिं ॥९४॥
नियबलभरपरियरिओ पउमावइपुरवरीए नीहरिओ । सेयवियं नियनयरिं पत्तो उत्तुंगपासायं ॥९५॥
अहिसित्तो नरनाहेण नियरज्जे पसत्थदिवसम्मि । जाओ य सत्तुसंदोहदलणदक्खो महाराया ॥९६॥
कालेण समुप्पन्ना पुत्ता चिंता य एरिसा जाया । किं पुव्वभवे विहियं मए ? जमेसा महारिद्धी ॥९७॥
इय ईहा-ऽपोहपरस्स तस्स निस्सेसरायतिलयस्स । जायं जाईसरणं दिट्ठो तो तेण पुव्वभवो ॥९८॥
अह आसि गंगरुद्दा कम्मयरी तीए दीवओ दिन्नो । देवस्स तप्पभावेण एरिसो हं समुप्पन्नो ॥९९॥

तस्य ततो मण्डले निवेशिता तेन विहितश्वेतवेशा । ततस्तस्यां पत्रदेवतामवतारयति मन्त्रस्मरणेन ॥ ८६ ॥
यावन्न जल्पति किमपि खलु तावत्स उपयुक्तमानसो भूत्वा । गाढतरं परिवर्त्तयति मन्त्रं चित्तस्य मध्ये ॥ ८७ ॥
ततः कालविलम्बेन पत्रदेवी प्रजल्पितुं लग्ना । सा जल्पिता कुमारेण कथय किमेतावती वेला ? ॥ ८८ ॥
तदा पत्रदेवतया प्रजल्पितं मूयगमिदं पत्रम् । भणितव्यं पुनः पणकरणयोगात्ततो मया झटिति ॥ ८९ ॥
गत्वा हिमवतः आनीयैतस्यै मूलिका दत्ता । यथा जल्पनस्य शक्तिर्जायत एतस्यास्ततो मम ॥ ९० ॥
कालविलम्ब एतन्मात्रस्ततः कुमारेण । कृत्वा विनोदमेतद्विसर्जिता देवता नत्वा ॥ ९१ ॥
सा मूयगा प्रजल्पितुमारब्धा मूलिका प्रभावेन । ततो हर्षितहृदयेन काञ्चिराज्ञा कुमाराय ॥ ९२ ॥
दत्ता कन्या तेनापि विवाहिता तत्र कतिपयानि दिनानि । उपभुज्य पञ्चप्रकारविषयान् स तया समम् ॥ ९३ ॥
बुद्धिभि र्यथाभयो नीतिभिर्यथा नृपो भुजाभिर्गोविन्दः । तथा दीपकशिखकुमारः संयुक्त श्चतुर्भि र्दयिताभिः ॥ ९४ ॥
निजबलभरपरिकरितः पद्मावतीपुरवर्या निःसृतः । श्वेताम्बिकां निजनगरिं प्राप्त उत्तुङ्गप्रासादाम् ॥ ९५ ॥
अभिषिक्तो नरनाथेन निजकराज्ये प्रशस्तदिवसे । जातश्च शत्रुसन्दोहदलनदक्षो महाराजा ॥ ९६ ॥
कालेन समुत्पन्नाः पुत्राश्चिन्ता चेदृशी जाता । किं पूर्वभवे विहितं मया ? यदेषा महर्द्धिः ॥ ९७ ॥
इतीहाऽपोहपरस्य तस्य निःशेषराजतिलकस्य । जातं जातिस्मरणं दृष्टस्ततस्तेन पूर्वभवः ॥ ९८ ॥
अहमासीद्गङ्गरुद्रा कर्मकरी तया दीपकोदत्तः । देवस्य तत्प्रभावेनेदृशोऽहं समुत्पन्नः ॥ ९९ ॥

नाऊण इमं पूयइ जिणेसरे कुणइ संघसम्माणं । रहजत्ताओ पवत्तइ भत्तिब्भरनिब्भरसरीरो ॥१००॥
अह अन्नया य अहिसिंचिऊण रज्जम्मि जेट्ठनियकुमरं । पासे पहाससूरीण संजुओ चउहिं वि पियाहिं ॥१०१॥
पव्वइओ समहिज्जियसुत्तत्थो विहियतिव्वतवचरणो । मरिउममरंगणाणं हिययहरो सुरवरो जाओ ॥१०२॥

॥ दीपकशिखाख्यानकं समाप्तम् ॥२८॥

इदानीं नवपुष्पकाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

आसी विल्लूरपुरे मालागारो असोगनामो त्ति । सयवत्त-जाइ-मचकुंद-(कुंद) कुसुमाइं विक्किणइ ॥१॥
अह अन्नया य विक्किणिय कुसुमनियरं गिहम्मि गच्छंतो । कम्मऽवि सावयभवणम्मि सुणइ गिज्जंतगेयाइं ॥२॥
ता तत्थ गओ पेच्छइ[1] सड्ढा गायंति केवि नच्चंति । वायंति केवि गंभीरसद्दमाउज्जसंदोहं ॥३॥
किमिमस्स गिहे ? इय पुच्छियम्मि केणावि अक्खियं तस्स । जिणपडिमाए पइट्ठा जाया तो ऊसवो[2] एत्थ ॥४॥
तिहुयणगुरुणो पडिमा जिणस्स दिट्ठा पहिट्ठहियएण । मालागारेण तओ भत्तिभरुब्भिन्नपुलएण ॥५॥
चिंतियमणेण जह पुन्नभायणं सावया इमे भुवणे । पूयंति जिणं विच्चेवि नियधणं गरुयभत्तीए ॥६॥
ता अहमवि (जिण) पडिमं पूएमि विचिंतिऊण जा नियइ । पुप्फकरंडयमज्झे ता नव फुल्लाणि लद्धाणि ॥७॥
तो तेण गरुयभत्तीए पूइया भुवणसामिणो पडिमा । नमिया य महीयलमिलियभालवट्टेण बहुमाणा ॥८॥

ज्ञात्वेदं पूजयति जिनेश्वरान् करोति सङ्घसन्मानम् । रथयात्राः प्रवर्तयति भक्तिभरनिर्भरशरीरः ॥ १०० ॥
अथान्यदा चाभिषिञ्च्य राज्ये ज्येष्ठनिजकुमारम् । पार्श्वे प्रभाससूरीणां संयुक्तश्चतुर्भिरपि प्रियाभिः ॥ १०१ ॥
प्रव्रजितः समधितसूत्रार्थो विहिततीव्रतपश्चरणः । मृत्वामराङ्गनानां हृदयहरः सुरवरो जातः ॥ १०२ ॥

॥ दीपकशिखाख्यानकं समाप्तम् ॥ २८ ॥

नवपुष्पकाख्यानकम् - ॥ २९ ॥

आसीद्विल्लूरपुरे मालाकारोऽशोकनामेति । शतपत्र-जाई-मचकुन्द-(कुन्द)-कुसुमानि विक्रीणाति ॥ १ ॥
अथान्यदा च विक्रीय कुसुमनिकरं गृहे गच्छन् । कस्मिन्नपि श्रावकभवने शृणोति गीयमानगीतानि ॥ २ ॥
तदा तत्र गतः पश्यति श्राद्धा गायन्ति केऽपि नृत्यन्ति । वाद्यन्ति केऽपि गम्भीरशब्दमातोद्यसन्दोहम् ॥ ३ ॥
किमेतस्य गृहे ? इति पृच्छति केनापि आख्यातं तस्य । जिनप्रतिमायाः प्रतिष्ठा जाता तत उत्सवोऽत्र ॥ ४ ॥
त्रिभुवनगुरोः प्रतिमा जिनस्य दृष्टा प्रहृष्टहृदयेन । मालाकारेण ततो भक्तिभरोद्भिन्नपुलकेन ॥ ५ ॥
चिन्तितमनेन यथा पुण्यभाजनं श्रावका इमे भुवने । पूजयन्ति जिनं व्ययन्ति निजधनं गुरुकभक्त्या ॥ ६ ॥
ततोऽहमपि [जिन]प्रतिमां पूजयामि विचिन्त्य यावत्पश्यति । पुष्पकरण्डकमध्ये तावन्नव फुल्लानि लब्धानि ॥ ७ ॥
ततस्तेन गुरुकभक्त्या पूजिता भुवनस्वामिनः प्रतिमा । नता च महीतलमिलितभालपट्टेन बहुमानात् ॥ ८ ॥

१. पिच्छइ–रं० । २. इत्थ–रं० ।

असरिसभत्तिवसेणं बद्धं तप्पच्चयं सुहं कम्मं । अइकमइ तस्स कालो जिणिंदबहुमाणजुत्तस्स ॥९॥
अह अन्नया य मयरद्धयस्स मित्ते वसंतसमयम्मि । वियसावंते वणराइमसमसुसुयंधकुसुमेहिं ॥१०॥
भमरउलरोलमुहला धेत्तुं सहयारमंजरी तेण । पुहईवइस्स नवफुल्लएण सप्पणयमुवणीया ॥११॥
संतुट्ठेण नरिंदेण ठाविओ मालियाण सव्वेसिं । मयहरपयम्मि आउक्खयम्मि सो सुद्धपरिणामो ॥१२॥
मरिऊणं एलउरे जाओ पुत्तो विसिट्ठसिट्ठिस्स । नवलक्खदविणनाहो तओ वि मरिऊण तत्थेव ॥१३॥
जाओ नवकोडीणं दविणवई अह तओ वि कालगओ । संजाओ तत्थेव य नयरे नवकणयलक्खेसो ॥१४॥
नवकणयकोडिनाहो जाओ मरिउं पुणो वि तत्थेव । तो मरिऊणं नवरयणलक्खनाहो समुप्पन्नो ॥१५॥
तत्तो वि मओ नवरयणकोडिसामित्तणं समणुपत्तो । एत्तो वाडिपुरीए वल्लहरायस्स नरवइणो ॥१६॥
अंगरुहो संजाओ अहिसित्तो तो निवेण नियरज्जे । जाओ महापयावो वसीकयासेसनरनाहो ॥१७॥
नवलक्खगामसामी तह जक्खाहिट्ठियाइं नव तस्स । पुव्वपुरिसागयाइं तेण निहाणाइं पत्ताइं ॥१८॥
अह अन्नया य कज्जल-जलहर-रोलंबसामलसरीरो । थुव्वंतो सुर-चारणनियरेण जिणेसरो पासो ॥१९॥
समवसरिओ तओ सो परि(ग्रन्थाग्रम् ४०००)यरिओ बहुनरिंदविंदेहिं।आरूढो जयवारणखंधे पत्तो समवसरणे ॥२०॥
परिहरियरायककुहो ओयरिऊणं गइंदखंधाओ । पणमिय पासजिणिंदं नरेसरो थोउमारद्धो ॥२१॥
जय जय पास ! जयप्पयास ! पयडियवरसासण !, विविहवाहि-उवसग्गवग्गसंसग्गपणासण ! ।

असदृशभक्तिवशेन बद्धं तत्प्रत्ययं शुभं कर्म । अतिक्रामति तस्य कालो जिनेन्द्रबहुमानयुक्तस्य ॥ ९ ॥
अथान्यदा च मकरध्वजस्य मित्रे वसन्तसमये । विकसति वनराजिमसमसुसुगन्धकुसुमैः ॥ १० ॥
भ्रमरकुलरोलमुखरा गृहीत्वा सहकारमञ्जरी तेन । पृथिवीपते र्नवफुल्लकेन सप्रणयमुपनीता ॥ ११ ॥
सन्तुष्ठेन नरेन्द्रेण स्थापितो मालिकानां सर्वेषाम् । महत्तरपद आयुःक्षये स शुद्धपरिणामः ॥ १२ ॥
मृत्वेलापुरे जातः पुत्रो विशिष्टश्रेष्ठिनः । नवलक्षद्रविणनाथस्ततोऽपि मृत्वा तत्रैव ॥ १३ ॥
जातो नवकोटीनां द्रविणपतिरथ ततोऽपि कालगतः । सञ्जातस्तत्रैव च नगरे नवकनकलक्षेशः ॥ १४ ॥
नवकनककोटिनाथो जातो मृत्वा पुनरपि तत्रैव । ततो मृत्वा नवरत्नलक्षनाथः समुत्पन्नः ॥ १५ ॥
ततोऽपि मृतो नवरत्नकोटिस्वामित्वं समनुप्राप्तः । इतो वाडिपूर्यां वल्लभराजस्य नरपतेः ॥ १६ ॥
अङ्गरुहः सञ्जातोऽभिषिक्तस्ततो नृपेण निजराज्ये । जातो महाप्रतापो वशीकृताशेषनरनाथः ॥ १७ ॥
नवलक्षग्रामस्वामी तथा यक्षाधिष्ठीतानि नव तस्य । पूर्वपुरुषागतानि तेन निधानानि प्राप्तानि ॥ १८ ॥
अथान्यदा च कज्जल-जलधर-रोलम्बश्यामलशरीरः । स्तुवन्सुर-चारणनिकरेण जिनेश्वरः पार्श्वः ॥ १९ ॥
समवसृतस्ततः स परिवारितोबहुनरेन्द्र वृन्दैः । आरुढो जयवारणस्कन्धे प्राप्तः समवसरणे ॥ २० ॥
परिहृतराजककुभोऽवतीर्य गजेन्द्रस्कन्धात् । प्रणम्य पार्श्वजिनेन्द्रं नरेश्वरः स्तोतुमारब्धः ॥ २१ ॥
जय जय पार्श्व ! जगत्प्रकाश ! प्रकटितवरशासन ! विविध व्याध्युपसर्गवर्गसंसर्गप्रणाशन ! ।

आससेणनरराजजाय ! विन्नवउं महापहु !, बहुविहदुहदुत्थियहं देव ! विन्नत्तिं सुणि महु ॥२२॥

अज्जु सलक्खणु सूरु अज्जु सुंदरु सुविहाणउं, अज्जु पसत्थउ वारु अज्जु वासरु सुपहाणउं ।

अज्जु नाह[1] ! नक्खत्त जोगु तिहि करण विसिट्ठउं, दुल्लहदंसण भावसारु जं तुह मुहु दिट्ठउं ॥२३॥

एवं थोऊण जिणं उवविट्ठो जोडिऊण करजुयलं । धम्मकहापज्जंते पासजिणो पुच्छिओ एवं ॥२४॥

किं सामि ! कयं सुकयं भवम्मि पुव्वे मए जमेसा मे । रायसिरी ? तो कहिया पुव्वभवा भयवया तस्स ॥२५॥

जह नवफुल्लेहिं तए जिणपडिमा पूइया तओ सुकयं । संजायं तेणेसा रिद्धी तुह असरिसा जाया ॥२६॥

तं सोउं तेणावि हु जाईसरणेण जाणियं सव्वं । एयं पुण इय गाहाए पभणियं केणइ बुहेण ॥२७॥

नवसयसहस्स-नवकोडिसामिओ दविण-कणय-रयणाणं । नवगामलक्ख-नवनिहिवई य नवफुल्लओ जाओ ॥२८॥

नमिऊण जिणं गंतूण रालु (.....) भुंजिऊण रायसिरिं । अहिसिंचिऊण कुमरं रज्जे पुणरवि य पत्तस्स ॥२९॥

पासजिणस्स सयासे पव्वइओ चरियचारुतवचरणो । मरिऊण पंचपंचुत्तरेसु सो सुरवरो जाओ ॥३०॥

॥ समाप्तं नवपुष्पकाख्यानकम् ॥२९॥

इदानो पद्मोत्तराख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

वाणारसीए सुरवरतरंगिणीतीरविहियसोहाए । संखसियदंतपंती संखो नाइत्तगो तत्थ ॥१॥

अश्वसेननरराजजात ! विज्ञपयामि महाप्रभो ! बहुविधदुःखदुस्थितस्य देव ! विज्ञप्तिं शृणु मम ॥ २२ ॥

अद्य सलक्षणः सूर्योऽद्य सुन्दरांसुविधानमद्य प्रशस्तं वारंमद्य वासरं सुप्रधानम् ।

अद्यनाथ ! नक्षत्रं योगस्थितिः करणविशिष्टं; दुर्लभदर्शनभावसारं यत्तव मम दृष्टम् ॥ २३ ॥

एवं स्तुत्वा जिनमुपविष्टो योजयित्वा करयुगलम् । धर्मकथापर्यन्ते पार्श्वजिनः पृष्ट एवम् ॥ २४ ॥

किं स्वामिन् ! कृतं सुकृतं भवे पूर्वे मया यदेषा मे । राजश्रीः ? ततः कथिताःपूर्वभवा भगवता तस्य ॥ २५ ॥

यथा नवफुल्लेन त्वया जिनप्रतिमा पूजिता ततः सुकृतम् । सञ्जातं तैनैषर्द्धिस्तवासदृशा जाता ॥ २६ ॥

तत् श्रुत्वा तेनापि खलु जातिस्मरणेन ज्ञातं सर्वम् । एतत्पुनरिति गाथया प्रभणितं केनचिद्बुधेन ॥ २७ ॥

नवशतसहस्र-नवकोटिस्वामी द्रविण-कनक-रत्नानाम् । नवग्रामलक्ष-नवनिधिपतिश्च नवफुल्लेभ्यो जात ॥ २८ ॥

नत्वा जिनं गत्वा राजकुलं भुक्त्वा राजश्रियम् । अभिषिञ्च्य कुमारं राज्ये पुनरपि च प्राप्तस्य ॥ २९ ॥

पार्श्वजिनस्य सकाशे प्रव्रजितश्चरितचारुतपश्चरणः । मृत्वा पञ्चपञ्चोत्तरेषु स सुरवरो जातः ॥ ३० ॥

॥ समाप्तं नवपुष्पकाख्यानकम् ॥ २९ ॥

पद्मोत्तराख्यानकम् - ॥ ३० ॥

वाणारस्यां सुरवरतरङ्गिणीतीरविहितशोभायाम् । शङ्खश्वेतदन्तपङ्क्तिः शङ्खो[2] सांयात्रिकस्तत्र ॥ १ ॥

---

१. नाहु !–रं० । २. नाइत्तग (दे.) - समुद्रखेडु-सौदागर

तस्साऽऽसि गिहपओयणपभूयपब्भारधरणधुरधवलो । गुणवंतो थिरचित्तो कुलउत्तो नंदणो नाम ॥२॥
अह अन्नया य नाइत्तगस्स कज्जेण कम्मि वि पएसे । गंतूण पडिनियत्तो सिसिरजलं नियइ पउमसरं ॥३॥
फलिहमणिघडियकुट्टिमतलं व तेलोक्कलच्छिभवणस्स । तूलीतलं व जलदेवयाए सयणत्थमच्चत्थं ॥४॥
सारयजलहरखंडं व निवडियं पडिनिहिं व गयणस्स । मुउरो व्व दिसिवहूणं सियायवत्तं व फणिरन्नो ॥५॥
पउरपयपूरियं पि हु विलसिरछच्चरणपंतिपरिकलियं । संखसहस्समुहं पि हु असंखजलयरसमायन्नं ॥६॥
बहुलहरिपरिगयं पि हु नलहरिमालाविलासरमणीयं । नीरुयजलयरजुयमवि सरोयसत्ताहिगयमज्झं ॥७॥
मीणजुयं गयणं पिव रहवररयणं व चारुचक्कजुयं । तिदिवं पिव सुरसहियं सविलासं तरुणिवयणं व ॥८॥
तो तत्थ सिसिरनीरे मग्गपरिस्समपणासणनिमित्तं । मज्जंतएण तेणं दिट्ठं लट्ठं सहसपत्तं ॥९॥
मयरंदमत्तमहुयरमणहरझंकारबहिरियदियंतं । धेत्तूण तयं रंगंतलहरमुत्तरइ जाव सरं ॥१०॥
तो निययरूवउवहसियअमररमणीहिं चउहिं कन्नाहिं । भणियमिममुत्तमस्स य कस्स वि जोगं ति तं सोउं ॥११॥
सो चिंतइ नायत्तइसंखो मह उत्तमो तओ तस्स । अप्पेयव्वं तत्तो पत्तो नायत्तइस्स गिहे ॥१२॥
सो तस्स तं समप्पइ जंपइ नाइत्तगो वि तं दट्ठुं । उत्तममुत्तमजोग्गं तं सोउं नंदणो भणइ ॥१३॥
मह उत्तमो तुमं चिय तो संखो भणइ मम वि सुविसिट्ठो । सेट्ठी उत्तमठाणं ता तस्स इमं समप्पेमो ॥१४॥
तो जंति गिहे ते दो वि सेट्ठिणो जाव तं समप्पंति । तेण वि वुत्तं जुत्तं उत्तममिममुत्तमस्सेव ॥१५॥

तस्यासीद्गृहप्रयोजनप्रभूतप्राग्भारधरणधुरधवलः । गुणवान् स्थिरचित्तः कुलपुत्रो नन्दनो नाम ॥ २ ॥
अथान्यदा च सांयात्रिकस्य कार्येण कस्मिन्नपि प्रदेशे । गत्वा प्रतिनिवृत्तः शिशिरजलं पश्यति पद्मसरः ॥ ३ ॥
स्फटिकमणिघटितकुट्टिमतलमिव त्रैलोक्यलक्ष्मीभवनस्य । तूलीतलमिव जलदेवतायाः शयनार्थमत्यर्थम् ॥ ४ ॥
शारदजलधरखण्डमिव निपतितं प्रतिनिधिमिव गगनस्य । मुकुर इव दिग्वधूनां श्वेतातपत्रमिव फणिराज्ञः ॥ ५ ॥
प्रचूरपयःपूरितमपि खलु विलसत्षट्चरणपङ्क्तिपरिकलितम् । शङ्खसहस्रमुखमपि खलु असंख्यजलचरसमापन्नम् ॥ ६ ॥
बहुलहरिपरिगतमपि खलु नलहरिमालाविलासरमणीयम् । नीरुजजलचरयुतमपि सरोजसत्त्वाधिगतमध्यम् ॥ ७ ॥
मीनयुतं गगनमिव रथवररत्नमिव चारुचक्रयुतम् । त्रिदिवमिव सुरसहितं सविलासं तरुणिवदनमिव ॥ ८ ॥
तदा तत्र शिशिरनीरे मार्गपरिश्रमप्रणाशननिमित्तम् । मज्जता तेन दृष्टं सुन्दरं सहस्रपत्रम् ॥ ९ ॥
मकरन्दमत्तमधुकरमनोहरझङ्कारबधिरितदिगन्तम् । गृहीत्वा तकं रंगतलहरमुत्तरति यावत्सरः ॥ १० ॥
तावन्निजकरुपोपहसितामररमणिभिश्चतुर्भिः कन्याभिः । भणितमिदमुत्तमस्य च कस्यापि योग्यमिति तत् श्रुत्वा ॥ ११ ॥
स चिन्तयति सांयात्रिकशङ्खो ममोत्तमस्ततस्तस्य । अर्पितव्यं ततः प्राप्तो सांयात्रिकस्य गृहे ॥ १२ ॥
स तस्य तं समर्पयति जल्पति सांयात्रिकोऽपि तद् दृष्ट्वा । उत्तममुत्तमयोग्यं तत् श्रुत्वा नन्दनो भणति ॥ १३ ॥
ममोत्तमस्त्वमेव तदा शङ्खो भणति ममापि सुविशिष्टः । श्रेष्ठी उत्तमस्थानं ततस्तस्येदं समर्पयावः ॥ १४ ॥
ततो यातो गृहे तौ द्वावपि श्रेष्ठिनो यावत्तं समपर्यतः । तेनाप्युक्तं युक्तमुत्तममिदमुत्तमस्यैव ॥ १५ ॥

नायत्तइ-नंदणया तमुत्तमो जाव तं पयंपंति । वज्जरइ तओ सेट्ठी अम्हाणं उत्तमो मंती ॥१६॥
सव्वे वि तओ गंतूण मंतिमंदिरमिमं अमच्चस्स । अप्पंति सो वि उत्तममुत्तमजोग्गं समुल्लवइ ॥१७॥
जंपंति ते वि अम्हाणं[1] उत्तमो तं तओ भणइ मंती । अम्हं तुम्हाणं पि हु नरेसरो उत्तमं पत्तं ॥१८॥
ता तस्स समप्पेमो इय जंपिय ते गया नरिंदपुरो । विहियपणामा उवर्णिति राइणो तं सहस्सदलं ॥१९॥
अह आह महाराया उत्तममिममुत्तमस्स होइ त्ति । सोऊण इमं जंपंति ते वि तं उत्तमो अम्ह ॥२०॥
तो जंपइ पुहइवई कमकमलमहं पि जेसि पणमामि । ते उत्तम त्ति ता नाणगब्भसूरीण उवणेमो ॥२१॥
मयपाणमत्तछच्चरणरुणुझुणारावमणहरं तत्तो । आरुहिय गंधसिंधुरखंधं सद्धिं सुबुद्धीहिं ॥२२॥
नंदण-नायत्तइ-सेट्ठि-मंतिपभिईहिं पउरलोएहिं । नीहरिओ नरनाहो सूरीण सयासमणुपत्तो ॥२३॥
पणमित्तु पायपउमं सूरीण सहस्सपत्तमप्पंति । तं दट्ठूण पयंपंति सूरिणो महुरवाणीए ॥२४॥
अमरकरि व्व करीणं कंचणसेलो व्व अवरसेलाणं । तारावइ व्व ताराण कप्परुक्खो व्व रुक्खाणं ॥२५॥
सुरनाहो व्व सुराणं धम्माणं जिणवरिंदधम्मो व्व । चक्कि व्व नरिंदाणं इयरफणीणं फणिंदो व्व ॥२६॥
चिंतामणि व्व रयणाण सेसजाईण मणुयजाइ व्व । सव्वेसिं तित्थयरो जमुत्तमो तस्स ता[2] जोग्गं ॥२७॥
तो गंतुं जिणभवणं जिणेसरं नंदणस्स दंसंति । सो वि हु पभूयभत्तीए मुयइ जिणनाहसिरि[3]कमले ॥२८॥

सांयात्रिक-नन्दनौ त्वमुत्तमो यावत्तं प्रजल्पतः । कथयति ततः श्रेष्ठी अस्माकमुत्तमो मन्त्री ॥ १६ ॥
सर्वेऽपि ततो गत्वा मन्त्रिमन्दिरमिदमामात्यस्य । अर्पयन्ति सोऽप्युत्तममुत्तमयोग्यं समुल्लपति ॥ १७ ॥
जल्पन्ति तेऽप्यस्माकमुत्तमस्त्वं ततो भणति मन्त्री । अष्माकं युष्माकमपि खलु नरेश्वर उत्तमं पात्रम् ॥ १८ ॥
ततस्तस्य समर्पयाम इति जल्पित्वा ते गता नरेन्द्रपुरः । विहितप्रणामा उपनयन्ति राज्ञे तत्सहस्रदलम् ॥ १९ ॥
अथाह महाराजोत्तममिदमुत्तमस्य भवतीति । श्रुत्वेदं जल्पन्ति तेऽपि त्वमुत्तमोऽस्माकम् ॥ २० ॥
ततो जल्पति पृथिवीपतिः क्रमकमलमहमपि येषां प्रणमामि । ते उत्तमा इति तावज्ज्ञानगर्भसूरीणामुपनयामः ॥ २१ ॥
मदपानमत्तषट्चरणरणझणारावमनोहर ततः । आरुह्य गन्ध सिन्धुरस्कन्धं सार्द्धं सुबुद्धिभिः ॥ २२ ॥
नन्दन-सांयात्रिक-श्रेष्ठि-मन्त्रिप्रभृतिभिः पौरलोकैः । निःसृतो नरनाथः सूरीणां सकाशमनुप्राप्तः ॥ २३ ॥
प्रणम्य पादपद्मं सूरीणां सहस्रपत्रमर्पयन्ति । तद् दृष्टवा प्रजल्पन्ति सूरयो मधुरवाण्या ॥ २४ ॥
अमरकरीव करीणां कञ्चनशैल इवापरशैलानाम् । तारामतीव ताराणां कल्पवृक्ष इव वृक्षाणाम् ॥ २५ ॥
सुरनाथ इव सुराणां धर्माणां जिनवरेन्द्रधर्म इव । चक्रीव नरेन्द्राणामितरफणीनां फणीन्द्र इव ॥ २६ ॥
चिन्तामणिरिव रत्नानां शेषजातीनां मनुष्यजातिरिव । सर्वेषां तीर्थकरो यदुत्तमस्तस्य तावद्योग्यम् ॥ २७ ॥
ततो गत्वा जिनभवने जिनेश्वरं नन्दनस्य दर्शयन्ति । सोऽपि खलु प्रभूतभक्त्या मुञ्चति जिननाथशिरःकमले ॥ २८ ॥

---

१. णमुत्त० –रं । २. तो –रं० । ३. सिरिकमले –रं० ।

सव्वे वि जिणं तत्तो खोणीमंडलमिलंतसिरकमला । बहुमाणवससमुच्छलियबहलरोमंचकंचुइया ॥२९॥
सूरिहिं तओ तेसिं पयासियं भयवओ गुणसवन्नं । विहिया य उचियसद्धम्मदेसणा बहुमया तेसिं ॥३०॥
जायं च बोहिबीयं भोगफलं कम्ममज्जियं तेहिं । जायं अणुमइपुन्नं कुमारिगाणं चउण्हं पि ॥३१॥
अवरुप्पराणुबंधेण तम्मि जम्मम्मि ताण सव्वेसिं । जाया रिद्धी कालक्कमेण सुविसुद्धभावेणं ॥३२॥
पंचत्तमिमो संपप्प नंदणो पउमविसयमज्झम्मि । नंदणनामम्मि पुरे परिहासहिए वयंसि व्व ॥३३॥
तारावीढनरेसरसुतारनामाए परमभज्जाए । कुच्छिंसि समुप्पन्नो पुत्तत्ताए तओ तीए ॥३४॥
रंगंतलहरिमालं हंसावलिकलियकमलकोसेसु । मयपाणमत्तभमरउलरुणुझुणारावरमणीयं ॥३५॥
पउमसरं पविसंतं दिट्ठं सुमिणम्मि वयणकमलेण । तत्तो सहसंबुद्धाए साहियं नरवरिंदस्स ॥३६॥
तेणुत्तं तुह सुंदरि ! पहाणपुत्तो भविस्सइ तओ सा । उव्वहइ सह पमोएण गब्भमह अन्नया जाओ ॥३७॥
दोहलओ जह दीणाण देमि दाणाइं तह य कीलेमि । पउमसरेसुम्मीलियकल्हारपरायछुरिएसु ॥३८॥
दोहलयदुव्वलंगीए तीए सो अक्खिओ नरिंदस्स । संपाडिओ नरिंदेण पहरिसुप्फुल्लनेत्तेण ॥३९॥
जायम्मि पसवसमयम्मि पसविया पुत्तमुत्तमं देवी । नियगत्तदित्तिसंताणपहणियासेसतमपसरं ॥४०॥
लद्धो नालयनिक्खणणखणियखोणीयलम्मि पउमनिही । नामं पि तेण पउमुत्तरो त्ति विहियं नरिंदेण ॥४१॥
वच्चइ विद्धिं अहियं कलाकलावेण कमलनयणो सो । पत्तो तत्तो सव्वंगसुंदरं जोव्वणारंभं ॥४२॥

सर्वेऽपि जिनं ततः क्षोणीमण्डलमिलच्छिरःकमलाः । बहुमानवशसमुच्छलितबहलरोमाञ्चकञ्चुकिताः ॥ २९ ॥
सूरिभिस्ततस्तेषां प्रकाशितं भगवतो गुणसवर्णम् । विहिता चोचितसद्धर्मदेशना बहुमता तेषाम् ॥ ३० ॥
जातं च बोधिबीजं भोगफलं कर्मार्जितं तैः । जातमनुमतिपुण्यं कुमारिकाणां चतुर्णामपि ॥ ३१ ॥
अपंरापरानुबन्धेन तस्मिन् जन्मनि तेषां सर्वेषाम् । जाता ऋद्धिः कालक्रमेण सुविशुद्धभावेन ॥ ३२ ॥
पञ्चत्वमयं संप्राप्य नन्दनः पद्मविषयमध्ये । नन्दननाम्नि पुरे परिखासहिते उदस्विन्निव[1] ॥ ३३ ॥
तारापीढनरेश्वरसुतारानामायाः परमभार्यायाः । कुक्षौ समुत्पन्नः पुत्रत्वेन ततस्तया ॥ ३४ ॥
रङ्गल्लहरिमालं हंसावलिकलितकमलकोशेषु । मदपानमत्तभ्रमरकुलरणझणारावरमणीयम् ॥ ३५ ॥
पद्मसरः प्रविशन्तं दृष्टं स्वप्ने वदनकमलेन । ततः सहसंबुद्धया कथितं नरवरेन्द्रस्य ॥ ३६ ॥
तेनोक्तं तव सुन्दरि ! प्रधानपुत्रो भविष्यति ततः सा । उद्वहति सह प्रमोदेन गर्भमथान्यदा जातः ॥ ३७ ॥
दोहदो यथा दीनेभ्यो ददामि दानानि तथा च क्रीडामि । पद्मसरःसून्मीलितकल्हारपरागच्छूरितेषु ॥ ३८ ॥
दोहदकदुर्बलाङ्ग्या तया स आख्यातो नरेन्द्रस्य । संपादितो नरेन्द्रेण प्रहर्षोत्फुल्लनेत्रेण ॥ ३९ ॥
जाते प्रसवसमये प्रसूता पुत्रमुत्तमं देवी । निजगात्रदिप्तिसन्तानप्रहताशेषतमःप्रसरम् ॥ ४० ॥
लब्धो नालकनिस्खननखनितक्षोणितले पद्मनिधिः । नामापि तेन पद्मोतर इति विहितं नरेन्द्रेण ॥ ४१ ॥
व्रजति वृद्धिमधिकं कलाकलापेन कमलनयनः सः । प्राप्तस्ततः सर्वांगसुन्दरं यौवनारम्भम् ॥ ४२ ॥

---

१. समुद्र - जलाशय इत्यर्थ ।

ताओ वि कन्नयाओ चत्तारि वि कम्मधम्मजोएण । आयामुहीए नयरीए दोन्नि दोणस्स नरवइणो ॥४३॥
धूयाओ जायाओ पउमावइ-कुमुइणीभिहाणाओ । तो दोन्नि हत्थिणाउरनयरे जियसत्तुरायस्स ॥४४॥
विब्भमवइ त्ति पढमा बीया धूया पुणो विलासवई । कालक्कमेण ताओ वि जोव्वणारंभमणुपत्ता ॥४५॥
जाया जणयाण मणे चिंता होही इमाण को भत्ता । अणुरूवो ? तो पडिछंदएहि आणाविया कुमरा ॥४६॥
तेसि वियड्ढसहीणं समप्पिया जंपिया य ता एवं । लक्खेउं कहियव्वो भावो कुमरीण अम्हाण ॥४७॥
तत्तो सहीहिं कुमरीण दंसिया रायकुमरपडिछंदा । भणियं च ताहिं किं [1]एत्थ रूवमेत्तेण नाएण ? ॥४८॥
जाणेयव्वो जीवो सहीहिं भणियं भवंति किं मणुया । निज्जीवा ? तो जंपंति ताओ जीवो पवरभावो ॥४९॥
भणियं सहीहिं सो किह जाणिज्जइ ? तयणु ताओ जंपंति । लिंगेहिं विसिट्ठेहिं सहीहिं भणियं तयं सोउं ॥५०॥
काणि पुण ताणि लिंगाणि ? तो पयंपंति रायकन्नाओ । सव्वत्थ उचियवित्ती सहीहिं तो एवमुल्लवियं ॥५१॥
लक्खिज्जइ कहमेसा ? तेण पओगेण हिययगम्मेण । भणियं सहीहिं करीउ सो वि पओगो तओ ताहिं ॥५२॥
भणियं जइ एवं ता आणह वन्नयसमुग्गयं एत्थ । तह चित्तपट्टियाओ ताओ वयंसीओ उवर्णिति ॥५३॥
अद्धुम्मीलियपउमुप्पलाणि लिहियाणि दोणतणयाहिं । लिहियं विसिट्ठकन्नाजुयलं जियसत्तुधूयाहिं ॥५४॥
तत्तो भणियं सव्वाण रायकुमराण पेसह इमाणि । भणियव्वा ते एयाणुरूवमिह आलिहेयव्वं ॥५५॥

ता अपि कन्याश्चत्वार अपि कर्मधर्मयोगेन । आयामुख्यां नगर्यां द्वे द्रोणस्यनरपतेः ॥ ४३ ॥
दुहितरौ जाते पद्मावती-कुमुदिन्यभिधाने । ततो द्वे हस्तिनापुरनगरे जितशत्रुराज्ञः ॥ ४४ ॥
विभ्रमवतीति प्रथमा द्वितीया दुहिता पुनर्विलासवती । कालक्रमेण ता अपि यौवनारम्भमनुप्राप्ताः ॥ ४५ ॥
जाता जनकानां मनसि चिन्ता भविष्यत्यासां को भर्ता । अनुरुपः ? ततः प्रतिच्छन्दैरानयिताः कुमाराः ॥ ४६ ॥
ते विदग्धसखीनां समर्पिता जल्पिताश्च ता एवम् । लक्षित्वा कथयितव्यो भावः कुमारीणामस्माकम् ॥ ४७ ॥
ततः सखिभिः कुमारीणां दर्शिता राजकुमारप्रतिच्छन्दाः । भणितं च ताभिः किमत्र रुपमात्रेण ज्ञातेन ? ॥ ४८ ॥
ज्ञातव्यो जीवःसखिभि र्भणितं भवन्ति किं मनुष्याः । निर्जीवाः ? तदा जल्पन्ति ता जीवः प्रवरभावः ॥ ४९ ॥
भणितं सखिभिः स कथं ज्ञायते ? तदनु ता जल्पन्ति । लिङ्गैर्विशिष्टैः सखिभि र्भणितं तकं श्रुत्वा ॥ ५० ॥
कानि पुनस्तानि लिङ्गानि ? तदा प्रजल्पन्ति राजकन्याः । सर्वत्रोचितवृत्ती सखिभिस्तत एवमुल्लपितम् ॥ ५१ ॥
लक्ष्यते कथमेषा ? तेन प्रयोगेन हृदयगम्येन । भणितं सखिभिः क्रियतां [1]सोऽपि प्रयोगस्ततस्ताभिः ॥ ५२ ॥
भणितं यद्येवं तत आनयत वर्णकसमुद्गकमत्र । तथा चित्रपट्टीकास्ता वयस्या उपनयन्ति ॥ ५३ ॥
अर्धोन्मिलितपद्मोत्पलानि लिखितानि द्रोणतनयाभ्याम् । लिखितं विशिष्टकन्यायुगलं जितशत्रुदुहितृभ्याम् ॥ ५४ ॥
ततो भणितं सर्वेषां राजकुमाराणां प्रेषयथेमानि । भणितव्या ते एतदनुरुपमिहालेखितव्यम् ॥ ५५ ॥

---

१. इत्थ –रं० ।

तो दंसियव्वमम्हं जेण सजीवत्तमक्खिमो तुम्ह । तज्जणयाणं ताओ सहीओ कहिउं समप्पंति ॥५६॥
तयणु नरिंदेहिं वि रंजिएहिं निस्सेसरायकुमराण । वरचित्तपट्टियाओ पट्ठवियाओ तओ तासु ॥५७॥
आलिहिय पेसियाओ कुमरेहिं नरवरिंदकन्नाहिं । अवलोइउं पयंपियमेए सव्वे वि निज्जीवा ॥५८॥
तं सोउं रायाणो मणम्मि खेयाउरा विचिंतंति । को एयाओ रंजिस्सइ ? त्ति पडिया दुहावत्ते ॥५९॥
भणियं च-
उद्वेगमहावर्ते पातयति पयोधरोन्नमनकाले । सरिदिव तटमनुवर्षं विवर्धमाना सुता पितरम् ॥६०॥
दोण्हं पि नरिंदाणं अहऽन्नया मागहेहिं अत्थाणे । पउमुत्तरकयगाहा पढिया उद्दामसद्देण ॥६१॥
आलाणम्मि उ हत्थी नियए ठाणम्मि घेप्पए अस्सो । हिययम्मि [१]पवरमहिला सुयणो सब्भावमेत्तेण ॥६२॥
कहियं चे तेण पउमुत्तरेण रइया परंपराए इमा । निसुया कन्नाहिं तओ भणियं एसो सजीवो त्ति ॥६३॥
ता चित्तपट्टियाओ तस्स वि पट्ठवह अह नरिंदेण । पउमुत्तरस्स पट्ठावियाओ दिट्ठाओ तेणावि ॥६४॥
नायं च जहा-लिहियव्वमेत्थ एयाणुरूवयं तत्तो । पउमस्स पुव्वभायम्मि वियसियं कमलमालिहियं ॥६५॥
अवराभिमुहं पडिबुद्धमुप्पलं लिहियमुप्पलसयासे । उड्डंतनिलीयंतो भमरजुवाणो कओ तेसु ॥६६॥
उभयाणुवत्तणपरो लिहिओ कन्नाजुयस्स सन्निज्झे । तरुणो रसंतरत्थं सुहुमं रेहंतराणुगओ ॥६७॥

ततो दर्शितव्यमस्मान्येन सजीवत्वमाख्यामो युष्मान् । तज्जनकानां ताः सखायःकथयित्वा समर्पयन्ति ॥ ५६ ॥
तदनु नरेन्द्रैरपि रञ्जितै र्निःशेषराजकुमाराणाम् । वरचित्रपट्टिकाः प्रस्थापितास्ततस्तासु ॥ ५७ ॥
आलिख्य प्रेषिताः कुमारै र्नरवरेन्द्रकन्याभिः । अवलोक्य प्रजल्पितमेते सर्वेऽपि निर्जीवाः ॥ ५८ ॥
तत् श्रुत्वा राजानो मनसि खेदातुरा विचिन्तयन्ति । क एता रङ्क्ष्यति ? इति पतिता दुःखावर्ते ॥ ५९ ॥
भणितं च -
द्वयोरपि नरेन्द्रयोरथान्यदा मागधैरास्थाने । पद्मोत्तरकृतगाथा पठितोद्दामशब्देन ॥ ६१ ॥
आलाने तु हस्ती निजके स्थाने गृहयतेऽश्वः । हृदये प्रवरमहिला सुजनः स्वभावमात्रेण ॥ ६२ ॥
कथितं च तेन पद्मोत्तरेण रचिता परम्परयेमा । निश्रुता कन्याभिस्ततो भणितमेष सजीव इति ॥ ६३ ॥
ताश्चित्रपट्टिकास्तस्यापि प्रस्थापयताथ नरेन्द्रेण । पद्मोत्तरस्य प्रस्थापिता दृष्टास्तेनापि ॥ ६४ ॥
ज्ञातं च यथा - लिखितव्यमत्रैतदनुरुपकं ततः । पद्मस्य पूर्वभागे विकसितं कमलमालिखितम् ॥ ६५ ॥
अपराभिमुखं प्रतिबुद्धमुत्पलं लिखितमुत्पलसकाशे । उड्डयन्निलीयन् भ्रमरयुवा कृतस्तेषु ॥ ६६ ॥
उभयानुवर्तनपरो लिखितः कन्यायुगस्य सान्निध्ये । तरुणो रसान्तरार्थं सूक्ष्मं रेखान्तरानुगतः ॥ ६७ ॥

---

१. पवरविलया– रं० ।

को निउणमिणं जाणइ ? अणुरूवं ताव मज्झ पडिहाइ । एरिसवयणं लिहिऊण चितफलहीसु कुमरेण ॥६८॥
पट्ठावियाओ तासिं पलोइया ताहिं पुलइयंगीहिं । कुमरीहि नियसहियणसम्मुहमेवं समुल्लवियं ॥६९॥
पेच्छह तस्सवियड्ढत्तमसरिसं तो सहीयणो भणइ । को इह भावो ? तो कन्नयाओ भावं पयासंति ॥७०॥
पुव्वाभिमुहं पउमस्स कमलमरुणोदएण वियसेइ । उप्पलपच्छिममुप्पलमुम्मीलइ बालचंदेण ॥७१॥
एसो एत्थ वियासो सलहिज्जइ तह य कहइ अविओगं । भमरजुवाणो तह वयणलिहणमक्खइ अगव्वं तं ॥७२॥
अवराहिं पुणो जियसत्तुरायकन्नाहिं जंपियं एयं । एयाणुसारसंगयमेयं रूवं कुमारस्स ॥७३॥
तत्तो सहीहिं विम्हियवियसियवयणारविंद-नित्ताहिं । कहियं तेसि जणेराण ते वि हरिसियमणा जाया ॥७४॥
अवरोप्पराणुराओ पउमुत्तर-कन्नयाण संजाओ । तत्तो महरिहरिद्धीए तेण वीवाहिया ताओ ॥७५॥
सद्धिं च ताहिं नवजोव्वणाहिं चउहिं पि रायकुमरीहिं । उवभुंजइ विसयसुहं नियपिउकमकमलसरहंसो ॥७६॥
तारावीढनरिंदेण अन्नया सुहमुहुत्त-नक्खत्ते । अहिसित्तो पउमुत्तरकुमरो रज्जे पहिट्ठेण ॥७७॥
तेणावि नियमभुयदंडचंडिमाडंबरेण सुंडा वि । अक्खंडमहीमंडलनरेसरा सेवगा विहिया ॥७८॥
पालइ पडिहयपडिभडमयगलघडमवणिवीढमसममई । गाढाणुरत्त-सुवियड्ढियाहिं पोढंगणाहिं समं ॥७९॥
उवभुंजंतो पंचप्पयारविसए विणोयवक्खित्तो । वच्चंतं पि न याणइ कालं दोगुंदुगो व्व सुरो ॥८०॥
एत्तो य अउज्झापुरवरीए राएण देवगुत्तेण । निसुया रूवाइगुणा पउमुत्तररायपत्तीण ॥८१॥

को निपुणमिमं जानाति ? अनुरुपं तावन्मम प्रतिभाति । ईदृशवचनं लिखित्वा चित्रफलकेषु कुमारेण ॥ ६८ ॥
प्रस्थापितास्तासां प्रलोकितास्ताभिः पुलकिताङ्गिभिः । कुमारिभि र्निजकसखीजनसम्मुखमेवं समुल्लपितम् ॥ ६९ ॥
पश्यथ तस्य विदग्धत्वमसदृशं ततः सखीजनो भणति । क इह भावः ? ततः कन्या भावं प्रकाशन्ते ॥ ७० ॥
पूर्वाभिमुखं पद्मस्य कमलमरुणोदयेन विकसति । उत्पलपश्चिममुत्पलमुन्मीलति बालचन्द्रेण ॥ ७१ ॥
एषो ऽत्र विकासः श्लाध्यते तथा च कथत्यवियोगम् । भ्रमरयुवा तथा वचनलिखनमाख्याति अगर्वं तम् ॥ ७२ ॥
अपराभ्यां पुनर्जितशत्रुराजकन्याभ्यां जल्पितमेतत् । एतदनुसारसङ्गतमेतद्रुपं कुमारस्य ॥ ७३ ॥
ततः सखिभि र्विस्मितविकसितवदनारविन्द-नेत्राभिः । कथितं ता जनकानां तेऽपि हर्षितमना जाताः ॥ ७४ ॥
परस्परानुरागः पद्मोत्तर-कन्यानां सञ्जातः । ततो महार्हर्द्धया तेन विवाहितास्ताः ॥ ७५ ॥
सार्धं च ताभि र्नवयौवनाभिश्चतुर्भिरपि राजकुमारिभिः । उपभुनक्ति विषयसुखं निजपितृक्रमकमलसरोहंसः ॥ ७६ ॥
तारापीढनरेन्द्रेणान्यदा शुभमुर्हूत-नक्षत्रे । अभिषिक्तः पद्मोत्तरकुमारो राज्ये प्रहृष्टेन ॥ ७७ ॥
तेनापि निजकभुजदण्डचण्डिमाडम्बरेण शौण्डा अपि । अखण्डमहिमण्डलनरेश्वराः सेवका विहिताः ॥ ७८ ॥
पालयति प्रतिहतप्रतिभटमदगलघटमवनीपीठमसममतिः । गाढानुरक्त-सुविदग्धाभिः प्रौढाङ्गनाभिः समम् ॥ ७९ ॥
उपभुञ्जन्पञ्चप्रकारविषयान् विनोदव्याक्षिप्तः । व्रजन्तमपि न जानाति कालं दोगुंदक इव सुरः ॥ ८० ॥
इतश्चायोध्यापूर्वर्या राजेन देवगुप्तेन । निश्रुता रुपादिगुणाः पद्मोतरराजपत्नीनाम् ॥ ८१ ॥

संपेसिऊण दूयं भणाविओ सो समप्पसु कलत्ते । तेणुत्तं जुत्तमिमं वोत्तुं पि न उत्तमनराण ॥८२॥
पुण पउमुत्तरराया भणाविओ देवगुत्तनरवइणा । जइ न समप्पसि ता तुह होही न हु रज्जसामित्तं ॥८३॥
तं सोउं पउमुत्तररन्ना दूओऽवगन्निओ जाव । ता देवगुत्तराया कोवदवानलपलित्ततणू ॥८४॥
गुडियगइंदारोवियनाराइयनरवरिंदविंदेण । पक्खरियतुरयआरूढपोढफारक्कचक्केण ॥८५॥
रहरयणचडिय-पहरणविहत्थवरसुहडचक्कवालेण । वज्जंतसमरभेरीभंकाराऊरियनहेण ॥८६॥
वावल्ल-सेल्ल-मोग्गर-असि-सर-तीरी-तिसूलसत्थेहिं । भीसावणेहिं कोवुब्भडेहिं पाइक्कचक्केहिं ॥८७॥
एएहिं असेसेहिं वि अणुगम्मंतो रणएक्करसिएहिं । समरंगणभूमीए संपत्तो देवगुत्तनिवो ॥८८॥
पउमुत्तरो वि रह-गय-तुरंग-पाइक्कचक्कपरियरिओ । नियखंधवारसंभारभरियभूमंडलो पत्तो ॥८९॥
तो दोण्हं पि हु अग्गिमदलाइं जइलच्छिल्लालसमणाइं । उम्मुक्कहक्क-हुंकारभीमरूवाइं भिडियाइं ॥९०॥
दोघट्टघडा सह गयघडाहिं तुरया समं तुरंगेहिं । अब्भिट्ठा गरुयरहा रहेहिं सुहडा पडिभडेहिं ॥९१॥
आयन्नायड्ढियचावदंडउम्मुक्ककंकपत्तेहिं । संछाइयं नहयलं वासारत्ते घणेहिं व ॥९२॥
कयभिउडिभालवट्ठा दट्ठुट्ठा दो वि सुहडसंघाया । अवरोप्परं सुनिट्ठुरसत्थपहारेहिं पहरंति ॥९३॥
निसियासिपट्टपाडियसिराणि नच्चंति भडकबंधाइं । हुंकंति महीमंडलपडियाणि वि सुहडसीसाइं ॥९४॥
एत्थंतरम्भि भडरुंडमुंडमालाउलम्मि संगामे । अब्भिट्ठा पउमुत्तरपुहईवइ-देवगुत्तनिवा ॥९५॥

सम्प्रेष्य दूतं भाणितः स समर्पय कलत्रान् । तेनोक्तं युक्तमिदं वक्तुमपि नोत्तमनराणाम् ॥ ८२ ॥
पुनःपद्मोत्तरराजा भाणितो देवगुप्तनरपतिना । यदि न समर्पयसि ततस्तव भविष्यति न खलु राज्यस्वामित्वम् ॥ ८३ ॥
तत् श्रुत्वा पद्मोत्तरराज्ञा दूतोऽवगणितो यावत् । तावद् देवगुप्तराजा कोपदावानलप्रदिप्ततनूः ॥ ८४ ॥
सन्नद्धगजेन्द्रारोपितनाराचितनरवरेन्द्रवृन्देन । प्रस्खलिततुरगारुढप्रौढस्फारकचक्रेण ॥ ८५ ॥
रथरत्नारोहित-प्रहरणविहस्तवरसुभटचक्रवालेन. । वाद्यत्समरभेरीभंकारापूरितनभेन ॥ ८६ ॥
वावल्ल-शैल-मुद्गरा-ऽसि-शर-तीरी-त्रिशूलशस्त्रैः । भेषयद्भिः कोपोद्भटैः पादातिचक्रैः ॥ ८७ ॥
एतैरशेषैरप्यनुगम्यमानो रणैकरसिकैः । समराङ्गणभूमौ सम्प्राप्तो देवगुप्तनृपः ॥ ८८ ॥
पद्मोत्तरोऽपि रथ-गज-तुरंग-पादाति चक्रपरिवारितः । निजस्कन्धावारसम्भारभृतभूमण्डलः प्राप्तः ॥ ८९ ॥
ततो द्वयोरपि खलु अग्रिमदलानि जयलक्ष्मीलालसमनांसि । उन्मुक्तहक्क-हुंकारभीमरुपाणि आक्रान्तानि ॥ ९० ॥
हस्तिघटा सह गजघटाभिस्तुरगाः समं तुरङ्गैः । प्रवृत्ता गुरुकरथा रथैः सुभटाः प्रतिभटैः ॥ ९१ ॥
आकर्णाकर्षितचापदण्डोन्मुक्तकङ्कपत्रैः । सञ्च्छादितं नभस्तलं वर्षाऋतौ घनैरिव ॥ ९२ ॥
कृतभृकुटिभालपृष्ठौ दृष्टौष्ठौ द्वावपि सुभटसंघातौ । परस्परं सुनिष्ठुर शस्त्रप्रहारै प्रहरतः ॥ ९३ ॥
निशीतासिपट्टपातितशिरांसि नृत्यन्ति भटकबन्धानि । हुंकुर्वन्ति महीमण्डलपतितान्यपि सुभटशिर्षाणि ॥ ९४ ॥
अत्रान्तरे भटरुण्डमुण्डमालाकुले सङ्ग्रामे । प्रवृत्तौ पद्मोत्तरपृथिवीपतिदेवगुप्तनृपौ ॥ ९५ ॥

[1]मेल्लंति सीहनायं दोन्नि वि हक्कंति दो वि वग्गंति । उच्छलियमहामच्छरपरव्वसा दो वि पहरंति ॥९६॥
झस-कुंत-सत्ति-तीरी-तोमर-नारायसत्थनियरेहिं । निप्पसरं पहरंता रज्जंति परोप्परं दो वि ॥९७॥
ता लद्धलक्खयाए दक्खेण खणंतरेण सो बद्धो । पउमुत्तरेण रन्ना रणंगणे देवगुत्तनिवो ॥९८॥
संगाममहीवीढे जयखंभं निक्खणित्तु नरनाहो । जयजुत्तो संपत्तो बलवंतो नियआवासे ॥९९॥
मुक्को य देवगुत्तो राया काऊण तस्स सम्माणं । जाओ य साहुवाओ पउमुत्तर[2]वरनरिंदस्स ॥१००॥
चउरंगबलसमेओ समागओ नियपुरिं तओ राया । परिपालइ महिवलयं निम्मूलुम्मूलियारिगणं ॥१०१॥
कालक्कमेण जाया पुत्ता वररूवधारिणो तस्स । निच्चं पि बंदिविंदाण दाणरसिएक्कहियय्स्स ॥१०२॥
अह अन्नया य अत्थाणमंडवे सुहडसंकडिल्लम्मि । पडिहारेण नरिंदो विन्नत्तो कयपणामेण ॥१०३॥
देविंदजालिओ विज्जुमालिओ महइ दंसणं तुम्ह । भणिओ तओ नरिंदेण देह जं तस्स दायव्वं ॥१०४॥
गंतूण दारपालेण अक्खिए इंदजालिओ भणइ । न हु दविणनूणया मे पसायओ रायपायाण ॥१०५॥
कज्जं तु रायचरणावलोयणं कहइ सो वि तं रन्नो । जइ न कुणइ पेक्खणयं ता एउ पयंपिए पहुणा ॥१०६॥
सो आगंतुं पणमेवि रायपयपंकयं समुवविट्ठो । आणंदवियसियच्छो पेच्छइ लच्छिं निवसहाए ॥१०७॥
अह गयणाओ नवजोव्वणाए रमणीए संगओ खयरो । अवयरिओ अत्थाणे करालकरवालवग्गकरो ॥१०८॥

मुञ्चतः सिंहनादं द्वावपि आक्रामतो द्वावपि वल्गतः । उच्छलितमहामत्सरपरवशौ द्वावपि प्रहरतः ॥ ९६ ॥
झष-कुन्त-शक्ति-तीरी-तोमर-नाराचशस्त्र निकरैः । निष्प्रसरं प्रहरन्तौ रज्जयतः परस्परं द्वावपि ॥ ९७ ॥
तदा लब्धलक्ष्यतया दक्षेण क्षणान्तरेण स बद्धः । पद्मोत्तरेण राज्ञा रणाङ्गणे देवगुप्तनृपः ॥ ९८ ॥
सङ्ग्राममहीपीठे जयस्तम्भं निखन्य नरनाथः । जययुक्तः सम्प्राप्तो बलवान्निजकावासे ॥ ९९ ॥
मुक्तश्च देवगुप्तो राजा कृत्वा तस्य सन्मानम् । जातश्च साधुवादः पद्मोत्तरवरनरेन्द्रस्य ॥ १०० ॥
चतुरंगबलसमेतः समागतो निजपुरिं ततो राजा । परिपालयति महिवलयं निर्मूलोन्मूलितारिगणम् ॥ १०१ ॥
कालक्रमेण जाताः पुत्रा वररुपधारिणस्तस्य । नित्यमपि बन्दिवृन्दानां दानरसिकैकहृदयस्य ॥ १०२ ॥
अथान्यदा चास्थानमण्डपे सुभटसंकटवति । प्रतिहारेण नरेन्द्रो विज्ञप्त कृतप्रणामेन ॥ १०३ ॥
देव ! इन्द्रजालिको विद्युन्माली कांक्षति दर्शनं तव । भणितस्ततो नरेन्द्रेण दत्त यत्तस्य दातव्यम् ॥ १०४ ॥
गत्वा द्वारपालेनाख्यात इन्द्रजालिको भणति । न खलु द्रविणन्यूनता मे प्रसादो राजपादानाम् ॥ १०५ ॥
कार्यं तु राजचरणावलोकनं कथयति सोऽपि तद्राज्ञः । यदि न करोति प्रेक्षणकं तदैतु प्रजल्पिते प्रभुणा ॥ १०६ ॥
स आगत्य प्रणम्य राजपदपङ्कजं समुपविष्टः । आनन्दविकसिताक्षः पश्यति लक्ष्मीं नृपसभायाम् ॥ १०७ ॥
अथ गगनान्नवयौवनया रमण्या संगतः खेचरः । अवतरित आस्थाने करालकरवालव्यग्रकरः ॥ १०८ ॥

---

१. मिल्लंति सिंहनायं –रं० । २. त्तरनरवरिंदस्स –रं० ।

दिट्ठो य तओ अब्भुट्ठिओ य राएण सविणयं एसो । सो वि नरिंदं नमिउं पयंपिउं एवमाढत्तो ॥१०९॥
महया पओयणेणं देव ! अहं तुह सयासमल्लीणो । भणिओ रन्ना जं किर मए वि सिज्झइ तयं कहसु ॥११०॥
तेणुत्तमहं दुव्वारवइरिणा पाविओ पहु ! इयाणिं । तं तु सुओ परनारीसहोयरो सव्वया वि मए ॥१११॥
ता देव ! इमा दइया अब्भहिया मज्झ जीवियस्सावि । रक्खेयव्वा नासो व्व जाव सत्तुं विणासेमि ॥११२॥
तं सोउं नरनाहो जंपइ किर केत्तियं इमं कज्जं ? । सो भणइ तुह न किं पि हु मह पुण सव्वस्समवि एसा ॥११३॥
तुज्झ पयावेण अहं निज्जिणिउं सत्तुमागमिस्सामि । इय भणिय समुप्पइओ फलिणीदलसामलं गयणं ॥११४॥
तब्भज्जा पुण उन्नमियवयणकमला पलोयए गयणं । खणमेत्तेण तओ सा करुणसरं रोइउं लग्गा ॥११५॥
तो पुच्छिया नरिंदेण रुयसि किं भइणि ? सा वि पडिभणिया । संजाओ मेलावो पयट्टमाओहणं दोण्हं ॥११६॥
तो भणियं भूवइणा करेमि किं भूमिगोयरो अहयं ? । इय एव पयंपंताण ताण गयणंगणग्गाओ ॥११७॥
रुहिरच्छडाकराला परिमलरुणुझुणिरभमिरभमरउला । मंदारकुसुमकयमुंडमालिया निवडिया पुरओ ॥११८॥
दट्ठुण तयं कंकेल्लिपल्लवारुणकरेण गिण्हेउं । तप्पइणीए वच्छत्थलम्मि निहिया रुयंतीए ॥११९॥
हा हिययदइय ! हा मज्झ दइय ! हा अमयमइय ! मणरुइय ! हा वल्लह ! तुज्झ न सुंदरं ति मणसा विचिंतेमि ॥१२०॥
हा ! मंदभाइणीए अहियं दोलायमाणहिययाए । रे दिव्व ! तं ममोवरि केरिअसो ? तं न याणामि ॥१२१॥

दृष्टश्च ततोऽभ्युत्थितश्च राज्ञा सविनयमेषः । सोऽपि नरेन्द्रं नत्वा प्रजल्पितुमेवमारब्धः ॥ १०९ ॥
महता प्रयोजनेन देव ! अहं तव सकाशमालीनः । भणितो राज्ञा यत्किल मयापि सिध्यति तकं कथय ॥ ११० ॥
तेनोक्तमहं दुर्वारवैरिणा प्राप्तः प्रभो ! इदानीम् । त्वं तु श्रुतः परनारीसहोदरः सर्वदापि मया ॥ १११ ॥
ततो देव ! इमा दयिताभ्यधिका मम जीवितस्यापि । रक्षितव्या न्यास इव यावत् शत्रुं विनाशयामि ॥ ११२ ॥
तत् श्रुत्वा नरनाथो जल्पति किल कियदिमं कार्यम् ? । स भणति तव न किमपि खलु मम पुनः सर्वस्वमप्येषा ॥ ११३ ॥
तव प्रतापेनाहं निर्जित्य शत्रुमागमिष्यामि । इति भणित्वा समुत्पतितः *फलिनीदलश्यामलं गगनम् ॥ ११४ ॥
तद्भार्या पुनरुन्नतवदनकमला प्रलोकयति गगनम् । क्षणमात्रेण ततः सा करुणस्वरं रोदितुं लग्ना ॥ ११५ ॥
ततः पृष्टा नरेन्द्रेण रोदिषि किं भगिनी ? सापि प्रतिभणिता । सञ्जातो मेलापः प्रवृत्तमायोधनं द्वयोः ॥ ११६ ॥
ततो भणितं भूपतिना करोमि किं भूमिगोचरोऽहम् ? । इत्येवं प्रजल्पतयोस्तयो र्गगनाङ्गणाग्रतः ॥ ११७ ॥
रुधिरच्छटाकराला परिमलरणझणद्भ्रमद्भ्रमरकुला । मन्दारकुसुमकृतमुण्डमालिका निपतिता पुरतः ॥ ११८ ॥
दृष्ट्वा तकं कङ्केलिपल्लवारुणकरेण गृहीत्वा । तत्प्रणयिन्या वक्षःस्थले निहिता रुदन्त्या ॥ ११९ ॥
हा हृदयदयित ! हा मम दयित ! हा अमृतमय ! मनरुचित ! । हा वल्लभ ! तव न सुन्दरमिति मनसा विचिन्तयामि ॥ १२० ॥
हा ! मन्दभागीन्या अधिकं दोलायमानहृदयया । रे दिव्य ! त्वं ममोपरि कीदृशः ? तन्न जानामि ॥ १२१ ॥

---

* फलिनी - प्रियंगु वृक्ष

मा भइणि ! भाहि सुहडाण हुंति एवंविहाणि समरम्मि । मा होसु कायरा एस एइ तुह अक्खओ भत्ता ॥१२२॥
कहकह वि हु भूवइणा एवं मंभीसिया ठिया जाव । वच्छ्यलनिहियसिरमुंडमालिया तरलतरनयणा ॥१२३॥
ताव सहस त्ति गयणाओ निवडिया तस्स विग्गहावयवा । कर-चरणमाइणो कलस-कमल-कुलिसंकियपसत्था ॥१२४॥
तो दिट्ठपच्चया सा सुदुक्खिया पुण वि पलविउं लग्गा । हा भाय ! भाय ! संपइ कहसु तुमं कत्थ वच्चामि ? ॥१२५॥
सो हु दुरंतो दुजओ रणंगणे मज्झ भत्तुणो सत्तू । तो तेण पावमइणा विरूवमेयारिसं विहियं ॥१२६॥
हा सुहयसार ! हा कित्तितार ! हा रूवमार ! दुहवार ! । दे ! देसु दंसणं दइय ! दीणवयणाए मह इण्हिं ॥१२७॥
हा पणइपत्थ ! हा वियडवच्छ ! हा सरसपंकयदलच्छ ! । हा करणदच्छ ! हा हिययसच्छ ! तं कत्थ दट्ठव्वो ? ॥१२८॥
इय वच्छ्यलनिवेसियकर-चरणाए दढं रुयंतीए । निवपज्जंतो लोगो रुयाविओ तीए भणियं च ॥१२९॥
संपइ सिणिद्धबंधव ! कज्जं कुण देहि मज्झ कट्ठाइं । जह झत्ति अमरलोए गंतूण मिलेमि दइयस्स ॥१३०॥
तेणावि भणियमेयं जुत्तं सुकुलीणवीरघरिणीण । तो तीए कए रन्ना कारविया सुरहिकट्ठचिया ॥१३१॥
धेत्तूण मुंडमालं सह कर-चरणाइएहिं नियपइणो । विज्जाहरस्स भज्झा सज्झा पज्झालियचियग्गिं ॥१३२॥
काउं नियउच्छंगे अंगावयवे पियस्स उवविट्ठा । सलहिज्जंती निस्सेसरायपज्जंतलोएण ॥१३३॥
तो पवणवसवियंभियकरालपज्जलियजलणजालाहिं । विज्जाहरभज्जा झत्ति भासरासीकया तत्थ ॥१३४॥

मा भगिनि ! बिभेहि सुभटानां भवन्ति एवंविधानि समरे । मा भव कातरैष एति तवाक्षयो भर्ता ॥ १२२ ॥
कथंकथमपि खलु भूपतिनैवं माभीसीका[1] स्थिता यावत् । वक्षःस्थलनिहितशिरोमुण्डमालिका तरलतरनयना ॥ १२३ ॥
तावत्सहसेति गगनान्निपतितास्तस्य विग्रहावयवाः । करचरणादयः कलश-कमल-कुलिशाङ्कितप्रशस्ताः ॥ १२४ ॥
ततो दृष्टप्रत्यया सा सुदुःखिता पुनरपि प्रलपितुं लग्ना । हा भ्रात ! भ्रात ! सम्प्रति कथय त्वं कुत्र गच्छामि ? ॥ १२५ ॥
स खलु दुरन्तो दुर्जयो रणाङ्गणे मम भर्तुः शत्रुः । ततस्तेन पापमतिना विरुपमेतादृशं विहितम् ॥ १२६ ॥
हा सुभगसार ! हा कीर्तितार ! हा रुपमार ! हा दुःखवार ! । देहि ! देहि दर्शनं दयित ! दीनवदनाया ममेदानीम् ॥ १२७ ॥
हा प्रणतिपथ्य ! हा विकटवक्ष ! हा सरसपङ्कजदलाक्ष ! । हा करणदक्ष ! हा हृदयस्वच्छ ! त्वं कुत्र दृष्टव्यः ? ॥ १२८ ॥
इति वक्षःस्थलनिवेशित कर-चरणया दृढं रुदन्त्या । नृपपर्यन्तो लोको रोदितस्तया भणितं च ॥ १२९ ॥
सम्प्रति स्निग्धबान्धव ! कार्यं कुरु देहि मम काष्ठानि । यथा झटितिममरलोके गत्वा मिलयामि दयितस्य ॥ १३० ॥
तेनापि भणितमेतद्युक्तं सुकुलीनवीरगृहिणीनाम् । ततस्तस्याः कृते राज्ञा कारिता सुरभिकाष्टचिता ॥ १३१ ॥
गृहीत्वा मुण्डमालां सह करचरणादिकैर्निजपत्युः । विद्याधरस्य भार्या सज्जा प्रज्वालितचिताग्निम् ॥ १३२ ॥
कृत्वा निजोत्सङ्गे अङ्गावयवान् प्रियस्योपविष्टा । श्लाध्यमानी निःशेषराजपर्यन्तलोकेन ॥ १३३ ॥
ततः पवनवशविजृम्भितकरालप्रज्वलितज्वलनज्वालाभिः । विद्याधरभार्या झटिति भस्मराशी कृता तत्र ॥ १३४ ॥

---

१. निर्भिका इत्यर्थः

तो पउमुत्तरराया जलंजली जाव वियरए तीए । तो रुहिरारुणगत्तो पत्तो विज्जाहरो सहसा ॥१३५॥
भणियं च तेण वियसंतवयणकमलेण जयउ नरनाहो । जस्स पभावेण मए निज्जिणिओ दुजयपडिवक्खो ॥१३६॥
जइ मज्झ हियय्यदइयं दइयं न हु तं नरिंद ! रक्खंतो । ता किह पडिभयमहयं हढेण एवं विणासंतो ? ॥१३७॥
इय एवमुल्लवंतस्स तस्स वज्जप्पहारपहउ व्व । पउमुत्तरनरनाहो अहियं चिंताउरो जाओ ॥१३८॥
एएण महासत्तेणऽविस्ससंतेण कस्स वि परस्स । मह अप्पिया नियपिया मए वि एयारिसं विहियं ॥१३९॥
भज्जाविणासभीएण अप्पिया न हु अणेण अवरस्स । सो पुण सिग्घयरं चिय मए कओ पावकम्मेण ॥१४०॥
विस्सासघायओ हं जाओ खयरीविणासकरणेण । अहवा अवियारियकज्जकारिणो केत्तियं एयं ? ॥१४१॥
सत्थत्थपंडियस्स वि मज्जेणाऽऽवडइ किं पि तं कज्जं । जं न जणइ चित्तसुहं घेप्पंतं नेय मुच्चंतं ॥१४२॥
अपरिक्खियकयकज्जं सिद्धं पि न सज्जणा पसंसंति । सुपरिक्खियं पुणो विहडियं पि न जणेइ वयणिज्जं ॥१४३॥
महिमंडलम्मि अजसो भमिही काही न कोइ विस्सासं । कस्स वि अवरस्स जए मज्झ वि एवं कुणंतस्स ॥१४४॥
अवरं च वीररमणीण जुत्तमेयं मए भणंतेण । उच्छाहिऊण विहियं थीवज्झालक्खणं पावं ॥१४५॥
पुच्छंतस्स नियपियं उत्तरमेयस्स किं पयच्छिस्सं ? । विवरं जइ देइ मही ता हं पविसामि पायालं ॥१४६॥
दट्ठुं विलक्खवयणं निवइं तेणिंदियालियनरेण । वाएउं हुरुडुक्खियमेयं पढियं पहिट्ठेण ॥१४७॥
पणमह चलणे इंदस्स इंदजालम्मि लद्धलक्खस्स । तह अट्ठसंवरे संवरस्स सुपइट्ठियजसस्स ॥१४८॥

ततः पद्मोत्तरराजा जलाङ्जलिं यावद्वितरति तस्याः । ततो रुधिरारुणगात्रः प्राप्तो विद्याधरः सहसा ॥ १३५ ॥
भणितं च तेन विकसद्वदनकमलेन जयतु नरनाथः । यस्य प्रभावेन मया निर्जितो दुर्जयप्रतिपक्षः ॥ १३६ ॥
यदि मम हृदयदयितां दयितां न खलु त्वं नरेन्द्र ! अरक्षिष्यः । ततः कथं प्रतिभयमहं बलादेवमविनंक्ष्यम् ॥ १३७ ॥
इत्येवमुल्लपतस्तस्य वज्रप्रहारप्रहत इव । पद्मोत्तरनरनाथोऽधिकं चिन्तातुरो जातः ॥ १३८ ॥
एतेन महासत्त्वेनाविश्वता कस्यापि परस्य । ममार्पिता निजप्रिया मयाप्येतादृशं विहितम् ॥ १३९ ॥
भार्याविनाशभीतेनार्पिता न खल्वनेनापरस्य । स पुनः शीघ्रतरमेव मया कृतः पापकर्मणा ॥ १४० ॥
विश्वासघातकोऽहं जातः खेचरीविनाशकरणेन । अथवाविचारित कार्यकारिणः कियदेतद् ? ॥ १४१ ॥
शास्त्रार्थपण्डितस्यापि मध्येनापतति किमपि तत्कार्यम् । यन्न जनयति चित्तसुखं गृह्णन्तं नैव मुञ्चन्तम् ॥ १४२ ॥
अपरीक्षितकृतकार्यं सिद्धमपि न सज्जनाः प्रशंसन्ति । सुपरीक्षितं पुनर्विघटितमपि न जनयति वचनीयम् ॥ १४३ ॥
महिमण्डलेऽयशो भ्रमिष्यति करिष्यति न कोऽपि विश्वासम् । कस्याप्यपरस्य जगति ममाप्येवं कुर्वतः ॥ १४४ ॥
अपरं च वीरमानिनां युक्तमेतन्मया भणता । उत्साहय विहितं स्त्रीहत्यालक्षणं पापम् ॥ १४५ ॥
पृच्छतो निजप्रियामुतरमेतस्मै किं प्रदास्यामि । विवरं यदि ददाति मही तदाहं प्रविशामि पातालम् ॥ १४६ ॥
दृष्ट्वा विलक्षवदनं नृपतिं तेनेन्द्रजालिकनरेण । वादित्वा डमरुकमेतत्पठितं प्रहृष्टेन ॥ १४७ ॥
प्रणमत चरणानिन्द्रस्येन्द्रजाले लब्धलक्षस्य । तथाष्टसंवरे संवरस्य सुप्रतिष्ठितयशसः ॥ १४८ ॥

तं सोउं पउमुत्तरराया जा नियइ ता न तत्थ चिया । न हु खयरो तो नायं विलसियमिणमिंदियालकयं ॥१४९॥
दावेइ दविणलक्खं तो सायरमिंदियालियनरस्स । राया रंजियहियओ चरिएणं तस्स गुणनिहिणो ॥१५०॥
वेरग्गभावियप्पा पुहइवई पेच्छिउं तमच्छरियं । अंतोरमंतसंवेगभाविओ चिंतिउं लग्गो ॥१५१॥
खणदिट्ठनरूवं जहा इमं इंदियालमह जायं । संसारविलसियं पि हु तह अथिरं पेच्छ सव्वं पि ॥१५२॥
विलसंतवारविलयालोयणभमणं व चंचलं पेम्मं । अनिलंदोलियलवलीदलोवमं तारतारुण्णं ॥१५३॥
पवणुल्लालियरंगिरतरंगमालाचलाचलं जीयं । अथिरसरूवं वित्तं चित्तं व सरायजीवाणं ॥१५४॥
एवं विचिंतयंतो विन्नत्तो सो वरोहिएण इमं । दुक्खंतरिसी अज्जं समोसढो देव ! चउनाणी ॥१५५॥
तं सोउं नरनाहो सपरियणो सावरोहणो चलिओ । आरुहिय मत्तहत्थिं संपत्तो सूरिसन्नेज्झे ॥१५६॥
गुरुणो चरणे नमिऊण धरणिवीढम्मि तयणु उवविट्ठो । धम्मकहापज्जन्ते सप्पणयं पुच्छए एवं ॥१५७॥
भयवं ! पुव्विल्लभवे मए कयं किं ? जमेरिसा रिद्धी । पुरओ वा किं भविही ? इय भणिए पभणइ मुणिंदो ॥१५८॥
पुव्विल्लभवे पउमेण पूइओ आसि जिणवरो तुमए । तेण सुरिंदसमाणा रिद्धी एयारिसा तुज्झ ॥१५९॥
जाईसरणेण तओ पुव्वभवो जाणिओ नरिंदेण । भाविभवा वि हु कहिउं पारद्धा मुणिवरिंदेण ॥१६०॥
सद्धिं चउहिं पि पियाहिं तुज्झ होही नरिंद ! सुरलोगो । सत्तमजम्मम्मि पुणो परमपयं तं पि पाविहिसि ॥१६१॥
तं सुणिऊण नरिंदो हरिसवसुद्धुसियरोमरेहिल्लो । काऊण गंठिभेयं पावइ सम्मत्तवररयणं ॥१६२॥

तत् श्रुत्वा पद्मोतरराजा यावत्पश्यति तावन्न तत्र चिता । न खलु खेचरस्ततो ज्ञातं विलसितमिदमिन्द्रजालकृतम् ॥ १४९ ॥
दापयति द्रविणलक्षं ततः सादरमिन्द्रजालिकनरस्य । राजा रञ्जितहृदयश्चरितेन तस्य गुणनिधेः ॥ १५० ॥
वैराग्यभावितात्मा पृथिवीपति र्दृष्ट्वा तमाश्चर्यम् । अन्तोरममाणसंवेगभावितश्चिन्तयितुं लग्नः ॥ १५१ ॥
क्षणदृष्टनष्टरुपं यथेदमिन्द्रजालमथ जातम् । संसारविलसितमपि खलु तथास्थिरं पश्य सर्वमपि ॥ १५२ ॥
विलसद्वारवनितालोकनभ्रमणमिव चञ्चलं प्रेम । अनिलान्दोलितलवलीदलोपमं तारतारुण्यम् ॥ १५३ ॥
पवनोल्लालितरङ्गत्तरङ्गमालाचलाचलं जीवितम् । अस्थिरस्वरुपं वित्तं चित्तमिव सरागजीवानाम् ॥ १५४ ॥
एवं विचिन्तयन् विज्ञप्तः स प्रहरीकेनेदम् । दुःखान्तर्षिरद्य समवसृतो देव ! चतुर्ज्ञानी ॥ १५५ ॥
तत् श्रुत्वा नरनाथः सपरिजनः सावरोधश्चलितः । आरुह्य मत्तहस्तिनं सम्प्राप्तः सूरिसन्निधौ ॥ १५६ ॥
गुरोश्चरणयो र्नत्वा धरणीपीठे तदनूपविष्टः । धर्मकथापर्यन्ते सप्रणयं पृच्छत्येवम् ॥ १५७ ॥
भगवन् ! पूर्वभवे मया कृतं किं ? यदेदृशर्द्धिः । पुरतो वा किं भविष्यति ? इति भणिते प्रभणति मुनीन्द्रः ॥ १५८ ॥
पूर्वभवे पद्मेन पूजित आसीज्जिनवरस्त्वया । तेन सुरेन्द्रसमानार्द्धिरेतादृशा तव ॥ १५९ ॥
जातिस्मरणेन ततः पूर्वभवो ज्ञातो नरेन्द्रेण । भाविभवा अपि खलु कथयितुं प्रारब्धा मुनिवरेन्द्रेण ॥ १६० ॥
सार्द्धं चतुर्भिरपि प्रियाभिस्तव भविष्यति नरेन्द्र ! सुरलोकः । सप्तमजन्मनि पुनः परमपदं त्वमपि प्राप्स्यसि ॥ १६१ ॥
तत्श्रुत्वा नरेन्द्रो हर्षवशोद्धर्षितरोमराजमानः । कृत्वा गण्ठिमेततत्प्राप्नोति सम्यक्त्ववररत्नम् ॥ १६२ ॥

अंतेउरेण सद्धिं पणमिय पयपंकयं मुणिदस्स । हरिस्साउरियहियओ संपत्तो नियपासायं ॥१६३॥
एवं विसुद्धहियओ सुइरं परिपालिऊण सम्मत्तं । मुणिभणियविहाणेणं सिद्धो सो सत्तमभवम्मि ॥१६४॥

॥ पद्मोत्तराख्यानकं समाप्तम् ॥३०॥

इदानीं दुर्गनार्याख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

कायंदिपुरीए नरिंद-चंद-नागिंदनमिय(कम) कमलो । समवसरिओ जिणिंदो तत्तो तन्नयरनरनाहो ॥१॥
सिंगारियपउरपयापरियरिओ सिंधुरं समारूढो । तित्थयरवंदणत्थं नीहरिओ गरुयभत्तीए ॥२॥
दिट्ठो दुग्गाथेरीए नीर-इंधणकए भमंतीए । तो तीए कोइ पुट्ठो सपरियणो जाइ कत्थ निवो ? ॥३॥
तेणुत्तं तित्थयरस्स दुसहदारिद्दुक्खदलणस्स । अभिवंदण(त्थ) मेयं निसामिउं चिंतए थेरी ॥४॥
सकयत्थो एस जणो जो नियसत्तीए पूयइ जिणिंदं । अहयं तु अकयसुकया धणरहिया कहि तमच्चेमि ? ॥५॥
एवं विचिंतिऊणं उम्मीलियसिंदुवारकुसुमाणि । घेत्तूण मुहालब्भाणि रन्नमज्झाओ सा चलिया ॥६॥
समवसरणम्मि चलिया हिययब्भंतरभवंतभत्तीए । ..... णा ॥७॥
सकयत्था हं जिणनाहचरणतामरसमच्चइस्सामि । एरिससुहपरिणामाए तीए अद्धंतराले वि ॥८॥
जायं पज्जवसाणं अइवुड्ढत्तेण जीवियव्वस्स । विप्फुरियपहापडलो सुरलोए सुरवरो जाओ ॥९॥
महिमंडलम्मि पडियं तीए सरीरं पुरीजणो दट्ठुं । किं मुच्छिया मया वा एसा ? करुणाए सवियक्को ॥१०॥

अन्तःपुरेण सार्द्धं प्रणम्य पदपङ्कजं मुनीन्द्रस्य । हर्षापूरितहृदयः सम्प्राप्तो निजकप्रासादम् ॥ १६३ ॥
एवं विशुद्धहृदयः सुचिरं परिपाल्य सम्यक्त्वम् । मुनि भणितविधानेन सिद्धः स सप्तमभवे ॥ १६४ ॥

॥ पद्मोत्तराख्यानकं समाप्तम् ॥ ३० ॥

दुर्गानार्याख्यानकम् - ॥ ३१ ॥

काकन्दिपूर्यां नरेन्द्र-चन्द्र-नागेन्द्रनतक्रमकमलः । समवसृतो जिनेन्द्रस्ततस्तन्नगरनरनाथः ॥ १ ॥
शृङ्गारितप्रचुरप्रजापरिवारितः सिन्धुरं समारुढः । तीर्थकरवन्दनार्थं निःसृतो गुरुकभक्त्या ॥ २ ॥
दृष्टो दुर्गास्थविरया नीरेन्धनकृते भ्रमन्त्या । ततस्तया कोपि पृष्टः सपरिजनो याति कुत्र नृपः ? ॥ ३ ॥
तेनोक्तं तीर्थकरस्य दुषहदारिद्रदुःखदलनस्य । अभिवन्दनार्थमेतन्निशम्य चिन्तयति स्थविरी ॥ ४ ॥
सकृतार्थ एष जनो यो निजशक्त्या पूजयति जिनेन्द्रम् । अहं त्वकृतसुकृता धनरहिता कथं तमर्चयामि ? ॥ ५ ॥
एवं विचिन्त्योन्मीलितसिन्दुरवार कुसुमानि । गृहीत्वा मुधालभ्यानि अरण्यमध्यात् सा चलिता ॥ ६ ॥
समवसरणे चलिता हृदयाभ्यन्तरभवद्भक्त्या । ..... णा ॥ ७ ॥
सकृतार्थाहं जिननाथचरणतामरसमर्चिष्यामि । ईदृशशुभपरिणामायास्तस्या अर्धान्तरालेऽपि ॥ ८ ॥
जातं पर्यवसानमतिवृद्धत्वेन जीवितव्यस्य । विस्फुरितप्रभापटलःसुरलोके सुरवरो जातः ॥ ९ ॥
महिमण्डले पतितं तस्याः शरीरं पुरिजनो दृष्ट्वा । किं मूर्च्छिता मृता वेषा ? करुणया सवितर्कः ॥ १० ॥

नीरच्छडाहिं सिंचइ कड्ढइ हिययं मुहे जलं खिवइ । वत्थंचलेण वीयइ तह वि न जंपइ न संचलइ ॥११॥
तो गंतुं जिणइंदं पणमिय पुच्छइ निबद्धकरकमलो । किं मुच्छिया ? अह मया दुग्गा ? तो भयवया भणियं ॥
मज्झ परिपूयणत्थं आगच्छंतीए आउयखएण । पूयापरिणामेण वि इमीए अमरत्तणं पत्तं ॥१३॥
एत्थंतरे स देवो नियचरियं ओहिणा वियाणेउं । विप्फुरियरयणकुंडलकिरणकरंबियकवोलजुओ ॥१४॥
जा वंदिउं पवत्तो जणस्स ता दंसिओ जिणवरेण । भो ! पेच्छह पच्चक्खं एसो सो थेरिजीवसुरो ॥१५॥
तत्तो जणेण भणियं अहो ! पभावो जिणस्स पूयाए । जीए परिणामेण वि पाविज्जइ एरिसा रिद्धी ॥१६॥

॥ दुर्गनार्याख्यानकं समाप्तम् ॥३१॥

जह एएसिं जाया जिणपूया सोक्खसंपयाहेउ । तह अन्नस्स वि जायइ ता जइयव्वं इमीए सया ॥१॥

सौरभ्यभाजिकुसुमादिपदार्थसार्थैः सिद्धान्तसिद्धविधिनोभयथाऽपि शुद्धाः ।
श्रीमज्जिनं जितमशेषविकारजातं[1] श्रेयस्करं सुकृतिनः परिपूजयन्ति ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे जिनपूजाफलोपवर्णनो नामाष्टमोऽधिकारः समाप्तः ॥८॥

नीरच्छटाभिः सिञ्चति कर्षति हृदयं मुखे जलं क्षिपति । वस्त्राङ्चलेन वीजयति तथापि न जल्पति न संचलति ॥ ११ ॥
ततो गत्वा जिनेन्द्रं प्रणम्य पृच्छति निबद्धकरकमलः । किं मूर्च्छिता ? अथ मृता दुर्गा ? ततो भगवता भणितम् ॥ १२ ॥
मम परिपूजनार्थमागच्छन्त्या आयुःक्षयेन । पूजापरिणामेनाप्यत्स्या अमरत्वं प्राप्तम् ॥ १३ ॥
अत्रान्तरे स देवो निजचरितमवधिना विज्ञाय । विस्फुरितरत्नकुण्डलकिरणकरम्बितकपोलयुगः ॥ १४ ॥
यावद्वन्दितुं प्रवृतो जनस्य तावद्दर्शितो जिनवरेण । भो ? पश्यत प्रत्यक्षमेष स स्थविरीजीवसुरः ॥ १५ ॥
ततो जनेन भणितमहो ! प्रभावो जिनस्य पूजायाः । यस्याः परिणामेनापि प्राप्यत ईदृशार्द्धिः ॥ १६ ॥

॥ दुर्गाख्यानकम् समाप्तम् ॥ ३१ ॥

यथैतेषां जाता जिनपूजा सौख्यसम्पादनहेतुः । तथान्यस्यापि जायते ततो यतितव्यमेतस्यां सदा ॥ १ ॥

● ● ●

---

१. ०म [—]सर्वि० प्रतौ ।

[९. जिनवन्दनफलाधिकारः ।]

व्याख्यातो जिनपूजाफलाधिकारः । साम्प्रतं जिनबिम्बं पूजितं विधिना वन्दनीयमिति अतो जिनबिम्बवन्दनफलं व्याचिख्यासुराह –

तित्थयरवंदणेणं पाविज्जइ संपया सुराईणं ।
जह पत्ता बउलेणं तह सेदुय-नंदजीवेहिं ॥ १४ ॥

व्याख्या- 'तीर्थकरवन्दनेन' सर्वज्ञप्रणामादिना "पाविज्जइ" प्राप्यते आसाद्यते 'सम्पद्' लक्ष्मीः 'सुरादीनां' गीर्वाणप्रभृतीनाम् । दृष्टान्तानाह - 'यथा' येन प्रकारेण 'प्राप्ता' लब्धा 'बकुलेन ' मालाकारेण 'तथा' तेनैव प्रकारेण 'सेदुव-नन्दजीवाभ्यां' सेदुवकश्च ब्राह्मणो नन्दश्च श्रेष्ठी तज्जीवाभ्यामित्यक्षरार्थः ॥१४॥ भावार्थस्त्वाख्यानकेभ्योऽवसेयः । तानि चामूनि ।

तत्र तावद् बकुलाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

कंचणधर इव सगुणं कंचणसोहं सिरीए वहमाणं । कंचणसमिद्धपउरं कंचणपुरमत्थि[1] रमणीयं ॥१॥
तत्थ य मालायारो बउलो नामेण सुइसमायारो । भज्जा य पउमिणी पउमिणी व्व गुणरायहंसाणं ॥२॥
तत्थ य सियधयमालं सिरिसंठियकणयकलससोहिल्लं । तडिलय-बलायमालासंगयसरयब्भखंडं व ॥३॥

बकुलाख्यानकम् -

कञ्चनधर इव सगुणां[2] कञ्चनशोभां श्रिया वहमानम् । कञ्चनसमृद्धपौरं कञ्चनपुरमस्ति रमणीयम् ॥ १ ॥
तत्र च मालाकारो बकुलो नाम्ना शुचिसमाचारः । भार्या च पद्मिनी पद्मिनीव गुणराजहंसानाम् ॥ २ ॥
तत्र च श्वेतध्वजमालं श्रीसंस्थितकनककलशशोभमानम् । तडिल्लता-बलाकमालासंगतशरदाभ्रखण्डमिव ॥ ३ ॥

---

१. ०पुरमित्थ –रं०। २. सगुणां - गुण सहितां ।

सिरिरिसहेसरभवणं हिमगिरिसरिसं समग्गगुणकलियं । गब्भहररहियसिरिरिसहबिंबरेहंतगब्भहरं ॥४॥
तम्मि य वसंतसमए विसेसपरमूसवो समारद्धो । सावयजणेण जिणपुंगवस्स गुरुईए रिद्धीए ॥५॥
तथा हि-
विरइयवंदणमालं ललामउल्लोलयं विहारलयं । विलसंतफुल्लहरयं विचित्तविच्छित्तिवलिरयणं ॥६॥
चित्तियभित्तिविभायं पवित्तपडमंडवावरियगयणं । वेसुज्जलसिंगारियसावय-सावियजणाइन्नं ॥७॥
तत्थ य मालायारा समागया पुप्फविक्किणणकज्जे । सव्वे वि नियरवासी विसेसअत्थागमनिमित्तं ॥८॥
बउलो वि तेहिं समयं समागओ पुप्फपेच्छियाहत्थो । गरुययरपुप्फपच्छयवावडपियपउमिणिसणाहो ॥९॥
विक्किणिय पुप्फनिवहा मणोरहाईयलाभपरितुट्ठा । सव्वे वि गया थक्को बउलो नियपणइणीसहिओ ॥१०॥
सुहकम्मोदयवसओ चिंतियमिमिणा जिणाययणमज्झे । एत्तियपुप्फेहिमहो ! किं विहियमिमेहिं वणिएहिं ? ११॥
कोउयवसओ जा जिणहरस्स मज्झम्मि पविसइ सभज्जो । ता पेच्छइ सव्वं जिणवरस्स सोहासमुदयं सो ॥१२॥
जिणमंडवमज्झगओ सव्वालंकारभूसियसरीरं । पेच्छइ जिणवरबिंबं हरिसाऊरिज्जमाणमणो ॥१३॥
चिंतेइ पुन्नवंता एए खलु सावया वइय अत्थं । जे पूयंति जिणिंदं करंति एयारिसं जत्तं ॥१४॥
अंगीकएहजम्मा अत्थोवज्जणमणा वयमहन्ना । घरवासमोहियमणा जे परलोयं न चिंतेमो ॥१५॥

श्री ऋषभेश्वरभवनं हिमगिरिसदृशं समग्रगुणकलितम् । गर्भगृहरहितश्रीऋषभबिम्बराजमानगर्भगृहम् ॥ ४ ॥
तस्मिंश्च वसन्तसमये विशेषपरमुत्सवः समारब्धः । श्रावकजनेन जिनपुङ्गवस्य गुर्व्यार्द्धया ॥ ५ ॥
तथाहि -
विरचितवन्दनमालं ललामोल्लोचकं विहारलताम् । विलसत्फुल्लगृहकं विचित्रविच्छित्तिवलिरत्नम् ॥ ६ ॥
चित्रितभितिविभागं पवित्रपटमण्डपावृतगगनम् । वेशोज्वलशृङ्गारितश्रावक-श्राविकाजनाकीर्णम् ॥ ७ ॥
तत्र च मालाकाराः समागताः पुष्पविकीर्णनकार्ये । सर्वेऽपि नगरवासिनो विशेषार्थागमनिमित्तम् ॥ ८ ॥
बकुलोऽपि तैः समकं समागतः पुष्पपिटिकाहस्तः । गुरुकतरपुष्पपिटकव्यापृतप्रियपद्मिनिसनाथः ॥ ९ ॥
विक्रीय पुष्पनिवहा मनोहरातिलाभपरितुष्टाः । सर्वेऽपि गताः स्थितो बकुलो निजप्रणयिनी सहितः ॥ १० ॥
शुभकर्मोदयवशतश्चिन्तितमनेन जिनायतनमध्ये । एतावत्पुष्पैरहो ! किं विहितमिमै र्वणिग्भिः ॥ ११ ॥
कौतुकवशतो यावज्जिनगृहस्य मध्ये प्रविशति सभार्यः । तावत्पश्यति सर्वं जिनवरस्य शोभासमुदयं सः ॥ १२ ॥
जिनमण्डपमध्यगतः सर्वालङ्कारभूषितशरीरम् । पश्यति जिनबिम्बं हर्षापूर्यमाणमनाः ॥ १३ ॥
चिन्तयति पुण्यवन्त एते खलु श्रावका व्ययित्वार्थम् । ये पूजयन्ति जिनेन्द्रं कुर्वन्ति एतादृशां यात्राम् ॥ १४ ॥
अङ्गीकृतेहजन्मानोऽर्थोपार्जनमनसो वयमधन्याः । गृहवासमोहितमनसो ये परलोकं न चिन्तयामः ॥ १५ ॥

---

१. ०पत्थिया० —रं० ।

उव्वियपाडलामालियाए एयाए ताव पूएमि । अहमवि जिणमिय चिंतिय नियय्पियं पउमिणं भणइ ॥१६॥
पूएमि जिणवरं भणसि जइ तुमं तीए जंपियं सामि ! । पूयसु संगयमेयं मणोरहो मज्झ पुण बहुओ ॥१७॥
जइ एवं तो कुणिमो वयमंग(ल)लक्खओ जियमिमस्स । तीए भणियं पिययम ! सइत्तिया जइ इमं कुणसि ॥१८॥
कइवयदिणेहिं विहिया उज्जमणे बलिविहाणमायरिउं । तिलओ निवेसिओ पउमिणीए रिसहस्स भालयले ॥१९॥
तत्तो य पहरिसुब्भिज्जमाणरोमंचकंचुइयतणुणा । बउलेणं सकलत्तेण वंदिओ रिसहजिणइंदो ॥२०॥
आउक्खयम्मि गयउरपुरम्मि सिरिकमलसेणनरवइणो । देवीए रयणमालाए सूइओ सुहयसुमिणेणं ॥२१॥
सो बउलमालिओ पूयपुव्वजिणवंदणाणुभावेणं । जाओ पुत्तो कयरयणचूडनामो गुणवसड्ढो ॥२२॥
जह गहियकलाविज्जो अवहरिओ हत्थिणा अरन्नमि । जह कयसुरसन्निज्झो सुहाइं पत्तो सुपुन्नेण ॥२३॥
जह तिलयसुंदरीपमुहपणइणीसंगओ सुहाभागी । संजाओ तह नेयं सव्वं पि हु रयणचुडाओ ॥२४॥

॥ बकुलाख्यानकं समाप्तम् ॥३२॥

इदानीं सेदुवकाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

मगहाजणवयउत्तंससन्निभं अत्थि बहुजणाइन्नं । सिरिरायगिहं नयरं अणुरायगिहं व लच्छीए ॥१॥
तत्थऽत्थि पत्थिवो परमसव्वसत्थत्थवित्थरियबुद्धी । अस्संखसंखउक्खायखग्गपडिवक्खखयदक्खो ॥२॥
विक्खायजसो दक्खिन्न-दाणगुणरयणभूसियसरीरो । लायन्नपरमसिंधू सुपसिद्धो सेणिओ नाम ॥३॥

अवशिष्टपाटल्यामालिकयानया तावत्पूजयामि । अहमपि जिनमिति चिन्तयित्वा निजकप्रियां पद्मिनिं भणति ॥ १६ ॥
पूजयामि जिनवरं भणसि यदि त्वं तया जल्पितं स्वामिन् ! । पूजय सङ्गतमेवं मनोरथो मम पुनर्बहुकः ॥ १७ ॥
यद्येवं तदा कुर्व व्रतमङ्गललक्षकोचितमेतस्य । तया भणितं प्रियतम ! सहिता यदीदं करोषि ॥ १८ ॥
कतिपयदिनै विहतोद्यापने बलिविधानमाचर्य । तिलको निवेशितः पद्मिन्या ऋषभस्य भालतले ॥ १९ ॥
ततश्च प्रहर्षोद्भिद्यमानरोमाञ्चकञ्चुकिततनुना । बकुलेन सकलत्रेण वन्दितो ऋषभजिनेन्द्रः ॥ २० ॥
आयुःक्षये गजपुरपुरेश्रीकमलसेननरपतेः । देव्या रत्नमालायाः सूचितः सुभगस्वप्नेन ॥ २१ ॥
सो बकुलमालिकः पूजापूर्वजिनवन्दनानुभावेन । जातः पुत्रः कृतरत्नचूडनाम गुणवशाढयः ॥ २२ ॥
यथा गृहीतकलाविद्योऽपहृतोहस्तिनारण्ये । यथा कृतसुरसान्निध्यः सुखानि प्राप्तः सुपुण्येन ॥ २३ ॥
यथा तिलकसुन्दरिप्रमुखप्रणयिनिसंगतः सुखभागी । सज्जातस्तथा ज्ञेयं सर्वमपि खलु रत्नचूडात् ॥ २४ ॥

॥ बकुलाख्यानकं समाप्तम् ॥ ३२ ॥

सेदूवकाख्यानकम् ॥ ३३ ॥

मगधाजनपदावत्तंससन्निभमस्ति बहुजनाकीर्णम् । श्रीराजगृहं नगरमनुरागगृहमिव लक्ष्म्याः ॥ १ ॥
तत्रास्ति पार्थिवः परमसर्वशास्त्रार्थविस्तरितबुद्धिः । असंख्यसंख्योत्खातखड्गप्रतिपक्षक्षयदक्षः ॥ २ ॥
विख्यातयशा दाक्षिण्यदानगुणरत्नभूषितशरीरः । लावण्यपरमसिन्धुः सुप्रसिद्धः श्रेणिको नाम ॥ ३ ॥

उवसंतडमर-डिंबाडंबररज्जं परक्कमगुणेहिं । अइकमइ पालयंतस्स तस्स कालो कलावइणो ॥४॥
अह अन्नया कयाई अत्थाणे सुहडकोडिसंकिन्ने । उज्जाणपालएणं विन्नत्तो नमिय पयकमलं ॥५॥
अक्खलियविमलकेवलविसारिकरनियरगुरुपयासेण । निहयतमतिमिरनियरो तिमिरहरो इव महावीरो ॥६॥
भुवणत्तयसिरिधरिओ गुणसिलए चेइए समवसरिओ । मुणिजणमणसुमणोहरनलिणीवणवड्ढियाणंदो ॥७॥
तव्वयणसवणओ वंदणेण तव्वयणदंसणेण पहू ! । पणमियजिणपयकमलो सहलत्तणमत्तणो कुणउ ॥८॥
तं वयणं अमयरसोहसन्निभं निसमिऊण नरनाहो । हरिसभरनिब्भरंचियसव्वंगो उट्ठिओ सहसा ॥९॥
दाऊण पीइदाणं अद्धत्तेरस य तो सहस्साइं । अइगरुयविभूईए नीहरिओ वंदणनिमित्तं ॥१०॥
संचल्लियगुरुबलभरसंभारनमंतफणिवइफणोहो । वरतुरयसमारूढो संचलिओ सेणियनरिंदो ॥११॥
उवरोहेणं चलिया केइ कुऊहलियमाणसा अन्ने । भत्तिभरेणं अवरे रायाणो तेण सह बहवे ॥१२॥
उवरिधरियायवत्तो निवारियासेसरायगुणवत्तो । रमणीयणनयणंजलिसइण्हपिज्जंतलायन्नो ॥१३॥
संपत्तो य कमेणं नरनाहो समवसरणभूमीए । कणयज्जय-वंदणमालसंकुले तइयसालम्मि ॥१४॥
परिहरिय तुरय-चामर-सियछत्त-करालखग्गनिवचिंधो । तयणु पयट्टो गंतुं सपरियणो पायचारेण ॥१५॥
सिरिवीरचरणकमलं दुहदलणं सयलसुक्खसंकलणं । निहिकंखिणा निहाणं व तेण लद्धं सउन्नेण ॥१६॥
हरिसभरनीरपरिपूरपूरियासेसरोमवणराई । भालयलनिहियकरकमलसंपुडो पणमिउं थुणइ ॥१७॥

उपशान्तडमर-डिम्बाडम्बरराज्यं पराक्रमगुणैः । अतिक्रामति पालयतस्तस्य कालः कलापतेः ॥ ४ ॥
अथान्यदा कदाचिदास्थाने सुभटकोटिसङ्कीर्णे । उद्यानपालकेन विज्ञप्तो नत्वा पदकमलम् ॥ ५ ॥
अस्खलितविमलकेवलविसारिकरनिकरगुरुप्रयासेन । निहततमस्तिमिरनिकरस्तिमिरहर इव महावीरः ॥ ६ ॥
भुवनत्रयश्रीधृतो गुणशिले चैत्ये समवसृतः । मुनिजनमनःसुमनोहरनलिनीवनवर्धितानन्दः ॥ ७ ॥
तद्वचनश्रवणतो वन्दनेन तद्वदनदर्शनेन प्रभो ! । प्रणतजिनपादकमलः सफलत्वमात्मनः करोतु ॥ ८ ॥
तं वचनममृतरससन्निभं निशम्य नरनाथः । हर्षभरनिर्भराञ्चितसर्वाङ्ग उत्थितः सहसा ॥ ९ ॥
दत्वा प्रीतिदानमर्द्धत्रयोदश च तदा सहस्राणि । अतिगुरुकविभूत्या निःसृतो वन्दननिमित्तम् ॥ १० ॥
सञ्चलितगुरुबलभरसम्भारनमत्फणिपतिफणौघः । वरतुरगसमारुढः सञ्चलितः श्रेणिकनरेन्द्रः ॥ ११ ॥
उपरोधेन चलिताः केऽपि कुतूहलितमानसा अन्ये । भक्तिभरेणापरे राजानस्तेन सह बहवः ॥ १२ ॥
उपरिधृतातपत्रो निवारिताशेषराजगुणपात्रः । रमणीजननयनाञ्जलिसतृष्ण पिबल्लावण्यः ॥ १३ ॥
सम्प्राप्तश्च क्रमेण नरनाथः समवसरणभूमौ । कनकध्वज-वन्दनमालासंकुले तृतीयशाले ॥ १४ ॥
परिहृततुरग-चामर-श्वेतच्छत्र-करालखड्गनृपचिह्नः । तदनु प्रवृतो गन्तुं सपरिजनः पादचारेण ॥ १५ ॥
श्री वीरचरणकमलं दुःखदलनं सकलसुखसंकलनम् । निधिकाङ्क्षिणा निधानमिव तेन लब्धं सपुण्येन ॥ १६ ॥
हर्षभरनीरपरिपूरपूरिताशेषरोमवनराजिः । भालतलनिहितकरकमलसंपूटः प्रणम्य स्तौति ॥ १७ ॥

जय जय गरुयपरक्कम ! जय जय असमाणसत्तसंपन्न ! । जय जय तवसिरिसोहिय ! जय जय जिणवर ! महावीर ! ॥१८॥
बालत्तणम्मि लीलाए चालियं जेण मेरुचूलग्गं । चलणग्गेण महाबल ! तेण फुडं तं महावीरो ॥१९॥
कडपूयणिपमुहं कालचक्कजणियं च कन्नकीलकयं । उवसग्गं जं न गणसि तेण फुडं तं महावीरो ॥२०॥
तुच्छत्तणेण तणमिव संगमयसुरंगणाओ गणियाओ । गुणनिहि ! तुमए जेणं तेण फुडं तं महावीरो ॥२१॥
संगमयामरजणिया अवगणिया जेण विविहउवसग्गा । अन्ने वि य नाह ! तए तेण फुडं तं महावीरो ॥२२॥
एवंविहमुवसग्गं गोसालयपमुहपच्चणीएहिं । जं सम्मं सहसि कयं तेण फुडं तं महावीरो ॥२३॥
अणह ! अणारियदेसे अणज्जजणजणियदेहसंतावे । भयरहिओ जं विहरसि तेण फुडं तं महावीरो ॥२४॥
इय धीरत्तणकुलहर ! भवारिभीयाण भव्वसत्ताणं । भयभेरवभवहरणं विहेसु विरियं महावीर ! ॥२५॥
इय थुणिऊण जिणिंदं तिपयाहिणपुव्वयं पुहइपालो । आबद्धपंजलिउडो उवविट्ठो उचियदेसम्मि ॥२६॥
गंभीरिमगुणनिज्जियमंदरमंथिज्जमाणजलहिरवो । भयवं पि भुवणहियओ धम्मकहं कहिउमाढत्तो ॥२७॥
जह जीवा बज्झंती मुच्चंती जह व संकिलिस्संति । अट्टवसट्टोवगया संसारं परियडंति जहा ॥२८॥
एत्थंतरम्मि एगो गलंतकोढो[1] निरागिई पुरिसो । भयवंतपायमूले पणामपुव्वं समल्लीणो ॥२९॥
तत्थ ठिओ परिसिंचइ पयकमलं भगवओ विगयसंको । ससरीराओ घेत्तूण कोढदुग्गंधखयरसियं ॥३०॥

जय जय गुरुकपराक्रम ! जय जयासमानसत्त्वसम्पन्न ! जय जय तपःश्रीशोभित ! जय जय जिनवर ! महावीर ! ॥१८॥
बालत्वे लीलया चालितं येन मेरुचूलाग्रम् । चरणाग्रेण महाबल ! तेन स्फुटं त्वं महावीरः ॥ १९ ॥
क्रटपूतनिप्रमुखं कालचक्रजनितं च कर्णकीलकयम् । उपसर्गं यन्न गणयसि तेन स्फुटं त्वं महावीरः ॥ २० ॥
तुच्छत्वेन तृणमिव सङ्गमकसुराङ्गना गणिताः । गुणनिधे ! त्वया तेन स्फुटं त्वं महावीरः ॥ २१ ॥
सङ्गमकामरजनिता अवगणिता येन विविधोपसर्गाः । अन्येऽपि च नाथ ! त्वया येन स्फुटं त्वं महावीरः ॥ २२ ॥
एवंविधमुपसर्गं गोशालकप्रमुखप्रत्यनिकैः । यत्सम्यक सहसे कृतं तेन स्फुटं त्वं महावीरः ॥ २३ ॥
अनघ ! अनार्यदेशेऽनार्यजनजनितदेहसन्तापे । भयरहितो यद्विहरसि तेन स्फुटं त्वं महावीरः ॥ २४ ॥
इति धीरत्वकुलगृह ! भवारिभीतानां भव्यसत्त्वानाम् । भयभैरवभवहरणं विधेहि वीर्यं महावीर ! ॥ २५ ॥
इति स्तुत्वा जिनेन्द्रं त्रिप्रदक्षिणापूर्वकं पृथिवीपालः । आबद्धाञ्जलिपूट उपविष्ट उचितदेशे ॥ २६ ॥
गम्भीरिमागुणनिर्जितमन्दरमथ्यमानजलधिरवः । भगवानपि भुवनहितको धर्मकथां कथयितुमारब्धः ॥ २७ ॥
यथा जीवा बध्यन्ते मुच्चन्ते यथा वा संक्लिश्यन्ते । आर्तवशार्त्तोपगताः संसारं पर्यटन्ति यथा ॥ २८ ॥
अत्रान्तर एको गलत्कुष्ठो निराकृती पुरुषः । भगवत्पादमूलं प्रणामपूर्वं समालीनः ॥ २९ ॥
तत्र स्थितः परिसिञ्चति पदकमलं भगवतो विगतशङ्कः । स्वशरीराद्गृहीत्वा कुष्टदुर्गन्धक्षयरसिकम् ॥ ३० ॥

---

१. तकुट्ठो निरा –रं० ॥

अमणुन्नमुत्तिरूवं तं पासित्ता पसेणईतणओ । गुरुकोवानिलतरलियअहरदलो चिंतए एवं ॥३१॥
भुवणत्तयभत्तिवसुल्लसंतजणनिवहनमियपयकमलं । अभिभवइ भुवणसामिं कहमेसो दूरगयलज्जो ? ॥३२॥
एयं न जुत्तिजुत्तं जं गुरुपरिभावुयं उविक्खेउं । इयरनराण वि मह उण विसेसओ सत्तिमंतस्स ॥३३॥
सइ सामत्थे गुरुणो जे परिभवकारयं उविक्खंति । नियजणणिकिलेसकराण को गुणो ताण जायाणं ? ॥३४॥
ता किं एयस्स तणू तणूणि खंडाइं कप्परेऊण । अविणयनिहिणो पावस्स दसदिसिं देमि भूयबलिं ॥३५॥
किं वा एयस्स दुरासयस्स सयमेव मंडलग्गेण । तालहलं पिव पाडेमि खंधमूलाओ सिरकमलं ? ॥३६॥
किंतु न जुत्तं एयं जिणवरपुरओ विरोहकरणं मे । जमिह परोप्परमच्छरगया वि जीवा उवसमंति ॥३७॥
तथा हि-
जत्थ नयाखंडलमउलिमंडलो महियलं समल्लियइ । भयवं भवंतभयभमिरभवियनित्थारणसमत्थो ॥३८॥
तत्थुवसमंति वइराणऽन्नोन्नविरोहिसव्वजीवाणं । पुव्विकयाणि वि भावाण संभवो भवइ न कया वि ॥३९॥
तम्हा चिट्ठउ एसो दुट्ठो निक्किट्ठकुट्ठअभिभूओ । एत्थ ट्ठाणम्मि तहा कुणउ जहिच्छं वि चिट्ठाओ ॥४०॥
जइ पुण एसो होही विणिग्गओ समवसरणबाहिं ति । ता नूणमविणयफलं दायव्वं मे सयं चेव ॥४१॥
समयंतरम्मि छीए मुणिवइणा मरसु सो नरो भणइ । नरवइणा पुण छीए जीवसु सुचिरं तुमं देव ! ॥४२॥
अभएणं पुण छीए जंपइ सो मरसु तं सि जीवसु वा । मा जीवसु मा मरसु व कयछिक्के[1] कालसूयरिए ॥४३॥

अमनोज्ञमूर्तिरुपं तं दृष्ट्वा प्रसेनजित्तनयः । गुरुकोपानिलतरलिताधरदलश्चिन्तयत्येवम् ॥ ३१ ॥
भुवनत्रयभक्तिवशोल्लसज्जननिवहनतपदकमलम् । अभिभवति भुवनस्वामिनं कथमेष दूरगतलज्जः ? ॥ ३२ ॥
एतन्न युक्तियुक्तं गुरुपरिभावुकमुपेक्षितुम् । इतरनराणामपि मम पुन र्विशेषतः शक्तिमतः ॥ ३३ ॥
सति सामर्थ्ये गुरो र्ये परिभवकारकमुपेक्षन्ते । निजजननीकलेशकराणां को गुणस्तेषां जातानाम् ? ॥ ३४ ॥
ततः किमेतस्य तनु-तनूनि खण्डानि कर्तयित्वा । अविनयनिधेः पापस्य दशदिशि ददामि भूतबलिम् ॥ ३५ ॥
किं वेतस्य दुराशयस्य स्वयमेव मण्डलाग्रेण । तालफलमिव पातयामि स्कन्धमूलाच्छिरःकमलम् ? ॥ ३६ ॥
किन्तु न युक्तमेतज्जिनवरपुरतो विरोधकरणं मे । यदिह परस्परमत्सरगता अपि जीवा उपशमन्ति ॥ ३७ ॥
तथा हि -
यत्र नताखण्डलमौलिमण्डलो महितलं समालीनाति । भगवान् भवान्तभयभ्रमद्भविकनिस्तारणसमर्थः ॥ ३८ ॥
तत्रोपशमन्ति वैराणामन्योन्यविरोधिसर्वजीवानाम् । पूर्वीकृतानामपि भावानां सम्भवो भवति न कदापि ॥ ३९ ॥
तस्मात्तिष्ठत्वेष दुष्टो निकृष्टकुष्ठाभिभूतः । अत्र स्थाने तथा करोतु यथेच्छमपि चेष्टाः ॥ ४० ॥
यदि पुनरेष भविष्यति विनिर्गतः समवसरणबहिरिति । तदा नूनमविनयफलं दातव्यं मे स्वयं चैव ॥ ४१ ॥
समयान्तरे क्षुते मुनिपतिना म्रियस्व स नरो भणति । नरपतिना पुनः क्षुते जीव सुचिरं त्वं देव ! ॥ ४२ ॥
अभयेन पुनः क्षुते जल्पति स म्रियस्व त्वमसि जीव वा । मा जीव मा म्रियस्व वा कृतक्षुते कालसुकरिके ॥ ४३ ॥

---

१. कयछीए –रं० ।

तं वयणं सोऊणं जिणिंद ! मा जीवसु त्ति खर-फरुसं । घयसित्तजलणपुंजो व्व नरवई कोवपज्जलिओ ॥४४॥
तस्सुवरिअक्खिसंकोयसन्निया अंगरक्ख नियपुरिसा । जइ एस कह वि कुट्ठी उट्ठइ तत्तो गहेयव्वो ॥४५॥
धम्मकहापज्जंते पणमित्ता मुणिवरिंदपयकमलं । सो निस्सारसरीरो निस्सरिओ ताण पच्चक्खं ॥४६॥
ते वि हु तमणु विलग्गा विणिग्गया तस्स धरिसणनिमित्तं । अवलोइऊण ते गहणमुज्जए सो वि किं कुणई ? ॥४७॥
अंगीकयफारफुरंतजच्चतवणीयभासुरसरीरो । वरमउड-कुंडलधरो उप्पइओ गयणमग्गेण ॥४८॥
वलिया विलक्खचित्ता चित्ताउहकलियकरयला सुहडा । संपत्ता विम्हयसहियमाणसा रायपासम्मि ॥४९॥
अग्गेसरेण तेसिं कहियं सो झत्ति नियय्तेएण । तिरियंतो देवपहं, देवपहं देव ! उप्पइओ ॥५०॥
अहह अहो ! अच्छरियं पेच्छह भणिऊण चिंतए राया । ता किं असुरो एसो ? विज्जासिद्धो ? सुरो किं वा ? ॥५१॥
किं मे संसयकरणेण ? संसयं जयगुरुं पपुच्छेमि । हत्थत्थकंकणाणं किं कज्जं दप्पणेणऽहवा ? ॥५२॥
भणइ निवो जयसामिय ! को एस नरो ? किमेत्थ संपत्तो ? । किं वा एयस्स तणू अभिभूया कोढरूवेण ? ॥५३॥
सोहम्मसुरो एसो भणइ जिणो जंपई निवो नाह ! । देवत्तं जह पत्तं इमिणा तं सामि ! साहेसु ॥५४॥
आयन्नसु[1] भणइ जिणो अत्थि इहं सुरघरेहिं संकिन्ना । वच्छाजणवयमज्झे कोसंबी नाम नयरि त्ति ॥५५॥
असरिसफुरंतविक्कमअस्संखअणीयकलियरज्जो वि । नरनाहसयाणीओ तत्थऽत्थि समग्गगुणनिलओ ॥५६॥

तद्वचनं श्रुत्वा जिनेन्द्र ! मा जीवेति खर-परुषम् । घृतसिक्तज्वलनपुञ्ज इव नरपतिः कोपप्रज्वलितः ॥ ४४ ॥
तस्योपर्यक्षिसंकोचसंज्ञीका अङ्गरक्षनिजपुरुषाः । यद्येष कथमपि कुष्ठी उत्तिष्ठति ततो गृहीतव्यः ॥ ४५ ॥
धर्मकथापर्यन्ते प्रणम्य मुनिवरेन्द्रपदकमलम् । स निःसारशरीरो निःसृतस्तेषां प्रत्यक्षम् ॥ ४६ ॥
ते अपि खलु तमनुविलग्ना विनिर्गतास्तस्य धर्षणनिमित्तम् । अवलोक्य तान् ग्रहणोद्यतान् सोऽपि किं करोति ? ॥ ४७ ॥
अङ्गीकृतस्फारस्फुरज्जात्यतपनीयभासुरशरीरः । वरमुकुटकुण्डलधर उत्पतितो गगनमार्गेण ॥ ४८ ॥
वलिता विलक्षचित्ताश्चित्रायुधकलितकरतलाः सुभटाः । सम्प्राप्ता विस्मयसहितमानसा राजपार्श्वे ॥ ४९ ॥
अग्रेसरेण तेषां कथितं स शीघ्रं निजतेजसा । तीर्यन्देवपथं, देवपथं देव ! उत्पतितः ॥ ५० ॥
अहह अहो ! आश्चर्यं पश्यत भणित्वा चिन्तयति राजा । ततः किमसुर एष ? विद्यासिद्धः ? सुरः किं वा ? ॥ ५१ ॥
किं मे संशयकरणेन ? संशयं जगद्गुरुं प्रपृच्छामि । हस्तस्थकङ्कणानां किं कार्यं दर्पणेनाथवा ? ॥ ५२ ॥
भणति नृपो जगत्स्वामिन् ! क एष नरः ? किमत्र सम्प्राप्त ? । किं वेतस्य तनूरभिभूता कुष्ठरुपेण ? ॥ ५३ ॥
सौधर्मसुर एष भणति जिनो जल्पति नृपो नाथ ! । देवत्वं यथा प्राप्तमनेन तत्स्वामिन् ! कथय ॥ ५४ ॥
आकर्णय भणति जिनोऽस्तीह सुरगृहैः संकीर्णा । वत्साजनपदमध्ये कोशाम्बी नाम नगरीति ॥ ५५ ॥
असदृशस्फुरद्विक्रमासङ्ख्यानीककलितराज्योऽपि । नरनाथशतानीकस्तत्रास्ति समग्रगुणनिलयः ॥ ५६ ॥

---

१. ओइन्नसु –रं० ।

ताए पुरीए निवसइ दारिद्दसहोयरो दिओ एक्को । विन्नाण-नाण-गुणरयणवज्जिओ सेदुओ नाम ॥५७॥
समरूव-गुणा तस्सऽत्थि गेहिणी बंभणी विणयकलिया । अणुसरिसो संजोगो सच्चविओ जीए भवणम्मि ॥५८॥
तीए समं विसयसुहं अणुभुंजंतस्स जंति दियहाइं । तस्स पुरिमज्झकणभिक्खवित्तिकरणेक्कचित्तस्स ॥५९॥
अह अन्नया कयाई वेलामासे पवड्ढमाणम्मि । भणिओ य बंभणो बंभणीए हक्कारिउं एवं ॥६०॥
मम गब्भपसवसमए पओयणं घय-गुडेण भावि त्ति । ता एयं कत्तोच्चिय ठाणाओ आणसु तमिन्हिं ॥६१॥
अह भणइ दिओ मम मंदिरम्मि वित्तं वराडयामेत्तं । अवि नत्थि कहं होही तयभावे वंछिओ अत्थो ? ॥६२॥
इय चिंता(भर)घणपवणपूरपेरिज्जमाणमणरुक्खो । भणिओ कंताए पसन्नकंतवयणाए सो एवं ॥६३॥
गंतूण महारायं सपसायं कुणसु जेण सेवाए । काही तुट्ठो दारिद्दकंदरुक्खक्खयं खिप्पं ॥६४॥
जंपइ विप्पो नरवइसेवाए मज्झ कोसलं नत्थि । साहसु तुमं पि सुंदरि ! जं कायव्वं मए एत्तो ॥६५॥
तो बंभणीए भणीओ घेत्तुं कुसुमाणि मलयमज्झाओ । गंतूण सीहवारं नरवइणो तं समच्चेसु ॥६६॥
अणुदियहं तुह भत्तिं दट्ठूण सुनिच्चलं नरवरिंदो । करुणामयमयरहरो पूरिस्सि वंछियं अत्थं ॥६७॥
नवरं जया नरिंदो भणइ जहा भद्द ! तं वरं वरसु । पुच्छित्तु मं महायस ! मग्गेयव्वो वरो तइया ॥६८॥
एवं ति मन्निऊणं पभायसमयम्मि गोहलीपुव्वं । कुसुमेहि सीहवारं पइदियहं पूयए सो उ ॥६९॥
खीणम्मि लाभविग्घे दट्ठूणं तस्स निच्चलं भत्तिं । हक्कारिउमाह निवो मग्गसु तं देमि तुट्ठो हं ॥७०॥

तस्यां पूर्यां निवसति दारिद्रसहोदरो द्विज एकः । विज्ञान-ज्ञान-गुणरत्नवर्जितः सेदुको नाम ॥ ५७ ॥
समरुप-गुणा तस्यास्ति गृहिणी ब्राह्मणी विनयकलिता । अनुसदृशः संयोगो दृष्टो यस्या भवने ॥ ५८ ॥
तया समं विषयसुखमनुभुञ्जतो यान्ति दिवसानि । तस्य पुरिमध्यकणभिक्षावृत्तिकरणैकचितस्य ॥ ५९ ॥
अथान्यदा कदाचिद्वेलामासे प्रवर्धमाने । भणितश्च ब्राह्मणो बाह्मण्याऽऽकार्येवम् ॥ ६० ॥
मम गर्भप्रसवसमये प्रयोजनं घृत-गुडेन भावीति । तत एतत्कुतस्त्य स्थानादानय त्वमिदानीम् ॥ ६१ ॥
अथ भणति द्विजो मम मन्दिरे वित्तं वराटकमात्रम् । अपि नास्ति कथं भविष्यति तदभावे वाञ्छितोऽर्थः ? ॥ ६२ ॥
इति चिन्ता[भर]घनपवनपूरप्रेर्यमाणमनोवृक्षः । भणितः कान्तया प्रसन्नकान्तवदनया स एवम् ॥ ६३ ॥
गत्वा महाराजं सप्रसादं कुरु येन सेवया । करिष्यति तुष्टो दारिद्रकन्दवृक्षक्षयं क्षिप्रम् ॥ ६४ ॥
जल्पति विप्रो नरपतिसेवायां मम कौशलं नास्ति । कथय त्वमपि सुन्दरि ! यत्कर्तव्यं मयेतः ॥ ६५ ॥
तदा बाह्मण्या भणितो गृहीत्वा कुसुमानि मलयमध्यात् । गत्वा सिंहद्वारं नरपतेस्तं समर्चय ॥ ६६ ॥
अनुदिवसं तव भक्तिं दृष्ट्वा सुनिश्चलां नरवरेन्द्रः । करुणामृतमकराकरः पूरिष्यति वाञ्छितमर्थम् ॥ ६७ ॥
नवरं यदा नरेन्द्रो भणति यथा भद्र ! त्वं वरं वृणु । पृष्ट्वा मां महायश ! मार्गितव्यो वरस्तदा ॥ ६८ ॥
एवमिति मत्वा प्रभातसमये गोहलीपूर्वम् । कुसुमैः सिंहद्वारं प्रतिदिवसं पूजयति स तु ॥ ६९ ॥
क्षीणे लाभविघ्ने दृष्ट्वा तस्य निश्चलां भक्तिम् । आकार्याह नृपो मार्गय त्वं ददामि तुष्टोऽहम् ॥ ७० ॥

किं देसो तुह दिज्जउ ? अन्नं वा हिययवंछियं भद्द ! । सो भणइ भट्टिणी पुच्छिऊण नरनाह ! मग्गिस्सं ॥७१॥
गंतूण बंभणीए निवेइयं अज्ज मह निवो तुट्ठो । तो कहसु तुमं जं किंचि पत्थिवं तत्थ पत्थेमि ॥७२॥
तो बंभणीए भणिओ भोयणमग्गासणम्मि मग्गेसु । दीणारदक्खिणावि य कन्नुस्सारं च पइविदसं ॥७३॥
गंतूणऽग्गासण-भोयणाइ जं मग्गिओ निवो तेण । मग्गियमइथोवं भद्द किं तए ? पभणिओ अहवा ॥७४॥
जो जत्तियस्स अत्थस्स भायणं सो हु तत्तियं लहइ । इय चिंतिऊण रन्ना पडिवन्नं तस्स तं चेव ॥७५॥
तं कुव्वंतं दट्ठुं नरनाहऽब्भासवत्तिणो अन्ने । चिंतंति कुणइ देवो महापसायं दियस्स जओ ॥७६॥
तो अम्हेवि य एयं भोयण-सयणा-ऽऽसणेहिं पूएमो । पासट्ठिएहिं रन्नो पओयणं जायए जेण ॥७७॥
इय चिंतिऊण ते वि हु नियगेहे भोयणं निमंतेउं । दीणार-वत्थजुयलं ज दक्खिणाए पयच्छंति ॥७८॥
सो [१]तारिसलाभाओ संजाओ रिद्धिसंजुओ अइरा । पुत्ताइसंतईए वि किमवि विद्धिं समणुपत्तो ॥७९॥
एवं दक्खिणलोभा गिहे गिहे उव्वमित्तु भुंजंतो । कोढेण समभिभूओ तिव्वेणमजिण्णसब्भावा ॥८०॥
पुव्वं व तह वि रन्नो भोयणमग्गासणे ठिओ कुणइ । परिसिडियंगुलि-नासाविवरो निस्संकिओ संतो ॥८१॥
दट्ठूण तारिसं तं भयाउ मंतीहिं पभणिओ राया । एसो हु महारोगो वाढं संजरणसीलो त्ति ॥८२॥
तो वारिज्जउ एसो भोयणमग्गासणम्मि कुव्वंतो । एयट्ठाणे पुत्ताण को वि ठाविज्जए जोग्गो ॥८३॥

किं देशस्तव दीयता ? मन्यं वा हृदयवाञ्छितं भद्र ! । स भणति भट्टिनीं पृष्ट्वा नरनाथ ! मार्गयिष्यामि ॥ ७१ ॥
गत्वा बाह्मण्या निवेदितमद्य मम नृपस्तुष्टः । ततः कथय त्वं यत्किंचित्पार्थिवं[२] तत्र प्रार्थयामि ॥ ७२ ॥
तदा बाह्मण्या भणितो भोजनमग्रासने मार्गय । दीनारदक्षिणापि च कर्णोत्सारं च प्रतिदिवसम् ॥ ७३ ॥
गत्वाग्रासन-भोजनानि यन्मार्गितोनृपस्तेन । मार्गितमतिस्तोकं भद्र किं त्वया ? प्रभणितोऽथवा ॥ ७४ ॥
यो यावतोऽर्थस्य भाजनं स खलु तावन्तं लभते । इति चिन्तयित्वा राज्ञा प्रतिपन्नं तस्य तदेव ॥ ७५ ॥
तं कुर्वन्तं दृष्ट्वा नरनाथाभ्यासवर्त्तिनोऽन्ये । चिन्तयन्ति करोति देवो महाप्रसादं द्विजस्य यतः ॥ ७६ ॥
तदा वयमपि चैनं भोजन-शयना-ऽऽसनैः पूजयामः । पार्श्वस्थितै राज्ञः प्रयोजनं जायते येन ॥ ७७ ॥
इति चिन्तयित्वा तेऽपि खलु निजगृहे भोजनं निमन्त्र्य । दीनार-वस्त्रयुगलं च दक्षिणायां प्रयच्छन्ति ॥ ७८ ॥
ततस्तादृशलाभात्सञ्जातऋद्धिसंयुक्तोऽचिरात् । पुत्रादिसन्ततयापि किमपि वृद्धिसमनुप्राप्तः ॥ ७९ ॥
एवं दक्षिणालोभाद्गृहे गृहे उद्वम्य भुञ्जानः । कुष्टेन समभिभूतस्तीव्रेणाजीर्णस्वभावात् ॥ ८० ॥
पूर्वमिव तथापि राज्ञो भोजनमग्रासने स्थितः करोति । परिशटिताङ्गुलि-नाशाविवरो निःशङ्कितः सन् ॥ ८१ ॥
दृष्ट्वा तादृशं तं भयान्मन्त्रिभिः प्रणमितो राजा । एष खलु महारोगो गाढं सञ्चरणशील इति ॥ ८२ ॥
ततो वार्यतामेष भोजनमग्रासने कुर्वन् । एतत्स्थाने पुत्राणां कोऽपि स्थाप्यते योग्यः ॥ ८३ ॥

---

१. तारिसभावाओ –रं० । २. राजानम् इत्यर्थः ।

पडिवन्ने रन्ना एवमत्थु भणिओ स मंतिवग्गेण । पुत्तेण तुज्झ निवमंदिरम्मि भोत्तव्वमेत्ताहे ॥८४॥
तेणावि नियययपुत्तो पट्ठविओ भोयणाइकज्जम्मि । चिट्ठइ उव्विग्गमणो रोगक्कंतो सयं तु गिहे ॥८५॥
वड्ढंते पुण रोगे लज्जंतेहिं सुएहिं तस्स वई । काराविउं कुडीरं सुन्हाओ तं च दट्ठूणं ॥८६॥
थुक्कंति भणंतस्स वि न चेव वयणं कुणंति गासं पि । दुरट्ठियडुंबस्स व छाइयनासा पयच्छंति ॥८७॥
चिंतइ सो नियचित्ते मज्झ पसाएण एरिसा रिद्धी । संपत्ता जेहि पुणो वि चिट्ठियं तेसिमेरिसयं ॥८८॥
पेच्छ अहो ! निल्लज्जा पुत्ता मामवि परिब्भवंति सया । ता नूणमविणयफलं सिरम्मि पाडेमि एयाणं ॥८९॥
इय चिंतिऊण भणिया निव्विन्नो जीवियस्स हं पुत्ता ! । काऊण कुलायारं वंछामि सजीवियं मोत्तुं ॥९०॥
तं सोउं जइ जीयं छड्डइ सिग्घं तओ भवे लट्ठं । इय हिट्ठमणा पभणिंति ताय ! जं भणसि तं करिमो ॥९१॥
जंपइ पुत्ता ! गोत्ते अम्ह कमो एरिसो सबंधूणं । जं मंतहुणियछागो दायव्वो मरणकामेहिं ॥९२॥
तो आणित्तु समप्पह पसुमेगं मज्झ सुंदरावयवं । जेणऽप्पणो हियत्थं करेमि वियरिय सबंधूणं ॥९३॥
आणित्तु तेहिं बद्धो तस्स कुडीरम्मि छगलगो बलवं । विप्पो वि सरीरमलं उव्वट्टिय भोयणेण समं ॥९४॥
पइवासरं पयच्छइ मलस्स संतेणं थोवकालेण । पडिसडियरोमराई संजाओ तारिसो चेव ॥९५॥
नाउं सव्वंगेसुं विप्पो रोगं पसुम्मि संकंतं । हणिऊण तओ पच्छा समप्पिओ नियययपुत्ताणं ॥९६॥
अमुणियतच्चेट्ठेहिं भुत्ते तेहिं पसुम्मि सो भणइ । अहयं कत्थइ तित्थे छड्डिस्सं जीवियं वच्छा ॥९७॥

प्रतिपन्ने राज्ञैवमस्तु भणितः स मन्त्रिवर्गेण । पुत्रेण तव नृपमन्दिरे भोक्तव्यमिदानीम् ॥ ८४ ॥
तेनापि निजपुत्रः प्रस्थापितो भोजनादिकार्ये । तिष्ठत्युद्विग्नमना रोगाक्रान्तः स्वयं तु गृहे ॥ ८५ ॥
वर्धमाने पुना रोगे लज्जमानैः सुतैस्तस्य वै । कारयित्वा कुटीरं स्नुषास्तं च दृष्ट्वा ॥ ८६ ॥
निष्ठिवन्ति भणतोऽपि न चैव वचनं कुर्वन्ति ग्रासमपि । दुरस्थितडुम्बस्येव छादितनासाः प्रयच्छन्ति ॥ ८७ ॥
चिन्तयति स निजकचिते मम प्रसादेनेदृशार्द्धिः । सम्प्राप्ता यैः पुनरपि चेष्टितं तेषामिदृशकम् ॥ ८८ ॥
पश्याहो ! निर्लज्जाः पुत्रा ममापि परिभवन्ति सदा । ततो नूनमविनयफलं शिरसि पातयाम्येतेषाम् ॥ ८९ ॥
इति चिन्तयित्वा भणिता निर्विण्णो जीवितस्याहं पुत्राः ! । कृत्वा कुलाचारं वाञ्छामि स्वजीवितं मोक्तुम् ॥ ९० ॥
तत् श्रुत्वा यदि जीवं मुञ्चति शीघ्रं ततो भवेत् सुन्दरम् । इति हृष्टमनसः प्रणमन्ति तात ! यद्भणसि तत्कुर्मः ॥ ९१ ॥
जल्पति पुत्राः ! गोत्रे ऽस्मत्क्रम ईदृशः स्वबन्धूनाम् । यन्मन्त्रहुतछागो दातव्यो मरणकामैः ॥ ९२ ॥
तत आनीय समर्पयत पशुमेकं मम सुन्दरावयवम् । येनात्मनो हितार्थं करोमि वितीर्य स्वबन्धूनाम् ॥ ९३ ॥
आनीय तै र्बद्धस्तस्य कुटीरे छगलको बलवान् । विप्रोऽपि शरीरमलमुद्वर्त्य भोजनेन समम् ॥ ९४ ॥
प्रतिवासरं प्रयच्छति मलस्य सता स्तोककालेन । प्रतिसटितरोमराजी सञ्जातस्तादृशश्चैव ॥ ९५ ॥
ज्ञात्वा सर्वाङ्गेषु विप्रो रोगं पशौ सङ्क्रान्तम् । हत्वा ततः पश्चात्समर्पितो निजकपुत्राणाम् ॥ ९६ ॥
अज्ञाततच्चेष्टै र्भुक्ते तैः पशौ स भणति । अहं कुत्रचित्तीर्थे त्यक्ष्यामि जीवितं वत्साः ! ॥ ९७ ॥

जेण पुणो न सरीरं संजायइ मज्झ एरिसं कह वि । इय भणिऊणं गेहाओ निग्गाओ हिट्ठचित्तो सो ॥९८॥
गच्छंतो य पविट्ठो कंतारं अग्गमहिसिसंकिन्नं । करि-सीहदारहरिकमलसंकुलं रायभवणं व ॥९९॥
तत्थ य हिंडंतेणं तेणं तिसिएण रन्नमज्झम्मि । दिट्ठो अइदीहदहो बहुतरुछन्नप्पएसम्मि ॥१००॥
तीरट्ठियतरुनिवडियफल-पत्त-पसूणएहिं जत्थ जले । संजायं काढियकत्थसन्निमं गिम्हतावेण ॥१०१॥
तं लद्धुं उल्लसिओ निहिलाभेणं दरिद्दपुरिसो व्व । तण्हावोच्छेयकए पीयं अह पाणियं तेण ॥१०२॥
जह जह सो पियइ जलं तह तह संजायए विरेओ से । सद्धिं किमीहिं तो तेण थोवदिवसेहिं संजायं ॥१०३॥
ओसहसारिच्छेणं तस्स सरीरं पुणन्नवावयवं । दट्ठुं सदेहसंपयमह चिंतइ नियमणे एयं ॥१०४॥
एयं देहस्स सिरिं गंतुं दरिसेमि नियपुत्ताणं । पेच्छमि जारिसी तेसि संपयं दुट्ठबुद्धीणं ॥१०५॥
इय चिंतिऊण पत्तो पुरीजणेणं स पच्चभिन्नाओ । पुच्छंति तुज्झ कुट्ठं अवणीय केण अइभीमं ? ॥१०६॥
सो जंपइ देवीए वणे समोलग्गियाए तुट्ठाए । एसो मज्झं रोगो अवहरिओ थेवदिवसेहिं ॥१०७॥
सलहिज्जंतो नयरीजणेण पत्तो गिहं सुए दट्ठुं । जंपि अणूहवह फलं अविणयतरुणो मह कयस्स ॥१०८॥
किं ताय ! तए विहियं एयं अम्हाण ? भणइ सो बाढं । पुत्ता भणंति हा ताय ! किं ते एरिसं विहियं ? ॥१०९॥
जं अम्हमवत्थमिमं काऊण गओ तमेरिसं पत्तो । देहस्स सिरिं ता किं न लज्जिओ जणयभावस्स ? ॥११०॥
तं ताय ! जुत्तिजुत्तं न तुम्हमेयं जओ उ दुवियायं । होइ परं दुमाया एस पसिद्धी जणे पयडा ॥१११॥

येन पुन र्न शरीरं सञ्जायते ममेदृशं कथमपि । इति भणित्वा गृहान्निर्गतो हृष्टचित्तः सः ॥ ९८ ॥
गच्छंश्च प्रविष्टः कान्तारमग्रमहिषिसङ्कीर्णम् । करि-शिखादारहरिकमलसङ्कुलं राजभवनं च ॥ ९९ ॥
तत्र च हिण्डता तेन तृषितेनारण्यमध्ये । दृष्टोऽतिदीर्घद्रहो बहुतरूच्छन्नप्रदेशे ॥ १०० ॥
तीरस्थिततरुनिपतित फल-पत्र-प्रसुनकैर्यत्र जले । सञ्जातं क्वथितक्वथसन्निभं ग्रीष्मतापेन ॥ १०१ ॥
तल्लब्ध्वोल्लसितो निधिलाभेन दरिद्रपुरुष इव । तृष्णाव्युच्छेदकृते पीतमथ पानीयं तेन ॥ १०२ ॥
यथा यथा स पिबतिजलं तथा तथा सञ्जायते विरेकस्तस्य । सार्धं कृमिभिस्ततस्तेन स्तोकदिवसैः सञ्जातम् ॥ १०३ ॥
औषधसदृशेन तस्य शरीरं पूर्णर्नवावयवम् । दृष्ट्वा स्वदेहसम्पदमथ चिन्तयति निजमनस्येतत् ॥ १०४ ॥
एनां देहस्य श्रियं गत्वा दर्शयामि निजपुत्राणाम् । पश्यामि यादृशी तेषां सम्प्रदुष्टबुद्धिनाम् ॥ १०५ ॥
इति चिन्तयित्वा प्राप्तः पुरीजनेन स प्रत्यभिज्ञातः । पृच्छन्ति तव कुष्टमपनीतं केनातिभीमम् ? ॥ १०६ ॥
स जल्पति देव्या वने समवलगितया तुष्टया । एष मम रोगोऽपहृतः स्तोकदिवसैः ॥ १०७ ॥
श्लाध्यमानो नगरीजनेन प्राप्तो गृहं सुतान् दृष्ट्वा । जल्पत्यनुभवत फलमविनयतरो र्मम कृतस्य ॥ १०८ ॥
किं तात ! त्वया विहितमेतदस्माकं ? भणति स बाढम् । पुत्रा भणन्ति हा तात ! किं त्वयेदृशं विहितम् ? ॥ १०९ ॥
यदस्माकमवस्थामिमां कृत्वा गतस्त्वमिदृशां प्राप्तः । देहस्य श्रियं तावत्कि न लज्जितो जनकभावात् ? ॥ ११० ॥
तत् तात ! युक्तियुक्तं न तवैतद्यतस्तु दुर्वितानम् । भवति परं न दुर्मायैषा प्रसिद्धि र्जने प्रकटा ॥ १११ ॥

सो भणइ पुरा तुम्हे वि लज्जिया जं न पुत्तभावस्स । ता इन्हिमविणयफलं इमिणा रूवेण अणुहवह ॥११२॥
विन्नायवइयरेणं हीलिज्जंतो स नयरिलोएणं । नीहरिओ नयरीओ संपत्तो नयरमेयं ति ॥११३॥
पोलिदुवारे चिट्ठइ चंडीए मंदिरम्मि जावेसो । एत्थंरम्मि अम्हे समागया एत्थ विहरंता ॥११४॥
पत्तो तुमं पि वंदणनिमित्तमम्हं पओलिपाहरिओ । संपत्तो सो वि इमं संठविउं तत्थ रक्खत्थं ॥११५॥
अच्चंत भुक्खिओ हं भणिओ विप्पेण जमिह नेवेज्जं । दुग्गापुरओ तुमए तं भोत्तव्वं ति भणिऊण ॥११६॥
जीवियनिरवेक्खेणं तेणं दुलहं लभित्तु आहारं । कंठपमाणे भुत्ते पाउब्भूया तिसा गिम्हे ॥११७॥
नन्नगओ भीओ सो चिन्तइ चित्तम्मि एरिसं धन्ना । जलजीवा एमाई अट्टज्झाणट्ठिओ मरिउं ॥११८॥
निव्वत्तिय तिरियाउयमिहेव वावीए दद्दुरो जाओ । अह पुणरवि विहरंता एत्थेव वयं समोसरिया ॥११९॥
नयरजणा मम वंदणकज्जेण विणिग्गया विभूईए । गच्छंताणं तेसिं एसो मम संकहं सुच्चा[1] ॥१२०॥
तेणं चित्ते चिंतियम्हो ! मए एरिसो निसुयपुव्वो । कत्थइ सद्दो बहुविहमीहाऽपोहं कुणंतस्स ॥१२१॥
जायं जाईसरणं एत्थेव समागओ महावीरो । जस्स समीवे पत्तो मं मोत्तुं दारपाहरिओ ॥१२२॥
तो हं गंतुं वंदेमि पज्जुवासेमि हिट्ठचित्तो सो । नीहरिओ वावीओ सालूरो सुद्धपरिणामो ॥१२३॥
वच्चंतो मग्गम्मि तुह तुरयखुरप्पहारनिहओ सो । मरिउं विसुद्धचित्तो सोहम्मे दद्दुरंकेसु ॥१२४॥

स भणति पुरा यूयमपि लज्जिता यन्न पुत्रभावात् । तदिदानीमविनयफलमनेन रुपेणानुभवत ॥ ११२ ॥
विज्ञातव्यतीकरेण हील्यमानः स नगरिलोकेन । निःसृतो नगर्याः सम्प्राप्तो नगरमेतदिति ॥ ११३ ॥
प्रतोलीद्वारे तिष्ठति चण्डया मन्दिरे यावदेषः । अत्रान्तरे वयं समागता अत्र विहरन्तः ॥ ११४ ॥
प्राप्तस्त्वमपि वन्दननिमितमस्माकं प्रतोलीप्राहरिकः । सम्प्राप्तः सोऽपीमं संस्थाप्य तत्र रक्षार्थम् ॥ ११५ ॥
अत्यंतं बुभुक्षितोऽहं भणितो विप्रेण यदिह नैवेद्यम् । दुर्गापुरतस्त्वया तद्भोक्तव्यमिति भणित्वा ॥ ११६ ॥
जीवितनिरपेक्षेण तेन दुर्लभं लब्ध्वाऽऽहारम् । कण्ठप्रमाणे भुङ्क्ते प्रादुर्भूता तृषा ग्रीष्मे ॥ ११७ ॥
नान्यगतो भीतः स चिन्तयति चित्ते ईदृशं धन्याः । जलजीवा एवमादया आर्तध्यानस्थितो मृत्वा ॥ ११८ ॥
निर्वत्य तिर्यगायुरिहैव वाप्यां दर्दुरको जातः । अथ पुनरपि विहरन्तोऽत्रैव वयं समवसृताः ॥ ११९ ॥
नगरजना मम वन्दनकार्येण विनिर्गता विभूत्या । गच्छतां तेषामेष मम सङ्कथां श्रुत्वा ॥ १२० ॥
तेन चित्ते चिन्तितमहो ! मयेदृशो निःश्रुतपूर्वः । कुत्रचिच्छब्दो बहुविधमिहाऽपोहं कुर्वन्तः ॥ १२१ ॥
जातं जातिस्मरणमत्रैव समागतो महावीरः । यस्य समीपे प्राप्तो मां मुक्त्वा द्वारप्राहरिकः ॥ १२२ ॥
ततोऽहं गत्वा वन्दे पर्युपासे हृष्टचित्तः सः । निःसृतो वाप्याः सालूरः शुद्धपरिणामः ॥ १२३ ॥
व्रजन्मार्गे तव तुरगक्षुरप्रहारनिहतः सः । मृत्वा विशुद्धचित्तः सौधर्मे दर्दुरांकेषु ॥ १२४ ॥

---

१. सोच्चा –रं० ।

देवेसु समुप्पन्नो इओ य सोहम्मसुरसहामज्झे । सहसक्खो संभंतो तुज्झ गुणुक्कित्तणं कुणइ ॥१२५॥
थिरभावो सम्मत्ते अहो ! अहो ! सेणियस्स नरवइणो । न हु चालिज्जइ तत्तो सुरेहिं मेरु व्व पवणेहिं ॥१२६॥
एसो असद्दहंतो तंवयणं वज्जपाणिणा भणियं । तुज्झ परिक्खनिमित्तं एरिसरूवेण संपत्तो ॥१२७॥
जं सिंचइ पूइरसेण मम पए दिट्ठिविब्भमो तुज्झ । गोसीसचंदणेणं आलिंपइ सुरवरो एसो ॥१२८॥
जंपइ राया विन्नायतियसनिस्सेसवइयरो इमिणा । आसीवाओ पहु ! किं निमित्त एयारिसो दिन्नो ? ॥१२९॥
भणइ जिणो संसारं मोत्तुमसारं तुमं सिवं वच्च । एएण हेउणा मं पडुच्च मा जीव इइ वुत्तं ॥१३०॥
तुह जीवंतस्स गुणो मयस्स नरयम्मि चेवं[1] उववाओ । तेण निमित्तेणिमिणा भणियं तं जीव सुइरं ति ॥१३१॥
अभयकुमारो एत्थं जीवंतो गुणगणं समज्जिणइ । देवेसु मओ होही तम्हा दोसु वि अणुन्नाओ ॥१३२॥
चिट्ठंतो इह बहुयं पावं संचिणइ कालसूयरिओ । अपइट्ठाणम्मि मओ गुरुकम्मो नारओ होही ॥१३३॥
एएण कारणेणं पडिसिद्धो उभयपक्खओ चेव । अह निसुणिउं नरिंदो स अत्तणो नरयगइगमणं ॥१३४॥
जंपइ राया दुग्गइगुरुकुवपडंतसत्तनिवहस्स । उद्धरणनिविडतररज्जुसन्निभे सामिसालम्मि ॥१३५॥
सामिय ! किं मह होही तुमम्मि संते अहोगइनिवाओ ? । भयवंतेण वि भणियं अधिइं मा कुणसु निव ! जेणं ॥१३६॥
पुव्वं चिय वद्धाउ गंतव्वमओ अवस्स नरयम्मि । भवियव्वयानिओगो न अन्नहा तीरए काउं ॥१३७॥

देवेषु समुत्पन्न इतश्च सौधर्मसुरसभामध्ये । सहस्राक्षः सम्भ्रान्तस्तव गुणकीर्तनं करोति ॥ १२५ ॥
स्थिरभावः सम्यक्त्वमहो ! अहो ! श्रेणिकस्य नरपतेः । न खलु चाल्यते ततः सुरै र्मेरुरिव पवनैः ॥ १२६ ॥
एषोऽश्रद्धंस्तद्वचनं वज्रपाणिना भणितम् । तव परीक्षानिमित्तमीदृशरुपेण सम्प्राप्तः ॥ १२७ ॥
यत् सिञ्चति पूतिरसेन मम पदे दृष्टिविभ्रमस्त्वं । गोशीर्ष चन्दनेनालिम्पति सुरवर एषः ॥ १२८ ॥
जल्पति राजा विज्ञातत्रिदशनिःशेषव्यतीकरोऽनेन । आशीर्वादः प्रभो ! किं निमितमेतादृशो दत्तः ? ॥ १२९ ॥
भणति जिनः संसारं भुक्त्वासारं त्वं शिवं व्रज । एतेन हेतुना मां प्रतीत्य मा जीवेत्युक्तम् ॥ १३० ॥
तव जीवतो गुणो मृतस्य नरके चैवोपपातः । तेन निमितेनानेन भणितं त्वं जीव सुचिरमिति ॥ १३१ ॥
अभयकुमारोऽत्र जीवन्गुणगणं समर्जयति । देवेषु मृतो भविष्यति तस्माद् द्वयोरप्यनुज्ञातः ॥ १३२ ॥
तिष्ठन्निह बहुपापं सञ्चिनोति कालसूकरिकः । अप्रतिष्ठाने मृतो गुरुकर्मा नारको भविष्यति ॥ १३३ ॥
एतेन कारणेन प्रतिषिद्ध उभयपक्षश्चैव । अथ निःश्रुत्य नरेन्द्रः स आत्मनो नरकगतिगमनम् ॥ १३४ ॥
जल्पति राजा दुर्गतिगुरुकूपपतत्सत्त्वनिवहस्य । उद्धरणनिबिडतररज्जुसन्निभे स्वामिशाले ॥ १३५ ॥
स्वामिन् ! किं मम भविष्यति त्वयि सत्यधोगतिनिपातः ? । भगवतापि भणितमधृतिं मा कुरु नृप ! येन ॥ १३६ ॥
पूर्वमेव बद्धायु र्गन्तव्यमतोऽवश्यं नरके । भवितव्यतानियोगो नान्यथा शक्यते कर्तुम् ॥ १३७ ॥

---

१. जेण –रं० ।

किंतु मम समसरीरो समवन्नो समगुणो य तं होसि । उस्सप्पिणीए पढमो तित्थयरो पउमनाहो त्ति ॥१३८॥
तं सोउं भणइ निवो पुलइयदेहो विसायसहिओ य । भयवं ! अत्थि उवाओ जेण न निवडामि नरयम्मि ? ॥१३९॥
जयसामिणा वि भणियं जइ भिक्खं जइजणस्स दाविहिसि । कविलाए बंभणीए हत्थेणं कालसूयरिओ ॥१४०॥
जइ मुंचइ दिणमेगं पाणिवहं ता न तुज्झ नरयगई । तो भणइ निवो एयाणि मम वसे चेव वट्टंति ॥१४१॥
अह वंदित्तु जिणिंदं चलिओ सम्मत्तनिच्चलो राया । नयराभिमुहं देवो सम्मत्तपरिक्खणनिमित्तं ॥१४२॥
सजलपएसे खुड्डुं गिन्हंतं मच्छए विउव्वेइ । तं दट्ठुं भणइ निवो भयवं ! तुमए किमारद्धं ? ॥१४३॥
जंपइ मायासाहू विक्किणिउं मच्छए महाराय ! । पाउसजलरक्खत्थं गिण्हिस्सं कंबलं एगं ॥१४४॥
भणियं रन्ना जिणसासणस्स मा कुणसु लाघवं भद्द ! । जं किंचि तुमं जंपसि तं सव्वमहं करिस्सामि ॥१४५॥
तं अविचलसम्मत्तो निवारिउं पविसई पुरं जाव । ताव विउव्वइ देवो गुव्विणियं साहुणी एगं ॥१४६॥
मग्गंतिं हट्टेसुं वराडियं पेच्छिऊण तं राया । चिंतइ चित्ते जिणसासणस्स मालिन्नमिइ गरुयं ॥१४७॥
जंपइ अज्जे ! किं लोगगरहणिज्जं तए समारद्धं ? । सा जंपइ मह एयं कम्मवसेणिरिसं जायं ॥१४८॥
होही पओयणं घय[1]-गुलेण मह राय ! पसवसमयम्मि । पइआवणमेगेगं मग्गेमि वराडियं तेण ॥१४९॥
मा भवइ लाघवं पवयणस्स जंपइ ससंकिओ राया । एहि तुमं मह भवणे तुह सव्वमहं करिस्सामि ॥१५०॥
तो नेउं नियभवणं पच्छन्ने मंदिरम्मि संठविया । पुत्तं तत्थ पसूया य साहुणी देवमायाए ॥१५१॥

किन्तु मम समशरीरः समवर्णः समगुणश्च त्वं भविष्यसि । उत्सर्पिण्यां प्रथमस्तीर्थकरः पद्मनाभ इति ॥ १३८ ॥
तत् श्रुत्वा भणति नृपः पुलकितदेहो विषादसहितश्च । भगवन्नास्त्युपायो येन न निपतामि नरके ? ॥ १३९ ॥
जगत्स्वामिनापि भणितं यदि भिक्षां यतिजनस्य दापिष्यति । कपिलाया ब्राह्मण्या हस्तेन कालसूकरिकः ॥ १४० ॥
यदि मुञ्चति दिनमेकं प्राणिवधं तदा न तव नरकगतिः । ततो भणति नृप एतौ मम वश एव वर्तेते ॥ १४१ ॥
अथ वन्दित्वा जिनेन्द्रं चलितः सम्यक्त्वनिश्चलो राजा । नगराभिमुखं देवः सम्यक्त्वपरीक्षणनिमित्तम् ॥ १४२ ॥
सजलप्रदेशे क्षुल्लकं गृह्णन्तं मत्स्यान् विकुर्वति । तद् दृष्ट्वा भणति नृपो भगवन् ! त्वया किमारब्धम् ? ॥ १४३ ॥
जल्पति मायासाधु विक्रीय मत्स्यान्महाराज ! । प्रावृङ्जलरक्षणार्थ ग्रहीष्यामि कम्बलमेकम् ॥ १४४ ॥
भणितं राज्ञा जिनशासनस्य मा कुरु लाघवं भद्र ! । यत्किञ्चित्वं जल्पसि तत्सर्वमहं करिष्यामि ॥ १४५ ॥
तमविचलसम्यक्त्वो निवार्य प्रविशति पुरं यावत् । तावद्विकुर्वति देवो गुर्विणीं साध्वीमेकाम् ॥ १४६ ॥
मार्गयन्तीं हट्टेषु वराटिकां दृष्ट्वा तां राजा । चिन्तयति चित्ते जिनशासनस्य मालिन्यमिति गुरुकम् ॥ १४७ ॥
जल्पत्यार्ये ! किं लोकगर्हणीयं त्वया समारब्धम् ? । सा जल्पति ममेतत्कर्मवशेनेदृशं जातम् ॥ १४८ ॥
भविष्यति प्रयोजनं घृत-गुडेन मम राजन् ! प्रसवसमये । प्रत्यापणमेकैकां मार्गयामि वराटिकां तेन ॥ १४९ ॥
मा भवतु लाघवं प्रवचनस्य जल्पति सशङ्कितो राजा । एहि त्वं मम भवने तव सर्वमहं करिष्यामि ॥ १५० ॥
तां नीत्वा निजभवने प्रच्छन्ने मन्दिरे संस्थापिता । पुत्रं तत्र प्रसूता च साध्वी देवमायया ॥ १५१ ॥

---

१. पयगुडेण –रं० ।

बालो रोयंतो न वि थक्कइ उच्चारयाइं कुव्वंतो । सयमेव कुणइ राया परिचिट्ठं ताण तत्थ ठिओ ॥१५२॥
पवयणलाघवरक्खत्थमुज्जुयं पवयणम्मि थिरचित्तं । नाऊण ओहिनाणेण सुरवरो तस्स पच्चक्खो ॥१५३॥
संजाओ नरवइणो मणिकिरणफुरंतकुंडलाहरणो । नियययपहानियरेणं उज्जोयंतो दिसिमुहाइं ॥१५४॥
जंपइ देवो जिणपवयणाओ अविचलियमाणसो तं सि । सोहम्मसहामज्झे सोहम्मे तियसपच्चक्खं ॥१५५॥
घणसारसियगुणावलिआवज्जियमाणसेण सुरवइणा । जारिसओ संथुणिओ तारिसओ च्चिय तुमं राय ! ॥१५६॥
अविचलसम्मत्तगुणेण रंजिओ राय ! तुज्झ तुट्ठो हं । ता गिण्ह गोलयदुगं अट्ठारसचक्कवेहं च ॥१५७॥
हारमिणं ति समप्पिय जंपइ अमरो विमं तु जो हारं । तुट्टं पुण संधिस्सइ फुडही सयहा सिरं तस्स ॥१५८॥
इय कहिऊणं रन्नो पत्तो अद्दंसणं सुरो झत्ति । राया वि चेल्लणाए हारं अप्पइ पहिट्ठमणो ॥१५९॥
देइ सुनंदाए पुणो गोलयजुयलं निएवि तं तीए । पसरियसवक्किवेहवविहुरियसुसरीरजट्ठीए[1] ॥१६०॥
किमहं कीलिस्सं बालिय व्व एएहिमिय सहासाए ? । जं पच्चक्खं दिन्नो रन्ना हारो सपत्तीए ॥१६१॥
इय ईसाणुगयाए दाणं दिन्नं जमप्पमुल्लं ति । अवमाणियाए विग्गोवियाऽहमवरोहमज्झम्मि ॥१६२॥
इय अवलंवियरोसाए तयणु विप्फुरियरुद्दभावाए । रसनियरमुव्वहंतीए फोडियं गोलयदुगं पि ॥१६३॥
पच्चासन्ने थंभे जाव तओ एक्कगाओ गोलाओ । पयडीभूओ भूगोलयाओ रविबिंबजुगमं[2] व ॥१६४॥
कुंडलजुयलं दसदिसिपसरियनवकिरिणजालसंवलियं । बीयाओ नीहरियं निद्दोसं देवदूसदुगं ॥१६५॥

बालो रुदन्नापि तिष्ठत्युच्चारकानि कुर्वन् । स्वयमेव करोति राजा परिचेष्टां तयोस्तत्र स्थितः ॥ १५२ ॥
प्रवचनलाघवरक्षणार्थमुद्यतं प्रवचने स्थिरचितम् । ज्ञात्वावाधिज्ञानेन सुरवरस्तस्य प्रत्यक्षः ॥ १५३ ॥
सज्जातो नरपते र्मणिकिरणस्फुरत्कुण्डलाभरणः । निजप्रभानिकरेणोद्योतयन् दिङ्मुखानि ॥ १५४ ॥
जल्पति देवो जिनप्रवचनादविचलितमानसस्त्वमसि । सौधर्मसभामध्ये सौधर्मे त्रिदशप्रत्यक्षम् ॥ १५५ ॥
घनसारसितगुणावल्यावर्जितमानसेन सुरपतिना । यादृशः संस्तुतस्तादृशश्चैव त्वं राजन् ! ॥ १५६ ॥
अविचलसम्यक्त्वगुणेन रञ्जितो राजन् ! तव तुष्टोऽहम् । ततो गृहाण गोलकद्विकमष्टादशचक्रवेधं च ॥ १५७ ॥
हारमिदमिति समर्प्य जल्पत्यमरोऽपीमं तु यो हारम् । त्रुटितं पुनः सन्धास्यति स्फुटिष्यति शतधा शिरस्तस्य ॥ १५८ ॥
इति कथयित्वा राज्ञः प्राप्तोऽदर्शनं सुरः शीघ्रम् । राजापि चेल्लणाया हारमर्पयति प्रहृष्टमनाः ॥ १५९ ॥
ददाति सुनन्दायै पुन र्गोलकयुगलं दृष्ट्वा तत्तया । प्रसरितशौक्यवैभवविधुरितसुशरीरयष्ट्या ॥ १६० ॥
किमहं क्रीडिष्यामि बालिकेवैतैरिति सहासया ? । यत्प्रत्यक्षं दतो राज्ञा हारः सपत्न्यै ॥ १६१ ॥
इतीर्ष्यानुगतया दानं दत्तं यदल्पमूल्यमिति । अपमानितया विगोपिताहमवरोधमध्ये ॥ १६२ ॥
इत्यवलम्बितरोषया तदनु विस्फुरितरौद्रभावया । रसनिकरमनुभवन्त्या स्कोटितं गोलकद्विकमपि ॥ १६३ ॥
प्रत्यासन्ने स्तम्भे यावत्तत एकस्माद्रोलात् । प्रकटीभूतो भूगोलकाद्रविबिम्बयुग्ममिव ॥ १६४ ॥
कुण्डलयुगलं दशदिक्प्रसरितनवकिरणजालसंवलितम् । द्वितीयान्निःसृतं निर्दोषं देवदूष्यद्विकम् ॥ १६५ ॥

---

१. वैभव । २. युग्ममिव ।

दट्ठुं ताणि सुनंदाए फुरियआणंदअमयसित्ताए । अणुभूओऽपुव्वरसो समगं तद्दिवसलाभम्मि ॥१६६॥
उल्लसियं हियएणं कवोलफलएहिं पुलइयं तह य । वयणेणं पुण वियसंतसरसकमलाइयं सहसा ॥१६७॥
उल्लसियं अंगेहिं लोयणजुयलेण किमवि वित्थरियं । रससंकरं वहंती गया सुनंदा नियावासं ॥१६८॥
अह अन्नदिणे राया कविलं हक्कारिऊणिमं भणइ । तुममज्जं साहूणं भद्दे ! भिक्खं पयच्छेहि ॥१६९॥
सा जंपइ निवपुरओ नाहं कुलखंपणं करिस्सामि । जं भिक्खं भिच्छूणं लंघित्तु कुलक्कमं देमि ॥१७०॥
वज्जरइ निवो जइ तं करेसि एयं हिरन्नकोडीओ । तो देमि तुज्झ जंपइ दासी एवं अभव्वत्ता ॥१७१॥
जइ सव्वहिरन्नमयं करेसि मं देव ! तुममिहं तुट्ठो । रुट्ठो य परवसं मं खंडाखंडिं जइ विहेसि ॥१७२॥
तो न वि करेमि एयं विन्नाए निच्छयम्मि सा मुक्का । बीयअभिग्गहकज्जे वाहरिओ कालसोयरिओ ॥१७३॥
भणियं रे ! मुंच इमं पाणिविणासं तुमं दिवसमेगं । इमिणा जीवइ सो भणइ एस पउरो जणो पउरो ॥१७४॥
रन्ना भणियं दव्वं गिण्हसु तं लक्ख-कोडिपभिईयं । नित्थरउ तुज्झ लोगो अज्जं तु निवारमीयमिणं ॥१७५॥
जा कहवि न पडिवज्जइ ता रुट्ठो पत्थिवो भणइ पुरिसे । पाविट्ठमिमं घत्तह अहोमुहं अंधकूवम्मि ॥१७६॥
पक्खित्तो सो कूवे तत्थ ठिओ महिसयाण पंच सए । मट्टियमयाण काऊण कूरचित्तो विणासेइ ॥१७७॥
रन्ना वि भुवणसामी गंतूणं पुच्छिओ जहा मज्झ । अक्खलिओ संजाओ एसो किमभिग्गहो नाह ? ॥१७८॥
भणइ जिणो निव ! एसो न पालिओऽभिग्गहो तए जेण । कूवठिएण वि तेणं विणासिया पंच महिससया ॥१७९॥

दृष्ट्वा तानि सुनन्दया स्फुरितानन्दामृतसिक्तया । अनुभूतोऽपूर्वरसः समग्रं तद्दिवसलाभे ॥ १६६ ॥
उल्लसितं हृदयेन कपोलफलकैःपुलकितं तथा च । वदनेन पुनर्विकसत्सरसकमलायितं सहसा ॥ १६७ ॥
उल्लसितमङ्गै लोर्चनयुगलेन किमपि विस्तरितम् । रससंकरं वहन्ती गता सुनन्दा निजावासम् ॥ १६८ ॥
अथान्यदिने राजा कपिलामाकार्येदं भणति । त्वमद्य साधुभ्यो भद्रे ! भिक्षां प्रयच्छ ॥ १६९ ॥
सा जल्पति नृपपुरतो नाहं कुलकलङ्कं करिष्यामि । यद् भिक्षां भिक्षूणाम् । लङ्घयित्वा कुलक्रमं दामि ॥ १७० ॥
कथयति नृपो यदि त्वं करोष्येद्धिरण्यकोट्यः । तदा दामि तुभ्यं जल्पति दास्येवमभव्यत्वात् ॥ १७१ ॥
यदि सर्वहिरण्यमयां करोषि मां देव ! त्वमिह तुष्टः । रुष्टश्च परवशां मां खण्डाखण्डिं यदि विदधासि ॥ १७२ ॥
तदा नापि करोम्येतद्विज्ञाते निश्चये सा मुक्ता । द्वितीयाभिग्रहकार्ये व्याहृतः कालसौकरिकः ॥ १७३ ॥
भणितं रे ! मुञ्चेमं प्राणिविनाशं त्वं दिवसमेकम् । अनेन जीवति स भणत्येष पौरो जनः प्रचूरः ॥ १७४ ॥
राज्ञा भणितं द्रव्यं गृहाण त्वं लक्ष-कोटिप्रभृतिकम् । निस्तरतु तव लोकोऽद्य तु निवारणीयमिदम् ॥ १७५ ॥
यावत्कथमपि न प्रतिपद्यते तावद्रुष्टः पार्थिवो भणति पुरुषान् । पापिष्ठमिमं क्षिपताधोमुखमन्धकूपे ॥ १७६ ॥
प्रक्षिप्तः स कूपे तत्र स्थितो महिषाणां पञ्चशतानि । मृन्मयानां कृत्वा क्रूरचित्तो विनाशयति ॥ १७७ ॥
राज्ञापि भुवनस्वामी गत्वा पृष्टो यथा मम । अस्खलितः सञ्जात एष किमभिग्रहो नाथ ! ? ॥ १७८ ॥
भणति जिनो नृप ! एष न पालितोऽभिग्रहस्त्वया येन । कूपस्थितेनापि तेन विनाशिताः पञ्चमहिषशताः ॥ १७९ ॥

राया विम्हिय-हियओ जंपइ कह नाह ! संभवो तत्थ । ..... रहिएणं ? ॥१८०॥
तो जंपइ मुणिनाहो पुढविमए संठवित्तु दुट्ठेण । हत्थं विहित्तु खग्गं उग्गं वावाइया तेण ॥१८१॥
नरवइणा कूवाओ तत्तो निस्सारिउं पुणो मुक्को । सविलक्खमाणसेणं च भीरुणा नरयमग्गस्स ॥१८२॥
तेहिमभव्वत्तणओ दोहि वि पडिवज्जियं न निववयणं । किं लब्भइ तिसिएहिं अमयं पाउं अपुन्नेहिं ? ॥१८३॥

॥ सेदुवकाख्यानकं समाप्तम् ॥३३॥

इदानीं नन्दाख्यानकमुच्यते । तच्चेदम्-

पासजिणथूभमहुरा महुरा भरहम्मि पुरवरी अत्थि । अमियासिया चिकिच्छ व्व गंधुजुत्ति व्व सुहवासा ॥१॥
तीए गुरुजणभत्तो निच्चं जिणपायपूयणासत्तो । निवसइ सेट्ठी नंदो नंदो व्व सदत्थसारेण ॥२॥
सो सुइआयरणरओ रायाइमहायणम्मि गोरव्वो । अवदाणदाणवसणी अहऽन्नया पच्छिमवयम्मि ॥३॥
धम्मंतरायवसओ जाओ पुन्नक्खएण तणुविहवो । नाऽऽयरइ जणो तत्तो पुत्ता वि पराभवंति तयं ॥४॥
तह वि हु सो अहिययरं जिणवंदणवसणवं जहाविहवं । खिस्संति सुया धम्मं वहुयाओ कुरुकुरायंति ॥५॥
भज्जा उण निब्भच्छइ भणइ तुमं गलरधमधमीहूओ । न मुणसि अत्थि-अणत्थि न कुणसि घरचिंतणं किं पि ॥६॥
सो उण चिंतइ एवं सव्वो वि जणो इमो सकज्जत्थी । धम्मो च्चिय जीवाणं सरणं जोहारमित्तो व्व ॥७॥
अह अन्नदिणे सो जिणहरम्मि संपूईऊण जिणवसभं । साइसयगुरुसमीवे उवउत्तो सुणइ जिणवयणं ॥८॥

राजा विस्मित-हृदयो जल्पति कथं नाथ ! सम्भवस्तत्र । ..... रहितेन ? ॥ १८० ॥
तदा जल्पति मुनिनाथः पृथिवीमयान्संस्थाप्य दुष्टेन । हस्तं विधाय खड्गमुग्रं व्यापादितास्तेन ॥ १८१ ॥
नरपतिना कूपात्ततो निस्सार्य पुन र्मुक्तः । सविलक्षमानसेन च भीरुणा नरकमार्गस्य ॥ १८२ ॥
ताभ्यामभव्यत्वेन द्वाभ्यामपि प्रतिपन्नं न नृपवचनम् । किं लभ्यते तृषितैरमृतं पातुमपुण्यैः ? ॥ १८३ ॥

॥ सेदुवकाख्यानक समाप्तम् ॥ ३३ ॥

नन्दाख्यानकम् ॥ ३४ ॥

पार्श्वजिनस्तुभमधुरा मथुरा भरते पुर्वर्यस्ति । अभिभाषिता चिकित्सेव गन्धयुक्तिरिव सुखवासा ॥ १ ॥
तस्यां गुरुजनभक्तो नित्यं जिनपादपूजासक्तः । निवसति श्रेष्ठी नन्दो नन्द इव सदर्थसारेण ॥ २ ॥
स शुच्याचरणरतो राजादिमहाजने गौरवः । अवदानदानव्यसनी अथान्यदा पश्चिमवयसि ॥ ३ ॥
धर्मान्तरायवशतो जात पुण्यक्षयेन तनुविभवः । नाचरति जनस्ततः पुत्रा अपि पराभवन्ति तकम् ॥ ४ ॥
तथापि खलु सोऽधिकतरं जिनवन्दनव्यसनवान् यथाविभवम् । खिन्सन्ति सुता धर्मं वध्वः कुरकुरायन्ति ॥ ५ ॥
भार्या पुन र्निभत्सति भणति त्वं गलरधमधमीभूतः । न जानासि अस्ति-नास्ति न करोषि गृहचिन्तनं किमपि ॥ ६ ॥
स पुनश्चिन्तयत्येवं सर्वोऽपि जनोऽयं स्वकार्यार्थी । धर्म एव जीवानां शरणं जोत्कारमित्र इव ॥ ७ ॥
अथान्यदिने स जिनगृहे संपूज्य जिनवृषभम् । सातिशयगुरुसमीप उपयुक्तः शृणोति जिनवचनम् ॥ ८ ॥

दट्ठूणं तस्स चेट्ठं धम्मथिरत्तं जणआओ सोऊणं । सुगुरूहिं तयणु सेट्ठी सायरमाभासिओ एवं ॥९॥
तुह सव्वया वि एवं धम्मखणो भद्द ! निव्वहइ एसो ? । तो वंदिऊण भणियं आमं जिण-गुरुपसायाओ ॥१०॥
किंतु ममं परिवारो न सम्ममुज्जमइ धम्मकज्जम्मि । तो कमवि गुणं नाउं अइसयनाणाओ ते गुरुणा ॥११॥
मंतं महापभावं कहिऊणं तस्स साहणोवायं । अन्नत्थ गया सो वि हु सविलंबो सगिहमणुपत्तो ॥१२॥
भणिओ य कुडुंबेणं मिलिएहिं छुहाए अज्ज मरियव्वं । न कुणसि नियववसायं दंससु धम्मप्फलं किं पि ॥१३॥
अवहेरिं काऊणं थक्को तत्तो जहुत्तदिवसम्मि । सुइभूएणं मंतो पसाहिओ तयणु सिद्धो य ॥१४॥
पत्तो य बंभसंती तस्स पभावेण भणइ वरसु वरं । तेणुत्तं तिक्कालं जिणवंदणयं करेमि अहं ॥१५॥
तो मह पूयापुव्वगजिणवंदणयस्स जं फलं होइ । एगम्मि दिणे विहियस्स संपयं पयडसु तमज्झ ॥१६॥
भणियं च तेण महरिहवेमाणियसंपयाफलं भणियं । एत्तियमेत्तस्स वि भावसारविहियस्स विहिपुव्वं ॥१७॥
ता भद्दय ! वंतरजाइस्स महं एरिसा कुओ सत्ती ? । न हि गामसामियाओ लब्भइ मंडलियसामित्तं ॥१८॥
नंदेणुत्तं देवस्स दंसणं तुज्झ सम्मदिट्ठिस्स । संजायं मह जम्हा कयकिच्चो बोहिलाभेण ॥१९॥
ता मे पओयणं नत्थि किं पि तं भद्द ! वयसु सट्ठाणं । कज्जमि समुप्पन्ने सुमरिस्समहं कुण समाहिं ॥२०॥
भणियं च तेण भवदुग्गयत्तहरणम्मि पडुपयावस्स । सम्मद्दंसणरयणस्स संभवे सव्वमवि जायं ॥२१॥

दृष्ट्वा तस्य चेष्टां धर्मस्थिरत्वं जनात् श्रुत्वा । सुगुरुभिस्तदनु श्रेष्ठी सादरमाभाषितमेवम् ॥ ९ ॥
तव सर्वदाप्येवं धर्मक्षणो भद्र ! निर्वहत्येषः ? । ततो वन्दित्वा भणितमामं जिन-गुरुप्रसादात् ॥ १० ॥
किन्तु मम परिवारो न समुद्यमति धर्मकार्ये । ततः कमपि गुणं ज्ञात्वातिशयज्ञानात्तेन गुरुणा ॥ ११ ॥
मन्त्रं महाप्रभावं कथयित्वा तस्य साधनोपायम् । अन्यत्र गताः सोऽपि खलु सविलम्बः स्वगृहमनुप्राप्तः ॥ १२ ॥
भणितश्च कुटुम्बेन मिलितैः क्षुधयाद्य मर्तव्यम् । न करोषि निजव्यवसायं दर्शय धर्मफलं किमपि ॥ १३ ॥
अवहेलनां कृत्वा स्थितस्ततो यथोक्तदिवसे । शुचीभूतेन मन्त्रप्रसाधितस्तदनु सिद्धश्च ॥ १४ ॥
प्राप्तश्च ब्रह्मशान्तिस्तस्य प्रभावेन भणति वृणु वरम् । तेनोक्तं त्रिकालं जिनवन्दनं करोम्यहम् ॥ १५ ॥
ततो मम पूजापूर्वकजिनवन्दनकस्य यत्फलं भवति । एकस्मिन् दिने विहितस्य संपत् प्रकट्य तमद्य ॥ १६ ॥
भणितं च तेन महार्हवैमानिकसम्पत्फलं भणितम् । एतावन्मात्रस्यापि भावसारविहितस्य विधिपूर्वम् ॥ १७ ॥
ततो भद्रक ! व्यन्तरजाते र्ममेदृशी कृतः शक्तिः ? । न हि ग्रामस्वामिनो लभ्यते मण्डलिकस्वामित्त्वम् ॥ १८ ॥
नन्देनोक्तं देवस्य दर्शनं तव सम्यग्दृष्टेः । सञ्जातं मम यस्मात्कृतकृत्यो बोधिलाभेन ॥ १९ ॥
ततो मे प्रयोजनं नास्ति किमपि त्वं भद्र ! व्रज स्वस्थानम् । कार्ये समुत्पन्ने स्मरिष्याम्यहं कुरु समाधिम् ॥ २० ॥
भणितं च तेन भवदुर्गतत्वहरणे पटुप्रतापस्य । सम्यग्दर्शनरत्नस्य सम्भवे सर्वमपि जातम् ॥ २१ ॥

तह वि हु भवओ दुक्कुहकुटुंबजिणधम्मथिज्जजणणत्थं । जं मह भणेसि कल्लाणभाइणो तं करेयव्वं ॥२२॥
चउक्कोणेसुं तुह मंदिरस्स चिट्ठंति धणनिहाणाइं । गिण्हसु एवं भणिउं देवो अदंसणीहूओ ॥२३॥
तत्तो सोहणदिवसे निहाणमेगं खणित्तु संगहियं । जोयंति जाव पेच्छंति ताव मणि-कणयपडिपुन्नं ॥२४॥
तल्लाभाओ पुणरवि य पूयणिज्जो जणम्मि संजाओ । अत्थस्स निग्गुणस्स वि जमेरिसं पयडमाहप्पं ॥२५॥
जिणधम्मपच्चयाओ तप्पभिई निच्चलाणि जायाणि । सम्मं कुणंति सव्वाणि तयणु जिणपूयणाईयं ॥२६॥
जिणबिंबवंदणाओ लहिउं सुर-मणुयसंपयं विउलं । काऊणं कम्मखयं कमेण पत्ताइं सिवसोक्खं ॥२७॥

॥ इति नन्दाख्यानकं समाप्तम् ॥३४॥

जह एएसिं जिणबिंबवंदणं संपयावहं जायं । तह अन्नस्स वि भव्वस्स जायए ता तयं कुणह ॥१॥
श्रेयःसमृद्धिमधिकं विदधाति शश्वत्, स्वास्थ्यं मनो नयति शुभ्रयशस्तनोति ।
स्वर्जोषमावहति मुक्तिसुखं विधत्ते, किं वा करोति न जनाः ! जिनवंदनं वः ? ॥२॥
॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे जिनवन्दनफलवर्णनो नाम नवमोऽधिकारः समाप्तः ॥९॥

तथापि खलु भवतोऽसहिष्णुः[1] कुटुम्बजिनधर्मस्थैर्यजननार्थम् । यन्मम भणसि कल्याणभागिनस्तत्कर्त्तव्यम् ॥ २२ ॥
चतुष्कोणेषु तव मन्दिरस्य तिष्ठन्ति धननिधानानि । गृहाणैवं भणित्वा देवोऽदर्शनीभूतः ॥ २३ ॥
ततः शोभनदिवसे निधानमेकं खनित्वा संगृहीतम् । दर्शयन्ति यावत्पश्यन्ति तावन्मणि-कनकप्रतिपूर्णम् ॥ २४ ॥
तल्लाभात्पुनरपि च पूजनीयो जने सञ्जातः । अर्थस्य निर्गुणस्यापि यदीदृशं प्रकटमाहात्म्यम् ॥ २५ ॥
जिनधर्मप्रत्ययात्तत्प्रभृति निश्चला जाताः । सम्यक् कुर्वन्ति सर्वे तदनु जिनपूजनादिकम् ॥ २६ ॥
जिनबिम्बवन्दनाल्लब्ध्वा सुर-मनुजसंपद्विपुलाम् । कृत्वा कर्मक्षयं क्रमेण प्राप्ताः शिवसौख्यम् ॥ २७ ॥

॥ इति नन्दाख्यानकं समाप्तम् ॥ ३४ ॥

यथैतेषां जिनबिम्बवन्दने सम्पदावहं जातम् । तथान्यस्यापि भव्यस्य जायते ततस्तकं कुरुत ॥ १ ॥

● ● ●

---

१. दुक्कुह (दे.) असहिष्णुरित्यर्थः

[१०. साधुवन्दनफलवर्णनाधिकारः ।]

व्याख्यातो जिनवन्दफलाधिकारः । साम्प्रतं वन्दितजिनेन सम्यग्दशा गुरुभ्यो वन्दनकं दातव्यमित्यनेन सम्बन्धेन सम्बन्धितं गुरुवन्दनकं व्याख्यातुकाम आह -

जो वंदणयं सम्मं साहूणं देइ सीलकलियाणं ।
सो लहइ सग्ग-मोक्खे हरि व्व दुक्खक्खयं कुणइ ॥ १५ ॥

व्याख्या– 'यः' भव्यः 'वन्दनकं' कृतिकर्म 'सम्यग्' भावसारं 'साधुभ्यः' गुरुभ्यः 'ददाति' वितरति 'शीलकलितेभ्यः' चारित्रयुक्तेभ्यः सः 'लभते' प्राप्नोति 'स्वर्ग-मोक्षौ' सुरसद्म-मुक्ती । किंवद् ? इत्याह - 'हरिवत्' वासुदेव इव । दुःखक्षयं च चस्य गम्यमानत्वात् 'करोति' विधत्त इत्यक्षरार्थः ॥ १५ ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकादवसेयः । तच्चेदम् -

अत्थि समत्थच्छेरयपेच्छयजणजणियनयण-मणतोसा । सुरपुरिसमाणविहवा सुत्थियपउरा सुहनिवासा ॥१॥
पेरंतपरमपरिहा सुवन्नमयतुंगपवरपायारा । देवउलसिहरधुव्वंतधयवडा धवलपासाया ॥२॥
धणएण विणम्मविया वारवई पुरवरी सिरीभवणं । बारसजोयणदीहा नववित्थिन्ना सया थिमिया ॥३॥
तं पालइ पयडपयावपत्तमाहप्पपहयपडिवक्खो । ससि-सेसजससयन्नो जयसिरिनाहो निवो कण्हो ॥४॥

हर्याख्यानकम् ॥ ३५ ॥

अस्ति समस्ताश्चर्यप्रेक्षणकजनजनितनयन-मनस्तोषा । सुरपुरिसमानविभवा सुस्थितप्रचुरा सुखनिवासा ॥ १ ॥
पर्यन्तपरमपरिखा सुवर्णमयतुङ्गप्रवरप्राकारा । देवकुलशिखरधुर्णद्धवजपटा धवलप्रासादा ॥ २ ॥
धनदेवविनिर्मिता द्वारावती पुर्वरी श्रीभवनम् । द्वादशयोजन दीर्घा नवविस्तीर्णा सदा स्तिमिता ॥ ३ ॥
तां पालयति प्रकटप्रतापप्राप्तमाहात्म्यप्रहतप्रतिपक्षः । शशि-शेषयशःसकर्णो जयश्रीनाथो नृपः कृष्णः ॥ ४ ॥

अह अन्नया य देविंदविंदवंदिज्जमाणचरणजुओ । सयमेव समयविहिणा समोसढो रिट्ठनेमिजिणो ॥५॥
तो रभसपहरिसुब्भिज्जमाणरोमंचकंचुइयकाओ । तित्थयरवंदणत्थं विणिग्गओ कण्हनरनाहो ॥६॥
काउं पयाहिणतिगं विहिसारं वंदिऊण भयवंतं । पंजलिउडो पहिट्ठो सट्ठाणम्मि[1] समुवविट्ठो ॥७॥
एत्थंतरम्मि नेमी जलहरगंभीरमहुरवाणीए । सुर-असुर-नर-सभाए धम्मं कहिउं समाढत्तो ॥८॥
भो भव्वा ! जइधम्मं काउमसत्ताण मोहवसयाण । पाएण गिहत्थाणं जिण-गुरुभत्तीपरो धम्मो ॥९॥
जिणपूया मुणिदाणं एत्तियमेत्तं गिहीण सच्चरियं । जइ एयाओ भट्ठो ता भट्ठो सव्वकज्जाओ ॥१०॥
तहा-
देवगुरूणं भत्ती इहेव वारेइ सयलदुरियाइं । परलोए य नरा-ऽमरसुहाइं संपाडइ जियाण ॥११॥
एत्थंतरम्मि कण्हेण पुच्छियं केरिसा सुगुरुभत्ती ? । किं वा वि हु तीए फलं ? अणुग्गहत्थं कहह भयवं ! ॥१२॥
भयवया भणियं -
बहुमाणो वंदणयं निवेयणा पालणा य वक्कस्स । उवगरणदाणमेव यु गुरुभत्ती एस विन्नेया ॥१३॥
विसेसओ वंदणयफलं-
विणओवयार माणस्स भंजणा पूयणा गुरुयणस्स । तित्थयराण य आणा सुयधम्माराहणाऽकिरिया ॥१४॥
तहा-

अथान्यदा च देवेन्द्रवृन्दवन्द्यमानचरणयुगः । स्वयमेव समयविधिना समवसृतोऽरिष्टनेमिजिनः ॥ ५ ॥
तदा रभसप्रहर्षोद्भिद्यमानरोमाञ्चकञ्चुकितकायः । तीर्थकरवन्दनार्थं विनिर्गतः कृष्णनरनाथः ॥ ६ ॥
कृत्वा प्रदक्षिणात्रिकं विधिसारं वन्दित्वा भगवन्तम् । प्राञ्जलिपूटः प्रहृष्टः स्वस्थाने समुपविष्टः ॥ ७ ॥
अत्रान्तरे नेमी जलधरगम्भीरमधुरवाण्या । सुरा-ऽसुर-नर-सभायां धर्मं कथयितुं समारब्धः ॥ ८ ॥
भो भव्याः ! यतिधर्मं कर्तुमसक्तानां मोहवशगानाम् । प्रायेण गृहस्थानां जिन-गुरुभक्तिपरो धर्मः ॥ ९ ॥
जिनपूजा मुनिदानमेतावन्मात्रं गृहीणां सच्चरितम् । यद्येतस्माद्भ्रष्टस्तावद्भ्रष्टः सर्वकार्यात् ॥ १० ॥
तथा -
देवगुरुणां भक्त इहैव वारयति सकलदूरितानि । परलोके च नरा-ऽमरसुखानि सम्पादयति जीवानाम् ॥ ११ ॥
अत्रान्तरे कृष्णेन पृष्टं कीदृशा सुगुरुभक्तिः ? । किं वापि खलु तस्याः फलं ? अनुग्रहार्थं कथयत भगवन् ! ॥ १२ ॥
भगवता भणितम् -
बहुमानो वन्दनकं निवेदना पालना च वाक्यस्य । उपकरणदानमेव च गुरुभक्तिरेषा विज्ञेया ॥ १३ ॥
विशेषतो वन्दनकफलं -
विनयोपचारो मानस्य भञ्जना पूजना गुरुजनस्य । तीर्थकराणां चाज्ञा श्रुतधर्माराधनाऽक्रिया ॥ १४ ॥
तथा -

---

[1] ०णम्मि- खं० ।

खवई नीयागोयं उच्चागोयं च बंधए कम्मं । सोहग्गं निव्वत्तइ आणासारं जणपियत्तं ॥१५॥
जइ एवं ता भयवं अहमवि एयाण तुम्ह सीसाण । समियाण खंतिमंताण सीलवंताण साहूणं ॥१६॥
अट्ठारसण्ह सहसाण दुसहतव-चरणखवियदेहाणं । कम्मविणिज्जरणकए वंदणयं देमि मुणिनाह ॥१७॥
इय भणिऊणं कन्हो काउमहाजायरूवमुवउत्तो । पडिलेहिय मुहपोत्तिं समं तया सव्वराईहिं ॥१८॥
आवत्तसार-सरसार-भावसारं च दाउमारद्धो । राईणं पुण कोइ वि कहिं पि थक्को अदिन्ने वि ॥१९॥
जा वीरयसहिएणं सव्वे वि हु वंदिया नरिंदेणं । निव्वाहियसपइन्नो समागओ जिणसयासम्मि ॥२०॥
कोत्थुहकिरणकरंबियकज्जलकाओ गलंतसेयजलो । विप्फुरियसक्कधणु-विज्जुपुंजजुयअहिणवघणो व्व ॥२१॥
ठाऊणं जिणपुरओ विरइयकरकमलकोरओ कण्हो । नमिऊणं नेमिजिणं हिट्ठमणो भणिउमाढत्तो ॥२२॥
भयवं ! भिडंतभडकोडिथट्टसंभिडणसंकडे सामि ! । एरिसपरिस्समो मे संगामे वि हु न संजाओ ॥२३॥
जारिसओ भत्तिवसुल्लसंतरोमंचकंचुइयतणुणो । मुणिपयपंकयवंदणयदाणकज्जुज्जयमणस्स ॥२४॥
भणइ जिणो अज्ज तए चारित्तमहानिवस्स पच्चक्खं । एवं जुज्झंतेणं बहू जियं सुहड ! किं बहुणा ? ॥२५॥
जेणेए मह समणा चारित्तमहानिवस्स मणदइया । आराहयंति जमिमे अपमत्ता निच्चमेवमिमं ॥२६॥
ता एएसिं वंदणयदाणकरणेण रंजिओ एसो । अणुकूलो संजाओ भद्द ! तुमं पइ विसेसेण ॥२७॥
एए य सत्त सुहडा सुयण ! महामोहरायसेन्नस्स । धणियं पहाणभूया पच्चक्खं पेच्छ तुह पुरओ ॥२८॥
एएहिं विणा एसो मुण मोहनराहिवो अकिंचिकरो । उद्धियदाढोऽसमविसहरो व्व नणु सिंदुरीभूओ ॥२९॥

क्षपति नीचगोत्रमुच्चगोत्रं च बध्नाति कर्म । सौभाग्यं निवर्तयत्याज्ञासारं जनप्रियत्वम् ॥ १५ ॥
यद्येवं ततो भगवन्नहमप्येतेभ्योयुष्माकं शिष्येभ्यः । समितेभ्यः क्षान्तिमद्भ्यः शीलवद्भ्यः साधुभ्यः ॥ १६ ॥
अष्टादशसहस्रेभ्यो दुःषहतपश्चरणक्षपितदेहेभ्यः । कर्मविनिर्जरणकृते वन्दनकं दामि मुनिनाथ ! ॥ १७ ॥
इति भणित्वा कृष्णः कृत्वा यथाजातरुपमुपयुक्तः । प्रतिलेख्य मुखपत्तिं समं तदा सर्वराड्भिः ॥ १८ ॥
आवर्तसार-स्वरसार-भावसारं च दातुमारब्धः । राज्ञां पुनः कोऽपि कुत्रापि स्थितोऽदत्ते अपि ॥ १९ ॥
यावद्वीरकसहितेन सर्वेऽपि खलु वन्दिता नरेन्द्रेण । निर्वाहितस्वप्रतिज्ञः समागतो जिनसकाशे ॥ २० ॥
कौस्तुभकिरणकरम्बितकज्जलकायः गलत्स्वेदजलः । विस्फुरितशक्रधनु-विद्युत्पुञ्जयुक्ताभिनवघन इव ॥ २१ ॥
स्थित्वा जिनपुरतो विरचितकरकमलकोरकः कृष्णः । नत्वा नेमिजिनं हृष्टमना भणितुमारब्धः ॥ २२ ॥
भगवन् ! युध्यमानभटकोटिसमूहसंयोधनसंकटे स्वामिन् । ईदृशपरिश्रमो मे सङ्ग्रामेऽपि खलु न सञ्जातः ॥ २३ ॥
यादृशो भक्तिवशोल्लसद्रोमाञ्चकञ्चुकिततनोः । मुनिपदपङ्कजवन्दनकदानकार्योद्यतमनसः ॥ २४ ॥
भणति जिनोऽद्य त्वया चारित्रमहानृपस्य प्रत्यक्षम् । एवं युध्यमानेन बहु जितं सुभट ! किं बहुना ? ॥ २५ ॥
येनैते मम श्रमणाश्चारित्रमहानृपस्य मनोदयिताः । आराधयन्ति यदिमे अप्रमत्ता नित्यमेवमिदम् ॥ २६ ॥
तत एतेषां वन्दनकदानकरणेन रञ्जित एषः । अनुकूलः सञ्जातो भद्र ! त्वां प्रति विशेषेण ॥ २७ ॥
एते च सप्त सुभटाः सुजन ! महामोहराजसैन्यस्य । अत्यन्तं प्रधानभूताः प्रत्यक्षं पश्य तव पुरतः ॥ २८ ॥
एते विनैष जानीहि मोहनराधिपोऽकिञ्चित्करः । उत्क्षिप्तदंष्ट्रोऽसमविषधर इव ननु रज्जूभूतः ॥ २९ ॥

तुमए पयत्तवसओ वंदणयपयाससमरसंरंभो । वीरियखग्गलयाए हणिऊणं पाविया निहणं ॥३०॥
एएहिं तुज्झ चउगइसरूवसंसारगुविलकंतारे । पडियस्स सया वि चरित्तरायसेन्नाओ भट्ठस्स ॥३१॥
जीवस्स तत्तरूवं जमिमं पावेहिमावरियमासी । संपइ पयडीभूयं खाइगसम्मत्तवररयणं ॥३२॥
तं तुह निम्मलमणभवणसंठियं दिप्पए पईवो व्व । करयलचडिया वियडा कल्लाणपरंपरा वि सुहा ॥३३॥
जं भणियमिमं तं तुममणुभवसि ? न व ? त्ति ताविमं कहसु । तेणुत्तं साहिज्जइ सुरलोओ न हु सुरिंदस्स ॥३४॥
अहमणुभवामि भयवं ! तुमए जं पुच्छियं निरवसेसं । कोहहुयाससमाणो सीईभूओ महं अप्पा ॥३५॥
तणुईभूओ माणो मणयं माया पसन्निया जाया । लोभसमुद्दो वि थिरो थिमियतरंगोवमो जाओ ॥३६॥
अहुणा तुम्हाणुवरिं भत्ती वि हु दढयरा मणोभवणे । जीवाइपयत्थेसुं वियंभिया तत्तबुद्धी वि ॥३७॥
अणुभवसिद्धं भयवं ! जं तुब्भे भणह विब्भमो नत्थि । पडिणिहियममयकुंडे सुक्खं लक्खेमि अप्पाणं ॥३८॥
भणियं च भयवया-
एयं पि सुहडसत्तगनिम्मूलुम्मूलणेक्कपभवस्स । विलसियमसमं मुण तस्स चेव सम्मत्तरयणस्स ॥३९॥
एसो सुहपरिणामो न केवलं तुज्झ किंतु सव्वेसिं । जीवाणमिहं भडसत्तगेण पावेण आवरिओ ॥४०॥
किं बहुणा ? मोहनराहिवस्स सत्तगमिणं विसेसेणं । सेन्नस्स असंखस्स वि मज्झेऽसज्झं ववइसंति ॥४१॥
अन्नं च जणे जा का वि पाविया गिज्जए तई पयडा । दंसगतिगनिम्माया सा एसा मुणसु न हु अन्ना ॥४२॥

त्वया प्रयत्नवशतो वन्दनकप्रयाससमरसंरम्भः । वीर्यखड्गलतया हत्वा प्राप्ता निधनम् ॥ ३० ॥
एतैस्तव चतुर्गतिस्वरुपसंसारगहनकान्तारे । पतितस्य सदापि चारित्रराजसैन्याद्भ्रष्टस्य ॥ ३१ ॥
जीवस्य तत्त्वस्वरुपं यदिमं पापैरावृतमासीत् । सम्प्रति प्रकटीभूतं क्षायिकसम्यकत्ववररत्नम् ॥ ३२ ॥
तत्तव निर्मलमनोभवनसंस्थितं दीप्यते प्रदीप इव । करतलारुढा विकटा कल्याणपरंपरापि शुभा ॥ ३३ ॥
यद्भणितमिदं तत्त्वमनुभवसि ? न वेति ? तावदिदं कथय । तेनोक्तं कथ्यते सुरलोको न खलु सुरेन्द्रस्य ॥ ३४ ॥
अहमनुभवामि भगवन् ! त्वया यत्पृष्टं निरवशेषम् । क्रोधहुतासससमानः शीतीभूतो ममात्मा ॥ ३५ ॥
तन्वीभूतो मानो मनाग्माया प्रसन्निता जाता । लोभसमुद्रोऽपि स्थिरः स्तिमिततरङ्गोपमो जातः ॥ ३६ ॥
अधुना युष्माकमुपरि भक्तिरपि खलु दृढतरा मनोभवने । जीवादिपदार्थेषु विजृम्भिता तत्त्वबुद्धिरपि ॥ ३७ ॥
अनुभवसिद्धं भगवन् ! यद्यूयं भणत विभ्रमो नास्ति । प्रतिनिहितममृतकुण्डे सुखं लक्ष्याम्यात्मानम् ॥ ३८ ॥
भणितं च भगवता -
एतदपि सुभटसप्तकनिर्मूलोन्मूलनैकप्रभवस्य । विलसितमसमं जानीहि तस्य चैव सम्यक्त्वरत्नस्य ॥ ३९ ॥
एष शुभपरिणामो न केवलं तव किन्तु सर्वेषाम् । जीवानामिह भटसप्तकेन पापेनावारितः ॥ ४० ॥
किं बहुना ? मोहनराधिपस्य सप्तकमिदं विशेषेण । सैन्यस्यासंख्यस्यापि मध्येऽसाध्यं व्यपदिश्यन्ति ॥ ४१ ॥
अन्यच्च जने या कापि प्रापिता ग्राह्यते त्रयी प्रकटा । दर्शनत्रिकनिर्माता सैषा जानीहि न खल्वन्या ॥ ४२ ॥

---

१. पडिहयमम्मयकुंडे - खं० रं० ।

चउरो पढमकसाया पेच्छसु कुलफंसणा महापावा । एयाए मिलिऊणं जगडंति जयं असेसं पि ॥४३॥
एए य कम्मपरिणामरायजाया सहोयरा नेया । सव्वे वि असुहपरिणइसमुब्भवा सोलस कसाया ॥४४॥
किंचिसुहं मोत्तूणं सबंधुणो पावियाए एयाए । मिलिया तईए पायं समाणसीलेसु सुहिभावो ॥४५॥
एयाण तए सद्धिं अब्भिट्ठाणं भडाण भंडणए । पडियाणमसेसं पि हु खलभलियं मोहरायबलं ॥४६॥
पलवइ मोहनरिंदो रुवंति रागाइणो सुहडसत्था । कुस्सुइ-कुबुद्धि-कुमईवसाओ सोयंति साममुहा ॥४७॥
साहारणस्सरूवा सत्तण्ह वि पणइणी विसालच्छी । एसा अतत्तबुद्धी वि कण्ह ! रंडत्तणं पत्ता ॥४८॥
घुसिणविलित्ता नवरंगनिवसणा गलविलंबियपसूणा । नज्जइ बोलणकज्जे जलासए पेच्छसु वराई ॥४९॥
तुज्झऽज्ज कण्ह ! कल्लाणसंपया सुत्थिओ चरित्तनिवो । दुहियं च मोहसेन्नं अहो ! विचित्तं भवसरूवं ॥५०॥
एयस्स सरूवमिणं जो हणइ इमं सुहं पि तस्सेव । जीवाण जए जम्हा पत्तेयं पुन्न-पावाइं ॥५१॥
ता एयविणासकये अवरेण वि सव्वहेव जइयव्वं । विढवियमेवुवभुंजइ अन्नेणऽन्नो न उण इहइं ॥५२॥
अवरं च अज्ज तुमए आसि महारंभसंचियं कम्मं । सत्तममहीए जोग्गं तं तइयाए समाणीयं ॥५३॥
एयं निसामिऊणं भयमीओ केसवो भमइ भयवं ! । तुब्भेहि सामिएहिं अज्ज वि मह कहमकल्लाणं ? ॥५४॥
चिंतामणिम्मि पत्ते दारिद्दपराभवो जइ जियाणं । उइयम्मि वि दियनाहे[1] जइ तमपसरो परिप्फुरइ ॥५५॥
ता सामि ! कहिं गम्मउ ? पविसिज्जउ कस्स सरणमम्हेहिं ? । तो भणइ जिणो केसव ! अवस्समवि वेयणिज्जमिमं ॥५६॥

चत्वारः प्रथमकषाया पश्य कुलस्पर्शना महापापाः । एतै र्मिलित्वा कदर्थयन्ति जगदशेषमपि ॥ ४३ ॥
एते च कर्मपरिणामराजजाताः सहोदरा ज्ञेयाः । सर्वेऽपि अशुभपरिणतिसमुद्भवाः षोडशकषायाः ॥ ४४ ॥
किञ्चित्सुखं मुक्त्वा स्वबन्धुन् प्रापिताया एतस्याः । मिलितात्रट्याः प्रायं समानशीलेषु सखीभावः ॥ ४५ ॥
एतेषां तया सार्द्धं प्रवृत्तानां भटानां युद्धे । पतितानामशेषमपि खलु क्षुब्धं मोहराजबलम् ॥ ४६ ॥
प्रलपति मोहनरेन्द्रो रुदन्ति रागादयः सुभटसार्थाः । कुश्रुति-कुबुद्धि-कुमतिवशात् शोचन्ति श्याममुखाः ॥ ४७ ॥
साधारणस्वरुपा सतृष्णापि प्रणयिनी विशालाक्षी । एषातत्त्वबुद्धिरपि कृष्ण ! रण्डत्वं प्राप्ता ॥ ४८ ॥
घृसृणविलिप्ता नवरंगनिवसना गलविलम्बितपशूनाम् । ज्ञायते आह्वानकार्ये जलाशयान्पश्य वराकी ॥ ४९ ॥
तवाद्य कृष्ण ! कल्याणसम्पत् सुस्थितश्चारित्रनृपः । दुःखितं च मोहसैन्यमहो ! विचित्रं भवस्वरुपम् ॥ ५० ॥
एतस्य स्वरुपमिदं यो हन्तीदं सुखमपि तस्यैव । जीवानां जगति यस्मात्प्रत्येकं पुण्य-पापानि ॥ ५१ ॥
तत एतद्विनाशकृते ऽपरेणापि सर्वथैव यतितव्यम् । अर्जितमेवोपभुनक्त्यन्येनान्यो न पुनरिह ॥ ५२ ॥
अपरं चाद्य त्वयासीन्महारम्भसञ्चितं कर्म । सप्तममह्या योग्यं तत्तृतीयया समानीतम् ॥ ५३ ॥
एतन्निशम्य भयभीतः केशवो भणति भगवन् ! । युष्माषु स्वामिषु अद्यापि मम कथमकल्याणम् ? ॥ ५४ ॥
चिन्तामणौ प्राप्ते दारिद्रपराभवो यदि जीवानाम् । उदिते अपि दिननाथे यदि तमः प्रसरः परिस्फुरति ॥ ५५ ॥
ततः स्वामिन् ! कुतो गम्यतां ? प्रविश्यते कस्य शरणमस्माभिः । तदा भणति जिनः केशव ! अवश्यमपि वेदनीयमिदम् ॥५६॥

१. दिणनाहे -रं० ।

पुणरवि पावखयत्थं वंदणयं [1]देसि तं पि न हु सम्मं । नो[2] सम्ममणुट्ठाणं जं न कुणइ कम्मनिज्जरणं ॥५७॥
एवं निवारिओ जा मणयं वेलक्खमागओ कण्हो । ता पुणरवि पडिभणिओ मा तम्मसु भद्द ! तुममेवं ॥५८॥
जम्हा अहमिव तुममवि वरकेवलनाण-दंसणपईवो । भुवणस्स पूयणिज्जो पसंसणिज्जो य भरहम्मि ॥५९॥
तेरसमो तित्थयरो होहिसि तं मुणिसहस्सपरियरिओ । ता एरिसकल्लाणे कह संपइ खेयमुव्वहसि ? ॥६०॥
इय एवं जयपहुणा सायरमाभासिओ जिणं नमिउं । कण्हो मुत्तिसयण्हो नियनयरीए समणुपत्तो ॥६१॥
जह देहनिरावेक्खं दिन्नमणेणं तहाऽवरेणावि । दायव्वं वंदणयं सुगुरूण सुहऽत्थिणासम्मं ॥६२॥

॥ हर्याख्यानकं समाप्तम् ॥३५॥

इत्थं यथा विधिविशुद्धममुष्य जातं सद्वन्दनं निरपहस्तितजन्मजातम् ।
जायेत भव्यभविनोऽप्यपरस्य तद्वत्, तस्माद् ददध्वमनवद्यमिदं गुरुभ्यः ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे साधुवन्दनफलवर्णनो दशमोऽधिकारः समाप्तः ॥१०॥

पुनरपि पापक्षयार्थं वन्दनकं दासि तदपि न खलु सम्यक् । स सम्यगनुष्ठानं यत्र करोति कर्मनिर्जरणम् ॥ ५७ ॥
एवं निवारितो यावन्मनाग्विलक्षमागतः कृष्णः । तावत्पुनरपि प्रतिभणितो मा ताम्य भद्र ! त्वमेवम् ॥ ५८ ॥
यस्मादहमिव त्वमपि वरकेवलज्ञान-दर्शनप्रदीपः । भुवनस्य पूजनीयः प्रशंसनीयश्च भरते ॥ ५९ ॥
त्रयोदशस्तीर्थकरो भविष्यसि त्वं मुनिसहस्रपरिकरितः । ततः ईदृशकल्याणे कथं सम्प्रति खेदमुद्वहसि ? ॥ ६० ॥
इत्येवं जगत्प्रभुणा सादरमाभाषितो जिनं नत्वा । कृष्णो मुक्तिसकर्णो निजनगर्यां समनुप्राप्तः ॥ ६१ ॥
यथा देहनिरपेक्षं दत्तमनेन तथापरेणापि । दातव्यं वन्दनकं सुगुरुणां सुखार्थिना सम्यक् ॥ ६२ ॥

॥ हर्याख्यानकं समाप्तम् ॥ ३५ ॥

●●●

---

१. देवि तं - खं० रं० । २. सो सम्मं - खं० रं० ।

[११. सामायिकफलवर्णनाधिकारः ।]

व्याख्यातः साधुवन्दनकाधिकारः । साम्प्रतं दत्तवन्दनकेन सामायिकं प्रतिपत्तव्यम् । अतः सामायिकाधिकारं व्याचिख्यासुराह-

अव्वत्तस्स वि सामाइयस्स नरसुरसमिद्धिमाईयं ।
फलमउलं निद्दिठं जह संपइणो नरिंदस्स ॥ १६ ॥

व्याख्या- 'अव्यक्तस्य' सम्यक्त्वस्वरुपपरिज्ञानरहितस्य अपिशब्दात् तदितरस्य सामायिकस्य समभावलक्षणस्य नर-सुर-समृद्ध्यादिकं मकारस्यालाक्षणिकत्वात् मनुजा-ऽमरसम्पत्तिप्रभृतिकं 'फलं' कार्यं 'निर्दिष्टं' कथितम् । यथा इति दृष्टान्तोपन्यासे । सम्प्रतिनामकस्य 'नरेन्द्रस्य' राज्ञः इत्यक्षरार्थः ॥ १६ ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकादवसेयः ।

तच्चेदम्-

वच्छाजणवयभालयलसरससिरिखंडपट्टियासरिसा । अत्थि पुरी कोसंबी सियकित्ती सुइसमायारा ॥१॥
सत्तरिसिसमद्धासियमणेगरिसिसयसमस्सिया संती । जा तज्जइ गयणयलं करंगुलीसरिसधयमिसओ ॥२॥
तीए गणाहिवइणो सिरिअज्जसुहत्थिनामगा गुरुणो । कइया वि मासकप्पेण विहरमाणा समणुपत्ता ॥३॥
सुत्त-ऽत्थापोरुसीकरणपुव्वमह पत्तभिक्खपत्थावो । ईसरगिहम्मि कम्मि वि सुसाहुसंघाडगो तेसिं ॥४॥

सम्प्रत्याख्यानकम् ॥ ३६ ॥

वत्साजनपदभालतलसरसश्रीखण्डपट्टिकासदृशा । अस्ति पुरी कौशाम्बी सितकीर्त्ति शुचिसमाचारा ॥ १ ॥
सप्तर्षिसमध्यासितमनेकर्षिशतसमाश्रिता सती । या तर्जयति गगनतलं कराङ्गुलीसदृशध्वजमिषात् ॥ २ ॥
तस्यां गणाधिपतयः श्री आर्यसुहस्तिनामका गुरवः । कदापि मासकल्पेन विहरमाणाः समनुप्राप्ताः ॥ ३ ॥
सूत्रार्थपौरुषीकरणपूर्वकमथ प्राप्तभिक्षाप्रस्तावः । ईश्वरगृहे कस्मिन्नपि सुसाधुसंघाटकस्तेषाम् ॥ ४ ॥

भिक्खट्ठमणुपविट्ठो दुब्भिक्खे महइ वट्टमाणम्मि । अत्ताणं अत्ताणं सकयत्थं मन्नमाणेण ॥५॥
अब्भुट्ठाणपुरस्सरमह मड्डाए वि तेण धणवइणा । विहियं पत्तयभरणं भत्तीए भत्त-पाणस्य ॥६॥
दिट्ठं च तमेगेणं भिक्खयरेणं तहिं पविट्ठेणं । चिंतियमिमिणा पुन्नाणमंतरं पेच्छ पाणीणं ॥७॥
एए वि हु भिक्खयरा अहमवि भिक्खायरो परमहन्नो । अक्कोसिज्जामि परं भिक्खाकवलं पि न लहामि ॥८॥
एए उ भत्तिपुव्वं पडिलाभिज्जंति भक्ख-भोज्जेहिं । ता नूणमत्थि धम्मो न विब्भमो एत्थ वत्थुम्मि ॥९॥
ता मग्गामि इमे हं दाहिंति दयावरा इमे मज्झ । भयवं ! तुब्भे सव्वत्थ लहह ता देह मह किं पि ॥१०॥
तो मुणिवरेहिं भणियं भो भद्द ! न अम्ह संतियं भत्तं । एयं खु अम्ह पहुणो लहंति जमुवस्सए वि ठिया ॥११॥
तो तस्स सुकयकम्मोदएण जाया इमा मणे चिंता । गच्छामि ताण पासे नूणं दाहिंति ते गरुया ॥१२॥
साहूहि समं पत्तो किमेस ? गुरुणा पयंपिए तेहिं । कहिओ से वुत्तंतो सुओवउत्तो गुरू भणइ ॥१३॥
भो ! एस उन्नइकरो होही जिणसासणस्स तेहुत्तं । तुब्भे जाणह न वयं वियाणिमो कुणह जं जोग्गं ॥१४॥
दाऊण तस्स कन्ने सामाइयसुत्तमेत्तमव्वत्तं । भोयाविओ जहिच्छं मणुन्नामइसरसमाहारं ॥१५॥
अणुचियभोयणवसओ संजायविसूइओ तओ संतो । सामइयपरिणईए पाडलिपुत्तम्मि नयरम्मि ॥१६॥
सिरिचंदगुत्तरन्नो पुत्तो सिरिबिंदुसारनरनाहो । तस्स वि य असोयसिरी कुमरो तस्सावि य कुणालो ॥१७॥
सो मयमायत्तणओ रन्नो अइवल्लहो सवक्किभया । उज्जेणीनयरीए कुमारभुत्तीए परिवसइ ॥१८॥

भिक्षार्थमनुप्रविष्टो दुर्भिक्षे महति वर्तमाने । आत्मनामात्मना सकृतार्थं मन्यमानेन ॥ ५ ॥
अभ्युत्थानपूर्वकमथ बलादपि तेन धनपतिना । विहितं पात्रकभरणं भक्त्या भक्त-पानस्य ॥ ६ ॥
दृष्टं च तदेकेन भिक्षाचरेण तत्र प्रविष्टेन । चिन्तितमनेन पुण्यानामन्तरं पश्य प्राणीनाम् ॥ ७ ॥
एत अपि खलु भिक्षाचरा अहमपि भिक्षाचरः परमधन्यः । आक्रोश्यामि परं भिक्षाकवलमपि न लभे ॥ ८ ॥
एते तु भक्तिपूर्वं प्रतिलाभ्यन्ते भक्ष्य-भोज्यैः । ता नूनमस्ति धर्मो न विभ्रमोऽत्र वस्तुनि ॥ ९ ॥
ततो मार्गयामीमेऽहं दास्यन्ति दयापरा इमे मह्यम् । भगवन् ! यूयं सर्वत्र लभध्वं ता दत्त मम किमपि ॥ १० ॥
तदा मुनिवरै र्भणितं भो भद्र ! नास्मत्सत्कं भक्तम् । एतत्खल्वस्मत्प्रभवो लभन्ते यमुपाश्रयेऽपि स्थिताः ॥ ११ ॥
तदा तस्य सुकृतकर्मोदयेन जातेमा मनसि चिन्ता । गच्छामि तेषां पार्श्वे नूनं दास्यन्ति ते गुरुकाः ॥ १२ ॥
साधुभिः समं प्राप्तः किमेषः ? गुरुणा प्रजल्पिते तैः । कथितस्तस्य वृत्तान्तः श्रुतोपयुक्तो गुरु र्भणति ॥ १३ ॥
भो ! एष उन्नतिकरो भविष्यति जिनशासनस्य तैरुक्तम् । यूयं जानीथ न वयं विजानीमः कुरुत यद्योग्यम् ॥ १४ ॥
दत्त्वा तस्य कर्णे सामायिकसूत्रमात्रमव्यक्तम् । भोजितो यथेच्छं मनोज्ञमतिसरसमाहारम् ॥ १५ ॥
अनुचितभोजनवशतः सञ्जातविशूचिकस्ततः सन् । सामायिकपरिणत्या पाटलिपुत्रे नगरे ॥ १६ ॥
श्रीचन्द्रगुप्तराज्ञः पुत्रः श्रीबिन्दुसारनरनाथः । तस्यापि चाशोकश्रीः कुमारस्तस्यापि च कुणालः ॥ १७ ॥
स मृतमातृत्वेन राज्ञोऽतिवल्लभो शौक्यभयेन । उज्जैनीनगर्यां कुमारभुक्त्या परिवसति ॥ १८ ॥

पइदिवसमसोयसिरी लेहं पेसइ सहत्थलिहियं से । मह आएसा कुमरो अहिज्जऊ इय लिहेऊणं ॥१९॥
अह अन्नया य लेहो लिहिउं मुक्को निवेण एमेव । दिन्नो सवक्किमायाए बिंन्दुओऽयारवन्नसिरे ॥२०॥
मुक्को लेहो परिवाइयव्वओ न सरिया इमा नीई । संवत्तिऊण रन्ना तहेव संपेसिओ तत्थ ॥२१॥
जा वाइऊण तं अक्खवडलिओ मुयइ नो करग्गाओ । घेत्तुं बला वि कुमरेण वाइओ मुणिय परमत्थं ॥२२॥
परिभावइ थिरसत्तो मोरियवंसुब्भवाणमम्हाण । न य केणइ गुरुआणा विलंघिया पुव्वपुरिसेणं ॥२३॥
तो साहसिक्करसिएण तेण कट्ठं कुणालकुमरेण । तत्तसलायाए नयणजुयलमंजियमयंडम्मि ॥२४॥
पच्छा नाऊणं माइविलसियं नियमणे विचिंतेइ । धिसि धिसि नारीण वि चेट्ठियाणि कूराणि कुडिलाणि ॥२५॥
जइ हं असोगसिरिणा जाओ जइ को वि सच्चयं पुरिसो । ता तीए मुहे छारो दायव्वो किं वियप्पेण ॥२६॥
तत्तो य तस्स कुमरस्स पणइणी नामओ य सरयसिरी । कुसुमियसहयारतरुं सुमिणे दट्ठूण पडिबुद्धा ॥२७॥
सो दमगजिओ मरिऊण पउरपुन्नप्पभावपरियरिओ । पुत्तत्तणेण तइया तीए गब्भम्मि संजाओ ॥२८॥
कालक्कमेण जाओ देवकुमारोवमो सुओ तीए । सो वि कुणालकुमारो गंधव्वकलाए अइनिउणो ॥२९॥
निच्चं च गीयवसणी गायंतो महियलं परिब्भमइ । पत्थावं नाऊणं पाडलिपुत्तम्मि संपत्तो ॥३०॥
हाहा-हूहू-तुंबुरुकंठो कहिओ निवस्स मंतीहिं । देव ! कुओ वि हु पत्तो अप्पुव्वो गायणो को वि ॥३१॥
नवरं नयणविहीणो एवं रन्नो निवेइए भणियं । आगच्छउ को दोसो ? गायउ मह जवणियंतरिओ ॥३२॥

प्रतिदिवसमशोकश्री र्लेखं प्रैषति स्वहस्तलिखितं तस्य । ममादेशात्कुमारोऽधीयत इति लिखित्वा ॥ १९ ॥
अथान्यदा च लेखो लिखित्वा मुक्तो नृपेणैवमेव । दत्तो शोक्यमातु र्बिन्दुरकारवर्णशिरसि ॥ २० ॥
मुक्तो लेखः परिवाचितव्यो न स्मृतेमा नीतिः । संवर्त्त्य राज्ञा तथैव सम्प्रैषितस्तत्र ॥ २१ ॥
यावद्वाचयित्वा तमक्षपटलितो मुञ्चति न कराग्रात् । गृहीत्वा बलादपि कुमारेण वाचितो मुणित्वा परमार्थम् ॥ २२ ॥
परिभावयति स्थिरचित्तो मौर्यवंशोद्भवानामस्माकम् । न च केनचिद्गुर्वाज्ञा विलङ्घिता पूर्वपुरुषेण ॥ २३ ॥
तदा साहसैकरसिकेन तेन कष्टं कुणालकुमारेण । तप्तशलाकया नयनयुगलमञ्जितमकाण्डे ॥ २४ ॥
पश्चाज्ज्ञात्वा मातृविलसितं निजमनसि विचिन्तयति । धिग्धिग्नारीणामपि चेष्टितानि क्रुराणि कुटिलानि ॥ २५ ॥
यद्यहमशोकश्रीणा जातो यदि कोऽपि सत्यकं पुरुषः । तदा तस्या मुखे क्षारो दातव्यो किं विकल्पेन ? ॥ २६ ॥
ततश्च तस्य कुमारस्य प्रणयिनी नामतश्च शरदश्रीः । कुसुमितसहकारतरुं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा ॥ २७ ॥
स द्रमकजीवो मृत्वा प्रचूरपुण्य प्रभावपरिकरितः । पुत्रत्वेन तदा तस्या गर्भे सञ्जातः ॥ २८ ॥
कालक्रमेण जातो देवकुमरोपमः सुतस्तस्याः । सोऽपि कुणालकुमारो गंधर्वकलायामतिनिपूणः ॥ २९ ॥
नित्यं च गीतव्यसनी गायन् महीतलं परिभ्रमति । प्रस्तावं ज्ञात्वा पाटलिपुत्रे सम्प्राप्तः ॥ ३० ॥
हाहा - हूहू - तुम्बरुकण्ठः कथितो नृपस्य मन्त्रिभिः । देव ! कुतोऽपि खलु प्राप्तोऽपूर्वो गायनः कोऽपि ॥ ३१ ॥
नवरं नयनविहीन एवं राज्ञो निवेदिते भणितम् । आगच्छतु को दोष ? गायतु मम यवनिकान्तरितः ॥ ३२ ॥

तत्तो य तेण सर-गाम-मुच्छणासरसमहुरगीएणं । हयहियओ भणइ निवो वरसु वरं तेण तो भणियं ॥३३॥
चंदगुत्तपपुत्तो (य) बिंदुसारस्स नत्तुओ । असोगसिरिणो पुत्तो, अंधो जायइ कागणिं ॥३४॥
तत्तो य सुयं नाउं झड त्ति नियजवणियं तमवणेउं । आगच्छ वच्छ ! वल्लह ! आरोहसु मज्झ उच्छंगे ॥३५॥
तत्तो य मन्नुवससंप्पयट्टनयणंसुसलिलधाराहिं । सिंचंतो नियतणयं सगग्गयं भणिउमाढत्तो ॥३६॥
किं वच्छ ! विहिवसेणं एयमवत्थंतरं तुमं पत्तो ? । तेणुत्तं ताय ! पयप्पसायओ नत्थि मह खूणं ॥३७॥
किंतु मह गीयवसणं तो एवं परिभमामि धरणियले । ता किं पसायदाणं थोवमिणं मग्गियं ? कहसु ॥३८॥
जावेवं वुत्तो वि हु न जंपए ताव वज्जरइ मंती । कागिणिसद्देणं रज्जमाहियं देव ! निवईणं ॥३९॥
को अन्नो वच्छ ! तुमं मोत्तुं रज्जस्स होज्ज मह जोगो ? । जह तुह नयणविणासो न होज्ज एसो विणा कज्जं ॥४०॥
तेहुत्तं मज्झ सुओ काही रज्जं ति तो निवेणुत्तं । तुह वच्छ ! कया पुत्तो ? सो जंपइ संपइ नरिंद ! ॥४१॥
तुह सुण्हा सरयसिरी ताय ! पसूया सूयं जयंतसमं । काउं पसायमसमं ता दिज्जउ तस्स रज्जमिमं ॥४२॥
साणंदं भूवइणा भणियं सिग्धं समेउ मह पासे । अहिसिंचामि सहत्थेण जेण रज्जम्मि तुह तणयं ॥४३॥
आणाविऊण सिग्धं सुर(वर)कुमरोवमं सुयस्स सुयं । सिंहासणे निवेसिय कओऽभिसेओ पुरसमक्खं ॥४४॥
सहरिसमसोयसिरिणा कओ पणामो महायणेण समं । भणियं निवेण एसो संपइ तुम्हाण होउ पहू ॥४५॥
जणयमुहनिग्गयं जं संपइ नामं ति होउ एयस्स । तं चेव तस्स सिद्धिं गयं पियामहकयं नाम ॥४६॥

ततश्च तेन स्वर-ग्राम-मूर्च्छनासरसमधुरगीतेन । हृतहृदयो भणति नृपो वर वरं तेन ततो भणितम् ॥ ३३ ॥
चन्द्रगुप्तपुत्रश्च बिन्दुसारस्य नप्ता । अशोकश्रियः पुत्रोऽन्धो याचते काकणिम् ॥ ३४ ॥
ततश्च सुतं ज्ञात्वा झटिति निजयवनिकां तमपनीय । आगच्छ वत्स ! वल्लभ ! आरुह ममोत्सङ्गम् ॥ ३५ ॥
ततश्च मन्युवशसंप्रवृतनयनाश्रुसलिलधाराभिः । सिञ्चन्निजतनयं सगद्गदं भणितुमारब्धः ॥ ३६ ॥
किं वत्स ! विधिवशेनैनमवस्थान्तरं त्वं प्राप्तः ? । तेनोक्तं तात ! पदप्रासादान्नास्ति मम क्षुण्णम् ॥ ३७ ॥
किन्तु मम गीतव्यसनं तत एवं परिभ्रमामि धरणितले । ततः किं प्रसाददानं स्तोकमिदं मार्गितं ? कथय ॥ ३८ ॥
यावदेवमुक्तोऽपि खलु न जल्पति तावत्कथयति मन्त्री । काकिणी शब्देन राज्यमाहितं देव ! नृपतीनाम् ॥ ३९ ॥
कोऽन्यो वत्स ! त्वां मुक्त्वा राज्यस्य भवेन्मम योग्यः ? । यदि तव नयनविनाशो न भवेदेष विना कार्यम् ॥ ४० ॥
तेनोक्तं मम सुतः करिष्यति राज्यमिति तदा नृपेणोक्तम् । तव वत्स ! कदा पुत्र ? स जल्पति सम्प्रति नरेन्द्र ! ॥ ४१ ॥
तव श्नुषा शरदश्रीस्तात ! प्रसूता सुतं जयन्तसमम् । कृत्वा प्रसादमसमं ततो दीयतां तस्य राज्यमिदम् ॥ ४२ ॥
सानन्दं भूपतिना भणितं शीघ्रं समैतु मम पार्श्वे । अभिषिञ्चामि स्वहस्तेन येन राज्ये तव तनयम् ॥ ४३ ॥
आनाट्य शीघ्रं सुर[वर] कुमारोपमं सुतस्य सुतम् । सिंहासने निवेश्य कृतोऽभिषेकः पुरसमक्षम् ॥ ४४ ॥
सहर्षमशोकश्रीणा कृतः प्रणामो महाजनेन समम् । भणितं नृपेणैष सम्प्रति युष्माकं भवतु प्रभुः ॥ ४५ ॥
जनकमुखनिर्गतं यत्सम्प्रति नामेति भवत्वेतस्य । तत्तैव तस्य सिद्धिं गतं पितामहकृतं नाम ॥ ४६ ॥

सो वद्धिउमारद्धो सद्धि रिद्धीए बुद्धिविहवेणं । रूवेण पयावेणं कलाकलावेणमसमेण ॥४७॥
अह अन्नया कयाई संपइरन्ना गएणमुज्जेणिं । दिट्ठा अज्जसुहत्थी विहरंता तत्थ संपत्ता ॥४८॥
मन्ने हं कत्थ मएऽणुभूयपुव्वा सुसाहुओ एए । इय चिंतंतस्स मणे जायं जाईसरणमेवं ॥४९॥
एए ते मह गुरुणो परोवयारी महाणुभावा य । जेसि पसाएण अहं संपइ संपइनिवो जाओ ॥५०॥
तो हरिसवसविसप्पंतबहलरोमंचकंचुइयगत्तो । गंतुं तेसिमुवस्सयमभिवंदिय भणिउमाढत्तो ॥५१॥
भयवं ! तुब्भे जाणह मं नियसीसं ? तुहप्पसाएणं । सो तारिसओ होउं संपइ एयारिसो जाओ ॥५२॥
दाउं सुओवओगं भणियं सम्मं तुमं वियाणामो । कोसंबीए महायस ! खणमेगमहेसि मह सीसो ॥५३॥
जय सन्नाणदिवायर ! परोवयारेक्करसिय ! गुणभवण ! । करुणारसरयणायर ! नमो नमो तुज्झ पायाणं ॥५४॥
दारिद्दसमुद्दपडंतजंतुनित्थरणजाणवत्ताण । करुणारसरयणायर ! नमो नमो तुज्झ पायाणं ॥५५॥
सग्गा-ऽपवग्गसंसग्गकारयाणं महाणुभावाणं । करुणारसरसयणायर ! नमो नमो तुज्झ पायाणं ॥५६॥
चक्कं-ऽकुस-धय-झस-कमल-कुलिससुपसत्थलक्खणधराण । करुणारसरयणायर ! नमो नमो तुज्झ पायाणं ॥५७॥
इय थोऊणं नयणंसुपूरियच्छो पहूण नमिऊणं । धरणीयले निसन्नो धम्मं सोउं समाढत्तो ॥५८॥
भयवं ! किं धम्मफलं ? गुरुहिं भणियं जिणप्पणीयस्स । धम्मस्स फलमुयारं विसिट्ठसग्गोऽपवग्गो य ॥५९॥
सामइयं.....फल.....साहइ सूरी सुए महाराय ! । अव्वत्तस्स वि सामाइयस्स रज्जाइ फलमउलं ॥६०॥[1]

स वर्धितुमारब्धः सार्द्धमृद्धया बुद्धिविभवेन । रुपेण प्रतापेन कलाकलापेनासमेन ॥ ४७ ॥
अथान्यदा कदाचित्सम्प्रतिराज्ञा गतेनमुज्जैनीम् । दृष्टाऽऽर्यसुहस्तिनो विहरन्तस्तत्र सम्प्राप्ताः ॥ ४८ ॥
मन्येऽहं कुत्र मयानुभूतपूर्वाः सुसाधव एते । इति चिन्तयतो मनसि जातं जातिस्मरणमेवम् ॥ ४९ ॥
एते ते मम गुरवः परोपकारिणो महानुभावाश्च । येषां प्रसादेनाहं सम्प्रति सम्प्रतिनृपो जातः ॥ ५० ॥
ततो हर्षवशविसर्पद्बहलरोमाञ्चकञ्चुकितगात्रः । गत्वा तेषामुपाश्रयमभिवन्द्य भणितुमारब्धः ॥ ५१ ॥
भगवन् ! यूयं जानीथ मां निजशिष्यं ? तवप्रसादेन । स तादृशो भूत्वा सम्प्रत्येतादृशो जातः ॥ ५२ ॥
दत्त्वा श्रुतोपयोगं भणितं सम्यक्त्वां विजानीमः । कोशम्ब्यां महायश ! क्षणमेकमासी र्मम शिष्यः ॥ ५३ ॥
जय सज्ञानदिवाकर ! परोपकारैकरसिक ! गुणभवन ! । करुणारसरत्नाकर ! नमो नमस्तव पादेभ्यः ॥ ५४ ॥
दारिद्रसमुद्रपतज्जन्तुनिस्तरणयानपात्रेभ्यः । करुणारसरत्नाकर ! नमो नमस्तव पादेभ्यः ॥ ५५ ॥
स्वर्गापवर्गसंसर्गकारकेभ्यो महानुभावेभ्यः । करुणारसरत्नाकर ! नमो नमस्तव पादेभ्यः ॥ ५६ ॥
चक्राङ्कुश-ध्वज-झष-कमल-कुलिशसुप्रशस्तलक्षणधरेभ्यः । करुणारसरत्नाकर ! नमो नमस्तव पादेभ्यः ॥ ५७ ॥
इति स्तुत्वा नयनाश्रुपूरिताक्षः प्रभुन्नत्वा । धरणितले निषण्णो धर्मं श्रोतुं समारब्धः ॥ ५८ ॥
भगवन् किं धर्मफलं ? गुरुभि र्भणितं जिनप्रणीतस्य । धर्मस्य फलमुदारं विशिष्टस्वर्गाऽपवर्गश्च ॥ ५९ ॥
सामायिकं किंफलमव्यक्तं कथयति सूरिः श्रुते महाराज ! । अव्यक्तस्यापि सामायिकस्य राज्यादिफलमतुलम् ॥ ६० ॥

---

१. 'किं फलमव्वत्तं' इति पाठोऽत्र सम्भाव्यते, तेन लिखितमस्ति ।

ता दिट्ठपच्चओ सो भणइ निवो सामि ! तुम्ह सीसो हं । पुव्वं पि अणुग्गहिओ संपयमवि मं अणुग्गहह ॥६१॥
तो भणियं मुणिवइणा जइ सत्ती राय ! ता पवज्ज वयं । अहवा सावयधम्मं पवयणसारं समायरसु ॥६२॥
तो तेणमिमो धम्मो रंकेण व पाविउं निधाणं व । सावगधम्मो विहिणा गुरूवएसेण जह विहिओ ॥६३॥
जह रंकत्तं सुमरिय सत्तागारेसु दावियं दाणं । जह जिणरहजत्ताओ अणारिएसुं मुणिविहारो ॥६४॥
जह साहूणं वणियावणेसु असणाइदाणमाइट्ठं । जह अज्जसुहत्थी वि हु कओ विसंभोइओ गुरुण ॥६५॥
जह धम्मं काऊणं राया वेमाणिएसु उववन्नो । अणुहविउं सुररिद्धिं चुओ जहा सुद्धवंसम्मि ॥६६॥
लद्धूण माणुसत्तं कम्मं खविऊण पाविही मोक्खं । सव्वं सवित्थरेणं तहा निसीहाओ विन्नेयं ॥६७॥
एएणं अव्वत्तगसामइएण वि महाफलं रज्जं । पत्तं जो पुण विहिणा कुणइ इमं तस्स परमपयं ॥६८॥

॥ सम्प्रतिराजाख्यानकं समाप्तम् ॥३६॥

निर्यातपापमनवद्यकृतिप्रधानं शश्वत्स्वभावसमभावितशत्रु-मित्रम् ।
सामायिक तृण-मणीसमभावमेवं सम्यक् समाचरत सर्वविदा प्रणीतम् ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे सामायिकफलवर्णन एकादशोऽधिकारः समाप्तः ॥११॥

ततो दृष्टप्रत्ययः स भणति नृपः स्वामिन् ! तव शिष्योऽहम् । पूर्वमप्यनुगृहीतः साम्प्रतमपि मामनुगृह्णीत ॥ ६१ ॥
तदा भणितं मुनिपतिना यदि शक्ती राजन् ! ततः प्रव्रज व्रतम् । अथवा श्रावकधर्मं प्रवचनसारं समाचर ॥ ६२ ॥
तदा तेनायं धर्मो रङ्केणेव प्राप्य निधानमिव । श्रावकधर्मो विधिना गुरुपदेशेन यथा विहितः ॥ ६३ ॥
यथा रङ्कत्वं स्मृत्वा सत्रागारेषु दापितं दानम् । यथा जिनरथयात्रा अनार्येषु मुनिविहारः ॥ ६४ ॥
यथा साधुनां वणिगापणेषु असनादिदानमादिष्टम् । यथाऽऽर्यसुहस्त्यपि खलु कृतो विसंभोजितो गुरुणा ॥ ६५ ॥
यथा धर्मं कृत्वा राजा वैमानिकेषूत्पन्नः । अनुभूय सुरर्द्धिं च्युतो यथा शुद्धवंशे ॥ ६६ ॥
लब्ध्वा मनुष्यत्वं कर्म क्षपयित्वा प्राप्स्यति मोक्षम् । सर्वं सविस्तरेण तथा निशीथाद्विज्ञेयम् ॥ ६७ ॥
एतेनाव्यक्तसामायिकेनापि महाफलं राज्यम् । प्राप्तं यः पुनर्विधिना करोतीमं तस्य परमपदम् ॥ ६८ ॥

॥ सम्प्रतिराजाख्यानकं समाप्तम् ॥ ३६ ॥

[१२. जिनागमश्रवणफलाधिकारः ।]

व्याख्यातः सफलप्रपञ्चनः सामायिकाधिकारः । साम्प्रतं कृतसामायिकेन सदागमश्रवणं विधेयमित्यनेन सम्बन्धेना-ऽऽयातमागमश्रवणफलं व्याख्यातुकाम आह -

आगमवयणं निसुयं थेवं पि महोवयारयं होइ ।
नायं चिलाइपुत्तो तह रोहिणओ य नायव्वो ॥ १७ ॥

व्याख्या - 'आगमवचनं' सिद्धान्तवाक्यं 'निश्रुतं' नितरामाकर्णितं 'स्तोकमपि' स्वल्पमपि 'महोपकारं' बृहद्गुणं 'भवति'जायते । 'ज्ञातं' दृष्टान्तः 'चिलातीपुत्रः' धनदासीपुत्रः 'तथा' तेनैव प्रकारेण 'रौहिणेयकश्च' रौहिणेयकाभिधानश्चौरः 'ज्ञातव्यः' बोद्धव्य इत्यक्षरार्थः ॥ १७ ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकाभ्यामवसेयः । ते चामू ।

तत्र तावत् चिलातीपुत्राख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

इह कम्मि वि सुहवासे तहाविहे वसइ सन्निवेसम्मि । सुय-जाइमउम्मत्तो नामेणं जन्नदिन्नदिओ ॥१॥
सो नाणलवुम्मत्तो निंदइ पासंडिए हसइ देवं । पडिजाणाइ पमाणं वेउत्तमपोरिसेयत्ता ॥२॥
पुरिसा हि रायवसया वयंति विवरीयमेव जं किं पि । इय सो मयावलेवा खायइ दप्पेणमंगाइं ॥३॥
अह अन्नया तहाविहथेराण समीववासिणा निसुयं । एयं खुड्डुयमुणिया तेणुत्तं भद्र ! मा भणसु ॥४॥

चिलातीपुत्राख्यानकम् ॥ ३७ ॥

इह कस्मिन्नपि शुभवासे तथाविधे वसति सन्निवेशे । श्रुत-जातिमदोन्मतो नाम्ना यज्ञदत्तद्विजः ॥ १ ॥
स ज्ञानलवोन्मत्तो निन्दति पाखण्डिकान्हसति देवम् । प्रतिजानाति प्रमाणं वेदोक्तमपौरेषेयत्वात् ॥ २ ॥
पुरुषाः खलु राजवशगा वदन्ति विपरितमेव यत्किमपि । इति स मदावलेपात्खादति दर्पेणाङ्गानि ॥ ३ ॥
अथान्यदा तथाविधस्थविराणां समीपवासिना निश्रुतम् । एतत् क्षुल्लकमुनिना तेनोक्तं भद्र ! मा भण ॥ ४ ॥

न य वयणमेत्तओ च्चिय जायइ साहुत्तणं विवेईणं । तम्हा जंपसु सद्धिं ताव मए किं वियप्पेण ? ॥५॥
तेणुत्तुं पणपुव्वं जंपामि स केरिसो ? दिएणुत्तं जइ हं जिणामि ता तं करेमि बडुयं नियविणेयं ॥६॥
अह नो ता तुह सीसो भवामि इय सक्खिणो सुणावेउं । भणियं मुणिणा न घडइ वयणं जम्हा विरुद्धमिमं ॥७॥
जइ वयणमेस धम्मी तुह ता भण कहमपोरिसेयं तं । अत्थं च अत्तणो कह तं कहिही नियय्मिइ कहसु ॥८॥
अह अन्नो तं कहिही सो नणु रागाइसंगओ संतो । विवरीयं पि हु भणिही ता कह जुत्तीए तं घडइ ? ॥९॥
इच्चाइजुत्तिसंगयपमाणवयणेहिं सो कओ तइया । निप्पिट्ठपण्ह-वागरमवयणओ सब्भपच्चक्खं ॥१०॥
पव्वाविओ य तेणं सुसाहुसंगाओ परिणओ धम्मो । नवरं मणयं न मुयइ मणम्मि सो जाइमयमेत्तं ॥११॥
अह माहणीए नियपणइणीए पावाए मोहवसयाए । दिन्नो जोगो भत्तम्मि तेण मरिउं सुरो जाओ ॥१२॥
सा वि हु निव्वेएणं गुरूण कहिऊण नियय्वुत्तंतं । पव्वज्जं काऊणं देवी मायाइ संजाया ॥१३॥
तत्तो सग्गाओ चुओ रायगिहे जाइमयकुदोसेणं । धणइब्भदासचेडीए सो चिलाए सुओ जाओ ॥१४॥
जाओ य अट्ठवरिसो सा वि हु चविऊण देवलोयाओ । पंचसुओवरि जाया धणधूया सुंसमा नाम ॥१५॥
सो तीए बालगाही पुव्वभवब्भासओ अणालिपिओ । निद्धाडिओ धणेणं तद्दोसेणं नियगिहाओ ॥१६॥
जाओ पल्लीवइणो पुत्तो पल्लीवयम्मि य मयम्मि । सो चेव य तस्स पएं चेरेहिं निवेसिओ तेहिं ॥१७॥
अमरिसवसओ तेणं भणिया ते अन्नया नियय्चोरा । रयणाइं दविणजायं तुम्हं मह सूसमा कन्ना ॥१८॥

न च वचनमात्राच्चैव जायते साधुत्वं विवेकीनाम् । तस्माज्जल्प सार्धं तावन्मया किं विकल्पेन ? ॥ ५ ॥
तेनोक्तं पणपूर्वकं जल्पामि स कीदृशः ? द्विजेनोक्तम् । यद्यहं जयामि तदा त्वां करोमि बटुकं निजविनेयम् ॥ ६ ॥
अथ नस्तदा तव शिष्यो भवामीति साक्षिणः श्रावयित्वा । भणितं मुनिना न घटति वचनं यस्माद्विरुद्धमिदम् ॥ ७ ॥
यदि वचनमेष धर्मी तव ततो भण कथमपौरेषेयं तत् । अर्थं चात्मनः कथं त्वं कथयिष्यति निजकमिति कथय ॥ ८ ॥
अथान्यस्तत्कथयिष्यति स ननू रागादिसंगतः सन् । विपरितमपि खलु भणिष्यति ततः कथं युक्त्या तत्घटयति ? ॥ ९ ॥
इत्यादियुक्तिसंगतप्रमाणवचनैः स कृतस्तदा । निष्पृष्टप्रश्न-व्याकरणमवचनतः सर्वप्रत्यक्षम् ॥ १० ॥
प्रव्राजितश्च तेन सुसाधुसङ्गात्परिणतो धर्मः । नवरं मनाग् न मुञ्चति मनसि स जातिमदमात्रम् ॥ ११ ॥
अथ माहण्या निजप्रणयिन्या पापया मोहवशगया । दत्तो योगो भक्ते तेन मृत्वा सुरो जातः ॥ १२ ॥
सापि खलु निर्वेदेन गुरूणां कथयित्वा निजवृतान्तम् । प्रव्रज्यां कृत्वा देवी मायावी सञ्जाता ॥ १३ ॥
ततः स्वर्गाच्च्युतो राजगृहे जातिमदकुदोषेण । धनेभ्यदासचेट्याः स चिलायाः सुतो जातः ॥ १४ ॥
जातश्चाष्टवर्षः सापि खलु च्युत्वा देवलोकात् । पञ्चसुतोपरि जाता धनदुहिता सुंषमा नाम ॥ १५ ॥
स तस्या बालग्राही पूर्वभवाभ्यासाद्वक्रत्वप्रियः[1] । निष्काषितो धनेन तद्दोषेण निजगृहात् ॥ १६ ॥
जातः पल्लिपतेः पुत्रः पल्लिपतौ च मृते । स चैव च तस्य पदे चौरै र्निवेशितस्तत्र ॥ १७ ॥
आमर्षवशतस्तेन भणितास्त अन्यदा निजकचौराः । रत्नानि द्रविणजातं युष्माकं मम सुंषमा कन्या ॥ १८ ॥

---

१. अणालि(दे.)वक्रत्व

जामो धणस्स गेहं अहं वियाणामि गेहमम्मं से । इय मंतिऊण चोरा पडिया धाडीए धणगेहे ॥१९॥
तत्तो य चोरवइणा चिलाइपुत्तेण हक्किओ सेट्ठी । भणसि न भणियं संपइ होसु मणूसो मुसामि अहं ॥२०॥
तत्तो य रित्थ (.....) गुणरयणखाणिं च सुंसुमं घेत्तुं । सक्खं पेच्छंतस्स वि चिलाइपुत्तो विणिक्खंतो ॥२१॥
रायाणं आपुच्छिय पभायसमए निरूविया कुढिया । रयणाइयं मुयाविय बलिया कुढिया गया चोरा ॥२२॥
सुयपंचगेण लग्गो पट्ठीए धणो पलाइया चोरा । निव्वाहिउमचयंतो तं कन्नं सो चिलाइसुओ ॥२३॥
मूढो सीसं छेत्तुं तीए मुहं पत्थिओ पलोयंतो । ते वि हु विलक्खचित्ता लग्गा तं सोइउं बालं ॥२४॥
हा मयणघरिणितुल्ले ! लायन्नामयललामजलकुल्ले ! हा सोहग्गविडंबियगिरिदुहिए ! हा सयासुहिए ॥२५॥
जाव न विदलइ हिययं अम्हाणं तुह गुणे सरंताणं । इंदीवरदलनयणे ! ता वच्छे ! पयड नियवयणं ॥२६॥
ताव परिसुसियं कंठा मरणावत्थं गया छुहाभिहया । जणएणुत्ता दुहियं मं खाउं तरह वसणमिमं ॥२७॥
इय सेसेहिं वि भणियं कमेण नो मन्नियं इमं जाव । ता सुंसुमाए देहं अरत्त-दुट्ठेहि नं भुत्तं ॥२८॥
एयुवमाए जईण आहारो वन्निओ जिणिंदेहिं । नित्थरिउं[1] ते वसणं पुणरवि सुहभायणं जाया ॥२९॥
सो वि हु चिलाइपुत्तो पेच्छइ झाणट्ठियं मुणिं एगं । भो ! मज्झ धम्ममक्खसि जइ णो तुज्झ वि लुणामि सिरं ॥३०॥
उवसम-विवेग-संवरपएहिं तिहिमक्खिओ समासेण । जा सो तहेव गच्छइ तो चिंतिउमेवमारद्धो ॥३१॥
एसो महाणुभावो धम्मज्झाणट्ठिओ मए विग्घं । काउं पुट्ठो धम्मं ता धम्मपयाण को अत्थो ? ॥३२॥

यामो धनस्य गृहमहं विजानामि गृहमर्मं तस्य । इति मन्त्रयित्वा चौराः पतिता धाट्या धनगृहे ॥ १९ ॥
ततश्च चौरपतिना चिलातिपुत्रेणाकारितः श्रेष्ठी । भणसि न भणितं सम्प्रति भव मनुष्यो मोषामि अहम् ॥ २० ॥
ततश्च रिक्थ [.....] गुणरत्नखानिं च सुसुमां गृहीत्वा । साक्षात् प्रेक्षमाणस्यापि चिलातिपुत्रो विनिष्क्रान्तः ॥ २१ ॥
राजानमापृच्छय प्रभातसमये निरुपिताः पदप्रतिकृतिज्ञाताः[2] । रत्नादिकं मोचयित्वा वलिताः पदप्रतिकृतिज्ञाता गताश्चौराः ॥२२॥
सुतपञ्चकेन लग्नः पृष्टे धनः पलायिताश्चौराः । निर्वाहितुमपारयंस्तां कन्यां चिलातिसुतः ॥ २३ ॥
मूढः शीर्षं छित्वा तस्या मुखं प्रस्थितः प्रलोकयन् । तेऽपि खलु विलक्षचित्ता लग्नास्तां शोचितुं बालाम् ॥ २४ ॥
हा मदनगृहिणीतुल्ये ! लावण्यामृतललामजलकुल्ये ! । हा सौभाग्यविडम्बितगिरिदुहित ! हा सदासुखिते ! ॥ २५ ॥
यावन्न विदलति हृदयमस्माकं तव गुणान्स्मरताम् । इन्दीवरदलनयने ! तावद्वत्से ! प्रकटय निजवदनम् ॥ २६ ॥
तावत्परिशोषितकण्ठा मरणावस्थं गता क्षुधाभिहताः । जनकेनोक्ता दुहितरं मां खादित्वा तरत व्यसनमिमम् ॥ २७ ॥
इति शैषैरपि भणितं क्रमेण नो मतमिमं यावत् । तावत्सुंसुमाया देहमरक्त-द्विष्टैरिव भुक्तम् ॥ २८ ॥
एतदुपमया यतीनामाहारो वर्णितो जिनेन्द्रैः । निस्तीर्य ते व्यसनं पुनरपि सुखभाजनं जाताः ॥ २९ ॥
सोऽपि खलु चिलातिपुत्रः पश्यति ध्यानस्थितं मुनिमेकम् । भो ! मम धर्ममाख्यसि यदि नस्तवापि लुनामि शिरः ॥ ३० ॥
उपशम-विवेक-संवरपदैस्त्रिभिराख्यातः समासेन । यावत्स तथैव गच्छति तदा चिन्तयितुमेवमारब्धः ॥ ३१ ॥
एष महानुभावो धर्मध्यानस्थितो मया विघ्नम् । कृत्वा पृष्टो धर्मं तावद्धर्मपदानां कोऽर्थः ? ॥ ३२ ॥

---

१. निच्छरियं - रं० । २. कुढिया (दो) पदप्रतिकृतिज्ञाताः 'पगी' भाषायाम्

तत्थोवसमो कोहस्स निग्गहो सो कहं नु कुद्धस्स ? । मह संजायइ तम्हा चत्तो सव्वो मए कोहो ॥३३॥
बीयं तु विवेगपयं तं पुण धण-सयण-जीवभेयत्थं । तो तं परिभाविंतो स महप्पा मुयइ खग्गसिरे ॥३४॥
जाव णमेयइ वेयइ एस जिओ ताव बंधओ भणिओ । तो संवरपयबुद्धो काउस्सग्गे ठिओ भयवं ॥३५॥
तो रुहिरगंधसंपत्तवज्जतुंडप्पिपीलियाहिं सो । खज्जंतो सुपसंतो थिरचित्तो चालणि व्व कओ ॥३६॥
भणियं च-
जो तिहिं पएहिं धम्मं समभिगओ संजमं समभिरूढो । उवसम-विवेग-संवर चिलाइपुत्तं नमंसामि ॥३७॥
अहिसरिया पाएहिं सोणियगंधेण जस्स कीडीओ । खायंति उत्तमंगं तं दुक्करकारयं वंदे ॥३८॥
धीरो चिलाइपुत्तो मुयंगलीयाहिं चालणि व्व कओ । जो तह वि खज्जमाणो पडिवन्नो उत्तमं अट्ठं ॥३९॥
अड्ढाइज्जेहिं राइंदिएहिं पत्तं चिलाइपुत्तेणं । देविंदामरभवणं अच्छरगणसंकुलं रम्मं ॥४०॥
आगमवयणं सोच्चा जह संबुद्धो इमो महासत्तो । तह अन्नो वि हु बुज्झइ तो सोयव्वं सया वि इमं ॥४१॥

॥ चिलातीपुत्राख्यानकं समाप्तम् ॥३७॥

अधुना रौहिणेयकाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

सिरिरायगिहे रिउकरिवियारणो सेणिओ नरवरिंदो । बंधुरबुद्धिसमिद्धो अभयकुमारो सुओ तस्स ॥१॥
तत्थ य वेभारगिरिंदगुरुगुहारोहगूढकयवासो । लोहक्खुराभिहाणो निवसइ चोरो महाकूरो ॥२॥

तत्रोपशमः क्रोधस्य निग्रहः स कथं नु क्रुद्धस्य ? । मम सञ्जायते तस्मात्त्यक्तः सर्वो मया क्रोधः ॥ ३३ ॥
द्वितीयं तु विवेकपदं तत्पुन र्धन-स्वजन-जीवभेदार्थम् । तदा तं परिभावयन् स महात्मा मुञ्चति खड्गशिरसि ॥ ३४ ॥
यावदेजति[1] वेदयति एष जीवस्तावद्बन्धको भणितः । तदा संवरपदबुद्धः कायोत्सर्गे स्थितो भगवान् ॥ ३५ ॥
ततो रुधिरगन्धसम्प्राप्तवज्रतुण्डपिपीलिकाभिः सः । खाद्यमानसुप्रशान्तः स्थिरचित्त श्चालनीव कृतः ॥ ३६ ॥
भणितं च -
यस्त्रिभिःपदैर्धर्मं समभिगतः संयमं समभिरुढः । उपशम-विवेक-संवरचिलातिपुत्रं नमामि ॥ ३७ ॥
अभिसृता पादैः शोणितगन्धेन यस्य कीटीकाः । खादन्त्युत्तमाङ्गं तं दुष्करकारकं वन्दे ॥ ३८ ॥
धीरश्चिलातिपुत्रः कीटीकाभिश्चालनीव कृतः । यस्तथापि खाद्यमानः प्रतिपन्न उत्तममर्थम् ॥ ३९ ॥
अर्धतृतीयै रात्रिंदिवैः प्राप्तं चिलातिपुत्रेण । देवेन्द्रामरभवनमप्सरोगणसंकुलं रम्यम् ॥ ४० ॥
आगमवचनं श्रुत्वा यथा संबुद्धोऽयं महासत्त्वः । तथान्योऽपि खलु बुध्यते ततः श्रोतव्यं सदापीदम् ॥ ४१ ॥

॥ चिलातिपुत्राख्यानकं समाप्तम् ॥ ३७ ॥

रौहिणेयकाख्यानकम् ॥ ३८ ॥

श्रीराजगृहे रिपुकरिविदारणः श्रेणिको नरवरेन्द्रः । बन्धुरबुद्धिसमृद्धोऽभयकुमारः सुतस्तस्य ॥ १ ॥
तत्र च वैभारगिरीन्द्रगुरुगुहारोहगूढकृतवासः । लोहखुराभिधानो निवसति चौरो महाक्रूरः ॥ २ ॥

---

१. एजनं कर्मणः ।

अवहरिय धणं लोयाण सुत्त-मत्त-प्पमत्तचित्ताण । उवभुंजइ परदारे भक्खइ मंसं महुं पियइ ॥३॥
सोहग्ग-रूव-सुंदेरमंदिरं रोहिणी पिया तस्स । ताण सुओ रोहिणओ गुणेहिं अहियं जणेरसमो ॥४॥
नियमरणकालसमए भणिओ लोहक्खुरेण सो एवं । जंपेमि किंचिं[1] जइ कुणसि वुत्तयं जाय ! मज्झ तुमं ॥५॥
तो रोहिणओ पणमिय पयंपए भणसु ताय ! भणियव्वं । तेणुत्तं मिच्छाए बलियत्तं चोरियाममं ॥६॥
अवरं च एस सुरवरनमंसिओ जो जिणो महावीरो । वयणं पि तस्स मा सुणसु महसि जइ संपयं विउलं ॥७॥
एवमणुसासिऊणं पुत्तं पंचत्तमुवगओ चोरो । रोहिणओ वि हु सविसेसचोरियं कुणइ जणयाओ ॥८॥
अह अन्नया य भुवणत्तएण पणमिज्जामाणकमकमलो । गुणसिलयचेइयम्मी वीरजिणिंदो समोसरिओ ॥९॥
रोहिणओ वि हु दट्ठूण जिणवरं नियमणे वियप्पेइ । जइ वीरजिणब्भासेण जामि ता होइ धम्मसुई ॥१०॥
जायइ जणयस्साऽऽणाभंगो मग्गो वि नत्थि पुण अवरो । ता एस वग्ध-दुत्तडिनाओ जाओ ममेयाणिं ॥११॥
ता वच्चामि पिहेऊण कन्नजुयलं करंगुलिजुएण । इय चिंतिउं तहेव य काउं निच्चं पुरं वयइ ॥१२॥
अह अन्नया य वेगेण गच्छमाणस्स समवसरणंते । तस्स सुनिट्ठुरपयपडणभावओ कंटओ भग्गो ॥१३॥
तेणाणुद्धरिएणं न तरइ गंतुं पयं पि रोहिणओ । अह उद्धरइ तओ जिणवयणं सवणोयरं विसइ ॥१४॥
जा एगसवणविवराओ अंगुलि कड्ढिउं तमुद्धरइ । ता जिणवीरपरूवियसुरस्सरूवं सुयं तेण ॥१५॥
अणमिसनयणा मणकज्जसाहणा पुप्फदामअमिलाणा । चउरंगुलेण भूमिं न छिवंति सुरा जिणा बिंति ॥१६॥

अपहृत्य धनं लोकानां सुप्त-मत्त-प्रमत्तचित्तानाम् । उपभुनक्ति परदारान् भक्षयति मांसं मधुं पिबति ॥ ३ ॥
सौभाग्य-रुप-सुरेन्दरमन्दिरं रोहिणी प्रिया तस्य । तयोः सुतो रौहिणेयो गुणैरधिकं जनकसमः ॥ ४ ॥
निजमरणकालसमये भणितो लोहखुरेण स एवम् । जल्पामि किञ्चिद्यदि करोषि प्रोक्तं जात ! मम त्वम् ॥ ५ ॥
तदा रौहिणैयः प्रणम्य प्रजल्पति भण तात ! भणितव्यम् । तेनोक्तं मिथ्याया बलिकत्वं चौरिकामर्म ॥ ६ ॥
अपरं चैष सुरवरनतो यो जिनो महावीरः । वचनमपि तस्य मा शृणु काङ्क्षसे यदि सम्पद्विपुलाम् ॥ ७ ॥
एवमनुशास्य पुत्रं पञ्चत्वमुपगतश्चौरः । रोहिणैयोऽपि खलु सविशेषचौरिकं करोति जनकात् ॥ ८ ॥
अथान्यदा च भुवनत्रयेण प्रणम्यमानक्रमकमलः । गुणशिलकचैत्ये वीरजिनेन्द्रः समवसृतः ॥ ९ ॥
रोहिणैयोऽपि खलु दृष्ट्वा जिनवरं निजमनसि विकल्पयति । यदि वीरजिनाभ्यासेन यामि तदा भवति धर्मश्रुतिः ॥ १० ॥
जायते जनकस्याज्ञाभङ्गो मार्गोऽपि नास्ति पुनरपरः । तत एष व्याघ्र-दुस्तटीन्यायो जातो ममेदानीम् ॥ ११ ॥
ततो व्रजामि पिधाय कर्णयुगलं कराङ्गुलियुगेन । इति चिन्तयित्वा तथैव च कृत्वा नित्यं पुरं व्रजति ॥ १२ ॥
अथान्यदा च वेगेन गच्छतः समवसरणान्ते । तस्य सुनिष्ठुरपदपतनभावतः कण्टको भग्नः ॥ १३ ॥
तेनानुद्धृतेन न शक्यते गन्तुं पदमपि रोहिणैयः । अथोद्धरति ततो जिनवचनं श्रवणोदरं विशति ॥ १४ ॥
यावदेकश्रवणविवरादङ्गुलिं कृष्ट्वा तमुद्धरति । तावज्जिनवीरप्ररुपितसुरस्वरुपं श्रुतं तेन ॥ १५ ॥
अनिमिषनयना मनःकार्यसाधनाः पुष्पदामाम्लानाः । चतुरङ्गुलेन भूमिं न स्पृशन्ति सुरा जिना ब्रुवन्ति ॥ १६ ॥

---

१. किं पि जइ - रं० ।

जिणभणियसुरसरूवं परिभावितो मणम्मि संचलिओ । मुसिऊण पुरं पुणरवि समागओ नियगुहागेहे ॥१७॥
एवं मुसिज्जमाणे नयरे अग्गेसरा नरा मिलिउं । पणमित्तु निवं आवद्धकरयला विन्नवंति इमं ॥१८॥
देव ! अणाहं व सया मुसिज्जए तुम्ह संतियं नयरं । ता तह करेसु जह सुत्थिया वयं तुह कमे नमिमो ॥१९॥
तं निसुणिऊण दट्ठोट्ठ-भिउडिभासुरनिडालवट्टेण । आरक्खिओ सकोवेण राइणा जंपिओ एवं ॥२०॥
रे पाव ! किं न नयरं पि रक्खिउं तरसि तक्करेहिंतो ? । एवं वुत्तो सो नरवरिंदमुल्लविउमारद्धो ॥२१॥
देव ! पयंडो चोरो निसुओ पुरजणपरंपराए मए । रोहिणओ नामेणं न उणो दिट्ठीए सच्चविओ ॥२२॥
तस्सावलोयणत्थं नियकरयलकलियदीविओ देव ! नयरे परिब्भमंतो कत्थइ पेच्छमि अव्वत्तं ॥२३॥
जा तस्स धरणकज्जे सज्जीहूया वयं पयट्टामो । मग्गेण ताव चोरो विज्जुक्खित्तेहिं करणेहिं ॥२४॥
पासायाओ पासायमक्कमेउं तहेव पायारं । निउणं पेच्छंताण वि कत्थइ वच्चइ न याणामो ॥२५॥
ता कस्सइ आरक्खियपयं पयच्छंतु सामिणो एयं । तं निसुणिउं नरिंदो पलोयए अभयमंतिमुहं ॥२६॥
तेणुत्तं तग्गहणे पउणीकाउं चउव्विहं पि बलं । जह तक्करो न याणइ पुरे पइट्ठे तओ तम्मि ॥२७॥
वेढेउणं नयरं मज्झे हक्किज्जए तओ चोरो । निग्गच्छंतो बज्झइ एस मई ताव तग्गहणे ॥२८॥
तहविहिए आरक्खियभडेहिं पायारमक्कमंतो सो । बद्धुं मऊरबंधेहि घत्तिओ रायपयपुरओ ॥२९॥
तो कोवरत्तनेत्तेण भालतिवलीतरंगभीमेण । जा वज्झो आणत्तो सेणियराएण रोहिणओ ॥३०॥

जिनभणितंसुरस्वरुपं परिभावयन्मनसि सञ्चलितः । मोषयित्वा पुरं पुनरपि समागतो निजगुहागृहे ॥ १७ ॥
एवं मुष्यमाणे नगरे अग्रेसरा नरा मिलित्वा । प्रणम्य नृपमाबद्धकरतला विज्ञापयन्तीदम् ॥ १८ ॥
देव ! अनाथमिव सदा मुष्यते तव सत्कं नगरम् । ततस्तथा कुरु यथा सुस्थिता वयं तव क्रमे नमामः ॥ १९ ॥
तन्निश्रुत्य दष्टौष्ठ-भृकुटि भासुरनिडालपट्टेन । आरक्षितः सकोपेन राज्ञा जल्पित एवम् ॥ २० ॥
रे पाप ! किं न नगरमपि रक्षितुं शक्यसे तस्करेभ्यः ? । एवमुक्तः स नरवरेन्द्रमुल्लपितुमारब्धः ॥ २१ ॥
देव ! प्रचण्डश्चौरो निश्रुतः पुरजनपरम्परया मया । रौहिणेयो नाम्ना न पुनर्दृष्ट्या दृष्टः ॥ २२ ॥
तस्यावलोकनार्थं निजकरतलकलितदीपको देव ! । नगरे प्ररिभ्रमन्कुत्रचित्पश्याम्यव्यक्तम् ॥ २३ ॥
यावत्तस्य धरणकार्ये सज्जीभूता वयं प्रवर्तामहे । मार्गेण तावच्चौरो विद्युदुत्क्षिप्तैः करणैः ॥ २४ ॥
प्रसादात्प्रसादमाक्रम्य तथैव प्राकारम् । निपुणं पश्यतामपि कुत्रचिद्व्रजति न जानीमः ॥ २५ ॥
ततः कस्यचिदारक्षितपदं प्रयच्छन्तु स्वामिन एतत् । तन्निश्रुत्य नरेन्द्रः प्रलोकत अभयमन्त्रिमुखम् ॥ २५ ॥
तेनोक्तं तद्ग्रहणे प्रगुणीकृत्य चतुर्विधमपि बलम् । यथा तस्करो न जानाति पुरे प्रविष्टे ततस्तस्मिन् ॥ २६ ॥
वेष्टयित्वा नगरं मध्ये आकार्यते ततश्चौरः । निर्गच्छन्बध्यत एषा मतिस्तावत्तद्ग्रहणे ॥ २७ ॥
तथाविहिते आरक्षितभटैः प्राकारमाक्रामन् सः । बध्वा मयूरबन्धैः क्षिप्तो राजपदपुरतः ॥ २८ ॥
ततः कोपरक्तनेत्रेण भालत्रिवलीतरङ्गभीमेन । यावद्वध्य आज्ञाप्तः श्रेणिकराजेन रोहिणैयः ॥ २९ ॥

तो विन्नतं अभएण नत्थि लोत्तं इमस्स पासम्मि । चोरो अलद्धलोत्तो जायइ राओ व्व नरनाह ! ॥३१॥
ता देव ! परिक्खिज्जइ इय जंपिउमभयमंतिणा पुट्ठो । को सि तुमं कत्थऽच्छसि इय भणिए आह रोहिणिओ ॥३२॥
सालिग्गामे वत्थव्वगो अहं दुग्गचंडकोडुंबी । निययपओयणकज्जे अज्जेव समागओ एत्थ ॥३३॥
पेच्छणयं पेच्छंतस्स मज्झ महई निसा गया देव ! । तो गच्छंतो गेहम्मि हक्किओ रायपुरिसेहिं ॥३४॥
तो तेहिं भेसिओ हं विज्जुक्खित्तेण जाव करणेण । पायारं अक्कंतो पत्तो ता तुज्झ पुरिसेहिं ॥३५॥
तव्वयणं सोऊणं पुच्छावियमभयमंतिणा गामे । जह दुग्गचंडनामो कोइ कुडुंबी वसइ इहइं ? ॥३६॥
अप्पायत्ता विहिया गामीणो रोहिणेण पुव्वं पि । जंपंति अत्थि परमज्ज सो गओ कहिं वि कज्जेण ॥३७॥
तं सोउमभयमंती चिन्तइ चोरो इमोऽहवा साहू । नज्जइ नऽज्जइ किं पि हु कीरउ ता कोइ वि पबंधो ॥३८॥
इय चिंतिय कारविओ कणयमओऽभयकुमारसचिवेण । अमरविमाणसमाणो मणोहरो गरुयपासाओ ॥३९॥
चीणंसुय-पट्टंसुय-जद्दर-देवंग-देवदूसेहिं । कयउल्लोओ वेल्लहलधयवडाडोयडंबरिओ ॥४०॥
उल्लोयतलपलंबियमुत्ताहलहारदित्तिदिप्पंतो । तवणीयदप्पणावलिचामरनियरेहिं रेहंतो ॥४१॥
रणजणिरकणयकिंकिणिकलावमुहलिज्जमाणदिसिचक्को । कयपंचवन्नपुप्फोवहाररुणुझुणिरभमरउलो ॥४२॥
विद्दुम-मुत्ताहल-पउमराय-विज्जिंदरायपमुहाहिं[1] । विप्फुरियकिरणमालाहि रयणरासीहिं सोहंतो ॥४३॥
विलसंतसालिहंजियमणिघडियसुमत्तवारमाइन्नो । सव्वत्तो विणिवारियदिणयरकिरणावलीपसरो ॥४४॥

तदा विज्ञप्तमभयेन नास्ति लोप्त्रमेतस्य पार्श्वे । चौरोऽलब्धलोप्त्रो जायते राज इव नरनाथ ! ॥ ३० ॥
ततो देव परीक्ष्यते इति जल्पित्वाभयमन्त्रिणा पुष्टः । कोऽसि त्वं कुत्रास्से इति भणित आह रोहिणैयः ॥ ३१ ॥
शालिग्रामे वास्तव्योऽहं दुर्गचण्डकौटुम्बी । निजकप्रयोजनकार्ये अद्यैव समागतोऽत्र ॥ ३२ ॥
प्रेक्षणकं पश्यतो मम महती निशा गता देव ! । तदा गच्छतो गृहे आकारितो राजपुरुषैः ॥ ३४ ॥
ततस्तै भेषयितोऽहं विद्युदुत्क्षिप्तेन यावत्करणेन । प्राकारमाक्रामन्प्राप्तस्तावत्तव पुरुषैः ॥ ३५ ॥
तद्वचनं श्रुत्वा पृच्छितमभयमन्त्रिणा ग्रामे । यथा दुर्गचण्डनाम कोऽपि कुटुम्बी वसतीह ? ॥ ३६ ॥
आत्मायत्ता विहिता ग्रामीणा रौहिणेयेन पूर्वमपि । जल्पन्त्यस्ति परमद्य स गतः कुत्रापि कार्येण ॥ ३७ ॥
तत् श्रुत्वाभयमन्त्री चिन्तयति चौरोऽमयथवा साधुः । ज्ञायते नार्जयति किमपि खलु क्रियतां तावत्कोऽपि प्रबन्धः ॥ ३८ ॥
इति चिन्तयित्वा कारितः कनकमयोऽभयकुमारसचिवेन । अमरविमानसमानो मनोहरो गुरुकप्रासादः ॥ ३९ ॥
चीनांशुक-पट्टांशुक-जर्दर-देवांग-देवदूष्यैः । कृतोल्लोच-धूर्णद्ध्वजपटाटोपऽम्बरितः ॥ ४० ॥
उल्लोचतलप्रलम्बितमुक्ताफलहारदीप्तिदीप्यत् । तपनीयदर्पणावलिचामरनिकरै राजमानः ॥ ४१ ॥
रणझणत्कनककिङ्किणिकलापमुखर्यमाणदिक्चक्रः । कृतपञ्चवर्णपुष्पोपहाररणझणद्भ्रमरकुलः ॥ ४२ ॥
विद्रुम-मुक्ताफल-पद्मराग-वज्रेन्द्रागप्रमुखाभिः । विस्फुरितकिरणमालाभी रत्नराशिभिःशोभमानः ॥ ४३ ॥
विलसच्छालिभञ्जिकामणिघटितसुमत्तवारणाकीर्णः । सर्वतो विनिवारितदिनकरकिरणावलिप्रसरः ॥ ४४ ॥

---

१. ०दनीलपमु० - रं० ।

उव्वूढपढमजोव्वणपीवर-सुसिणिद्ध-सुघणसिहिणाहिं । वारविलयाहिं कलिओ तह नवजोव्वणजुवाणाहिं ॥४५॥
मिउवेणु-वीण-मद्दलरवमीसियमंजुगेयसवणसुहो । किं बहुणा ? भुवणत्तयसंभविसुंदेरसोहन्तो ॥४६॥
तो रोहिणओ चंदप्पभं सुरं पाइऊण मयमत्तो । पडएण छाइउं तत्थ सोविओ रुइरपल्लंके ॥४७॥
तो मयनिद्दाविरमे अवणेउं पडयमुट्ठए जाव । अभयाणुसासिओ तयणु उट्ठिओ जुवइ-जुववग्गो ॥४८॥
जंपंतो जय नंदा जय जय भद्दा पहू तमम्हाण । जाओ देवो अम्हे वि तुज्झ पुण किंकरा सव्वे ॥४९॥
एआओ अच्छराओ एए देवा इमं नियविमाणं । एयाओ रयणरासीओ सामि ! विलससु जहिच्छाए ॥५०॥
तो तेहिं तस्स पुरओ पारद्धं जाव परमपेच्छणयं । ता कंचणदंडकरेण जंपियं एवममरेण ॥५१॥
रे रे ! किं पारद्धं ? ते वि पयंपंति नियपहुपुरओ । विन्नाणदंसणं तयणु दंडहत्थेण पडिभणियं ॥५२॥
दंसिज्जउ विन्नाणं कारिज्जउ परमिमो सुरायारं । जंपंति ते वि केरिसमायारं ? आह दंडकरो ॥५३॥
रे ! विस्सरियं[1] तुम्हं सुरलोए सुरवरो समुप्पन्नो । जं पुव्वभवोवज्जियसुक्कय-दुकयाइं साहेइ ॥५४॥
तो उवभुंजइ नियपुन्नपगरिसुब्भूयसग्गवाससुहं । सोऊण तयं ते वज्जरंति विम्हरियमम्हाणं ॥५५॥
नियसामिसमुप्पत्तीए जायपरिओसपूरियंगाण । ता खमउ[2] एगमवराहमज्जमज्जो ! कयपसाओ ॥५६॥
रोहिणओ वि हु तमदिट्ठपुव्वमच्छेरमणुपलोयंतो । करकलियकणयदंडेण सविणयं तेण विन्नत्तो ॥५७॥
पहुणो कयप्पसाया कहंतु नियसुकय-दुकयकम्माइं । जेण (सु) पुन्ना अमरा तं सोउं चिंतए चोरो ॥५८॥
किमहं जाओ अमरो ? जइ सच्चमिमं तओ कहिज्जंते । लवमेत्तो वि न दोसो अह अलियं ता महाणत्थो ॥५९॥

उद्वोढप्रथमयौवनपीवर-सुस्निग्ध-सुघनस्तनाभिः । वारवनिताभिः कलितस्तथा नवयौवनयुवतिभिः ॥ ४५ ॥
मृदुवेणु-वीणा-मर्दलरवमिश्रितमञ्जुगेयश्रवणसुखः । किं बहुना ? भुवनत्रयसम्भविसौन्दर्यशोभमानः ॥ ४६ ॥
ततो रौहिणेयश्चन्द्रप्रभां सुरां पायित्वा मदमत्तः । पटकेन छादित्वा तत्र शायितो रुचिरपल्यङ्के ॥ ४७ ॥
ततो मदनिद्राविरामे अपनीय पटकमुत्तिष्ठति यावत् । अभयानुशासितस्तदनूत्थितो युवतियुवावर्गः ॥ ४८ ॥
जल्पन् 'जय नन्दा जय जय भद्रा' प्रभुस्त्वमस्माकम् । जातो देवो वयमपि तव पुनः किङ्कराः सर्वे ॥ ४९ ॥
एता अप्सरस एते देवा अयं निजविमानम् । एता रत्नराशयः स्वामिन् ! विलस यथेच्छया ॥ ५० ॥
ततस्तैस्तस्य पुरतः प्रारब्धं यावत्परमप्रेक्षणकम् । तावत्कञ्चनदण्डकरेण जल्पितमेवममरेण ॥ ५१ ॥
रे रे ! किं प्रारब्धं ? तेऽपि प्रजल्पन्ति निजकप्रभुपुरतः । विज्ञानदर्शनं तदनु दण्डहस्तेन प्रतिभणितम् ॥ ५२ ॥
दर्श्यतां विज्ञानं क्रियतां परमयं सुराचारम् । जल्पन्ति तेऽपि कीदृशमाचार ? माह दण्डकरः ॥ ५३ ॥
रे ! विस्मृतं युवां सुरलोके सुरवरः समुत्पन्नः । यत्पूर्वभवोपार्जितसुकृत-दुष्कृतानि कथयति ॥ ५४ ॥
तत उपभुनक्ति निजपुण्यप्रकर्षोद्भूतस्वर्गवाससुखम् । श्रुत्वा तकं ते कथयन्ति विस्मृतमस्माकम् ॥ ५५ ॥
निजस्वामिसमुत्पत्त्या जातपरितोषपूरिताङ्गानाम् । तत क्षामयत्वेकमपराधमथार्य ! कृतप्रसादः ॥ ५६ ॥
रौहिणेयोऽपि खलु तददृष्टपूर्वमाश्चर्यमनुप्रलोकयन् । करकलितकनकदण्डेन सविनयं तेन विज्ञप्तः ॥ ५७ ॥
प्रभवः कृतप्रसादाः कथयन्तु निजसुकृत-दुष्कृतकर्माणि । येन [सु] पुण्या अमरास्तत् श्रुत्वा चिन्तयति चौरः ॥ ५८ ॥
किमहं जातोऽमरः ? यदि सत्यमिदं ततः कथ्यन्ते । लवमात्रोऽपि न दोषोऽथालिकं तदा महानर्थः ॥ ५९ ॥

---

१. वीसरियं रं० । २. खमसु एगमवराहमज्झ्फमज्जो - रं० ।

एवं विचिंतयंतस्स तस्स सिरिवीरनाहवज्जरियं । संभरियं अमरसरूववन्नणं तो विचिंतेइ ॥६०॥
जइ मिलिही जिणभणियं तओ कहिस्सामि इय विभावेउं । जाव पलोयइ निउणं ता नियइ न किं पि सुररूवं ॥६१॥
नयणनिमेसुम्मेसे कुणंति फरिसंति तह महीवलयं । पगलंतसेयवारणकज्जे परिकलियवीयणया ॥६२॥
ता मज्झ जाणणकए होयव्वं अभयमंतिबुद्धीए । इय चिंतंतो पुणरवि य पुच्छिओ तेण सो कहइ ॥६३॥
अहमासि सालिगामे [१]कोडुंबी दुग्गचंडयऽभिहाणो । पयईए महुरवाणी दयावरो दाणधम्मरओ ॥६४॥
पररमणिविरत्तमणो सव्वेसि सुराण विहियबहुमाणो । विणयरओ सव्वेसिं विसेसओ वयपवन्नाणं ॥६५॥
पाएण तुच्छविहवो सच्छासयसंगओ अपेसुन्नो । तेणुप्पन्नो अमरो पयंपए तयणु दंडधरो ॥६६॥
ता आयन्नियमेयं सुन्दरमिण्हि असुन्दरं कहसु । सो भणइ न किं पि कयं असोहणं करिसणं मोत्तुं ॥६७॥
तो तेहि तहा भणियं अभयकुमारस्स सव्वमक्खायं । तेणावि निवो भणिओ न सव्वहा एस चोरो त्ति ॥६८॥
तो मुक्को कड्ढेऊण राइणा रोहिणो समोसरणे । वच्चइ परिभावंतो न सोहणं जणयसिक्खवणं ॥६९॥
जइ न सुणंतो कंटयमवणिंतो भुवणसामिणो वयणं । तो हुंतो नरवइण विणासिओ हं कुमरणेण ॥७०॥
एक्केण वि पुण मुक्को जिणवयणेणं सुएण एमेव । ता सुंदरं जिणेसरपयंपियं न उण जणयस्स ॥७१॥
एवं परिभावंतो जिणिंदचरणारविंदमल्लीणो । जिणचरणकमलमेलियभालयलो पणमिउं थुणइ ॥७२॥
जय करुणारसनिज्झरगिरिंद ! मुणिवंदवंदिय ! जिणिंद ! । दुव्वारमारवारणनिद्दारणदारुणमइंद ! ॥७३॥
एमेव य तुह वयणं निसामियं सामिसाल ! सत्ताण । महईणं पि हु मज्झ व विवईण विणासणं कुणइ ॥७४॥

एवं विचिन्तयतस्तस्य श्रीवीरनाथकथितम् । स्मृतममरस्वरुपवर्णनं ततो विचिन्तयति ॥ ६० ॥
यदि मिलिष्यति जिनभणितं ततः कथयिष्यामीति विभाव्य । यावत्प्रलोकयति निपूणं तावत्पश्यति न किमपि सुररुपम् ॥६१॥
नयननिमेषोन्मेषान् कुर्वन्ति स्पृशन्ति तथा महीवलयम् । प्रगलत्स्वेदवारणकार्ये परिकलितवीजनकाः ॥ ६२ ॥
ततो मम जाननकृते भवितव्यमभयमन्त्रिबुद्धया । इति चिन्तयन्पुनरपि च पृष्टस्तेन स कथयति ॥ ६३ ॥
अहमासीच्छालिग्रामे कुटुम्बी दुर्गचण्डकाभिधानः । प्रकृत्या मधुरवाणी दयापरो दानधर्मरतः ॥ ६४ ॥
पररमणिविरक्तमनाः सर्वेषां सुराणां विहितबहुमानः । विनयरतः सर्वेषां विशेषतो व्रतप्रपन्नानाम् ॥ ६५ ॥
प्रायेण तुच्छविभवः स्वच्छायसङ्गतोऽपैशून्यः । तेनोत्पन्नोऽमरः प्रजल्पति तदनु दण्डधरः ॥ ६६ ॥
तावदाकर्णितमेतत्सुन्दरमिदानीमसुन्दरं कथय । स भणति नैकमपि कृतमशोभनं कर्षणं मुक्त्वा ॥ ६७ ॥
ततस्तैस्तथा भणितमभयकुमारस्य सर्वमाख्यातम् । तेनापि नृपो भणितो न सर्वथैष चौर इति ॥ ६८ ॥
ततो मुक्तः [१]कृष्ट्वा राज्ञा रौहिणेयःसमवसरणे । व्रजति परिभावयन्न शोभनं जनकशिक्षयनम् ॥ ६९ ॥
यदि नाश्रौष्यं कण्टकमपनयन्भुवनस्वामिनो वचनम् । तदाभविष्यन्नरपतिना विनाशितोऽहं कुमरणेन ॥ ७० ॥
एकेनापि पुनर्मुक्तो जिनवचनेन श्रुतेनैवमेव । ततः सुन्दरं जिनेश्वरप्रजल्पितं न पुनर्जनकस्य ॥ ७१ ॥
एवं परिभावयन् जिनेन्द्रचरणारविन्दमालीनः । जिनचरणकमलमुक्तभालतलः प्रणम्य स्तौति ॥ ७२ ॥
जय करुणारसनिर्झरगिरीन्द्र ! मुनिवृन्दवन्दित ! जिनेन्द्र ! । दुर्वारमारवारणनिर्दारणदारुणमृगेन्द्र ! ॥ ७३ ॥
एवमेव च तव वचनं निश्रुतं स्वामिसाल ! सत्त्वानाम् । महतीनामपि खलु ममेव विपदां विनाशनं करोति ॥ ७४ ॥

---

१. 'काढीने' भाषायां ।

इय थोउं वीरजिणं सोउं सद्देसणं जिणाभिहियं । रोहिणओ पणमेउं कयंजली सविणयं भणइ ॥७५॥
भयवं ! भवनिम्महणि पव्वज्जमहं करेमि तुह पासे । परमत्थि किं पि सेणियनिवेण सह मज्झ वत्तव्वं ॥७६॥
अह सेणिओ पयंपइ पभणसु जं किं पि तुज्झ पडिहाइ । तो तेणुत्तं अहमेस तक्करो रोहिणो नाम ॥७७॥
जेण अणाहं व पुरं मुसियं सव्वं पि तुज्झ नरनाह ! । ता संपेससु अभयं जेण समप्पेमि धणजायं ॥७८॥
तो कोऊहलपरिवुडसपउररोहिणयसंजुओ अभओ । पत्तो वेभारगिरिं तत्थ धणं दंसियं तस्स ॥७९॥
अवरं च सरिय-कंदर-मसाण-भूमीहराइठाणेसु । आभरण-रयणपभिइ समप्पिउं पुच्छिउं जणणिं ॥८०॥
सुपसत्थतिहि-मुहुत्तम्मि सिबियमारुहिय विहियसिंगारो । अणुगम्मंतो सेणियनिवेण तित्थं पभावंतो ॥८१॥
गंतूण समवसरणम्मि जिणवरं नमिय गहियपव्वज्जो । अहिगयसयलसुयत्थो तिव्वतवं काउमारद्धो ॥८२॥
कणगावलि-रयणावलि-छट्ठ-ऽट्ठम-दसम-मासखवणेहिं । नाणाविहेहिं दुच्चरतवेहिं परिसोसियसरीरो ॥८३॥
सुक्को किडिकिडिभूओ जाओ पाओवगमणमरणेण । विप्फुरियगत्तदित्ती अमरो अमरालए रुइरो ॥८४॥
तत्तो य चवेऊणं स पाविही सिवपुरिं पहयकम्मो । ता सोयव्वं आगमवयणं जम्हा गुणो गरुओ ॥८५॥

॥ समाप्तं रौहिणेयकाख्यानकम् ॥३८॥

मोहं धियो हरति कापथमुच्छिनत्ति संवेगमुन्नमयति प्रशमं तनोति ।
सूतेऽनुरागमधिकं मुदमादधाति जैनं वचः श्रवणतः किमु यन्न धत्ते ? ॥१॥

॥इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे जिनागमश्रवणगुणवर्णनो द्वादशोऽधिकारः समाप्तः ॥१२॥

इति स्तुत्वा वीरजिनं श्रुत्वा सदेशनां जिनाभिहिताम् । रौहिणेयः प्रणम्य कृताऽंजलिं सविनयं भणति ॥ ७५ ॥
भगवन् ! भवनिर्मथनीं प्रव्रज्यामहं करोमि तव पार्श्वे । परमस्ति किमपि श्रेणिकनृपेण सह मम वक्तव्यम् ॥ ७६ ॥
अथ श्रेणिकः प्रजल्पति प्रभण यत्किमपि तव प्रतिभाति । तदा तेनोक्तमहमेष तस्करो रोहिणो नाम ॥ ७७ ॥
येनानाथमिव पुरं मुषितं सर्वमपि तव नरनाथ ! । ततः सम्प्रेषयाभयं येन समर्पयामि धनजातम् ॥ ७८ ॥
तदा कौतूहलपरिवृत्तसपौररौहिणेयसंयुतोऽभयः । प्राप्तो वैभारगिरिं तत्र धनं दर्शितं तस्य ॥ ७९ ॥
अपरं च सरित्-कन्दर-स्मशान-भूमिगृहादिस्थानेषु । आभरण-रत्नप्रभृतिं समर्प्य पृष्ट्वा जननीम् ॥ ८० ॥
सुप्रशस्ततिथि-मुहूर्ते शिबिकामारुह्य विहितशृङ्गारः । अनुगम्यमानः श्रेणिकनृपेण तीर्थं प्रभावयन् ॥ ८१ ॥
गत्वा समवसरणे जिनवरं नत्वा गृहीतप्रव्रज्यः । अधिगतसकलसूत्रार्थस्तीव्रतपः कर्तुमारब्धः ॥ ८२ ॥
कनकावलि-रत्नावलि-षष्ठाष्टमदशम-मासक्षपणैः । नानाविधै र्दुश्चरतपोभिः परिशोषितशरीरः ॥ ८३ ॥
शुष्कः किडिकिडिभूतो जातः पादोपगमनमरणेन । विस्फुरितगात्रदीप्तिरमरोऽमरालये रुचिरः ॥ ८४ ॥
ततश्च च्युत्वा स प्राप्स्यति शिवपुरिं प्रहतकर्माः । ततः श्रोतव्यमागमवचनं यस्माद्गुणो गुरुकः ॥ ८५ ॥

॥ समाप्तं रौहिणेयकाख्यानकम् ॥ ३८ ॥

●●●

[१३. नमस्कारपरावर्त्तनफलाधिकारः ।]

व्याख्यातमागमश्रवणफलम् । साम्प्रतमागमश्रवणसामग्रयभावे नमस्कारपरावर्तनं विधेयमित्यनेन सम्बन्धेनाऽऽयातं नमस्कारमाहात्म्यं प्रचिकटयिषु राह -

नवकारपभावेणं जीवा पावंति परमकल्लाणं ।
गो-पड्डय-फणि-मिंठा सोमपह-सुदंसणा नायं ॥ १७ ॥

व्याख्या - 'नमस्कारप्रभावेण' पञ्चपरमेष्ठिमन्त्रमाहात्म्यस्वरुपेण हेतुभूतेन 'जीवाः' प्राणिनः प्राप्नुवन्ति लभन्ते 'परमकल्याणं' प्रधानसुखम् । द्रष्टान्तानाह-गौश्च-वृषभः पडुकश्च-सैरभेयः फणी च सर्पः मिण्ठश्च-हस्तिपकः गो-पडुक-फणिमिण्ठाः । तथा सोमप्रभश्च-ब्राह्मणः सुदर्शनश्च - श्रेष्ठी सोमप्रभ-सुदर्शनौ च । चस्य गम्यमानत्वादित्यक्षरार्थः ॥ १९ ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकेभ्योऽवसेयः । तानि चामूनि ।

तत्र तावद् गोकथानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

समस्ति स्वर्गसङ्काशरामणीयकभासिता । भासिताभ्रंलिहोदारदेवसद्मविराजिता ॥१॥
जितानुपमसौन्दर्यधामरम्यालकासमा । समानमानवावासदृश्यमानमहामहा ॥२॥
महत्त्वगुणविख्यातनिर्णीतगुणवैभवा । वै भवानीसमाकारवारयोषिल्लसज्जना ॥३॥
सज्जनानाविधाभ्यासपण्डिताभ्यस्तसत्कला । कलावित्सन्मनोहृद्या हृद्या क्षेमपुरी पुरी ॥४॥
तस्यामासीन्नयावासो नयाभिज्ञो नयप्रियः । नयदत्ताह्वयः श्रेष्ठी श्रेष्ठं कर्म समाश्रितः ॥५॥
शील-सौन्दर्यसम्पन्ना दानानन्दितसज्जना । वसुनन्दाह्वया भार्या तस्यासीद् वर्यवंशजा ॥६॥
स्वच्छाशयः सदाचारः सत्यवाक् शिष्टसम्मतः । धनदत्ताह्वयः पुत्रस्तयोर्जज्ञे जनप्रियः ॥७॥
द्वितीयोऽपि मनाग् मानी माननीयो मनस्विनाम् । बभूव वसुदत्ताह्वः सुतः स्वभ्रातृवत्सलः ॥८॥
अथ तत्रैव दुष्टात्मा दौर्जन्यप्रकृतिर्द्विजः । नानायज्ञावनिः पापात् पापमित्रमभूत् तयोः ॥९॥

तथाऽन्योऽपि नृणां मान्यो मानिनीनां मनोहरः । श्रेष्ठी समुद्रदत्ताह्वस्तत्राऽऽस्ते स्मयवर्जितः ॥१०॥
तस्य सौन्दर्य-लावण्यनिर्जितामरसुन्दरी । कन्यका गुणवत्यस्ति मन्दिरं यौवनश्रियः ॥११॥
तेन सा विधिवद् दत्ता धनदत्ताय धीमते । समक्षं सर्वलोकानां ललामरमया समम् ॥१२॥
तत्रैव श्रीपतित्वादिगुणैः श्रीकान्त इत्यदः । यथार्थतां नयन् नामापरोऽप्यस्ति वणिक्सुतः ॥१३॥
तेन सम्मान-दानादिगुणैरावर्जितो निजाम् । तां सुतां दत्तवांस्तस्मै विलोप्य वचनं स्वकम् ॥१४॥
विरूपं पश्य कीदृक्षं तादृशापि सता कृतम् । यदेकस्मै सुतां दत्त्वा तामन्यस्मै प्रदत्तवान् ॥१५॥
पुरतः शिष्टलोकानामात्मनो लाघवं कृतम् । प्रसिद्धव्यवहारश्च सतामेवं विलोपितः ॥१६॥
एतच्च तेन मित्रेण पिशुनत्वान्निवेदितम् । वसुदत्ताय यद्वा कः स्वभावं मोक्तुमीश्वरः ॥१७॥
उत्प्रासितश्च तेनासौ वचोभिः कोपदीपनैः । न युक्तो मानिनामेवं सोढुं शक्तौ पराभवः ॥१८॥
प्रकृत्या रोषणश्चैकं द्वितीयं तेन रोषितः । विरुद्धश्चिन्तयामास मानवान् मानसे निजे ॥१९॥
मा जीवद् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति । तस्याजननिरेवास्तु जननीक्लैशकारिणः ॥२०॥
आः ! पापेन विना कार्यमनार्येण दुरात्मना । प्रागप्यन्याय्यचर्येण पर्याणायि कथं छलात् ? ॥२१॥
भार्या भ्रातुर्ममानेन वैरिणेत्यतिरोषतः । गत्वा खड्गप्रहारेण प्रापितोऽसौ परासुताम् ॥२२॥
तेनाप्यसौ तथैवाऽऽशु मृत्युवक्त्रे प्रवेशितः । तावेवं कार्यतस्तस्य मृतिं प्राप्तौ परस्परम् ॥२३॥
सोऽयं वज्राग्निदाहस्य मुर्मुराग्निकणोपमः । राम-रावणयोराद्यः प्ररोहो वैरशाखिनः ॥२४॥
अथानेन प्रकारेण तयोर्मृत्युमुपेयुषोः । स्वपित्रा गुणवत्युक्ता विषादं पुत्रि ! मा गमः ॥२५॥
येनाधर्मफलं सर्वमेतदाख्यन्ति सूरयः । विशेषतः पुनः स्त्रीणां पापभावेन तद्यथा ॥२६॥
वैधव्यं बालभावेऽपि दौर्भाग्यं शीलखण्डनम् । अनाथत्वं च वैरूप्यं पैशुन्यं दुष्टभाषणम् ॥२७॥
ततः कुरुष्व सद्धर्मं मत्साहाय्येन निर्वृता । जन्मान्तरेऽपि येनैवं न भवेद् दुःखभाजनम् ॥२८॥
सा पुनः पापकर्मत्वाद् धर्मं निन्दति पापिका । गुणिनां च गुणान् द्वेष्टि साधूंश्च हसति स्वयम् ॥२९॥
ततोऽसौ संसृतौ प्रायः सञ्जाता दुःखभाजनम् । अयोग्यस्य गुणाधानं विधातुं कोऽथवा विभुः ? ॥३०॥
ततो वैधव्यदुःखेन मृताऽसौ स्वायुषः क्षये । कुरङ्गी समभूत् पापान्मृत्वा तौ च कुरङ्गकौ ॥३१॥
सहैव जायते ताभ्यां कर्मवैचित्र्ययोगतः । वैरानुबन्धभावेन मृत्युभावं प्रपद्यते ॥३२॥
हरिण्या हारिणे भावे महिष्या माहिषे भवे । हस्तिन्या हास्तिके जन्मन्यन्योन्यं तौ मृतिं गतौ ॥३३॥
एवं वैरानुबन्धेन त्रयोदश भवानाम् । तस्यां प्रयोजने रौद्रध्यानतो निधनं गतौ ॥३४॥
यथाऽनयोरियं जाता निमित्तं दुःखसन्ततेः । तथाऽन्यस्यापि नारीयं प्रायोऽनर्थपरम्परा ॥३५॥
यद्यप्यसौ क्वचिद् गीता कारणं सुख-दुःखयोः । अतत्त्वदर्शिभिः कैश्चित् सामान्येनैव तद्यथा ॥३६॥
सत्यं जनाः ! वच्मि न पक्षपातो, लोकेषु सप्तस्वपि तथ्यमेतत् ।

नान्यन्मनोहारि नितम्बिनीभ्यो दुःखैकहेतुर्न च कश्चिदन्यः ॥३७॥
तथापि वासनामात्रं सौख्यमस्यां न तत्त्वतः । बडिशामिषवत् तुच्छं ज्ञेयं पर्यन्तदारुणम् ॥३८॥
धनदत्तश्च भव्यत्वाद् दृष्ट्वा तच्चेष्टितं तयोः । वैराग्यान्निर्गतो गेहाद् भ्राम्यन् गामेकया दिशा ॥३९॥
पीडितः क्षुत्-पिपासाभ्यां प्राप्तो राजपुरं क्रमात् । विलोक्य व्रतिनः कांश्चित् तत्राऽऽचाररतान् निशि ॥४०॥
मुमुदे मानसेऽत्यन्तं तोषाच्च समचिन्तयतन् । धन्याः सुलब्धजन्मानः पुण्यवन्तश्च केऽप्यमी ॥४१॥
अजानानस्तदाचारं ययाचे भोजनादिकम् । तैरूचे भद्र ! नास्माकं निःसङ्गत्वादुपाश्रये ॥४२॥
ध्रियते धान्य-पानादिवस्तु रात्रौ विशेषतः । तवापि पापहेतुत्वान्न युक्तं रात्रिभोजनम् ॥४३॥
यत उक्तम्-
स कालः कश्चिदत्रास्ति यत्र नैवोपभुज्यते । हित्वाऽकालं ततः काले यो भुञ्जीत स धर्मवान् ॥४४॥
आयुर्वर्षशतं लोके तदर्धं स उपोषितः । करोति विरतिं धन्यो यः सदा निशिभोजने ॥४५॥
घटिकार्धं घटीमात्रं यो नरः कुरुते व्रतम् । स स्वर्गी किं पुनर्यस्य व्रतं यामचतुष्टयम् ॥४६॥
जीवितं देहिनां यस्मादनेकापायसङ्कुलम् । कथञ्चिद् दैवयोगः स्यान्नक्तं सोऽनशनी भवेत् ॥४७॥
श्रुत्वेदं भाषितं तेन धर्मं सर्वज्ञभाषितः । अणुव्रतादिकः सर्वो जगृहे जन्मिनां हितः ॥४८॥
पालयित्वा स्वकं धर्मं भावना-ऽभ्यासयोगतः । सम्यग्दर्शनसम्पन्नः सौधर्मेऽभूत् सुरोत्तमः ॥४९॥
पञ्चप्रकारमौदार्यसारं वैषयिकं सुखम् । सुरस्त्रीभिः समं तत्र भुक्त्वा द्वे सागरोपमे ॥५०॥
रत्नपुञ्जयुतैरट्टैर्जनैः सद्रत्नभूषणैः । यथार्थनामतां बिभ्रदासीद् रत्नपुरं पुरम् ॥५१॥
तत्राभूल्लोकमध्यस्थः प्रोत्तुङ्गः सुमनःप्रियः । नामतोऽन्वर्थतश्चापि ख्यातो मेरुप्रभो वणिक् ॥५२॥
स्वश्च्युतोऽसौ समाधुर्यं सुकोशोऽभ्रमरोचितः । प्रियमित्रः पवित्रोऽस्याभूत् पङ्कजमुखः सुतः ॥५३॥
वर्धमानो जडैर्मुक्तः सत्पत्रो मन्दिरं श्रियः । स्पृष्टो मित्रकरैः श्रेयानुज्जजृम्भे जनप्रियः ॥५४॥
क्रमेण सरसाहारो निष्पङ्कः सार्द्रतास्पदम् । पूजनीयार्चनप्रह्वः प्रौढभावमुपागतः ॥५५॥
सम्मतो राजहंसानामालयो गुणसन्ततेः । भूषणं वंशसरसो विश्रुतो नालसङ्गतः ॥५६॥
द्वासप्ततिकलाभिज्ञो धर्ममार्गे विचक्षणः । क्रमेण वर्धमानोऽसौ सम्प्राप्तो यौवनश्रियम् ॥५७॥
मेरुप्रभेण मित्रोऽसौ पङ्कजास्योऽभ्यधाय्यदः । वत्स ! वाह्या अमी अश्वा विनश्यन्ति विसूत्रिताः ॥५८॥
विनीता जातिसम्पन्नाः स्वभर्तुर्भद्रकारिणः । संवाह्यां पोषणीयाश्च सच्छिष्या इव वाजिनः ॥५९॥
अङ्गीकृते पितुर्वाक्ये विनीतत्वाच्च दक्षिणात् । ढौकयामास तत्पत्तिरश्वमेकं महागुणम् ॥६०॥
तथाहि-
नानालङ्कारसुग्रीवं रामसैन्यमिवानघम् । विन्ध्यारण्यमिव प्रोच्चैश्चामरोपनिषेवितम् ॥६१॥
नृपास्थानमिव व्यक्तमुल्लसत्कविकं पुरः । विशिष्टश्रुतिसम्पन्नं सैद्धान्तिकमनः समम् ॥६२॥
निर्दोषधारया युक्तं तीक्ष्णखड्गकृतोपमम् । प्रशस्तलक्षणोपेतं शब्दशास्त्रविदं यथा ॥६३॥

विहितस्फारशृङ्गारो रम्यालङ्कारधारकः । सद्वेषः सुहृदाधारस्तमारुह्य विनिर्ययौ ॥६४॥
क्वचित् प्लुत्या क्वचिद् गत्या क्वचिद् वेगेन वीङ्ख्या । क्वचिद् वाहयता भ्रम्या तेनारञ्जि सुहृज्जनः ॥६५॥
ततोऽपि बहिरुद्यानं प्राप्तवान् नन्दनाह्वयम् । तत्रैकं गोवृषं वृद्धं पश्यति स्म स सन्नयः ॥६६॥
दुर्बलाङ्गं गलन्नेत्रं विरूपं विकृताननम् । विपर्यस्तं बृहच्छ्वासं विनिर्यन्मूत्र-गोमयम् ॥६७॥
चतुर्भिश्चरणैर्भूमौ सविलेखैर्विलक्षणैः । छन्दःश्लोकमिव भ्रष्टच्छायं कुकविना कृतम् ॥६८॥
मुमूर्षुं तं विनिश्चित्य संवेगागतमानसः । निर्वेदाच्चिन्तयामास सर्वस्यापीदृशी गतिः ॥६९॥
तथा हि-
क्वगतं युद्धमेतस्य ? क्वतादृग् ढेक्कृतं गतम् ? । क्वगतं रूपलावण्यमहो ! वस्तु विनश्वरम् ॥७०॥
तदस्य म्रियमाणस्य करोमि कुशलाशयः । जन्मान्तरहितं किञ्चिन्नमस्कारप्रदानतः ॥७१॥
अभ्यर्णीभूय कर्णेऽस्य संसारार्णवतारिका । वर्णनीयातिगा कर्णे दत्ता पञ्चनमस्कृतिः ॥७२॥
गौरप्यमंस्त कोऽप्येष ममाकारणबान्धवः । पीयूषवर्षकल्पं मे प्रवेशयति कर्णयोः ॥७३॥
तथाऽयं भावनासारं नमस्कारः श्रुतो गवा । तत्प्रभावेन येनासावुदपादि नृपान्वये ॥७४॥
तथा हि-
तत्रैव नगरे राज्ञः सन्नीतेर्निहतद्विषः । सप्तच्छदस्य शुद्धान्तसाराया भुवनश्रियः ॥७५॥
देव्याः कुक्षिसरःक्रोडे राजहंससमप्रभः । शारदाभ्रस्फुरच्छुभ्रकीर्तितारो[1] विचक्षणः ॥७६॥
कुमारगौरीसम्पन्नः [2]सभूतिः सविनायकः । महेश्वरश्च स नाम्ना प्रसिद्धो वृषभध्वजः ॥७७॥
ज्ञान-विज्ञान-सौभाग्यगुणरत्नमहोदधिः । विज्ञातशास्त्रसद्भावो यौवनं प्राप्तवानसौ ॥७८॥
यथैवं भावतःस्मृत्वा गौर्गतो गतिमुत्तमाम् । तथान्योऽपि स्मरन्नेनां नरः कल्याणमश्नुते ॥७९॥
अहो ! माहात्म्यमेतस्यां स्पष्टं पञ्चनमस्कृतेः । यया गौरप्ययोग्योऽपि जज्ञे राजाङ्गजो गुणी ॥८०॥
यद्वा न किञ्चिदाश्चर्यमचिन्त्यं दृश्यते भुवि । कस्यचिद्वस्तुनो वीर्यं व्यक्तं वाचामगोचरः ॥८१॥
यतः—
स्वल्पाक्षरोऽपि सन्मन्त्रो निगृह्णाति महाग्रहम् । स्वल्पोऽप्यग्निकणो दाह्यं दहत्येव प्रदीपितः ॥८२॥
कल्पद्रुमः कनिष्ठोऽपि कल्पितं राति देहिनाम् । मथ्नाति न महानागान् कनीयानपि केसरी ? ॥८३॥
यथैतल्लोकवस्तूनां सामर्थ्यमवलोकितम् । विशेषेण तथा दृश्यं मन्त्रस्य परमेष्ठिनाम् ॥८४॥
तथा हि-
यस्यासवो व्रजन्त्यत्र नमस्कारसमाःस चेत् । मोक्षं कथञ्चिन्नो यायादवश्यममरो भवेत् ॥८५॥
किञ्च-
पन्नगः पुष्पमाला स्यात् स्थलं च जलधिर्भवेत् । अग्निं शैत्यमवस्कन्देद्यायाच्छत्रुश्च मित्रताम् ॥८६॥

---

१. ०रिच्छत्रकीर्त्ति - रं० । २. सम्भूतिः - रं० ।

एवं स ज्ञान-विज्ञान-सौभाग्यगुणसम्पदाम् । भाजनं भुवने जज्ञे यौवराज्यपदोचितः ॥८६॥
अथान्येद्युस्तदेवासौ सहेलं वाहयन् हयम् । मित्रादिपरिवारेण प्रधानेन समन्वितः ॥८८॥
पूर्वाभिहितमुद्यानं प्राप्तवान् प्रीतमानसः । रम्यत्वात् तत्प्रदेशानामितश्चेतश्च सञ्चरन् ॥८९॥
स्वेच्छया रममाणश्च तं प्रदेशं कथञ्चन । गतवान् गोवृषो यत्र पूर्वजन्मन्यभूत् स्वयम् ॥९०॥
दृष्टपूर्वो मयेत्येवं तदावारककर्मणः । क्षयोपशमयोगेऽस्य जातिस्मरणमुद्ययौ ॥९१॥
क्व वा मयाऽनुभूतोऽयमित्येवं तत्र चिन्तनम् । कुर्वाणः स्वल्पकर्मत्वादज्ञासीत् प्राक्तनं भवम् ॥९२॥
अस्मिन् स्थाने मया चीर्णं पीतमस्मिन्निहाऽऽसितम् । अमुत्र भ्रान्तमेतस्मिन् सुप्तमेवमबोधि सः ॥९३॥
केवलं न विजानाति यथा कर्णामृतोपमः । दत्तः पञ्चनमस्कारः केनापि स्निग्धबन्धुना ॥९४॥
व्यचिन्तयच्च स्वल्पोऽपि धर्मः कल्याणकारकः । यत्प्रभावादहं प्राप्तो रम्यां राज्यश्रियं क्षणात् ॥९५॥
परं किमेतया कृत्यप्राप्तयाऽपि पराद्धर्यया । दैवयोगाद् वियुक्तस्य महाभागेन तेन मे ? ॥९६॥
उपकुरुते यः पूर्वं स तावत् साधुसत्तमः । प्रत्युपकारलिप्सर्यो मन्येहं सोऽपि नो महान् ॥९७॥
पूज्यो महोपकारित्वात् स तावत् किं विकल्पितैः ? । प्रत्युपकारं विना तस्य समाधिः केन मे भवेत् ॥९८॥
ततो यदि कथञ्चित् तं जाने जन्मान्तरप्रियम् । राज्यार्धं संविभज्यास्मै भविष्यामि निराकुलः ॥९९॥
चिन्तयित्वा मनस्येतत् निवृत्तोऽसौ गृहान् प्रति । यथावृत्तं स्ववृत्तान्तं पित्रादिभ्यो न्यवेदयत् ॥१००॥
तैरप्यूचे कुमार ! त्वं मास्म भूरुन्मनाः क्वचित् । सत्कुड्यादौ क्वचिच्चित्रे चरितं लिख्यते तव ॥१०१॥
मा कश्चित् कोऽपि लिखितं दृष्ट्वा तच्चरितं निजम् । जातिस्मर्तृत्वतः सर्वं विद्यात् पूर्वभवान्तरम् ॥१०२॥
पित्रादिभ्यस्तकद्वाक्यं निशम्य वृषभध्वजः । युक्तियुक्तं गुणोपेतं व्यक्तं तुष्टोऽभवत्तराम् ॥१०३॥
तस्मिन्नेव सदुद्याने तुङ्गत्वजितमन्दरम् । मन्दिरं सुन्दरं जैनं कारयामास कालवित् ॥१०४॥
तच्च कीदृशम् ?-
क्वचिद् व्योमाङ्गणं यद्वद् विराजत्तारचन्द्रकम् । क्वचिद् रामांह्रियुग्मं वा तुलाकोटिविभूषणम् ॥१०५॥
क्वचिद् भोजनशालावद् भास्वत्स्पष्टकरोटकम् । क्वचिन्नरेन्द्रकोशाभं विचित्रामलसारकम् ॥१०६॥
जम्बूद्वीपोपमं विष्वग् जगतीपरिवारितम् । स्वर्गाचलेन सङ्काशं भद्रशालेन वेष्टितम् ॥१०७॥
जगत्यां च क्वचित् कुड्ये मुमूर्षुवृषभश्रुतौ । नमस्कारं ददत् कश्चिच्चित्रे व्यालेखि मानवः ॥१०८॥
नियुक्ताश्च नरास्तत्र यः कश्चिच्चित्रमीक्षते । पृच्छति वा तमाचष्टुवं ममेत्येवं विशेषतः ॥१०९॥
पङ्कजास्योऽपि तत्राऽऽगात् कदाचिद् रामणीयकम् । जिनागारस्याथ पश्यंश्चित्रमैक्षिष्ट विस्मितः ॥११०॥
नियुक्ताश्च प्रयत्नेन पप्रच्छ प्रीतिपूर्वकम् । भद्राः ! केनेदमालेखि ? तेऽप्यूचुर्यद् यथास्थितम् ॥१११॥
अत्रान्तरे समाहूतो नियुक्तैर्वृषभध्वजः । तद्वचश्च निशम्यासौ शीघ्रं तत्र समाययौ ॥११२॥
समायातेन तेनापि पङ्कजास्यः प्रसन्नधीः । जनानां वर्णयन्नुच्चैर्विचित्रं चित्रचेष्टितम् ॥११३॥

पियूषवृष्टिसात् तत्त्वदृष्टेः दृष्टो जनः प्रियः । समुन्नतो हरंस्तापमम्भोद इव केकिना ॥११४॥
सस्नेहं सादरं चाऽभ्यां प्रतिपत्तिर्यथोचिता । निर्वर्तिता यथावृतं प्रस्तुतं च निवेदितम् ॥११५॥
तस्मिन् क्षणे तयोः सौख्यं सजातं यत् परस्परम् । तदन्यस्मै समाख्यातुं पार्यते न मनीषिभिः ॥११६॥
इत्थं राज्यश्रियं श्रेयःकृत्येषु रतयोस्तयोः । भुञ्जानयोर्विधानेन गतेनेहाक्रियामपि ॥११७॥
प्रवर्धमानप्रणयौ पार्श्वे धर्मरुचेर्मुनेः । अणुव्रतादिकं धर्मं लब्ध्वा देवौ बभूवतुः ॥११८॥
ईशाननामके कल्पे भुक्त्वा तत्र चिरं सुखम् । सुग्रीवो रामदेवश्च जज्ञाते जनताप्रियौ ॥११९॥
नमस्कारफले चास्मिन् ज्ञेयं पुर्वभवानुगम् । वस्तुतो रामचन्द्रस्य वृत्तमेतत् कथानके ॥१२०॥
तथा हि-
धनदत्तस्य यो जीवः प्रकृत्या शान्तमूर्तिकः । रामदेवः कलाभिज्ञो विज्ञेयः स विचक्षणैः ॥१२१॥
वसुदत्ताह्वयो यस्तु धीरो धीरपराक्रमः । असहिष्णुर्मानवान् जीवो लक्षणस्य स लक्ष्यताम् ॥१२२॥
श्रीकान्तस्तत्र यो गीतः क्रूरो न्यायबहिष्कृतः । स्त्रीलोलं भीमरूपं तं बुध्यध्वं रावणं बुधाः ॥१२३॥
वृषध्वजस्य यो जीवो नमस्कारप्रदानतः । रामदेवप्रियो जज्ञे सुग्रीवोऽसौ सुनिश्चितम् ॥१२४॥
गुणवत्यपि या कन्या वैरभावस्य कारणम् । सा सीतेति सदा प्रायो मृत्युहेतुस्तयोरभूत् ॥१२५॥ ग्रन्थाग्रम्-५०००॥

॥ इति गोकथानकं समाप्तम् ॥३९॥

पड्डुयाख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

रमणीईयसन्निवेसे[१] कम्मऽवि कुलपुत्तओ वसइ एगो । उवरयभज्जो लहुएगपुत्तओ पयइधम्मपिओ ॥१॥
वड्ढंतो जाव सुओ संजाओ अट्ठवरिसदेसीओ । तो सो थविरसमीवे धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥२॥
वेरग्गभावियमणो सो सम्मं कुणइ साहुपव्वज्जं । नवरं सिसुत्तदोसा पमायवसओ सुओ न तहा ॥३॥
भणइ य नियडिपहाणो खंत ! न सक्केमि कढिणभूमीए । हिंडिउमणुवाहणओ जणओ वि हु मोहपडिबद्धो ॥४॥
आणइ पाणहियाओ न समत्थो हं वियारभूमीए । उण्हाभिहओ तत्तो कप्पं से धरइ सीसम्मि ॥५॥
गोयरचरियं काउं खंत ! न सक्केमि तो तहिं पि पिया । भोयणजायं आणइ वसहिठियस्स वि सिणेहेण ॥६॥

पड्डयाख्यानकम् ॥ ४० ॥

रमणीयसन्निवेशे कस्मिन्नपि कुलपुत्रको वसत्येकः । उपरतभार्यो लघ्वेकपुत्रकः प्रकृतिधर्मप्रियः ॥ १ ॥
वर्धमानो यावत्सुतः सञ्जातोऽष्टवर्षदेश्यः । तदा स स्थविरसमीपे धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजितः ॥ २ ॥
वैराग्यभावितमनाः स सम्यक्करोति साधुप्रव्रज्याम् । नवरं शिशूक्तदोषान् प्रमादवशतः सुतो न तथा ॥ ३ ॥
भणति च निकृतिप्रधानः क्षान्त ! न शक्नोमि कठिनभूमौ । हिण्डितुमनुपानहो जनकोऽपि खलु मोहप्रतिबद्धः ॥ ४ ॥
आनयत्युपानहिका न समर्थोऽहं विचारभूमौ । उष्णाभिहतस्ततः कल्पं तस्य धरति शीर्षे ॥ ५ ॥
गोचरचर्यां कर्तुं क्षान्त ! न शक्नोमि तदा तत्रापि पिता । भोजनजातमानयति वसतिस्थितस्यापि स्नेहेन ॥ ६ ॥

---

१. कस्मिन्नपि ।

जा जोव्वणमणुपत्तो तह वि कुओ वि हु किलिट्ठकम्मवसा । देइ न चित्तं मुणिचक्कवालकिरियाकलावम्मि ॥७॥
चोयंति साहुणो तं जणयं पि भणंति एस सत्तो वि । किं न पयट्टइ सम्मं संपइमवि साहुकिरियाए ? ॥८॥
परमत्थओ ते च्चिय विणासिओ एस मोहमूढेण । हेवाइओ सुहेणं नेहेण न किंचि सिक्खविओ ॥९॥
भणसि न भणियं भवओ तह कहवि हु भणसु भद्द ! नियपुत्तं । जह साहुसमायारिं सव्वं सम्मं[1] समायरइ ॥१०॥
अन्नह गुरुकुलवासो तुज्झ वि होही न एयदोसेणं । तंबोलपत्तनाया मा सेसे वी विणासिहसि ॥११॥
अह अन्नया पयंपइ इंदियवसगो रहम्मि नियजणगं । खंत ! न सक्केमि अहं अविरइयाए विणा इण्हिं ॥१२॥
तो जणएणं चिंतियमिमस्स संपाडियं मए सव्वं । एयं तु समोयरिउं न पहू संपइ महापावं ॥१३॥
न वि किं पि अणुन्नायं पडिसिद्धं वा वि जिणवरिंदेहिं । मोत्तुं मेहुणभावं न तं विणा राग-दोसेहिं ॥१४॥
तो परिभावियमिमिणा न एस पावो वयस्स जोगो त्ति । ता किं इमिणा मज्झं ? जाओ जहि वलइ न गओ वि ॥१५॥
अवहीरिओ य तेणं चइऊण वयं गओ गिहावासं । एसो छालीए मुहे अहवा किं माई कुंभंडं[2] ? ॥१६॥
तत्तो कुणइ कुकम्मं न मुणइ तत्तं न सो सुणइ धम्मं । वहइ भरं सहइ छुहं महइ धणं लहइ न हु किं पि ॥१७॥
पुन्नविहीणत्तणओ पयडपयत्तो वि पत्थियं वत्थुं । कारणवियलं कज्जं कुओऽहवा हवइ ? पयडमिमं ॥१८॥
एवं किलिट्ठमणसो कुकम्मनिरयस्स तस्स वरयस्स । उयरभरणं पि दुलहं दूरे संभोगसुहवत्ता ॥१९॥
पायं जणपरिभूओ अप्पुन्नमणोरहो वसणवसओ । अप्पत्तवसणभवणो छुहा-पिवासापराभिहओ ॥२०॥

यावद्यौवनमनुप्राप्तस्तथापि कुतोऽपि हु क्लिष्टकर्मवशात् । ददाति न चित्तं मुनिचक्रवालक्रियाकलापे ॥ ७ ॥
चोदयन्ति साधवस्तं जनकमपि भणन्त्येष सत्त्वोऽपि । किं न प्रवर्त्तते सम्यक् सम्प्रतिमपि साधुक्रियायाम् ? ॥ ८ ॥
परमार्थतस्त्वया चैव विनाशित एष मोहमूढेन । हेवाकीकः सुखेन स्नेहेन न किञ्चित् शिक्षयितः ॥ ९ ॥
भणसि न भणितं भवतस्तथा कथमपि खलु भण भद्र ! निजपुत्रम् । यथा साधुसामाचारिं सर्वं सम्यक् समाचरति ॥ १० ॥
अन्यथा गुरुकुलवासस्तवापि भविष्यति नैतद्दोषेण । तम्बोलपत्रज्ञातान्मा शेषानपि विनक्ष्यसि ॥ ११ ॥
अथान्यदा प्रजल्पतीन्द्रियवशगो रहसि निजजनकम् । क्षान्त ! न शक्नोम्यहमविरत्या विनेदानीम् ॥ १२ ॥
तदा जनकेन चिन्तितमेतस्य सम्पादितं मया सर्वम् । एनं तु समवतरितुं न प्रभुः सम्प्रति महापापम् ॥ १३ ॥
नापि किमप्यनुज्ञातं प्रतिषिद्धं वापि जिनवरेन्द्रैः । मुक्त्वा मैथुनभावं न तं विना राग-दोषैः ॥ १४ ॥
ततः परिभावितमनेन नैष पापो व्रतस्य योग्य इति । ततः किमनेन मम ? जातो यत्र वलति न गजोऽपि ॥ १५ ॥
अवहृतश्च तेन च्युत्वा व्रतं गतो गृहवासम् । एष छालिते मुखे अथवा किं माति कुष्माण्डम् ॥ १६ ॥
ततः करोति कुकर्म न मुणोति तत्त्वं न स श्रुणोति धर्मम् । वहति भारं सहते क्षुधामिच्छति धनं लभते न खलु किमपि ॥ १७ ॥
पुण्यविहीनत्वेन प्रकटप्रयतोऽपि प्रार्थितं वस्तु । कारणविकलं कार्यं कुतोऽथवा भवति ? प्रकटमिदम् ॥ १८ ॥
एवं क्लिष्टमनसः कुकर्मनिरतस्य तस्य वराकस्य । उदरभरणमपि दुर्लभं दूरे सम्भोगसुखवार्त्ता ॥ १९ ॥
प्रायो जनपरिभूतोऽपूर्णमनोरथो व्यसनवशतः । अप्राप्तवसनभवनः क्षुधा-पिपासापराभिहतः ॥ २० ॥

---

१. भव्वं-रं० । २. कुष्माण्डम् ।

पाणीण पुन्नवंताण पेक्खिउं धणविलाससामग्गिं । झूरंतो अप्पाणं तिणतुल्लं पुन्नपरिहीणं ॥२१॥
पच्छायावपरद्धो सुमरंतो सुहयसमणपरियायं । पालंबयचुक्को मक्कडो व्व वेलक्खमावन्नो ॥२२॥
दीणो दुत्थियदेहो दुरंतदारिद्ददुक्खसंतत्तो । विसयसुहं पत्थितो अट्टज्झाणोवगयचित्तो ॥२३॥
मरिऊण समुप्पन्नो महिसीगब्भम्मि पड्डुयत्तेण । जाओ कालकमेणं पयडावयवो दढसरीरो ॥२४॥
तत्तो य तप्पिया पाविऊणमिणमेव कारणं धम्मे । थिरचित्तो मरिऊणं देवो वेमाणिओ जाओ ॥२५॥
ओहिन्नाणेण वियाणिऊण तं पड्डुयं नियं पुत्तं । भामडरूवं वेउव्विऊण नेहेण संपत्तो ॥२६॥
तत्तो महिसीपहुणो पासाओ तेण पड्डुओ कीओ । पिट्ठारोवियभारो पीडिज्जंतो परायत्तो ॥२७॥
निल्लालियग्गजीहो ताडिज्जंतो कसप्पहारेहिं । एयावत्थं पत्तो अहो ! पमाओ महासूत्त ॥२८॥
पंचनमोक्कारपयं पढिउं दाउं कसप्पहारं च । खंत ! न सक्केमि अहं ति सावए वयणमेसो उ ॥२९॥
कत्थ मए सुयपुव्वं वयणमिणं ? तस्स चिंतयंतस्स । जायं जाईसरणं संभरिओ समणपज्जाओ ॥३०॥
पायडियसमणरूवो भणइ सुरो भद्द ! पाविओ वि तए । न कओ धम्मो सम्मं तत्तो एयारिसं वसणं ॥३१॥
तेणुत्तं ताय ! तुमं संपयमवि कुणसु मज्झ जं जोग्गं । पच्चक्खाणपुरस्सरमह सम्मं भावियमणस्स ॥३२॥
दाऊण नमोक्कारं जणओ पत्तो सुरालयं सो वि । नवकारपभावेणं पत्तो सुरसंपयं परमं ॥३३॥
जह एसो संपत्तो नवकारपभावओ सुराण सिरिं । तह अन्नो वि हु पावइ तम्हा जइयव्वमेयम्मि ॥३४॥

॥ पड्डुकाख्यानकं समाप्तम् ॥४०॥

प्राणीनां पुण्यवतां प्रेक्ष्य धनविलाससामग्रीम् । खिद्यमानात्मानं तृणतूल्यं पुण्यपरिहीणम् ॥ २१ ॥
पश्चात्तापपीडितः स्मरन्सुभगश्रमणपर्यायम् । प्रालम्बकच्युतो मर्कट इव विलक्षमापन्नः ॥ २२ ॥
दीनो दुस्थितदेहो दुरन्तदारिद्र्यदुःखसन्तप्तः । विषयसुखं प्रार्थयन्नार्त्तध्यानोपगतचित्तः ॥ २३ ॥
मृत्वा समुत्पन्नो महिषीगर्भे पड्डुयत्वेन । जातः कालक्रमेण प्रकटावयवो दृढशरीरः ॥ २४ ॥
ततश्च तत्पिता प्राप्येदमेव कारणं धर्मे । स्थिरचित्तो मृत्वा देवो वैमानिको जातः ॥ २५ ॥
अवधिज्ञानेन विज्ञाय तं पड्डुकं निजं पुत्रम् । भ्रमणशीलरुपं विकृत्य स्नेहेन सम्प्राप्तः ॥ २६ ॥
ततो महिषीप्रभोः पार्श्वात्तेन पड्डुकःक्रीतः । पृष्ठारोपितभारः पीड्यमानः परायत्तः ॥ २७ ॥
निर्लालिताग्रजीह्वस्ताड्यमानः कशप्रहारैः । एतदवस्थं प्राप्तोऽहो ! प्रमादो महाशत्रुः ॥ २८ ॥
पञ्चनमस्कारपदं पठित्वा दत्वा कशप्रहारं च । क्षान्त ! न शक्नोम्यहमिति श्रावयति वचनमेष तु ॥ २९ ॥
कुत्र मया श्रुतपूर्वं वचनमिदं ? तस्य चिन्तयतः । जातं जातिस्मरणं स्मृतः श्रमणपर्यायः ॥ ३० ॥
प्राकटितश्रमणरुपो भणति सुरो भद्र ! प्राप्तोऽपि त्वया । न कृतो धर्मः सम्यक्ततः एतादृशं व्यसनम् ॥ ३१ ॥
तेनोक्तं तात ! त्वं साम्प्रतमपि कुरु मम यद्योग्यम् । प्रत्याख्यानपुरस्सरमथ सम्यग् भावितमनसः ॥ ३२ ॥
दत्वा नमस्कारं जनकः प्राप्तः सुरालयं सोऽपि । नमस्कारप्रभावेण प्राप्तः सुरसंपत्परमाम् ॥ ३३ ॥
यथेष संप्राप्तो नमस्कारप्रभावतः सुराणां श्रियम् । तथान्योऽपि खलु प्राप्नोति तस्माद्यतितव्यमेतस्मिन् ॥ ३४ ॥

॥ पड्डुकाख्यानकं समाप्तम् ॥ ४० ॥

इदानीं फण्याख्यानकमारभ्यते[१]-

सिरिआससेणपत्थिववित्थयकुलनहयलामलमयंको । वरवम्माजणणीजढरसरस(सर)यहंससमो ॥१॥
भिगंगं-घणंजणसामवन्नदेहो दयेक्करसियमणो । नाणत्तयसंपन्नो कुमारभावम्मि वट्टंतो ॥२॥
सिरिपासजिणेसरभुवणसामिओ सयलजणमणाणंदो । समवयववयस्ससहिओ कोउयवसओ समणुपत्तो ॥३॥
जत्थऽच्छइ कढिण-करालकट्ठ[२]खोडीजलंतजलणम्मि । अइदुक्करदित्ततवप्पभाववक्खित्तपउरजणो ॥४॥
पंचग्गितावियतणू तरणि व्व तवप्पयावदुद्धिरिसो । कट्ठाणुट्ठाणविकिट्ठकाय कमढाभिहाणरिसी ॥५॥
भणियं चे पासकुमरेण भद्द ! किं कुणसि कट्ठमन्नाणं ? । जम्हा जीववहाओ पावमिमं धम्मबुद्धीए ॥६॥
जीवदयाए धम्मो सा एवं जलणजालणे कत्तो । जम्हा जलणो सत्थं निसियमिमं सव्वओधारं ॥७॥
तं निसुणिऊण कमढो विवेयवियलत्तणाओ अमरिसिओ । आयंबिरनयणजुओ खलंतफुरियाहरोट्ठउडो ॥८॥
आबद्धभीमभिउडीभासुरतिवलीतरंगभालयलो । पगलंतसेयसलिलो खणेण जाओ स दुप्पेच्छो ॥९॥
पासट्ठियपबलजलंतबहलजालाकलावजडिलस्स । जलणस्स व संपक्का सो वि हु कोवऽग्गिणा जलिओ ॥१०॥
पासेणुत्तं मा भद्द ! कुणसु कोवं जमेवमिह कुविओ । जलणो व्व तुमं जलिओ दहसि तवं कट्ठनियरं व ॥११॥
अवरं च ववत्थाणं कोव-तवाणं विरुद्धमेगत्थ । अमय-विसाण व तम्हा परिहर परमत्थरिवुमेवं ॥१२॥
एवं मिउवयणेण वि सिक्खिविओ दढयरं मणे कुविओ । भणइ तुमं किं जाणसि धम्मस्स तवस्स रूवं ? ति ॥१३॥

फण्याख्यानकम् ॥ ४१ ॥

श्रीअश्वसेनपार्थिवविस्तरकुलनभस्तलामलमृगाङ्कः । वरवामाजननीजठरसरोराजहंससमः ॥ १ ॥
भृङ्गाङ्ग-धनाञ्जनश्यामवर्णदेहो दयेकरसिकमनाः । ज्ञानत्रयसम्पन्नः कुमारभावे वर्तमानः ॥ २ ॥
श्रीपार्श्वजिनेश्वरभुवनस्वामी सकलजनमन-आनन्दः । समवयववयस्यसहितः कौतुकवशतः समनुप्राप्तः ॥ ३ ॥
यत्रास्ते कठिन-करालकाष्टखोडिज्वलज्ज्वलने । अतिदुष्करदीप्ततपः-प्रभावव्याक्षिप्तपौरजनः ॥ ४ ॥
पञ्चाग्नितापिततनूस्तरणीव तपःप्रताप दुर्धर्षः । कष्टानुष्ठानविकृष्टकायः कमठाभिधानर्षिः ॥ ५ ॥
भणितं च पार्श्वकुमारेण भद्र ! किं करोषि कष्टमज्ञानम् ? । यस्माज्ज्वलनः शस्त्रं निशितमिदं सर्वतो धारम् ॥ ६ ॥
तन्निश्रुत्य कमठो विवेकविकलत्वादमर्षितः । आताम्रनयनयुगः रखलत्स्फुरिताधरौष्ठपुटः ॥ ७ ॥
आबद्धभीमभृकुटिभासुरत्रिवलितरङ्गभालतलः । प्रगलत्स्वेदसलिलः क्षणेन जातः स दुष्प्रेक्ष्यः ॥ ९ ॥
पार्श्वस्थितप्रबलज्वलद्बहलज्वालाकलापजटिलस्य । ज्वलनस्येव सम्पर्कात्सोऽपि खलु कोपाग्निना ज्वलितः ॥ १० ॥
पार्श्वेनोक्तं मा भद्र ! कुरु कोपं यदेवमिह कुपितः । ज्वलन इव त्वं ज्वलितो दहसि तपः काष्ठनिकरमिव ॥ ११ ॥
अपरं च व्यवस्थानं कोपतपसो विरुद्धमेकत्र । अमृत-विषयोरिव तस्मात्परिहर परमार्थरिपुमेवम् ॥ १२ ॥
एवं मृदुवचनेनापि शिक्षयितो दृढतरं मनसि कुपितः । भणति त्वं किं जानासि धर्मस्य तपसो रुपम् ? इति ॥ १३ ॥

---

१. ०नकं समार०-रं० २. बृहत्काष्ठ ।

जाणसि तुमं सरूवं हयाण हत्थाण रहवराणं च । अहयं तु धम्मतत्तं चिरपव्वइओ तवम्मि रओ ॥१४॥
अवरं च किमिह जायइ विसुद्धकट्ठाण जालणे पावं ? । तो फेडिऊण खोडिं पासेण पयासिओ सप्पो ॥१५॥
कमढो वि अत्तणो पासिऊणमन्नाणविलसियमपुव्वं । सामरिसो य सलज्जो य किमवि वेलक्खमावन्नो ॥१६॥
पासजिणो वि हु दाउं फणिणो कन्नंसि जिणनमोक्कारं । पत्तो गिहं फणी वि हु धरणिंदत्तं मरेऊण ॥१७॥छ॥

॥ फण्याख्यानक समाप्तम् ॥४१॥

इदानीं मिण्ठाख्यानकस्यावसरः । तच्च नूपुरपण्डिताख्यानके भणिष्यतयिति क्रमागतं सोमप्रभाख्यानकमुच्यते । तच्चेदम्-

अह भारहखेत्तह दाहिणद्धि, सिरिगिरिवर-पुरलच्छीसमिद्धि ।
पुर वद्धमाणु नामेण आसि, धणसारु सेट्ठि तहिं गुणहं रासि ।
तसु पुत्तु धणेसरनामधेउ, नियरूविं नं सोहम्म देउ ।
अवरो वि तत्थ दिउ सोमदेउ, सोमप्पहु तसु सुउ पठियवेउ ।
तत्थेव नयरि नवजुव्वणाउ, निवसंति दोन्नि पन्नंगणाउ ।
अहमहमिगाए रंजियजणाउ, नियरूवविजियअच्छरगणाउ ।
तह एक्क कामरइनामधेय, तसु रत्तु धणेसरु कुणइ भोय ।
अह दुइजी कामपडाय नाम, भुंजइ सोमप्पह मणभिराम ॥

जानासि त्वं स्वरुपं हयानां हस्तीनां रथवराणां च । अहं तु धर्मतत्त्वं चिरप्रव्रजितस्तपसि रतः ॥ १४ ॥
अपरं च किमिह जायते विशुद्धकाष्ठानां ज्वालने पापम् ? । ततः स्फोटयित्वा खोडिं पार्श्वेन प्रकाशितः सर्पः ॥ १५ ॥
कमठोऽप्यात्मनो दृष्ट्वाज्ञानविलसितमपूर्वम् । सामर्षश्च सलज्जश्च किमपि वैलक्ष्यमापन्नः ॥ १६ ॥
पार्श्वजिनोऽपि खलु दत्त्वा फणिनः कर्णयो र्जिननमस्कारम् । प्राप्तो गृहं फण्यपि खलु धरणेन्द्रत्वं मृत्वा ॥ १७ ॥

॥ फण्याख्यानकं समाप्तम् ॥

सोमप्रभाख्यानकम् ॥ ४२ ॥

अथ भारतक्षेत्रस्य दक्षिणार्धे, श्रीगिरिवर-पुरलक्ष्मीसमृद्धे ।
पुरं वर्धमानं नाम्नासीद्धनसारः श्रेष्ठी तत्र गुणस्य राशिः ।
तस्य पुत्रो धनेश्वरनामधेयो निजरुपेणेव सौधर्मो देवः ।
अपरोऽपि तत्र द्विजः सोमदेवः, सोमप्रभस्तस्य सुतः पठितवेदः ।
तत्रैव नगर्यां नवयुवत्यौ निवसतो द्वे पण्याङ्गने ।
अहमहमिकया रञ्जितजने, निजरुपविजिताप्सरोगणे ।
तथैका कामरति र्नामधेया तस्यां रक्तो धनेश्वरः करोति भोगम् ।
अथ द्वितीयां कामपताकां नाम, भुनक्ति सोमप्रभो मनोभिरामाम् ।

इय विविहविलासिहि, मणपरिओसिहि, ताह कालु वच्चइ सुहेण ।
एत्थंतरि पत्तउ निरु गिज्जंतउ, चित्तु मासु महुयरगणेण ॥१॥
वियसिया जत्थ सहयारतरुमंजरी, कामभल्लि व्व विरहियणसल्लंकरी ।
कुसुमिया किंसुया कीरचंचुप्पहा, विरहियणदहणपजलियचियासच्छहा ।
फुल्लिया मल्लिया फुरियवरगंधया, महुयरा जीए महुपाणमयअंधया ।
सहइ वियसंतिया कुंदकुसुमावली, नं वसंतस्सिरी दित्तदंतावली ।
पाडलापरिमलाइन्नमलयानिलो, नं महुत्थीए निस्सासवरपरिमलो ।
कोइलाकलयलारावबहिरियवणं पेच्छिउं पहियलोयाण झिज्जइ मणं ।
सहइ पवणेण वणराइ कूयंतिया, नं समासाइउं वरमहुं मत्तिया ।
सुव्वए मंजुरुणझुणिर भमरावली, कामएवस्स नं गिज्जए कागली ॥
इय अवरि वि तरुवर, विलिहियअंबर, नवपवाल भरमंथरिय ।
सिंगारियपुरिसिहिं, कयमहुहरिसिहिं सहुं कुसुमिहिं समलंकरिय ॥२॥

तथाहि—

वियसिय कंकेल्लि सकंचणार, पुन्नाग नाग फुल्लिय अपार ।

इति विविधविलासै र्मनः परितोषैस्तेषां कालो गच्छति सुखेन ॥
अत्रान्तरे प्राप्ते नितरां गीयमानश्चित्रो मासो मधुकरगणेन ॥ १ ॥
विकसिता यत्र सहकारतरुमञ्जरी, कामभल्लिकेव विरहिजनशल्यकरी ।
कुसुमिताः किंशुकाः कीरचञ्चुप्रभा, विरहिजनदहनप्रज्वलितचितासदृशाः ।
फुल्लिता मल्लिका स्फुरितवरगंधका, मधुकरा यस्या मधुपानमदान्धकाः ।
सहते विकसन्तीका कुन्दकुसुमावलीव वसन्तश्री र्दिप्तदन्तावली ।
पाटलापरिमलाकीर्णमलयानिभ इव मधुस्त्र्या निश्वासवरपरिमलः ।
कोकिलाकलकलारावबधिरितवनं दृष्ट्वा पथिकलोकानां दहति मनः ।
सहते पवनेन वनराजिः कुजन्ती, इव समासाद्य वरमधुं मत्ता ।
श्रूयते मञ्जुरणझण्द्भ्रमरावलिः, कामदेवस्येव गीयते कागली ।
इत्यपरा अपि तरुवरा विलिखिताम्बरा नवप्रवालभरमन्थरिताः ।
शृङ्गारितपुरुषैः कृतमधुहर्षैः सह कुसुमैः समलङ्कृताः ॥ २ ॥
तथा हि -
विकसितकङ्केलिसकञ्चना, पुन्नागनागफुल्लितापारा ।

कक्कोल-लवल-कयकुसुमबंध, पोमिणि पबुद्ध परिमलसुयंध ।
उम्मीलिय एलाऽगरु लवंग, हिंताल ताल कयकुसुमसंग ।
उज्जिभिय(.....) धवसणाह, कप्पूर कलिय कुसुमियससाह[१] ।
मउरिय पिचुमंद निरंतराल, मंजरिय तिलय सपियंगुसाल ।
पसविय असेस कणियारयाउ, कलियाऽभिराम मालूरयाउ ।
मचकुंद कुंद कलिया विचित्त, जंबीर जाय पसविहिं पवित्त ।
केसर तमाल हुय कुसुमसार, विहसिय तरु अवरि वि बहुपयार ॥
इय चिति पहुत्तइ, परहुयमत्तइ, कामकेलिविणिहियहियय ।
गीएहि गिज्जंतइ, जणि नच्चंतइ, चत्तारि वि उज्जाणि गय ॥३॥
आढत्त तेत्थु अंदोलिकील, तरुणीयणमणहरकामलील ।
तो मिलिए असेसए तरुणिवग्गि, गणियागणि आगइमणहरिल्लि ।
जायउ अंदोलारुहणि ताहं, अन्नोन्न कलहु पन्नंगणाह ।
तो पभणिउ नयरमहाजणेण, किं गज्जहु अलियमडप्फरेण ? ।
जा चाइं कणयह लक्खु देइ, जणि सज्जि पढम अंदोलएइ ।

कक्कोललवलकृतकुसुमबन्धः पद्मिनीप्रबुध्धपरिमलसुगन्धः ।
उन्मीलितैलाऽगरुलवंगो, हिन्ताल तालकृतकुसुमसंगः ।
उज्जृम्भ्य [....] धवसनाथः कर्पूरकलित कुसुमितसशाखः ।
मुकुरितपिचुमन्दनिरन्तरालो मञ्जरिततिलकसप्रियङ्गुसालः ।
प्रसृताशेषकर्णिकारजसः कलिताभिराममालूरका ।
मचकुन्दकुन्दकलिकाविचित्रो जम्बीरजातप्रसविभिः पवित्रः ।
केसरतमालहुतकुसुमसारो विकसिततरुरपरोऽपि बहुप्रकारः ।
इति चित्ते प्रभवन्तः परभृतमताः कामकेलिविनिहतहृदयाः ।
गीतै र्गीयमाने जने नृत्यन्ति चत्वारोऽप्युद्याने गताः ॥ ३ ॥
आरब्धा तैरत्रान्दोलिक्रीडा तरुणीजनमनोहरकामलीला ।
तदा मिलिते ऽशेषके तरुणीवर्गे गणिकागणे आगते मनोहरे ।
जायमाने आन्दोलनारुहणे तयोरन्योन्यं कलहो पणाङ्गनयोः ।
तदा प्रभण्य नगरमहाजनेन किं गर्जतोऽलिकदर्पेण ? ।
या त्यागिने कनकस्य लक्षं ददाति जने सस्ज्ये प्रथममान्दोलयति ।

---

१. ०सुसाह–रं० ।

तो तहिं निरूविउ पियह वयणु, पडिभणिउ धणेसरु समयवयणु ।
हुउ कामरइहि (..... ।
.....) विसाय सुवयणु ।
बंदिहि थुव्वंती, जणु रंजंती, चडिय झत्ति अंदोलइ ।
पडिवक्खु हसंती, चाइ करंती, कणयलक्खु इय हेलइ ॥४॥
तो कामपडाय विलक्ख जाय, उवहसिय जणिहि ठिय सामछाय ।
अधणत्तणेण सोमप्पहो वि, उवहसिउ विलक्खिउ हुयउ सो वि ।
न पुणो तीए गेहम्मि गयउ, चिंतणह लग्गु दुहभरियहियउ ।
सुलहउ धणहीणह माणभंगु, निरु होइ पराभवतणउ संगु ।
न कलत्तु न मित्तु न नियसयणू, उल्लवइ दलिद्दिउ एक्कु खणू ।
वच्चामि कहिंवि ता दूरदेसि, अउपउरदविणआणणह रेसि ।
इय चिंतिऊण नियसयणवग्गि, अकहिंतु वत्त संचलिउ मग्गि ।
ता जंतु जंतु पउमुत्तरम्मि, संपत्तु नयरि वणराइरम्मि ॥
तो तहिं संपत्तिं पहपरिसंतिं, दिट्ठु एक्कु उज्जायवरु ।

तदा ताभ्यां निरुपितं प्रियस्यवदनं, प्रतिभणितो धनेश्वरः समदवचनम् ।
भवतु कामरत्या [..... ।
.....] विषादसुवदनम् ।
बन्दिभिः स्तुवन्ती जनं रञ्जयन्ती, आरुह्य शीघ्रमान्दोलयति ।
प्रतिपक्षं हसन्ती त्यागं कुर्वन्ती कनकलक्षमिति हेलयति ।
तदा कामपताका विलक्षा जातोपहसिता जनैः स्थिता श्यामच्छाया ।
अधनत्वेन सोमप्रभोऽप्युपहसितो विलक्षीभूतः सोऽपि ।
न पुनस्तस्या गृहे गतः चिन्तयितुं लग्नो दुःखभृतहृदयः ।
सुलभो धनहीनस्य मानभङ्गो निश्चितं भवति पराभवत्वेन सङ्गः ।
न कलत्रं न मित्रं न निजकस्वजन, उल्लपति दारिद्रिमेकं क्षणम् ।
गच्छामि कुत्रापि तावद्दूरदेशे, अतिप्रचूरद्रविणाननस्य निमित्तम् ।
इति चिन्तयित्वा निजस्वजनवर्गानकथयित्वा वार्तां सञ्चलितो मार्गे ।
तावद्यातो यातः प्रद्योत्तरे संप्राप्तो नगरिं वनराजिरम्याम् ।
ततस्तत्र सम्प्राप्ते पथपरिश्रान्ते दृष्टमेकमुद्यानवरम् ।

सविणयनियछत्तहं, गुणसंजुत्तह, खन्नवायववक्खाणपरु ॥५॥
जहिं विल्ल-पलासह तरुवराहं, पायउ जइ महिगउ होइ ताहं ।
अह खंजरीडसंजोउ होइ, ता तत्थ निरुत्तु निहाणु जोइ ।
जो पायउ रत्तइं रसिण जुत्तु, सो रयणह निहि अक्खइ निरुत्तु ।
पीइं रसेण कंचणु विसिट्ठु, धवलइ कलहोउ मुणिंदिं सिट्ठु ।
एमाइ सुणिवि गउ जंतु जंतु, जा एक्कु महागिरिकुहरु पत्तु ।
तहिं पायउ बिल्लह महिपविट्ठु, महिं[1] चुंकिइ तहिं रसु रत्तु दिट्ठु ।
हुं होसइ रयणनिहाणु एत्थु, दिसि जोइवि तो तिं खणिउ तेत्थु ।
उवलद्धु समुग्गउ रयणजुत्तु, तं पेच्छिउ हरिसिउ तासु चित्तु ॥
तो गिण्हिहि हत्थि, छाइवि वत्थि, चलिउ जाव सो नियनयरह ।
ता पत्तउ चोरिहिं, पहरणधोरिहिं, हुयउ घरह न बारह ॥६॥
उद्दालिउ रयणंनिहाणु तेहिं, गुरुहक्किहिं तं भेसंतएहिं ।
सो खित्तउ बंधिवि अंधकूवि, गयजीवियासु तहिं ठिउ विरूवि ।
तो दिवसि तइज्जइ कोइ सत्थु, आवासिउ लंधिवि पउरपंथु ।

सविनयनिजछात्रस्य गुणसंयुक्तस्य खन्यवादव्याख्यानपरः ॥ ५ ॥
यत्र बिल्व-पलाशस्य तरुवरस्य पादं यदि महिगतं भवति तस्य ।
अथ खञ्जरीटसंयोगं भवति तदा तत्र निरुक्तं निधानं पश्यति ।
यत्पादंरक्तं रसेनयुक्तं स रत्नस्य निधिमाख्याति निश्चिम् ।
पीतं रसेन कञ्चनं विशिष्टं धवलयति कलधौतं मुनीन्द्रशिष्टम् ।
एवमादि श्रुत्वा गतो यातं यातं यावदेकं महागिरिकुहरं प्राप्तम् ।
तत्र पादं बिल्वस्य महिप्रविष्टं महिं क्षिप्तं तत्र रसं रक्तं दृष्टम् ।
हुं भविष्यति रत्ननिधानमत्र दिशि दृष्ट्वा तदा तं खनयितुं तस्थौ ।
उपलब्धं समुद्गकं रत्नयुक्तं तं दृष्ट्वा हर्षितं तस्य चित्तम् ।
तदा गृह्णाति हस्तेन छादयति वस्त्रेन चलितो यावत्स निजनगरस्य ।
तावत्प्राप्तश्चौरैः प्रहरणधारैः, भूतो गृहस्य न बाह्यस्य ॥ ६ ॥
उत्क्षिप्य रत्ननिधानं तै र्गुरुहक्कृतैस्तं भेषयद्भिः ।
स क्षिप्तो बध्वाऽन्धकूपे गतजीविताशस्तत्र स्थितो विरुपवान् ।
ततो दिवसे तृतीये कोपि सार्थ आवासितो लंघयित्वा प्रचुरपन्थानम् ।

---

१. तहिं तु किइ तहिं इत्यपि पाठो दृश्यते ।

तहिं नीरु[1] निरिक्खिहिं जाव नरा, बोल्लविय तो तिं दीणगिरा ।
अहु पुरिसहु हउं तक्करिहिं घित्तु, बंधेविणु बंभणु एत्थु खेत्तु ।
ता कड्ढहु मइं महइए दयाए, जा मरउं न इह तन्हा-छुहाए ।
तो तेहि पपुच्छिउ सत्थवाहु, तेण वि कड्ढाविउ दिउ अणाहु ।
पुच्छिय सव्वा वि हु तस्स वत्त, अक्खिय विप्पेण वि तहिं निरुत्त ।
सत्थाहिं कयवलु, वियरियसंवलु, पुणु पयट्टु देसंतरहं ।
अक्खंडपयाणिहिं, गरुयपमाणिहिं, तलि संपत्तउ गिरिवरह ॥७॥
जम्मि रेहंति रम्माउ वणराइओ, सुद्धवंसालियाउ व्व सज्जाइओ ।
लोयणालि व्व संपुन्नसोहंजणा, पंडुसेण व्व दीसंतसज्जऽज्जुणा ।
कत्थ वी गेहपंति व्व बहुसालया, रासया जेम्व अन्नत्थ सुहतालया ।
पुन्ननारि व्व विलसंतपुन्नागया, विंझभूमि व्व भासंतसन्नागया ।
रामसेण व्व वरनीलनलजुत्तया, कुडिलमहिल व्व उत्तरलतरचित्तया ।
वारविलय व्व वरतिलयरेहंतया, समरभूमि व्व बाणावलीजुत्तया ।
विण्हुमुत्ति व्व विलसंतसिरिवच्छया, नोडुजाइ व्व दीसंति उक्कच्छया ।

तत्र निश्चितं निरीक्षन्ते यावन्नराः आकारितास्तदा तान्दीनगिरा ।
अथ पुरुषोऽहं तस्करै र्गृहीत्वा बध्वा ब्राह्मणोऽत्र क्षिप्तः ।
तत कर्षतु मयि महत्या दयया यावन्म्रिये नेह तृष्णा-क्षुधया ।
तदा तैः प्रपृष्टः सार्थवाहस्तेनापि कर्षितो द्विजोऽनाथः ।
पृष्ट्वा सर्वाऽपि खलु तस्य वार्ता, आख्यातं विप्रेणापि तत्र निश्चितम् ।
सार्थैः कृतबलो वितरितसंबलः पुनः प्रवृत्तो देशान्तरम् ।
अखण्डप्रयाणै गुरुकप्रमाणैस्तले सम्प्राप्तो गिरिवरस्य ॥ ७ ॥
यस्मिन्राजन्ते रम्या वनराजयः शुद्धवंशालिका इव सज्जिताः ।
लोचनालिरिव सम्पूर्णशोभंजना, पाण्डुसेनेव दृश्यत्सज्जार्जुना ।
कुत्रापि गृहपङ्क्तिरिव बहुसालका, रासका इवान्यत्र शुभतालका ।
पुण्यनारीव विलसत्पुन्नागा, विन्ध्यभूमिरिवभासत्सनागका ।
रामसेनेव वरनीलनलयुक्तका कुटिलमहिलेवोत्तरलतरचिता ।
वारवनितेव वरतिलकराजमाणा, समरभूमिरिव बाणावलीयुक्तका ।
विष्णुमूर्तिरिव विलसच्छ्रीवत्सका वन्यजातिरिव दृश्यत्युत्कच्छका ।

---

१. नीरु (अव्यय०) निश्चितार्थे ।

पवरकन्न व्व संपन्ननववरणया, साहुमुत्ति व्व सोहंतसुहकरुणया ॥
इय णेयपयारेहिं, विहियवियारेहिं, सो गिरि निरुवमतरुवरेहिं ।
अइयारि विरायइ, महिहिं न मायइ, तसु जसु संसिउ सुरवरेहिं ॥८॥
तो तत्थ हेमकूडाभिहाणु दिट्ठउ वाइउ मायापहाणु ।
कहिं भद्दय ! पत्थिउ ? पट्ठु तेण महि भमहि नाइं वज्जिउं धणेण ।
तो कहिउ सव्वु नियचरिउ तेण, तं सुणवि पयंपिउ वाइएण ।
ईसरह सिरोमणि करउं तइं, तो भणिउ तेणाऽणुग्गहहि मइं ।
आरूढ दो वि तो गिरिहि सिहरि, संजुत्ति धाउ-मूलियहं पयरि ।
अवरोप्परु मीसिवि धमिउ जाव, दिप्पन्तु सुवन्नउं हुयउं ताव ।
तं गिण्हवि तो गय कहिंवि गामि, तहिं सुत्ता सुन्नइ देवथामि ।
तो वाइउ सव्वु सुवन्नु लेवि, नट्ठउ दिउ सुत्तउ तहिं चएवि ॥
तो उग्गइ तरणिहिं, जोइउ धरिणिहिं, तेण न कत्थइ दिट्ठउ ।
नं तसु बीहंतहु, भ्क्तत्ति तुरंतउ, धरणीवीठि पइट्ठउ ॥९॥
गहियसोगो तओ चिंतए सो मणे, पुन्नहीणेहिं न हु किंपि लब्भइ जणे ।

प्रवरकन्येव संपन्नववरणका, साधुमूर्तिरिव शोभमानशुभकरुणका ।
इत्यनेकप्रकारै र्विहितविकारैः स गिरिर्निरुपमतरुवरैः ।
अतिचारि विराजते महयां न माति तस्य यशः शंसितुं सुरवरैः ॥ ८ ॥
तदा तत्र हेमकूटाभिधानो दृष्टो वादिको मायाप्रधानः ।
क्व भद्र ! प्रस्थितः ? पृष्टस्तेन महिं भ्रमतो ज्ञायते वर्जितो धनेन ।
तदा कथयित्वा सर्वं निजचरितं तेन तं श्रुत्वा प्रजल्पितं वादिकेन ।
इश्वरस्य शिरोमणि करोमि त्वां ततो भणिते तेनानुगृह्णासि माम् ।
आरुढौ द्वावपि ततो गिरेःशिखरं संयुक्तं धातु-मूलिकायाः प्रतरम् ।
परस्परं मिश्रित्य धमितं यावद्दीप्यत्सुवर्ण भूतं तावत् ।
तद्गृहीत्वा ततो गतौ क्वापि ग्रामे तत्र सुप्तौ शून्ये देवस्थाने ।
तदा वादिकः सर्वं सुवर्ण लात्वा नष्ठो द्विजं सुप्तं तत्र त्यक्त्वा ।
तत उद्गते तरणौ दृष्ट्वा धरणौ तेन न कुत्रचिद्दृष्टः ।
इव तस्य विभ्यतो झटिति त्वरन् धरणीपीठे प्रविष्टः ॥ ९ ॥
गृहीतशोकस्ततश्चिन्तयति स मनसि पुण्यहीनै र्न खलु किमपि लभ्यते जने ।

तह वि धीरेण गरुएण होयव्वयं, लब्भए जेण नियमेण भवियव्वयं ।
एव चिंतंतु चित्तम्मि पुण गच्छए, जाव जोगीसरं जोगियं पेच्छए ।
तयणु नमिऊण सप्पस्सयं तप्पए, सिद्धजोगि त्ति काऊण स पयंपए ।
गरुयदारिद्दुक्खेण अइदुक्खिओ, तुम्ह सरणं पवन्नो धणे कंखिओ ।
ता पसायं क(रे)ऊण दविणज्जणे, हेउमुवइससु अवमाणमलमज्जणे ।
सो वि उवरोहसीलो तयं जंपए, नाममेत्तेण जणि जेणमणुकंपए ।
सो महामंतु सोवन्नधणदायगो, अत्थि मह भद्द ! मंताण वरनायगो ॥
तो तेण पयंपिउ, भयवं ! मह पिउ, देहि मंतु एहु दय करिवि ।
जो करइ न बंधणु वियरइ कंचणु, दुहु दोगच्चह अवहरवि ॥१०॥
दिन्नु जोगिएण तसु मंतु विहिपुव्वयं, कहिउ साहणउवायाइयं सव्वयं ।
किण्हचाउद्दसीए महापियवणे, मडय-वेयाल-फेक्कारभीसावणे ।
मंतकुसुमेहिं जलणम्मि होयव्वयं, नो रउद्दोवसग्गाण भेयव्वयं ।
जाव निस्सरइ जलणाउ कंचणनरो, विज्झवेयव्वओ तयणु वइसानरो ।
कणयपुरिसो न छिन्नो वि सो निट्ठए, सो वि जोगेसरेणेरिसो सिट्ठए ।

तथापि धीरेण गुरुकेन भवितव्यं लभ्यते येन नियमेन भवितव्यम् ।
एवं चिन्तयित्वा चित्ते पुनर्गच्छति यावद् जोगीश्वरं जोगिकं पश्यति ।
तदनु नत्वा सप्रसादं तर्पयति सिद्धयोगीति कृत्वा स प्रजल्पति ।
गुरुकदारिद्रदुःखेनातिदुःखितस्तव शरणं प्रपन्नो धने काङ्क्षितः ।
ततः प्रसादं कृत्वा द्रविणार्जने हेतुमुपदिशापमानमलमर्जने ।
सोऽप्युपरोधशीलस्तकं जल्पति नाममात्रेण जने येनानुकम्पया ।
स महामन्त्रः सुवर्णधनदायकोऽस्ति मम भद्र ! मन्त्राणां वरनायकः ।
तदा तेन प्रजल्पितं भगवन् ! ममापि तु देहि मन्त्रमेतद्दयां कृत्वा ।
यः करोति न बन्धनं वितरति कञ्चनं दुःख दौर्गत्यमपहरति ॥ १० ॥
दत्तं योगिकेन तस्य मंत्रं विधिपूर्वकं कथयित्वा साधनोपायादिकं सर्वम् ।
कृष्णचातुर्दश्यां महापितृवने मृतक-वैताल-फेक्कारभेषयति ।
मन्त्र-कुसुमै र्ज्वलनै भवितव्यं नो रौद्रोपसर्गेभ्यो भेत्तव्यम् ।
यावन्निसरति ज्वलनात्कञ्चननरो विध्यातव्यस्तदनु वैश्वानरः ।
कनकपुरुषो न छिन्नोऽपि स निष्ठाति सोऽपि योगेश्वरेणेदृशः शिष्टः ।

पणमिऊणं पए तस्स सोमप्पहो, पत्तु कम्मिवि निवेसम्मि सोमप्पहो ।
कसिणचउदसिनिसाए मसाणट्ठिओ, जाव होमेइ उवसग्गु तावुट्ठिओ ।
फेक्कारहिं डाइणि, हक्कहिं साइणि, कंपिय धरणि सगिरि-कुहर ।
जा खुहिउ न झाणह, सत्तपहाणह, जा गय तिन्नि निसिहि पहर ॥११॥
तो पच्छिमपहरि करालकाय, हक्कंत पत्त रक्खसनिकाय ।
एक्कारुग्गिन्नजलंतजलण, अइगरुयसिलायलसरिसचलण ।
अट्टट्टहासपुरियदियंत, नियकरकवाले लोहिउ पियंत ।
कंदंत रुलंत समुल्ललंत, पयदहुदघाएहिं महि दलंत ।
ते पेच्छिवि सो संखुद्धु जाव, छलियउ मंताहिवदेवि ताव ।
कंपंतु जाव मंडलए पडिउ, तो उदयगिरिहिं दिणनाहु चडिउ ।
एत्थंतरि पत्तउ लोहनंदि, रत्तंबरु पणयहं विहियनन्दि ।
तयवत्थु तत्थ सो तेण दिट्ठु, कुवि विज्जासाहणि इह बइट्ठु ॥
उवसग्गिहि चलियउ, विज्जए छलियउ, इय जाणिवि रत्तंबरिण ।
वरमंतपओगिहिं, मूलियजोगिहि, पउणीकउ सो आयरिण ॥१२॥

प्रणम्य पदे तस्य सोमप्रभः प्राप्तः कस्मिन्नपि निवेशे सौम्यप्रभः ।
कृष्णचतुर्दशीनिशि स्मशानस्थितो यावज्जुहोत्युपसर्गस्तावदुत्थितः ।
फुत्कारै डाकिनी, हक्कैः शाकिनी कम्पयित्वा धरणिं सगिरि-कुहराम् ।
यावत्क्षुब्धो न ध्यानस्य सत्त्वप्रधानस्य तावद् गतास्त्रयो निशि प्रहराः ॥ ११ ॥
ततः पश्चिमप्रहरे बृहत्काय हक्कन् प्राप्तो राक्षसनिकायः ।
फेत्कारोद्गीर्णज्वलज्ज्वलनोऽतिगुरुकशिलातलसदृशचरणः ।
अट्टाट्टहास्यपूरितदिगन्तो निजकरकरवाले लोहितं पिबन् ।
क्रन्दन्लुठन्समुल्ललन् पददर्दुरघातै महिं दलयन् ।
तान्दृष्ट्वा स संक्षुब्धो यावच्छलित्वा मन्त्राधिपदेवीं तावत् ।
कम्पमानो यावन्मण्डलके पतितस्तदोदयगिरिं दिननाथ आरुढः ।
अत्रान्तरे प्राप्तो लोभनन्दी रक्ताम्बरः पणयस्य विहितनन्दी ।
तदवस्थस्तत्र स तेन दृष्टः कोऽपि विद्यासाधने इहोपविष्टः ।
उपसर्गैश्चलितो विद्ययाच्छलित इति ज्ञात्वा रक्ताम्बरेण ।
वरमन्त्रप्रयोगै मूलिकायोगैः प्रगुणीकृतःस आदरेण ॥ १२ ॥

उवयारि भणिवि रत्तंबरस्स, सो नमिउ कमेहिं करुणायरस्स ।
तो पुच्छिउ तिं किं भद्द एउ ? तेण वि तसु अक्खिउ न किउ खेउ ।
तो चल्लिउ रिट्ठउराभिमुहू, चिंतंतु विसन्नउ दीणमुहू ।
पडिकूलु मज्झु किह पेच्छ विही ?, न वि होइ पुन्नसंचउ सविही ।
जिं जायइ संपय अप्पमाण, महु होइ विवय मरणावसाण ।
ता किं भमेमिं देसंतरम्मि ? इण्हि पि जामि नियपुरवरम्मि ।
गमणेण अहव किं नियनयरि, विलसिरसुहि-सज्जण-बंधुनियरि ? ।
वरि निद्धणु उव्वंधिवि मरउ, मा बंधवघरिहि कुकम्मु करउ ॥
जीवंतु वि निद्धणु, दीणिमवद्धणु, मुयह समाणु गणिज्जइ ।
खग-सुणयसमूहिहि, सहुवजूहिहिं, जइ इम्वइमवि खज्जइ ॥१३॥
ता अज्ज वि किज्जउ पुरसियारु, पेच्छिज्जउ मा बंधवनियारु ।
आराहिमि देवय कावि पवर, जा देह दविणु होएवि सवर ।
तो चलिउ रिट्ठउरकाणणम्मि, चामुंड दिट्ठु तहिं तो मणम्मि ।
चिंतइ आराहिमि एह देवि, अदरिद्दु करइ जिं दविणु देवि ।

उपकारं भणित्वा रक्ताम्बरस्य स नत्वा क्रमैः करुणाकरस्य ।
ततः पृष्ट्वेति किं भद्रैतु ? तेनापि तस्याख्यातं न कृतः खेदः ।
ततश्चलितो रिष्ठपुराभिमुखश्चिन्तयन् विषण्णो दीनमुखः
प्रतिकूलो मम किं पश्य विधिः ? नापि भवति पुण्यसञ्चयः सविधिः ।
किं जायते सम्पदप्रमाणं मम भवति विपन्मरणावसानम् ।
ततः किं भ्रमामि देशान्तरे ? इदानीमपि यामि निजपुरवरे ।
गमनेनाथवा किं निजनगरिं विलसत्सुखी-स्वजनबन्धुनिकराम् ? ।
वरं निर्धन उद्वध्य म्रियतां मा बन्धवगृहे कुकर्म करोतु ।
जीवन्नपि निर्धनो दीनीमवर्धनो मृतस्य समानो गण्यते ।
खग-शुनकसमूहैः सहोपयूथै र्यदीममिवेममपि खाद्यते ॥ १३ ॥
ततोऽद्यापि क्रियते पुरुषकारः प्रेक्ष्यतां मा बन्धवनिकारः ।
आराधयामि देवतां कामपि प्रवरां या ददाति द्रविणं भूत्वा सवरा ।
ततश्चलितो रिष्ठपुरकानने चामुण्डां दृष्ट्वा तत्र तदा मनसि ।
चिन्तयति आराधयामि एषा देवी, अपदरिद्रं करोति या द्रविणं दत्वा ।

इय चिंतिऊण सो संझयालि, तं नमिवि भणइ हउं कलिउ कालि ।
तुहुं भयवइ ! दुक्खियदुक्खहरणि !, पयपणयजणह कल्लाणकरणि ।
मह दुक्खियस्स विहिविनडियस्स, दारिद्दमयरहरनिवडियस्स ।
इय जंपिऊण सो तीए पुरउ, ठिउ निवडिनिपाइं (?) धरणिनिरउ ॥
तो पडिहयतरणिहिं, तमभरि रयणिहिं, गरुयमग्गपरिसंतह ।
तसु निद्द समागय, देविहिं संगय, निम्मलगुण समरंतरह ॥१४॥
एत्थंतरि रायह वाररमणि, गच्छंती पेच्छवि नियभवणि ।
तो केणवि तक्खणि तक्करेण, तहिं कन्नजुयलु तोडवि करेण ।
वरकुंडल हाराऽऽभरणु लेवि, उज्जाणि नट्ठु भडुयणु छलेवि ।
तत्थेव देविमंदिरि पविट्ठु, तसु पासि दच्छु मिल्लिवि बइट्ठु ।
तो वेढिवि ठियभड देविभवणु, उग्गयउ जाव गयणयलि तवणु ।
तो तोहिं दिट्ठु दिउ दच्छजुत्तु, संगहिउ चोरु जाणिवि निरुत्तु ।
तो तेण पयंपिउ संभमेण, हउं चोरु न बंभणु कारणेण ।
देसंतरि पत्थिउ पयइसच्छु, इह सुत्तह केणइ मुक्क दच्छु ॥

इति चिन्तयित्वा स सन्ध्याकाले तां नत्वा भणत्यहं कलित्वा कालि ।
तव भगवति ! दुःखितदुःखहरणि ! पदप्रणतजनस्य कल्याणकरणि ।
मम दुःखितस्य विधिविनटितस्य दारिद्रमकराकरनिपतितस्य ।
इति जल्पित्वा स तस्याः पुरतः स्थितो निपत्य पादौ धरणिनिरतः ।
तदा प्रतिहततरण्यां तमोभरे रजन्यां गुरुकमार्गपरिश्रान्तस्य,
तस्य निद्रा समागता देविभिः संगतान्निर्मलगुणान्स्मरतः ॥ १४ ॥
अत्रान्तरे राज्ञो वाररमणी गच्छन्ती दृष्ट्वा निजभवने ।
तदा केनापि तत्क्षणे तस्करेण तत्र कर्णयुगलं त्रोटयित्वा करेण ।
वरकुण्डल-हाराभरणं लात्वोद्याने नष्ठो भटजनं छलित्वा ।
तत्रैव देवमन्दिरे प्रविष्ठस्तस्य पार्श्वे लोप्त्रं मुञ्च्योपविष्टः ।
तदा वेष्ट्य स्थिता भटा देविभवनमुद्गतो यावद्गगनतले तपनः ।
ततस्तै र्दृष्टो द्विजो लोप्त्रयुक्तः संगृह्य चौरो ज्ञात्वा निश्चितम् ।
तदा तेन प्रजल्पितं ससंभ्रमेणाहं चौरो न ब्राह्मणः कारणेन ।
देशान्तरे प्रस्थितः प्रकृति स्वच्छ इह सुप्तस्य केनचिन्मुक्तं लोप्त्रम् ।

तो तक्करु बंधिवि, बंभणु रुंधिवि, दो वि नीय रायह भवणु ।
तेहिं अक्खिउ रायह, निवनयपायहं, देव ! चोरु आयहं कवणु ? ॥१५॥
किउ दिव्वु नरिंदिं सियजसेण, तो खुट्टउ बंभणु विहिवसेण ।
चोर त्ति धरिय हिययाभिसंधि, बंधाविउ बंभणु मोरबंधि ।
तक्करु पुणु मुक्कउ साहु करिवि, आणत्तु वज्झु जिउ कोवु धरिवि ।
आरोविवि रासहि भडयणेहिं, भामिविपुरि वेढिउ बहुजणेहिं ।
सो मरणमहाभयवेविरंगु, केसरिअक्कंतउ जिह कुरंगु ।
हा हा हयास ! निद्दय ! कयंत ! .....
किं सुद्दसीलकलियस्स अज्ज, सह महु कलंकु आणिउ अणज्ज ! ।
इय एवमाइ कलुणउं रुयंतु, सूलहिं पक्खित्तउ जणुनियंतु ॥
मिल्लिवि गय निवभड, भिउडीउब्भड, एत्थंतरि विज्जाहर ।
तिं नहयलिं दिट्ठा, रूवविसिट्ठा, पभणिय करुणामयरहर ॥१६॥
अहु पुरिसहु करुणासायरहो, हउंसूलिय पोइउ भायरहो ।
निद्दोसु वि ता मइ करि पसाउ, रक्खहु दुम्मरणहु एरिसाउ ।

ततस्तस्करं बध्वा बाह्मणं रुन्ध्वा द्वावपि नीतौ राज्ञो भवनम् ।
तैराख्यातं राज्ञो नृपनतपादस्य देव ! चौर आभ्यां कः ? ॥ १५ ॥
कृतं दिव्यं नरेन्द्रेण श्वेतयशसा, तदालीको ब्राह्मणो विधिवशेन ।
चौर इति धृत्वा हृदयाभिसन्धिं बन्धितो ब्राह्मणो मोरबन्धिम् ।
तस्करः पुन र्मुक्तः साधूकृत्वाऽऽज्ञाप्तो वध्यो द्विजः कोपं धृत्वा ।
आरोप्य रासभे भटजनै र्भ्रामयित्वा पुरिं वेष्ट्यित्वा बहुजनैः ।
स मरणमहाभयवेपमानाङ्गः केसर्याक्रान्तो यथा कुरङ्गः ।
हा हा हताश ! निर्दय ! कृतान्त !, ... ।
किं शुद्धशीलकलितस्याद्य सतो मम कलङ्कमानीतमनार्य ! ।
इत्येवमादिः करुणं रुदन्तं शूल्यां प्रक्षिप्तो जने पश्यति ।
मुक्त्वा गता नृपभटा भृकुट्युद्भटा अत्रान्तरे विद्याधराः ।
तान्नभस्तले दृष्टान्रुपविशिष्ठान् प्रभण्य करुणामकराकराः ! ॥ १६ ॥
अहो ! पुरुषाः करुणा सागराः, अहं शूल्यां प्रोतो भ्रातरः ! ।
निर्दोषोऽपि ततो मयि कृत्वा प्रसादं रक्षतु दुर्मरणादेताद्दशात् ।

अणुकंप करिवि तो खेयरेहिं, आयड्ढिउ जीवदयापरेहिं ।
सो नीयउ कम्मि वि गिरिसिरम्मि, मुक्कउ नवपल्लवसत्थरम्मि ।
तव्वइयरु पुच्छिउ खेयरेहिं, तिं कहिउ सव्वु कोमलसरेहिं ।
तं निसुणिविं पभणिउ तेहिं बुज्झि, तुह विसमकम्म ता मणि म मुज्झ ।
कुण धम्मबुद्धि परलोय रेसि, तं विद्धु जेण मम्मप्पएसि ।
ता जीवसि न हु इय भणिवि तेहिं, कारुन्नपरिहिं वरखेयरेहिं ॥
अणुसट्ठि सुहासिय, दिन्नसुहासिय, अणुकूलियसग्गप्पहह ।
सूलामुहभिन्नह, दुहनिव्विन्नह, हियकामिहि सोमप्पहह ॥१७॥
जो नरइ पडंतहं होइ सरणु, बहुभवसमज्जियपावहरणु ।
दारिद्दमहाभरतिमिरतरणि, जो भवियह सिवपुरि पवरसरणि ।
सग्गाऽपवग्गवरसुहनिहाणु, जिणासासणि जो समयप्पहाणु ।
जो माणमहाभडमाणमलणु, भविओहदुरियदंदोलिकलणु ।
दढतोडिय बहुभवकम्मपासु, घणखुद्दोवद्दवकयविणासु ।
निज्जियचिन्तामणि-कामधेणु, पणमंतुड्डावियपावरेणु ।

अनुकम्पां कृत्वा ततः खेचरैराकृष्य जीवदयापरैः ।
स नीतः कस्मिन्नपि गिरिशिरसि मुक्तो नवपल्लवसस्तरे ।
तद्व्यतीकरः पृष्टः खेचरैस्तेषां कथयित्वा सर्वं कोमलस्वरैः ।
तन्निश्रुत्य प्रभण्य तै र्बुध्यस्व तव विषमकर्म ततो मनसि मा मुह्य ।
कुरु धर्मबुद्धिं परलोक निमित्तं त्वं विद्धो येन मर्मप्रदेशे ।
ततो जीवसि न खल्विति भणित्वा तैः कारुण्यपरै र्वरखेचरैः ।
अनुशास्ति सुखासिको दत्तशुभाशिषो अनुकूलितस्वर्गपथस्य ।
शूलमुखभिन्नस्य दुःखनिर्विण्णस्य हितकामिभिः सोमप्रभस्य ॥ १७ ॥
यो नरके पततो भवति शरणं बहुभवसमर्जितपापहरणम् ।
दारिद्रमहाभरतिमिरतरणि र्यो भविकस्य शिवपुरिप्रवरसरणिः ।
स्वर्गापवर्गवरसुखनिधानो जिनशासने यः समयप्रधानः ।
यो मानमहाभटमानमलनो भविकौघदूरितदन्दोलिकलनः ।
दृढत्रोटितबहुभवकर्मपाशः घनक्षुद्रोपद्रवकृतविनाशः ।
निर्जितचिन्तामणि-कामधेनुः प्रणमदुड्डायितपापरेणुः ।

गह-भूयपणासणपरवमंतु, वेयालुच्चाडण निबिडजंतु ।
किं बहुइं ? वियारि अचिंत धामु, आसन्नसिवह सुगहीयनामु ॥
पंचहिं परमिट्ठिहिं, तेहिं विसिट्ठिहिं, दिन्नु मंतु विज्जाहरिहिं ।
हुउ तासु पभाविं, पणमिउ भाविं, धूमकेउपरमामरिहिं ॥१८॥

॥ सोमप्रभाख्यानकं समाप्तम् ॥४२॥

इदानीं सुदर्शनाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

अत्थि इह भरहवासे चंपा नयरी सिरीए कुलभवणं । रिउरोसदलणदक्खो राया दहिवाहणो तत्थ ॥१॥
नियरूवविजियपज्जुन्नपणइणीपवरपीणघणसिहिणी । अभयाभिहाण भज्जा तस्स भवस्सेव गिरिदुहिया ॥२॥
पउरपुरलोयसामी सेट्ठी तत्थऽत्थि उसहदत्तो त्ति । अरिहद्दासी नामेण पणइणी तस्स ससिवयणा ॥३॥
ताण य सुभगो नामेण सेरहीरक्खगो अहऽन्नदिणे । धेत्तुं महिसीओ गओ अडविं अइरुग्गए सूरे ॥४॥
संझाए पडिनियत्तो अग्गेकाऊण सेरहीनियरं । गच्छंतो संपेच्छइ उस्सग्गे संठियं साहुं ॥५॥
अप्पावरणं हिमकणविमिस्सबहुमाहमाससीएहिं । उद्धसियरोमकूवं पणमित्तु तओ गओ सगहिं ॥६॥
पुणरवि रयणिविरामे गहिउं महिसीओ सो गओ रन्ने । दट्ठूण तं तह च्चिय भत्तिब्भरनिब्भरो नमइ ॥७॥
अप्पावरणं रयणीए सिसिरसीएण सोसियं साहुं । तं अवसीयं काउं व उग्गओ उण्हकिरणो वि ॥८॥

ग्रहभूतप्रणाशनप्रवरमन्त्रो वैतालोच्चाटननिबिडयन्त्रः ।
किं बहुभिः?विचारैरचिन्त्यधामा ऽऽसन्नशिवस्यसुगृहीतनामा ।
पञ्चभिः परमेष्ठिभिस्तैर्विशिष्टै र्दत्तो मन्त्रो विद्याधरिभिः ।
भूतस्तस्य प्रभावात्प्रणम्य भावतो धूमकेतुपरमामरैः ॥ १८ ॥

॥ सोमप्रभाख्यानकं समाप्तम् ॥ ४२ ॥

सुदर्शनाख्यानकम् - ॥ ४३ ॥

अस्तीह भरतवर्षे चम्पा नगरी श्रियाः कुलभवनम् । रिपुरोषदलनदक्षो राजा दधिवाहनस्तत्र ॥ १ ॥
निजरुपविजितप्रद्युम्नप्रणयिनीप्रवरपीनघनस्तनी । अभयाभिधाना भार्या तस्य भवस्यैव गिरिदुहिता ॥ २ ॥
प्रचुरपुरलोकस्वामी श्रेष्ठी तत्रास्त्यर्षभदत्त इति । अरिहादासी नाम्ना प्रणयिनी तस्य शशिवदना ॥ ३ ॥
तयोश्च सुभगो नाम सैरभिरक्षकोऽथान्यदिने । गृहीत्वा महिष्यो गतोऽटवीमचिरोद्गते सूर्ये ॥ ४ ॥
सन्ध्यायां प्रतिनिवृत्तोऽग्रेकृत्या सैरभीनिकरम् । गच्छन्सम्प्रेक्षते उत्सर्गे संस्थितं साधुम् ॥ ५ ॥
अल्पावरणं हिमकणविमिश्रबहुमाघमासशीतैः । उद्धर्षितरोमकूपं प्रणम्य ततो गतः स्वगृहम् ॥ ६ ॥
पुनरपि रजनीविरामे गृहीत्वा महिषीः स गतोऽरण्ये । दृष्ट्वा तं तथा चैव भक्तिभरनिर्भरो नमति ॥ ७ ॥
अल्पावरणं रजन्यां शिशिरशीतेन शोषितं साधुम् । तमपशीतं कर्तुमिवोद्गत उष्णकिरणोऽपि ॥ ८ ॥

भणिऊण मुणिवरिंदो नामोऽरहंताणमिइ पयं पवरं । करवाललयासामलनहंगणं झत्ति उप्पइओ ॥९॥
सुभगो वि नमोक्कारस्स तं पयं गयणगामिणिं विज्जं । मन्नंतो उग्घोसइ न चयइ उच्चिट्ठकाले वि ॥१०॥
तो सिट्ठिणा स भणिओ भद्द ! तए कत्थ पावियं एयं । तेण तओ तप्पुरओ कहिओ साहुस्स वुत्तंतो ॥११॥
सेट्ठी वि आह एसा न केवलं गयणगामिणी किंतु । विज्जा असेसकल्लाणदाइणी कामघेणु व्व ॥१२॥
जम्हा जं किंचि जयत्तयम्मि मण-नयणमोहणं वत्थुं । जिणनाहनमोक्काराओ पाणिणो तं पि पावंति ॥१३॥
एयस्स पभावेणं पुरिसा पाविंति परमरिद्धीओ । नर-असुरा-ऽमर-खेयररायाण जिणेसराणं पि ॥१४॥
ता भद्द ! सुंदरमिणं जं तुमए पावियं परं किंतु । उच्चिट्ठेहिं तिहुयणगुरूण नामं न घेत्तव्वं ॥१५॥
सो आह सामि ! एवं करेमि ता सेट्ठिणा सिणेहेण । सिक्खविओ सुविणीओ सव्वं पि हु पंचनवकारं ॥१६॥
अणुदिवसं अणुसमयं परिवत्तंतस्स तं नमोक्कारं । अइकम(इ) तस्स कालो अहऽन्नया पाउसो पत्तो ॥१७॥
घणकट्ठचियातडिलयहुयासडज्झंतविरहिवग्गस्स । धूमसिहाजालेण व घणेण परिपूरियं गयणं ॥१८॥
कयघोरगज्जिअट्टट्टहासबहिरियदियंतराभोगो । झलकंततरलतडिलयकत्तियविच्छोहदुप्पेच्छो ॥१९॥
विलसिरबलाहमालादसणिल्लो कोइलाकसिणछाओ । भेसंतो विरहियणं विप्फुरिओ पाउसपिसाओ ॥२०॥
पडिहणियरायपसरो विहुयरओ मलिणअंबरो पत्तो । अंगीकयभद्दवओ मुणि व्व घणसमयसंरंभो ॥२१॥
जइ मरइ विसहरासणविसदिट्ठसिहंडिसद्दओ मरओ । विरहियणो तं चोज्जं जं सित्तो अमइमरएण ॥२२॥

भणित्वा मुनिवरेन्द्रो नमोऽर्हद्भ्यइति पदं प्रवरम् । करवाललताश्यामलनभोङ्गणं झटितिमुत्पतितः ॥ ९ ॥
सुभगोऽपि नमस्कारस्य तं पदं गगनगामिनिं विद्याम् । मन्यमान उद्घोषयति न त्यजत्युच्चेष्ठकालेऽपि ॥ १० ॥
ततः श्रेष्ठिना स भणितो भद्र ! त्वया कुत्र प्राप्तमेतत् । तेन ततस्तत्पुरतः कथितः साधो वृत्तान्तः ॥ ११ ॥
श्रेष्ठयप्याहैषा न केवलं गगनगामिनी किन्तु । विद्याऽशेषकल्याणदायिनी कामधेनुरिव ॥ १२ ॥
यस्माद्यत् किञ्चिज्जगत्त्रये मनोनयनमोहनं वस्तु । जिननाथनमस्कारात्प्राणिनस्तमपि प्राप्नुवन्ति ॥ १३ ॥
एतस्य प्रभावेन पुरुषाः प्राप्नुवन्ति परमर्द्धयः । नराऽसुरामर-खेचरराज्ञां जिनेश्वराणामपि ॥ १४ ॥
ततो भद्र ! सुन्दरमिदं यत्त्वया प्राप्तं परं किन्तु । उच्चिष्ठैस्त्रिभुवनगुरुणां नाम न गृहीतव्यम् ॥ १५ ॥
स आह स्वामिन् ! एवं करोमि ततः श्रेष्ठिना स्नेहेन । शिक्षयितः सुविनीतः सर्वमपि खलु पञ्चनमस्कारम् ॥ १६ ॥
अनुदिवसमनुसमयं परिवर्तमानस्य तं नमस्कारम् । अतिक्रामति तस्य कालोऽथान्यदा प्रावृट् प्राप्तः ॥ १७ ॥
घनकाष्टचित्तातडिल्लताहुताशदह्यमानविरहिवर्गस्य । धूमशिखाजालेनेव घनेन परिपूरितं गगनम् ॥ १८ ॥
कृतघोरगर्जिताट्टहास्यबधिरितदिगन्तराभोगः । दीप्यमानत्तरलतडिल्लताकर्त्रिकाविक्षोभदुष्प्रेक्ष्यः ॥ १९ ॥
विलसद्बलाहमालादशनवान् कोकिलाकृष्णच्छायः । भेषयन् विरहिजनं विस्फुरितः प्रावृट्पिशाचः ॥ २० ॥
प्रतिहतरागप्रसरो विधुतरजा मलिनाम्बरः प्राप्तः । अङ्गीकृतभाद्रपदो मुनिरिव घनसमयसरम्भः ॥ २१ ॥
यदि म्रियते विषधरासनविषदष्टशिखण्डिशब्दको मरः । विरहिजनस्तदाश्चर्यं यत् सिक्तोऽमृतिमरकेण ॥ २२ ॥

दिसिदिसिरडंतदद्दुरउक्कडकडुरावजंणियउव्वेया । वच्चंति विरहिणीणं पाणा इव रायहंसगणा ॥२३॥
एवंविहम्मि समए महिसी घेत्तूण सो गओ रन्ने । तो तस्सेक्का महिसी तरिऊण तरंगिणीतीरे ॥२४॥
खेत्तम्मि संपविट्ठा दिट्ठा सुभगेण तो नमोक्कारं । परिवत्तिऊण दिन्ना झड त्ति झंपा नईमज्झे ॥२५॥
तत्थ वि खायरकीलो खुत्तो पंकम्मि आसि तेणेसो । विद्धो म्मएसे पंचतं पाविओ सिग्धं ॥२६॥
जिणनाहनमोक्कारप्पभावओ नियसेट्ठिभज्जाए । गंतूणं उववन्नो अरिहद्दासीए कुच्छिंसि ॥२७॥
परिवद्धमाणगब्भम्मि दोहलो तयणु तीए संजाओ । अभयप्पयाण-जिणण्हवण-साहुसुस्सूसणाविसओ ॥२८॥
कहिओ य तओ सेट्ठिस्स पूरिओ सेट्ठिणा वि हिट्ठेण । तो पवरवासरम्मि पुत्तं पसवइ अरिहदासी ॥२९॥
अह संपते बारसमवासरे सेट्ठिणा सुनक्खते । विहियं तस्स सुदंसण नामं सुहदंसणो जम्हा ॥३०॥
तो तेण कमेण अहिज्जियाओ बाहत्तरि च्चिय कलाओ । पत्तो य विलासिणिनयणमोहणं जोव्वणं एसो ॥३१॥
वररूव-जोव्वणड्ढा उव्वूढा पोढगुणवियड्ढेण । तेण रई कामेण व नामेण मनोरमा कन्ना ॥३२॥
तीए सह विसयसोक्खं उवभुंजंतस्स तस्सऽइक्कमइ । कालो विविहविणोयप्पसंगवक्खित्तचित्तस्स ॥३३॥
तेण नियगुणगणेहिं पुरलोओ पुहइपालपज्जन्तो । तह रंजिओ जहा सो संजाओ तम्मओ चेव ॥३४॥
इओ य-
तत्थेव कविलनामो निवसइ उवरोहिओ दियपहाणो । नियहिययनिव्वि(से)सो संजाओ तस्स वरमित्तो ॥३५॥

दिशिदिशिरटद्दर्दुरोत्कटकटुरावजनितोद्वेगाः । व्रजन्ति विरहिणीनां प्राणा इव राजहंसगणाः ॥ २३ ॥
एवंविधे समये महीषी गृहीत्वा स गतोऽरण्ये । तदा तस्यैका महिषी तीर्त्वा तरङ्गिणीतीरे ॥ २४ ॥
क्षेत्रे सम्प्रविष्टा दृष्टा सुभगेन ततो नमस्कारम् । परिवर्त्त्य दत्ता शीघ्रमिति झम्पा नदीमध्ये ॥ २५ ॥
तत्रापि खादिरकीलकः क्षुप्तः पङ्के आसीत्तेनैषः । विद्धो मर्मप्रदेशे पञ्चत्वं प्राप्तः शीघ्रम् ॥ २६ ॥
जिननाथनमस्कारप्रभावान्निजकश्रेष्ठिभार्यायाः । गत्वोत्पन्नोऽर्हद्दास्याः कुक्षौ ॥ २७ ॥
परिवर्धमानगर्भे दोहदस्तदनु तस्याः सञ्जातः । अभयप्रदान-जिनस्नापन-साधुशुश्रुषणाविषयः ॥ २८ ॥
कथितश्च ततः श्रेष्ठिनः पूरितः श्रेष्ठिनापि हृष्टेन । ततः प्रवरवासरे पुत्रं प्रसवत्यर्हद्दासी ॥ २९ ॥
अथ सम्प्राप्ते द्वादशमवासरे श्रेष्ठिना सुनक्षत्रे । विहितं तस्य सुदर्शनं नाम शुभदर्शनो यस्मात् ॥ ३० ॥
ततस्तेन क्रमेणाध्यापितो द्वासप्तति चैव कलाः । प्राप्तश्च विलासिनिनयनमोहनं यौवनमेषः ॥ ३१ ॥
वररुपयौवनाढ्योद्वोढा प्रौढगुणविदग्धेन । तेन रती कामेनेव नाम्ना मनोरमा कन्या ॥ ३२ ॥
तया सह विषयसौख्यमुभुञ्जतस्तस्यातिक्रामति । कालो विविधविनोदप्रसंगव्याक्षिप्तचित्तस्य ॥ ३३ ॥
तेन निजगुणगणैः पुरलोकः पृथिवीपालपर्यन्तः । तथा रञ्जितो यथा स सञ्जातस्तन्मयश्चैव ॥ ३४ ॥
इतश्च -
तत्रैव कपिलनामो निवसत्युपरोधिको द्विजप्रधानः । निजहृदयनिर्विशेषः सञ्जातस्तस्य वरमित्रः ॥ ३५ ॥

तस्स य भज्जा कविलानामेणं तीए सो वि पइदियहं । रमणीयणमणहरणं गुणनियरं कहइ मित्तस्स ॥३६॥
रूवेण कुसुमबाणो बुद्धिप्पसरेण सुरगुरुसमाणो । तेएण तिव्वकिरणो गमणेण करेणुगइगमणो ॥३७॥
दक्खिन्ननीही सोहग्गसुन्दरो चाइ नियरसिरितिलओ । किं बहुणा परनारीसहोयरो एरिसो मित्तो ॥३८॥
तग्गुणगहणं सोउं परोक्खअणुरायरंजिया कविला । जाया जाव सकामा परिहरिया ता समाहीए ॥३९॥
सा अलहंती सोक्खं कत्थइ नियपरियणे कविलभज्जा । अहिलसइ तस्स संगममणुदियहमुवायकोडीहिं ॥४०॥
अह अन्नदिणे गाममि पेसिओ पुहइसामिणा कविलो । कविला तओ सुदंसणपासे गंतुं इमं भणइ ॥४१॥
तुह मित्तस्स निसाए अइपउरसरीरकारणं जायं । तो एस तुह सयासे न आगओ पेसिया अहयं ॥४२॥
तुह हक्कारणकज्जे जम्हा सो तं विणा मणायं पि । न तरइ ठाउं ता एहि तस्स पासम्मि तो एसो ॥४३॥
न मए नायं ति पयंपिऊण चलिओ ससंभमो झत्ति । संपत्तो तब्भवणे भणइ तओ कत्थ मह मित्तो ? ॥४४॥
कविलाए पभणिओ सो मज्झे भवणस्स तो गओ तत्थ । पुणरवि पुच्छइ एसो सा आह तइज्जयम्मि खणे ॥४५॥
तत्थ वि य अपेच्छंतो पुच्छइ कविला वि भवणदाराणि । ढक्कित्तु उत्तरीयं मेल्लइ पल्लंकपज्जन्ते ॥४६॥
सविलास-सविब्भम-सरल-तरल-सकडक्ख चक्खुखेवेहिं । कब्बुरयंती पभणइ सुदंसणे महुरवयणेहिं ॥४७॥
न हु एत्थ (अत्थि) कविलो पडिजागरणं करेसु कविलाए । किं पडिजागरियव्वं कविलाए सुदंसणो भणइ ॥४८॥
सा आह सुहय ! कविलेण साहिया जप्पभीइ तुज्झ गुणा । तप्पभीइ मयणबाणानलेहिं तत्ता तणू मज्झ ॥४९॥

तस्य च भार्या कपिला नाम्ना तया सोऽपि प्रतिदिवसम् । रमणीजनमनोहरणं गुणनिकरं कथयति मित्रस्य ॥ ३६ ॥
रुपेण कुसुमबाणो बुद्धिप्रसरेण सुरगुरुसमानः । तेजसा तीव्रकिरणो गमनेन करेणुगतिगमनः ॥ ३७ ॥
दाक्षिण्यनिधिः सौभाग्यसुन्दरस्त्यागीनिकरश्रीतिलकः । किं बहुना परनारीसहोदर ईदृशो मित्रः ॥ ३८ ॥
तदुणग्रहणं श्रुत्वा परोक्षानुरागरञ्जिता कपिला । जाता यावत्सकामा परिहृता तावत्समाधिना ॥ ३९ ॥
सालभमानी सौख्यं कुत्रचिन्निजपरिजने कपिलभार्या । अभिलषति तस्य संगममनुदिवसमुपायकोटिभिः ॥ ४० ॥
अथान्यदिने ग्रामे प्रैषितः पृथिवीस्वामिना कपिलः । कपिला ततः सुदर्शनपार्श्वे गत्वेदं भणति ॥ ४१ ॥
तव मित्रस्य निशायामतिप्रचुरशरीरकारणं जातम् । तत एष तव सकाशे नागतः प्रैषिताहम् ॥ ४२ ॥
तवाकारणकार्ये यस्मात् स त्वां विना मनागपि । न शक्नोति स्थातुं तत एहि तस्य पार्श्वे तदेषः ॥ ४३ ॥
न मया ज्ञातमिति प्रजल्प्य चलितः ससंभ्रमः शीघ्रम् । सम्प्राप्तस्तद्भवने भणति ततः कुत्र मम मित्रम् ? ॥ ४४ ॥
कपिलया प्रभणितः स मध्ये भवनस्य तदा गतस्तत्र । पुनरपि पृच्छत्येष साह तृतीये क्षणे ॥ ४५ ॥
तत्रापि चापश्यन्पृच्छति कपिलापि भवनद्वाराणि । पिधायोत्तरियं मुञ्चति पल्यङ्कपर्यन्ते ॥ ४६ ॥
सविलास-सविभ्रम-सरल-तरल-सकटाक्ष-चक्षुःक्षेपैः । कर्बुरयन्ती प्रभणति सुदर्शनं मधुरवचनैः ॥ ४७ ॥
नखल्वत्र कपिलः प्रतिजागरणं कुरु कपिलायाः । किं प्रतिजागरितव्यं कपिलायाः सुदर्शनो भणति ॥ ४८ ॥
साह सुभग ! कपिलेन कथिता यत्प्रभृतिस्तव गुणाः । तत्प्रभृति र्मदनबाणानलैस्तप्ता तनू र्मम ॥ ४९ ॥

एत्तियकालं तुह संगमुस्सुया संठिया सुदुक्खेण । इण्हिं तु नाह नियअंगसंगसलिलेण निव्ववसु ॥५०॥
तत्तो सुदंसणेणं सब्भावं जाणिऊण कविलाए । नियसीलरक्खदक्खेण तक्खणुप्पन्नबुद्धीए ॥५१॥
भणियं सविसाएणं सुयणु ! समीहेमि संगमं तुज्झ । किंतु नियदुकियकम्मेण निम्मिओ पंडओ अहयं ॥५२॥
अलियकयपुरिसवेसो वसामि नयरीए तो विरत्ताए । [1]उग्घाडिउं कवाडे झड त्ति नीसारिओ तीए ॥५३॥
संपत्तो नियभवणे सुदंसणो नियमणे विचिंतेइ । अहह ! अहो ! महिलाणं अकज्जकरणुज्जमो अहियं ॥५४॥
तहा हि-
न गणइ कुलाभिमाणं न य इहलोगं न यावि परलोगं । नियकुलकलंककारी नारी चल्लंतिया मारी ॥५५॥
महिला अयसनिवासो कवड-कुहेडाण मंदिरं महिला । महिला नरयमहापुरपायडपयवी विणिद्दिट्ठा ॥५६॥
मुहमहुरा परिणइदारुणा य दीसइ मणोहरा महिला । किंपागफलसरिच्छा महिला मूलं अणत्थाणं ॥५७॥
कंदररहिया वग्घी विसूइया भोयणं विणा महिला । पंकं विणा वि कलंको महिला वयणिज्जकुलभवणं ॥५८॥
महिला मोहवरहिया अरज्जुयं बंधणं जए महिला । खणरत्त-खणविरत्ता हलिद्दरागोवमा महिला ॥५९॥
करिकन्नचवलचित्ता कयंतचित्तं व निग्घिणा महिला । महिला सच्चविरहिया अणब्भवज्जासणी महिला ॥६०॥
ता कहमिमीए छलिओ पावाए चिंतिऊण नियमेइ । एगागी परगेहे न गमिस्सं जावजीवाए ॥६१॥
तद्दियहाओ जाओ विसेसओ धम्मकम्मकयचित्तो । अह अन्नया कयाई इंदमहो आगओ तत्थ ॥६२॥

एतावत्कालं तव संगमोत्सुका संस्थिता सुदुःखेन । इदानीं तु नाथ ! निजाङ्गसंगसलिलेन निर्वापय ॥ ५० ॥
ततः सुदर्शनेन सद्भावं ज्ञात्वा कपिलायाः । निजशीलरक्षदक्षेण तत्क्षणोत्पन्नबुद्धिना ॥ ५१ ॥
भणितं सविषादेन सुतनु ! समीहे संगमं तव । किन्तु निजदुष्कृतकर्मणा निर्मितः पंडकोऽहम् ॥ ५२ ॥
अलीककृतपुरुषवेशो वसामि नगर्यां ततो विरक्तया । उद्घाट्य कपाटे शीघ्रमिति निःसारितस्तया ॥ ५३ ॥
संप्राप्तो निजभवने सुदर्शनो निजमनसि विचिन्तयति । अहह ! अहो ! महिलानामकार्यकरणोद्यमोऽधिकम् ॥ ५४ ॥
तथाहि -
न गणयति कुलाभिमानं न चेहलोकं न चापि परलोकम् । निजकुलकलंककारी नारी चल्लन्तिका मारी ॥ ५५ ॥
महिलाऽयशोनिवासः कपट-कुटानां मंदिरं महिला । महिला नरकमहापुरप्रकटपदवी विनिर्दिष्टा ॥ ५६ ॥
मुखमधुरा परिणतिदारुणा च दृश्यते मनोहरा महिला । किम्पाकफलसदृशा महिलामूलमनर्थानाम् ॥ ५७ ॥
कन्दररहिता व्याघ्री विसूचिका भोजनं विना महिला । पङ्कं विनापि कलङ्को महिला वचनीयकुलभवनम् ॥ ५८ ॥
महिला मोहवरहिया अरज्जुकं बन्धनं जगति महिला । क्षणरक्तक्षणविरक्ता हरिद्रारागोपमा महिला ॥ ५९ ॥
करिकर्णचपलचित्ता कृतान्तचित्तमिव निर्घृणा महिला । महिला सत्यविरहितानभ्रवज्राशनी महिला ॥ ६० ॥
ततः कथमनया छलितः पापया चिन्तयित्वा नियमति । एकाकी परगृहे न गमिष्यामि यावज्जीवम् ॥ ६१ ॥
तद्दिवसाज्जातो विशेषतो धर्मकर्मकृतचित्तः । अथान्यदा कदाचिदिन्द्रमह आगतस्तत्र ॥ ६२ ॥

---

१. उग्घाडियं — रं० ।

ससुदंसणो सकविलो सपरियणो सावरोहणो राया । नीहरिओ नयरीओ उज्जाणसिरिं समणुहविउं ॥६३॥
एत्तो य रायइदया अभया कविलाए संगया तइया । संचलिया उज्जाणे महरिहजंपाणमारूढा ॥६४॥
दइया सुदंसणस्स वि परियरिया छहिं सुएहिं संचलिया । आरुहिय महाजाणं रणंतघंटारवविसिट्ठं ॥६५॥
दट्ठुण तयं कविलाए जंपियं देवि ! कहसु का एसा ? । नियसोहापहसियतियससुंदरी पुत्तपरियरिया ॥६६॥
देवी तओ पयंपइ हला ! तए किं न याणिया एसा ? । सेट्ठिसुदंसणदइया विक्खाया खोणिवीढम्मि ॥६७॥
कविला आह इमा जइ तब्भज्जा ता इमीए नेउन्नं । उप्पाइयाणि जं एत्तियाणि वरपुत्तभंडाणि ॥६८॥
वज्जरइ तओ देवी किं नेउन्नं ? नियस्स दइयस्स । आसाइयसुरयाए अक्खयबीयाए जं पुत्ता ॥६९॥
उल्लवइ तओ कविला संभवइ इमं परं इमीए पई । संढो त्ति तओ देवी भणइ कहं जाणिओ तुमए ? ॥७०॥
विन्नासिओ इमेणं वुत्तंतेणं इमो मए सक्खं । हसिऊण भणइ अभया हलि ! डोडिणि ! मूढमइविहवे ! ॥७१॥
वरकामसत्थविन्नाणविरहिया तेण रइवियड्ढेण । तं वंचिऊण चत्ता अवरं च इमं पि संभविही ॥७२॥
होही नपुंसओ सो जावज्जीवं पि परकलत्ताण । नियकलत्ताण पुणो निच्चं चिय कुसुमबाणो व्व ॥७३॥
भणियं विलक्खवयणाए एरिसं पहसिऊण कविलाए । जइ कामसत्थदक्खा सि ता इमं तं पि कामेसु ॥७४॥
देवीए तओ भणियं किमत्थ चोज्जं ? करेमि अहमेयं । कविला वि भणइ मा कुण अइसयसोहग्गगारवयं ॥७५॥
पभणइ अभया सो कुणइ जस्स नियय समत्थि सामत्थं । जाणे तुह सामत्थं जइ रमसि इमं भणइ इयरा ॥७६॥

ससुदर्शनः सकपिलः सपरिजनः सान्तःपुरो राजा । निःसृतो नगर्या उद्यानश्रियं समनुभवितुम् ॥ ६३ ॥
इतश्च राजदयिताभया कपिलायाः संगता तदा । सञ्चलितोद्याने महार्हजम्पानमारुढा ॥ ६४ ॥
दयिता सुदर्शनस्यापि परिवारिता षड्भिः सुतैः सञ्चलिता । आरुह्य महायानं रणत्घण्टारवविशिष्टम् ॥ ६५ ॥
दृष्ट्वा तकां कपिलया जल्पितं देवि ? कथय कैषा ? । निजशोभाप्रहसितत्रिदशसुन्दरी पुत्रपरिवारिता ॥ ६६ ॥
देवी ततः प्रजल्पति हले ! त्वया किं न जानीतैषा ? । श्रेष्ठिसुदर्शनदयिता विख्याता क्षोणिपीठे ॥ ६७ ॥
कपिलाहेमा यदि तद्भार्या तदैतस्या नैपुण्यम् । उत्पादितानि यदेतावन्ति वरपुत्रभाण्डानि ॥ ६८ ॥
कथयति ततो देवी किं नैपूण्यम् ? निजस्य दयितस्य । आस्वादितसुरताया अक्षयबीजाया यत्पुत्राः ॥ ६९ ॥
उल्लपति ततः कपिला सम्भवतीदं परमेतस्याः पतिः । षण्ढ इति ततो देवी भणति कथं जानितस्त्वया ? ॥ ७० ॥
विज्ञाषितोऽनेन वृत्तान्तेनायं मया साक्षात् । हसित्वा भणत्यभया हलि ! डोडिणि ! मूढमतिविभवे ! ॥ ७१ ॥
वरकामशास्त्रविज्ञानविरहिता तेन रतिविदग्धेन । त्वं वञ्चित्वा त्यक्ता परं चेदमपि सम्भविष्यति ॥ ७२ ॥
भविष्यति नपुंसकः स यावज्जीवमपि परकलत्राणाम् । निजककलत्राणां पुन र्नित्यं चेव कुसुमबाण इव ॥ ७३ ॥
भणितं विलक्षवदनयेदृशं प्रहस्य कपिलया । यदि कामशास्त्रदक्षासि तदेमं त्वमपि कामय ॥ ७४ ॥
देव्या ततो भणितं किमत्राश्चर्यं ? करोम्यहमेतत् । कपिलापि भणति मा कुर्वतिशयसौभाग्यगारवम् ॥ ७५ ॥
प्रभणत्यभया स करोति यस्य निजकं समस्ति सामर्थ्यम् । जाने तव सामर्थ्यं यदि रमसे इमं भणतीतरा ॥ ७६ ॥

देवी वज्जरइ इमं जइ नो कामेमि रइवियड्ढं तं । ता पज्जलियहुयासे पविसिय पाणे परिचयामि ॥७७॥
एवं विवयंतीओ ताओ गंतूण मणहरुज्जाणे । सुइरं रमिऊण तहिं पत्ताओ नियगेहेसु ॥७८॥
भणिया अभयाए तओ नियधाई पंडियाभिहा एवं । अम्मो ! अज्ज पइन्ना एवंरूवा मए विहिया ॥७९॥
ता तह जएसु जह होइ मज्झ सह तेण झति संपत्ती । धाईए तओ भणियं न हु सुट्ठु कयं तए पुत्ति ! ॥८०॥
जओ-
अवि चलइ कहवि कुम्मो खिसइ वराहो नमेइ फणिनाहो । खडखडइ धरणिवीढं न वि चलइ सुदंसणो तहवि ॥८१॥
जम्हा स महासत्तो परमहिलासंगविहियविणिवित्ती । इह-परलोयविरूद्धं न कुणइ सुविणे वि कइया वि ॥८२॥
आणित्तुमुवायाणं लक्खेण वि सो न तीरए तम्हा । मन्नेमि तुह पइन्ना विहला वच्छे ! संदेहो ॥८३॥
देवीए पुणो भणियं जइ एवं तहवि एक्कवारं तं । आणेहि तओ पच्छा तेण सममहं भलिस्सामि ॥८४॥
तो पंडियाए भणियं जइ एवं तुज्झ निच्छओ वच्छे ! । ता अत्थि एत्थ एक्को पवरउवाओ जओ एसो ॥८५॥
पव्वदिवसेसु गंतु सुन्नहर-मसाणपभिइठाणेसु । चिट्ठइ काउस्सग्गे आणिज्जउ ता तह ठिओ वि ॥८६॥
देवीए तणो भणियं उवलद्धो अंब ! सुंदरउवाओ । अह अन्नया पुरीए समागए कोमुईदिवसे ॥८७॥
तो नरवइणा पडहो पुरीए घोसाविओ वरुज्जाणे । सव्वेण नयरिलोएण सव्वरिद्धीए गंतूण ॥८८॥
पेच्छेयव्वो कोमुइमहूसवो तं सुदंसणो सोउं । चिंतइ एगत्थ महो चाउम्मासं अहऽन्नत्थ ॥८९॥
पेच्छामि कोमुइमहं जइ ता न हु होई देवयापूया । अह धम्मज्झाणमहं करेमि तो रूसए राया ॥९०॥

देवी कथयतीमं यदि न कामयामि रतिविदग्धं तम् । तदा प्रज्वलितहुताशे प्रविश्य प्राणान्परित्यजामि ॥ ७७ ॥
एवं विवदन्त्यौ ते गत्वा मनोहरोद्याने । सुचिरं रन्त्वा तत्र प्राप्ते निजकगृहयोः ॥ ७८ ॥
भणिताभयया ततो निजधात्री पण्डिताभिधा एवम् । अम्बो ! अद्य प्रतिज्ञेवंरुपा मया विहिता ॥ ७९ ॥
ततस्तथा यतस्व यथा भवति मम सह तेन शीघ्रं सम्प्राप्तिः । धात्र्या ततो भणितं न खलु सुष्ठु कृतं त्वया पुत्रि ! ॥ ८० ॥
यतः-अपि चलति कथमपि कुर्म खिंसति वराहो नमति फणिनाथः । खडखडति धरणिपीठं नापि चलति सुदर्शनस्तथापि ॥८१॥
यस्मात्स महासत्त्वः परमहिलासङ्गविहितविनिर्वृत्तिः । इह-परलोकविरुद्धं न करोति स्वप्नेऽपि कदापि ॥ ८१ ॥
आनयितुमुपायानां लक्षेणापि स न शक्यते तस्मात् । मन्ये तव प्रतिज्ञा विफला वत्से ! न सन्देहः ॥ ८२ ॥
देव्या पुन र्भणितं यद्येवं तथाप्येकवारं तम् । आनय ततः पश्चात्तेन सममहं भलिष्यामि ॥ ८३ ॥
तदा पण्डितया भणितं यद्येवं तव निश्चयो वत्से ! । तदास्त्यत्रैकः प्रवरोपायो यत एषः ॥ ८५ ॥
पर्वदिवसेषु गत्वा शून्यगृह-स्मशानप्रभृतिस्थानेषु । तिष्ठति कायोत्सर्गे आनीयताम् तदा तथा स्थितोऽपि ॥ ८६ ॥
देव्या ततो भणितमुपलब्धोऽम्ब ! सुन्दरोपायः । अथान्यदा पूर्यां समागते कौमुदीदिवसे ॥ ८७ ॥
तदा नरपतिना पटहः पूर्यां घोषयितो वरोद्याने । सर्वेण नगरिलोकेन सर्वर्द्धया गत्वा ॥ ८८ ॥
प्रेक्षितव्यः कौमुदीमहोत्सवस्तत्सुदर्शनः श्रुत्वा । चिन्तयत्येकत्र महश्चातुर्मासमथान्यत्र ॥ ८९ ॥
पश्यामि कौमुदिमहो यदि तदा न खलु भवति देवतापूजा । अथ धर्मध्यानमहं करोमि तदा रुष्यति राजा ॥ ९० ॥

एगत्थ रायआणाभंगो अन्नत्थ धम्मझाणस्स । ता भमिरतुंबअरयाण अन्तरे अंगुली मज्झ ॥९१॥
ता पुव्वं पि हु कीरउ कोइ उवाउ त्ति चिंतिऊण गओ । रायपुरो उवणेउं उवायणं भणिउमाढत्तो ॥९२॥
देव ! इह कोमुइमहे दियहो अम्हाण धम्मकज्जाणं । तो जइ कुणइ पसायं सामी ता पूइमो देवे ॥९३॥
मा होउ देवयाणं पूयाविग्घं ति चिंतिऊण निवो । अणुमन्नइ तो सेट्ठी महापसायं पयंपेउं ॥९४॥
गंतूण तओ सव्वे जिणेसरे पूइउं पओसम्मि । कयपोसहो ठिओ सो उस्सग्गे चच्चरे गंतुं ॥९५॥
तो पंडियाए अभया भणिया तुह अज्ज वंछियं वच्छे ! । पुज्जिस्सइ नियमेणं मा [1]गच्छसु मणहरुज्जाणे ॥९६॥
तो देव ! मज्झ सीसं पीडइ इय उत्तरं नरिंदस्स । दाऊण संठिया सा गओ नरिंदो वरुज्जाणे ॥९७॥
तो पंडियाए लिप्पमयमयणपडिमा पिहित्तु वत्थेहिं । जावाऽऽणिया निरुद्धा झड त्ति ता दारपालेहिं ॥९८॥
किं एयं ति तओ तेहिं पुच्छिए कहइ पंडिया तेसिं । नो उज्जाणम्मि गया सरीरकारणवसा देवी ॥९९॥
काही ता इहइं चिय पूयं देवाण तो इहाणीया । मयरद्धयस्स पडिमा इण्हि अवरा वि आणिस्सं ॥१००॥
जइ एवं ता दंससु पयंपिए तेहिं दंसिया तीए । मुक्का तेहिं तओ सा एवं च दुइज्जवाराए ॥१०१॥
वेलाए तइज्जाए सुदंसणं छाइऊण वत्थेहिं । तत्थ पविट्ठा न हु तेहिं निव्वियप्पेहि पडिसिद्धा ॥१०२॥
अभयाए महादेवीए अप्पिओ तीए सा तयं दट्ठुं । लग्गा बहुप्पयारं सविब्भमं खोहिउं एवं ॥१०३॥
तथा हि-

एकत्र राजासाभङ्गोऽन्यत्र धर्मध्यानस्य । ततो भ्रमत्तुम्बारकाणामन्तरे अङ्गुली मम ॥ ९१ ॥
ततः पूर्वमपि खलु क्रियतां कोप्युपाय इति चिन्तयित्वा गतः । राजपुर उपनीयोपायनं भणितुमारब्धः ॥ ९२ ॥
देव ! इह कौमुदिमहसि दिवसोऽस्माकं धर्मकार्याणाम् । ततो यदि करोति प्रसादं स्वामी तदा पूजयामि देवान् ॥ ९३ ॥
मा भवतु देवतानां पूजाविघ्नमिति चिन्तयित्वा नृपः । अनुमन्यते तदा श्रेष्ठी महाप्रसादं प्रजल्प्य ॥ ९४ ॥
गत्वा ततः सर्वाञ्जिनेश्वरान् पूजयित्वा प्रदोषे । कृतपौषधः स्थितः स उत्सर्गे चत्वरे गत्वा ॥ ९५ ॥
ततः पण्डितयाभया भणिता तवाद्य वाञ्छितं वत्से ! । पूरिष्यति नियमेन मा गच्छ मनोहरोद्याने ॥ ९६ ॥
ततो देव ! मम शीर्षं पीडयतीत्युत्तरं नरेन्द्रस्य । दत्वा संस्थिता सा गतो नरेन्द्रो वरोद्याने ॥ ९७ ॥
ततः पण्डितया लेप्यमयमदनप्रतिमा पिधाय वस्त्रैः । यावदानीता निरुद्धा शीघ्रमिति तावद्द्वारपालैः ॥ ९८ ॥
किमेतदिति ततस्तैःपृष्टे कथयति पण्डिता तेषाम् । नोद्यानं गता शरीरकारणवशाद्देवी ॥ ९९ ॥
करिष्यति तत इहैव पूजां देवानां तत इहानीता । मकरध्वजस्य प्रतिमेदानीमपराप्यानेष्यामि ॥ १०० ॥
यद्येवं तदा दर्शय प्रजल्पिते तै र्दर्शिता तया । मुक्ता तैस्तत सैवं च द्वितीयवारायाः ॥ १०१ ॥
वेलायास्तृतीयायाः सुदर्शनं छादयित्वा वस्त्रैः । तत्र प्रविष्ठा न खलु तै र्निविकल्पैः प्रतिषिद्धा ॥ १०२ ॥
अभयाया महादेव्या अर्पितस्तया सा तकं दृष्ट्वा । लग्ना बहुप्रकारं सविभ्रमं क्षोभयितुमेवम् ॥ १०३ ॥
तथाहि -

---

१. गच्छउ रं० ।

पिययम ! महापसायं काऊणं कुण समीहियं मज्झ । आणाविओ सि जम्हा तमेत्थ पडिमापवंचेण ॥१०४॥
तुहविरहविसमविसपरवसाइं घुम्मंति मज्झ अंगाइं । नियया लिंगणअमएण कुणसु ता नाह ! पउणाणि ॥१०५॥
परियाणियपरमत्थो सुदंसणो नेय चलइ झाणाओ । अभयाओसग्गेहिं बहुपवणेहिं सुरगिरि व्व ॥१०६॥
अणुरायरसियहिययं अहिणवजोव्वणमणोहरसरीरं । वरसुरयकरणदक्खं सुवियड्ढं पवररूवं च ॥१०७॥
किं बहुणा अमराण वि दुल्लहलंभं ममं तए पत्तं । माणेसु मणभिवंछियविसएहिं सामि ! कयकरुणो ॥१०८॥
अवरं च दंसणं पि हु न मज्झ पावंति राय-सूरा वि । तं पुण मए सयं चिय आणीओ ता ममं रमसु ॥१०९॥
तं नाह ! मए निसुओ दयालुओ सावओ त्ति ता पसिय । रमसु ममं अह न रमसि मह मरणे तुज्झ थीवज्झ ॥११०॥
एवं वुत्तो वि न जाव किं पि जंपइ सुदंसणो ताव । कंकेल्लिपल्लवारुणकरकमलेहिं परामुसइ ॥१११॥
परिरंभइ अइगाढं मुणालसुकुमारदीहरभुयाहिं । चक्कलपीणघणत्थणजुयलेण निपीडिऊण उरं ॥११२॥
तह कह वि कामतवियाए तीए संतावि ओ महासत्तो । अवरो जहा विलिज्जइ अग्गी इव मयणपुत्तलओ ॥११३॥
सो हि हु महाणुभावो जह जह सा पाविया कुणइ विग्घं । तह तह वि सुथिरचित्तो धम्मज्झाणं समारुहइ ॥११४॥
तथा हि-
अमुणियसुइसब्भावा कुडिला उक्कंचुया महाभोगा । जीव ! भुयंगि व्व इमा खंडइ तुह सिद्धिपुरमग्गं ॥११५॥
अवरं च असुइ-वस-मंस-पूय-रुहिरेहिं पुरियसरीरा । एसा ता जीव ! तुमं इमीए मा रच्चसु खणं पि ॥११६॥

प्रियतम ! महाप्रसादं कृत्वा कुरु समीहितं मम । आनायितोऽसि यस्मात्त्वमत्र प्रतिमाप्रपञ्चेन ॥ १०४ ॥
तवविरहविषमविषपरवशानि घुर्णयन्ति ममाङ्गानि । निजकालिङ्गनामृतेन कुरु ततो नाथ ! प्रगुणानि ॥ १०५ ॥
परिजानितपरमार्थः सुदर्शनो नैव चलति ध्यानात् । अभयोपसर्गै र्बहुपवनैः सुरगिरिरिव ॥ १०६ ॥
अनुरागरसिकहृदयमभिनवयौवनमनोहरशरीरम् । वरसुरतकरणदक्षा सुविदग्धा प्रवररुपा च ॥ १०७ ॥
किं बहुनामरणामपि दुर्लभलभ्या ऽहं त्वया प्राप्त । मानय मनोऽभिवाञ्छितविषयैः स्वामिन् ! कृतकरुणः ॥ १०८ ॥
अपरं च दर्शनमपिखलु न मम प्राप्नुतश्चन्द्रसूर्यावपि[1] । त्वं पुन र्मया स्वयमेवानीतस्ततो मां रमस्व ॥ १०९ ॥
त्वं नाथ ! मया निश्रुतो दयालुः श्रावक इति ततः प्रसीद । रमस्व मामथ न रमसे मम मरणे तव स्त्रीहत्या ॥ ११० ॥
एवमुक्तोऽपि न यावत्किमपि जल्पति सुदर्शनस्तावत् । कंकेलिपल्लवारुणकरकमलैः परामृशति ॥ १११ ॥
परिरम्भत्यतिगाढं मुणालसुकुमारदीर्घभुजाभ्याम् । चक्रलपीनघनस्तनयुगलेन निष्पीड्योरसम् ॥ ११२ ॥
तथा कथमपि कामतप्तया तया संतापितो महासत्त्वः । अपरो यथा विलीनाति अग्निरिव मदनपुतलकः ॥ ११३ ॥
स हि खलु महानुभावो यथा यथा सा पापिका करोति विघ्नम् । तथा तथापि सुस्थिरचितो धर्मध्यानं समारोहति ॥११४॥
तथाहि -
अज्ञातशुचिस्वभावा कुटिलोत्कञ्चुका महाभोगा । जीव ! भुजङ्गीवेमा खण्डयति तव सिद्धिपुरमार्गम् ॥ ११५ ॥
अपरं चाशुचि-वशा-मांस-पूत-रुधिरै : पूरितशरीरा । एषा ततो जीव ! त्वमेतस्यां मा रज्जस्व क्षणमपि ॥ ११६ ॥

---

१. चन्द्रसूर्यावपि ।

चिंतइ य जइ इमाओ उस्सग्गाओ कहं पि मुंचेज्जा । पारेमि तओ अह नो होइ इमं अणसणं मज्झ ॥११७॥
ता बद्धभीमभिउडीए पभणियं रूसिऊण अभयाए । जइ सावेक्खो नियजीवियस्स ता कुणसु मह वयणं ॥११८॥
इय जंपिओ वि एसो धम्मज्झाणं झियाइ दढचित्तो । निस्सेसं पि हु रयणिं कयत्थिओ तह वि नो खुहिओ ॥११९॥
नाउं पभायपायं तमस्सिणिं तयणु तीए पावाए । तिक्खनहरेहिं नियय वियारिउं थोरथणजुयलं ॥१२०॥
पोक्करियं तो धावह धावह एसो नरो दुरायारो । खंडइ वलिवंडाए अखंडियं सीलरयणं मे ॥१२१॥
तं सोउं उद्धाया पाहरिया मुक्कहक्कहुंहारा । काउस्सग्गेण ठियं सुदंसणं तत्थ पेच्छंति ॥१२२॥
न हु एरिसस्स एरिसकम्मं संभवइ इय विचिंतेउं । विन्नत्तं नरवइणो राया वि समागओ तत्थ ॥१२३॥
संपुच्छिया य देवी पिए ! किमेयं ? ति सा वि विन्नवइ । देव ! अहं एत्थ ठिया सरीरकारणवसेण तओ ॥१२४॥
आगंतूणं इमिणा पावेण कयत्थिया बहुपयारं । निब्भच्छिओ य निट्ठुरवयणेहिं इमो मए नाह ! ॥१२५॥
मुट्ठाए मज्झ सीलस्स खंडणं जाव काउमारद्धो । ताव मए पोक्करियं तं सोउं चिंतए राया ॥१२६॥
जइ कहवि अमयकिरणो किरइ कराले जलंतअंगारे । तह वि सुदंसणसेट्ठी न कुणइ असमंजसं किं पि ॥१२७॥
इय चिंतिउं नरिंदेण सायरं पुच्छिओ किमेयं ? ति । देवीअणुकंपाए न किं पि सो कहइ मणयं पि ॥१२८॥
एवं पुणो पुणो वि य पुट्ठो वि निवेण जंपइ न किं पि । संभाविज्जइ एयं पि मन्निउं तो नरिंदेण ॥१२९॥
सो वज्झो आणत्तो भणिउं पउराण दोसमेयस्स । सयलं पयारिऊणं तो वावायह दुरायारं ॥१३०॥

चिन्तयति च यद्यस्मादुपसर्गात्कथमपि मुञ्चेयम् । पारयामि ततोऽथ न भवतीममनशनं मम ॥ ११७ ॥
ततो बद्धभीमभृकुट्या प्रभणितं रुष्ट्वाभयया । यदि सापेक्षो निजजीवितस्य तदा कुरु मम वचनम् ॥ ११८ ॥
इति जल्पितोऽप्येष धर्मध्यानं ध्यायति दृढचितः । निःशेषामपि खलु रजनीं कदर्थितस्तथाऽपि न क्षुब्धः ॥ ११९ ॥
ज्ञात्वा प्रभातप्रायां तमस्विनिं तदनु तया पापया । तीक्ष्णनखै र्निजकं विदार्य स्थूलस्तनयुगलम् ॥ १२० ॥
पूत्कृतं ततो धावत धावतैष नरो दुराचारः । खण्डयति बलात्कारेणाखण्डितं शीलरत्नं मे ॥ १२१ ॥
तत् श्रुत्वोद्धाविताः प्राहरिका मुक्तहक्कहुंकाराः । कायोत्सर्गेन स्थितं सुदर्शनं तत्र पश्यन्ति ॥ १२२ ॥
न खलवेतादृशस्येतादृशकर्म सम्भवतीति विचिन्त्य । विज्ञप्तं नरपते राजापि समागतस्तत्र ॥ १२३ ॥
सम्पृष्टा च देवी प्रिये ! किमेदति ? सापि विज्ञापयति । देव ! अहमत्र स्थिता शरीरकारणवशेन ततः ॥ १२४ ॥
आगत्यानेन पापेन कदर्थिता बहुप्रकारम् । निर्भर्त्सितश्च निष्ठुरवचनैरयं मया नाथ ! ॥ १२५ ॥
बलान्मम शीलस्य खण्डनं यावत्कर्तुमारब्धः । तावन्मया पूत्कृतं तत् श्रुत्वा चिन्तयति राजा ॥ १२६ ॥
यदि कथमप्यमृतकिरणः करोति करालाञ्ज्वलदङ्गारान् । तथापि सुदर्शनश्रेष्ठी न करोत्यसमञ्जसं किमपि ॥ १२७ ॥
इति चिन्तयित्वा नरेन्द्रेण सादरं पृष्टः किमेतदिति ? । देव्यनुकम्पया न किमपि स कथयति मनागपि ॥ १२८ ॥
एवं पुनः पुनरपि पृष्टोऽपि नृपेन जल्पति न किमपि । सम्भाव्यत एतदपि मत्वा ततो नरेन्द्रेण ॥ १२९ ॥
स वध्य आज्ञप्तो भणित्वा पौराणां दोषमेतस्य । सकलं प्रचार्य[1] ततो व्यापादयत दुराचारम् ॥ १३० ॥

---

१. 'प्रचार करीने' भाषायां ।

गहिऊण तओ आरक्खिएहिं रत्तंदणेण [1]परिलित्तो । खित्ता सरावमाला गलम्मि मसिपुंडयं रइयं ॥१३१॥
विहिया य मुंडमाला सुरत्तकणवीरकुसुममालाहिं । आरोहियो[2] य रासहपिट्ठिं सिरिधरियछित्तरओ ॥१३२॥
वज्जंतडिंडिमेणं पारद्धो भामिउं नयरिमज्झे । उग्घोसिज्जइ एयं रच्छामुह-तिय-चउक्केसु ॥१३३॥
निसुणंतु जणा अन्तेउरम्मि चुक्को सुदंसणो सेट्ठी । तेण इमो मारिज्जइ नय अवराहो नरिंदस्स ॥१३४॥
तं निसुणिउं समग्गो पउरजणो मिलिय भणिउमाढत्तो । ह द्धी किमेयमेयस्स आगयं सुद्धसीलस्स ? ॥१३५॥
जइ अमयं पि हु परिणमइ कहवि हालाहलस्सरूवेण । तहवि सुदंसणसेट्ठी न कुणइ एयारिसमजुत्तं ॥१३६॥
एवं बहुप्पयारं साहुक्कारं जणाओ निसुणंतो । पेच्छंतो पुरजणं रुयमाणं थूलअंसूहिं ॥१३७॥
संपत्तो नियमंदिरपओलिदारम्मि जाव ता दिट्ठो । दइयामणोरमाए धसक्कियाए किमेयं ? ति ॥१३८॥
हा हा हयविहि ! विहियं मह पइणो किं ते-अदोसस्स ? । संभाविज्जइ सुविणे वि जं न कइया वि एयस्स ॥१३९॥
अकलंकस्स वि एयस्स आगओ जमिह दारुणकलंको । तं नूणं पुव्वभवोवज्जियकम्मेण होयव्वं ॥१४०॥
ता किं इमिणा अप्पत्थुएण ? चिंतेमि किं पि कायव्वं । आराहिज्जउ सासणदेवी जह कुणइ सन्निज्झं ॥१४१॥
तो गंतूणं नियगिहपडिमं परिपूइऊण कुसुमेहि । विहिओ काउस्सग्गो भणिउं एयारिसं वयणं ॥१४२॥
आबालकालउच्चिय जइ सीलं पालियं मए विमलं । ता आगंतुं सासणदेवी इह कुणउ सन्निज्झं ॥१४३॥
अह न करिस्सइ (जइ) सा सन्निज्झं ता इमं न उस्सग्गं । पारेमि होउ एसो वि अणसणं मज्झ उस्सग्गो ॥१४४॥

गृहीत्वा तत आरक्षकै रक्तचन्दनेन परिलिप्तः । क्षिप्ता शरावमाला गले मषीपूटकं रचितम् ॥ १३१ ॥
विहिता च मुण्डमाला सुरक्तकणवीरकुसुममालाभिः । आरोपितश्च रासभपृष्टे शिरोधृतसूर्पणकः ॥ १३२ ॥
वाद्यत्डिण्डिमेन प्रारब्धो भ्रामयितुं नगरिमध्ये । उद्घोष्यते एतद्रथ्यामुख-त्रिक-चतुष्केषु ॥ १३३ ॥
निःशृण्वन्तु जना अन्तःपुरे भ्रष्टः सुदर्शनः श्रेष्ठी । तेनायं मार्यते नैवापराधो नरेन्द्रस्य ॥ १३४ ॥
तन्निश्रृत्य समग्रः पौरजनो मिलित्वा भणितुमारब्धः । हा धिक् किमेतदेतस्यागतं शुद्धशीलस्य ? ॥ १३५ ॥
यद्यमृतमपि खलु परिणमति कथमपि हालाहलस्वरुपेण । तथापि सुदर्शनश्रेष्ठी न करोत्येतादृशमयुक्तम् ॥ १३६ ॥
सम्प्राप्तो निजमन्दिरप्रतोलिद्वारे यावत्तावद् दृष्टः । दयितया मनोरमया [+]धसक्कियया किमेतदिति ? ॥ १३७ ॥
हा हा हतविधे ! विहितं मम पत्युः किं त्वयादोषस्य ? । सम्भाव्यते स्वप्नेऽपि यत्र कदाप्येतस्य ॥ १३९ ॥
अकलङ्कस्याप्येतस्यागतो यदिह दारुणकलङ्कः । तन्नूनं पूर्वभवोपार्जितकर्मणा भवितव्यम् ॥ १४० ॥
तदा किमनेनाप्रस्तुतेन ? चिन्तयामि किमपि कर्तव्यम् । आराध्यताम् शासनदेवी यथा करोति सांनिध्यम् ॥ १४१ ॥
ततो गत्वा निजगृहप्रतिमां परिपूज्य कुसुमैः । विहितः कायोत्सर्गो भणित्वेतादृशं वचनम् ॥ १४२ ॥
आबालकालतश्चैव यदि शीलं पालितं मया विमलम् । तदागत्य शासनदेवीह करोतु सांनिध्यम् ॥ १४३ ॥
अथ न करिष्यति [यदि] सा सान्निध्यं तदेमं नोत्सर्गम् । पारयामि भवत्वेषोऽप्यनशनं ममोत्सर्गः ॥ १४४ ॥

---

१. पवलित्तो – रं० । २. आरोविओ – रं० । + धसक्किय-(दे.) ખૂબ ગભરાયેલું

सेट्ठी सुदंसणो वि य नायरनर-नारिनियरवज्जरियं । हाहारवं सुणंतो पेयवणभूमिं ॥१४५॥
चिंतइ अदीणचित्तो जीव तए जं पुराकयं कम्मं । ते संविवेओ[1] वेयसु सम्मं सहिऊण उवसग्गे ॥१४६॥
रे जीव ! सुह-दुहेसुं निमित्तमेत्तं परो जियाणं ति । सकयफलं भुंजंतो कीस मुहा कुप्पसि परस्स ? ॥१४७॥
रे जीव ! कसायहुयासणेण दड्ढे चरित्तधरसारे । भमिहिसि भवकंतारे दीणमुहो दुत्थिओ य तुमं ॥१४८॥
सच्चं चिय जइ मोक्खत्थमुज्जओ जिणसु ता कसायरिवू । पच्चक्खं पेच्छंतो कह कूवे निवडसि निहीण ! ॥१४९॥
अप्पविसुद्धिनिमित्तं किलम्मसे ता चएसु कोवरिवुं । विमलत्तमहिलसंतो कह मज्जसि पंकिलजलम्मि ॥१५०॥
एगस्स वि नियहिययस्स जीव ! विणिवारणे जइ न सत्ती । ता कह यारंभियभवमहारिविणिवारणं तुज्झ ॥१५१॥
सव्वो वि इह पसंतो पसंतजणमज्झसंठिओ होई । सइकोवकारणे जो अकोवणो सो इह पसंतो ॥१५२॥
जं खमसि दोसवंते सो तुह खंतीए होइ अवयासो । अह न खमसि को तुह अविसयाए खंतीए वावारो ॥१५३॥
एवं विचिंतमाणो आरक्खियभडयणेहिं सूलाए । आरोविओ सुनिट्ठुरगिराहिं निब्भच्छिउं एसो ॥१५४॥
एत्थंतरम्मि सूला सासणदेविप्पभावओ भग्गा । जायं च झत्ति दित्तं कंचणकमलासणं तस्स ॥१५५॥
तयणंतरं च तेहिं कुविएहिं सिरोहराए सेट्ठिस्स । दिन्नो खग्गपहारो सो संजाओ कुसुममाला ॥१५६॥
दट्ठूण तयं आरक्खिएहिं भयकंपिरेहिं नरवइणो । विन्नत्तं तो राया संभंतो आगओ तत्थ ॥१५७॥
खामित्तु बहुपयारं सुदंसणं भणइ भूवई भद्द ! । किं मह न तए कहिओ पुव्वं चिय रयणिवुत्तन्तो ? ॥१५८॥

श्रेष्ठी सुदर्शनोऽपि च नागरनरनारिनिकरकथितम् । हाहारवं श्रृण्वन्सम्प्राप्तः प्रेतवनभूमिम् ॥ १४५ ॥
चिन्तयत्यदीनचित्तो जीव ! त्वया यत्पूराकृतं कर्म । तत्सविवेको वेदय सम्यक् सहित्वोपसर्गान् ॥ १४६ ॥
रे जीव ! सुख-दुःखेषु निमित्तमात्रं परो जीवानामिति । सकलफलं भुञ्जन्कथं मुधा कुप्यसि परस्मै ? ॥ १४७ ॥
रे जीव ! कषायहुताशनेन दग्धे चारित्रगृहसारे । भ्रमिष्यसि भवकान्तारे दीनमुखो दुस्थितश्च त्वम् ॥ १४८ ॥
सत्यमेव यदि मोक्षार्थमुद्यतो जय तदा कषायरिपुन् । प्रत्यक्षं पश्यन्कथं कूपे निपतसि निहीन ! ॥ १४९ ॥
आत्मविशुद्धिनिमित्तं क्लाम्यसे ततश्त्यज कोपरिपुम् । विमलत्वमभिलषन् कथं मज्जसि पङ्किलजले ॥ १५० ॥
एकस्यापि निजहृदयस्य जीव ! विनिवारणे यदि न शक्तिः । तदा कथमारम्भितभवमहारिविनिवारणं तव ॥ १५१ ॥
सर्वोऽपीह प्रशान्तः प्रशान्तजनमध्यसंस्थितो भवति । सति कोपकारणे योऽकोपनः स इह प्रशान्तः ॥ १५२ ॥
यत्क्षमसे दोषवतः स तव क्षान्त्या भवत्यवकाशः । अथ न क्षमसे कस्तवाविषयायाःक्षान्त्या व्यापारः ॥ १५३ ॥
एवं विचिन्तयनारक्षितभटजनैः शूलायाम् । आरोपितः सुनिष्ठुरगार्भि र्निर्भत्स्यैषः ॥ १५४ ॥
अत्रान्तरे शूला शासनदेवीप्रभावाद्भग्ना । जातं च शीघ्रं दीप्तं कञ्चनकमलासनं तस्य ॥ १५५ ॥
तदनन्तरं च तैः कुपितैः शिरोधरायां श्रेष्ठिनः । दत्तः खड्गप्रहारः स सञ्जातः कुसुममाला ॥ १५६ ॥
दृष्ट्वा तकमारक्षितै र्भयकम्पमानै र्नरपतेः । विज्ञप्तं ततो राजा सम्भ्रान्त आगतस्तत्र ॥ १५७ ॥
क्षामयित्वा बहुप्रकारं सुदर्शनं भणति भूपति र्भद्र ! । किं मम न त्वया कथितः पूर्वमेव रजनिवृत्तान्तः ? ॥ १५८ ॥

---

१. सुविवेओ रं० ।

आरोविउं सहत्थेहिं राइणा नियकरेणुखंधम्मि । नीओ य सबहुमाणं नियधवलहरे तओ सेट्ठी ॥१५९॥
न्हाण-विलेवण-आभरण-वसण-वरभोयणाइसामग्गिं । काऊण तस्स पुच्छइ राया रयणीए वुत्तंतं ॥१६०॥
तयणु सुदंसणसेट्ठी मग्गइ अभयं तओ भणइ राया । किं भणसि अभयमेत्तं ? अवरं पि हु देमि तुह इट्ठं ॥१६१॥
तो तेण समग्गो वि हु कहिओ रायस्स रयणिवुत्तंतो । तं निसुणिउं नरिंदो आरुट्ठो उवरि अभयाए ॥१६२॥
उवसामिऊण तत्तो चलणेसु विलग्गिऊण नरनाहं । तो आरूढो सिंधुरखंधम्मि सुदंसणो सेट्ठी ॥१६३॥
बंदियणपढिज्जंतो वज्जिरजयतूरपूरियदियंतो । नायरलोयपमोयं जणमाणो सुद्धसीलेण ॥१६४॥
परिभमिऊणं नयरिं चच्चर-रच्छा-चउक्कसंकिन्नं । संपत्तो नियभवणे परियरिओ नायरजणेण ॥१६५॥
तद्दंसद्देण अम्मा-पियराणि पमोयपूरियंगाणि । जाया मणोरमा वि य हरिसियहियया पियं दट्ठुं ॥१६६॥
नाऊण तयं अभया भएण उव्बंधिऊण पंचत्तं । संपत्ता तद्धाई वि पंडिया नासिऊण गया ॥१६७॥
पाडलिपुत्ते नयरे ठिया सयासम्मि देवदत्ताए । अणुदिवसं पि सुदंसणगुणगहणं कुणइ तप्पुरओ ॥१६८॥
तग्गुणसवणाओ तीए तम्मि जाओ परोक्खअणुराओ । सो वि सुदंसणसेट्ठी पव्वइओ जायसंवेगो ॥१६९॥
अहिगयसयलसुयत्थो कुणमाणो दुच्चरं तवच्चरणं । एकल्लविहारेणं विहरइ सो गुरुअणुन्नाओ ॥१७०॥
विहरंतो भूवीढे पाडलिपुत्तम्मि पुरवरे पत्तो । भिक्खं परिब्भमन्तो गिहे गओ देवदत्ताए ॥१७१॥
कहियं च पंडियाए सामिणि ! एसो सुदंसणो सेट्ठी । तो पिहियकवाडाए तीए खोभेउमारद्धो ॥१७२॥

आरोप्य स्वहस्ताभ्यां राज्ञा निजकरेणुस्कन्धे । नीतश्च सबहुमानं निजधवलगृहे ततः श्रेष्ठी ॥ १५९ ॥
स्नान-विलेपनाभरण-वसन-वरभोजनादिसामग्रिम् । कृत्वा तस्य पृच्छति राजा रजन्या वृत्तान्तम् ॥ १६० ॥
तदनु सुदर्शनश्रेष्ठी मार्गयत्यभयं ततो भणति राजा । किं भणस्यभयमात्रमपरमपि खलु ददामि तवेष्टम् ॥ १६१ ॥
तदा तेन समग्रोऽपि खलु कथितो राज्ञा रजनिवृत्तान्तः । तन्निश्रुत्य नरेन्द्र आरुष्ट उपर्यभयायाः ॥ १६२ ॥
उपशम्य ततश्चरणयो विलग्य नरनाथम् । तत आरुढः सिन्धुरस्कन्धं सुदर्शनः श्रेष्ठी ॥ १६३ ॥
बन्दिजनपठ्यमानो वाद्यत्तूर्यपूरितदिगन्तः । नागरलोकप्रमोदं जनयन् शुद्धशीलेन ॥ १६४ ॥
परिभ्रम्य नगरिं चत्वर-रथ्या-चतुष्कसङ्कीर्णाम् । सम्प्राप्तो निजभवने परिवारितो नागरजनेन ॥ १६५ ॥
तद्दर्शनेनाम्मा-पितरौप्रमोदपूरिताङ्गौ । जाता मनोरमापि च हर्षितहृदया प्रियं दृष्ट्वा ॥ १६६ ॥
ज्ञात्वा तकमभया भयेनोब्दध्य पञ्चत्वम् । सम्प्राप्ता तद्धात्र्यपि पण्डिता नंष्ट्वा गता ॥ १६७ ॥
पाटलिपुत्रे नगरे स्थिता सकाशे देवदत्तायाः । अनुदिवसमपि सुदर्शनगुणग्रहणं करोति तत्पुरतः ॥ १६८ ॥
तद्गुणश्रवणात्तस्यास्तस्मिञ्जातः परोक्षानुरागः । सोऽपि सुदर्शनश्रेष्ठी प्रव्रजितो जातसंवेगः ॥ १६९ ॥
अधिगतसकलसूत्रार्थः कुर्वन् दुश्चरं तपश्चरणम् । एकलविहारेण विहरति स गुर्वनुज्ञातः ॥ १७० ॥
विहरन् भूपीठे पाटलिपुत्रे पुरवरे प्राप्तः । भिक्षां परिभ्रमन् गृहे गतो देवदत्तायाः ॥ १७१ ॥
कथितं च पण्डितया स्वामिनि ! एष सुदर्शनः श्रेष्ठी । तदा पिहितकपाटया तया क्षोभयितुमारब्धः ॥ १७२ ॥

अब्भत्थिओ सपणयं मयणानलताविआए गणियाए । परिहासपेसलेहिं वयणेहिं सविब्भमं साहू ॥१७३॥
किं बहुणा ? बाहुलयापरिरंभणपभिइकामकेलीहिं । ..... रमिओ वियालवेलाए ता मुक्को ॥१७४॥
तो गंतुं उज्जाणेकाउस्सग्गम्मि संठिओ साहू । अभयावंतरिणीए दट्ठूण कयत्थिओ अहियं ॥१७५॥
बहुविहउस्सग्गेहिं रक्खस-गुरुसीह-सप्पपभिईहिं । जा सम्मं अहियासइ अउव्वकरणं तओ जायं ॥१७६॥
विहिया य खवगसेढी संजायं विमलकेवलं नाणं । देवेहिं कया केवलमहिमा गुरुभत्तिकलिएहिं ॥१७७॥
पारद्धा य सुदंसणरिसिणा सद्धम्मदेसणा तत्तो । पडिबुद्धा वंतरिणी सपंडिया देवदत्ता य ॥१७८॥
अवरं पि भवियलोगं पडिबोहेउं सुदंसणमुणिंदो । निट्ठवियअट्ठकम्मो सासयसोक्खं समणुपत्तो ॥१७९॥

॥ सुदर्शनाख्यानकं समाप्तम् ॥४३॥

जह एएसिं जाओ नवकारो सुगइसाहगो सम्मं ।
तह अन्नस्स वि जायइ ता जइयव्वं इमम्मि सया ॥१॥
स्फूर्जत्करीन्द्र-हरि-सङ्गर-कालकूट-व्याला-ऽनलादिभवभीमभयापहारी ।
स्वर्गा-ऽपवर्गसुखसाधनकल्पवृक्षः, क्षीणाशुभो जयति सत्परमेष्ठिमन्त्रः ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे नमस्कारफलवर्णनस्त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः ॥१३॥

अभ्यर्थितः सप्रणयं मदनानलतापितया गणिकया । परिहासपेशलै र्वचनैः सविभ्रमं साधुः ॥ १७३ ॥
किं बहुना ? बाहुलतापरिरम्भनप्रभृति कामक्रीडाभिः । ..... रमितो विकालवेलायां तावन्मुक्तः ॥ १७४ ॥
ततो गत्वोद्याने कायोत्सर्गे संस्थितः साधुः । अभयाव्यन्तरिण्या दृष्ट्वा कदर्थितोऽधिकम् ॥ १७५ ॥
बहुविधोपसर्गै राक्षस-गुरुसिंह-सर्पप्रभृतिभिः । यावत्सम्यगध्यास्यत्यपूर्वकरणं ततो जातम् ॥ १७६ ॥
विहिता च क्षपकश्रेणी सञ्जातं विमलकेवलं ज्ञानम् । देवैः कृता केवलमहिमा गुरुभक्तिकलितैः ॥ १७७ ॥
प्रारब्धा च सुदर्शनर्षिणा सद्धर्मदेशना ततः । प्रतिबुद्धा व्यन्तरिणी सपण्डिता देवदत्ता च ॥ १७८ ॥
अपरमपि भविकलोकं प्रतिबोध्य सुदर्शनमुनीन्द्रः । निष्ठापिताष्टकर्माः शाश्वतसौख्यं समनुप्राप्तः ॥ १७९ ॥

॥ सुदर्शनाख्यानकं समाप्तम् ॥ ४३ ॥

यथैतेषां जातो नमस्कारः सुगतिसाधकः सम्यक् ।
तथान्यस्यापि जायते ततो यतितव्यमस्मिन् सदा ॥ १ ॥

● ● ●

[१४. स्वाध्यायाधिकारः ।]

व्याख्यातं नमस्कारफलम् । अयं च नमस्कारः परावर्त्यमानः स्वाध्यायो भवति अतः स्वाध्यायफलं व्याचिख्यासुराह -

वेरग्गकरो सन्नाणकारओ पावकम्मखयकारी ।
इहलोगे वि गुणकरो जवसाहुस्सेव सज्झाओ ॥ १६ ॥

व्याख्या-'वैराग्यकरः' भवनिर्वेदकारी 'सज्ज्ञानकारकः' सद्बोधविधायी 'पापकर्मक्षयकारी 'ज्ञानावरणीयाद्यशुभमलापहर्ता 'इहलोकेऽपि' आस्तां तावत् परभवे 'गुणकरः' गुणकारकः । द्रष्टान्तमाह-जवसाधोरिव 'स्वाध्यायः 'वाचनादिरूप इत्यक्षरार्थः ॥ १९ ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकादवसेयः । तच्चेदम् -

भावार्थस्त्वाख्यानकादवसेयः । तच्चेदम्-

जवउरनयरे राया जवाभिहो धारिणी पिया तस्स । गद्दहनामो पुत्तो धूया य अणोलिका ताण ॥१॥
मंती वि दीहपिट्ठो सिट्ठं नेमित्तिएण निव ! तुज्झ । धूयं जो परिणेही होही रायाहिराओ सो ॥२॥
अह अन्नया य निउणाभिहाणसूरी विसिट्ठचउनाणी । विहरंतो संपत्तो समोसढो जवयउज्जाणे ॥३॥
महरिहरिद्धीए जवो वि नरवई मुणिवरिंदनमणत्थं । गंतुं गुरुणो पणमिय कयंजली तत्थ उवविट्ठो ॥४॥

यवसाध्वाख्यानकम् ॥ ४४ ॥

यवपुरनगरे राजा यवाभिधो धारिणी प्रिया तस्य । गर्दभनाम पुत्रो दुहिता चाणोलिका तयोः ॥ १ ॥
मन्त्र्यपि दीर्घपृष्टः शिष्टं नैमित्तिकेन नृप ! तव । दुहितरं यः परिणेष्यति भविष्यति राजाधिराजः सः ॥ २ ॥
अथान्यदा च निपूणाभिधानसूरी विशिष्टचतुर्ज्ञानी । विहरन् सम्प्राप्तः समवसृतो यवकोद्याने ॥ ३ ॥
महार्हर्द्धया यवोऽपि नरपति र्मुनिवरेन्द्रनमनार्थम् । गत्वा गुरून् प्रणम्य कृताञ्जलिस्तत्रोपविष्टः ॥ ४ ॥

तो एगंते पुट्ठं निवेण भयवं ! अणोलियाए पई । होही को ? तो सूरी पयंपए तुज्झ भइणिसुओ ॥५॥
भद्दलओ तयणु निवो पयंपए तस्स देविं[1] रज्जसिरिं । पव्वज्जामि अहं तो पयंपियं मुणिवरिंदेण ॥६॥
गद्दहकुमरस्सिन्हिं रज्जसिरी तवसिरी पुणो तुज्झ । जुज्जइ एयं सोउं नरेसरो पणमिऊण गुरुं ॥७॥
गंतु भवणे गद्दहकुमारमहिसिंचिउं नियरज्जे । गद्दहमणोलियं पि हु भलाविउं दीहपिट्ठस्स ॥८॥
निक्खंतो नरनाहो विहरइ गुरुणा समं समाहीए । वुड्ढत्तेण न जाओ पाढो ता कुणइ सज्झायं ॥९॥
अह अन्नया य नाणेण गद्दहाईण नाऊमुवयारं । एगागी वि हु गुरुणा जवरायरिसी विसुद्धमणो ॥१०॥
वंदावणाय सन्नाइयाण पट्ठाविओ तओ सो वि । आगच्छइ जाव पहे इरियासमियाए संजुत्तो ॥११॥
ता पेच्छइ जवछित्ते पविसंतं गद्दहं चरणलोलं । हक्कित्तु आरहट्टियनरेण निसुणइ पढिज्जंतं ॥१२॥
अवघससि घससि धुत्ता ! ममं चेव निरक्खसि । लक्खिओ ते मए भावो जवं पेच्छेसि गद्दहा ! ॥१३॥
तो सिक्खिउं तयं जाव जाइ परिवत्तयं पुणो मग्गे । ता उन्नइयाकीलापरव्वसे पेच्छइ कुमारे ॥१४॥
ताणेक्केणं कणियाए पहणिया उन्नई समुल्ललिउं । कत्थइ बिलम्मि पडिया न य दिट्ठा तेहिं तो पढियं ॥१५॥
इयो गया इओ गया जोइज्जन्ती न दीसए । वयं एवं वियाणामो अगडे पडिया अणोलिया ॥१६॥
तं पि हु सिक्खिय उग्घोसमाणओ जवपुरम्मि संपत्तो । अणुजाणावि य सालाए संठिओ कुंभयारस्स ॥१७॥
रयणीए उल्लभंडाणि छिंडिउं जाइ मूसओ भीओ । तो अणुकंपाजुत्तेण कुंभयारेणिमं पढियं ॥१८॥

तत एकान्ते पृष्टं नृपेण भगवन् ! अणोलियायाः पतिः । भविष्यति कः ? तदा सूरी प्रजल्पति तव भगिनिसुतः ॥ ५ ॥
भद्रलकस्तदनु नृपः पजल्पति तस्मै ददामि राज्यश्रियम् । प्रव्रज्याम्यहं तदा प्रजल्पितं मुनिवरेन्द्रेण ॥ ६ ॥
गर्दभकुमारस्येदानीं राज्यश्रीस्तपःश्रीः पुनस्तव । युज्यत एतच्छ्रुत्वा नरेश्वरः प्रभण्य गुरुम् ॥ ७ ॥
गत्वा भवने गर्दभकुमारमभिषिञ्च्य निजकराज्ये । गर्दभमणोलियामपि खलु भालयित्वा दीर्घपृष्टस्य ॥ ८ ॥
निष्क्रान्तो नरनाथो विहरति गुरुणा समं समाधिना । वृद्धत्वेन न जातः पाठस्ततः करोति स्वाध्यायम् ॥ ९ ॥
अथान्यदा च ज्ञानेन गर्दभादीनां ज्ञात्वोपकारम् । एकाक्यपि खलु गुरुणा यवराजर्षि र्विशुद्धमनाः ॥ १० ॥
वन्दापनाय स्वज्ञातिकान् प्रस्थापितस्ततः सोऽपि । आगच्छति यावत्पथि ईर्यासमित्याः संयुक्तः ॥ ११ ॥
तावत्पश्यति यवक्षेत्रे प्रविशन्तं गदर्भं चरणलोलम् । निषिध्यारघट्टिकनरेण निःशृणोति पठयमानम् ॥ १२ ॥
अवघृषषि[2] घृषषि धूर्त ! मामेव निरीक्षसे । लक्षितस्तदा मया भावो यवं पश्यसि गर्दभा ! ॥ १३ ॥
ततः शिक्षित्वा तकं यावद्याति परिवर्त्तयन् पुन र्मार्गे । तावदुन्नतिका★क्रीडापरवशान् पश्यति कुमारान् ॥ १४ ॥
तेषामेकेन +दण्डेन प्रहतोन्नति समुच्छल्य । कुत्रचिद्बिले पतिता न च दृष्टा तैस्ततो पठितम् ॥ १५ ॥
इतो गतेतो गता पश्यन्ती न दृश्यते । वयमेवं विजानीमोऽवटे पतिताऽणोलिया ॥ १६ ॥
तदपि खलु शिक्षित्वोद्घोष्यमाणो यवपुरे सम्प्राप्तः । अनुज्ञाप्य शालायां संस्थितः कुम्भकारस्य ॥ १७ ॥
रजन्यामार्द्रभाण्डानि छिद्रित्वा याति मूषको भीतः । ततोऽनुकम्पायुक्तेन कुम्भकारेणेमं पठितम् ॥ १८ ॥

---

१. देमि रं० । २. तर्जना करनी । ★ उन्नतिका-(दे.) गिल्ली + कणिया-(दे.) दण्ड - भूईनो डांडो.

सुकुमालय ! भद्दुलया ! रत्तिं हिंडणसीलया ! । मम सयासाओ नत्थि ते भयं दीहपिट्ठाओ ते भयं ॥१९॥
सिक्खेउं तं पि मुणी गुणइ तओ ताणि तिन्नि वि पसंतो । एत्तो य बालरज्जं नाऊणं दीहपिट्ठेण ॥२०॥
नेमित्तियसिट्ठं पि हु जमऽणोलियकन्नयापई होही । रायाहिवई तं चिय विचिन्तिउं तेण पावेण ॥२१॥
हरिउं कुमरी भूमीहरम्मि खित्ता तहेव सामंता । केत्तियमेत्ता वि हु तेण भेइया दविणजाएण ॥२२॥
नाओ य जवमुणिंदो समागओ ता न सुंदरं एसो । महविलसियं मुणिस्सइ ता मारिज्जउ उवाएण ॥२३॥
इय चिंतिऊण गद्दहनरेसरं भणइ देव ! तुह जणओ । तिव्वतव-चरणभग्गो समागओ गिण्हही रज्जं ॥२४॥
सामंता वि हु सव्वे वि भेइया तं पुणो मुणसि तइया । रज्जं जया गहिस्सइ ता तेणुत्तं कहसु जुत्तं ॥२५॥
पभणइ य दीहपिट्ठो नीईसु वि जंपियं हरइ रज्जं । जो बप्पो वि स सप्पो व्व मरणमरिहइ महाराय ! ॥२६॥
न जहा जणाववाओ जायइ तह सिग्घमेव गंतूणं । तं वावायसु इय जंपिऊण कहिओ कुलालगिहे ॥२७॥
राया वि हिओ एसो त्ति चिंतिउं जणयमारणनिमित्तं । अंधारपडं पावरिय करयले कलिय करवालं ॥२८॥
सद्धिं भद्दलएणं गंतुं सो जाव हेरिउं लग्गो । ताव पढंतं निसुणइ जणयं अवघससि इच्चाइ ॥२९॥
तं सोउं नरनाहो चिंतइ ताएण जाणिओ अहयं । नाणेण अणोलियमवि नाही इय चिंतयंतस्स ॥३०॥
तस्स तओ पुण मुणिणा पढियं तमिओ गय त्ति इच्चाइ । तं सोउं नरनाहो चिंतइ पावेण मह भइणी ॥३१॥
छूढा अयडे केणावि तो भयं तस्स पासओ मज्झ । तं पि हु ताओ नाही तो पढियं साहुणा एयं ॥३२॥

सुकुमालक ! ★भद्रलका ! रात्रिं हिण्डनशीलका ! । मम सकाशान्नास्ति ते भयं दीर्घपृष्ठात्ते भयम् ॥ १९ ॥
शिक्षित्वा तमपि मुनि र्गुणति ततस्तानि त्रिण्यपि प्रशान्तः । इतश्च बालराज्यं ज्ञात्वा दीर्घपृष्टेन ॥ २० ॥
नैमित्तिकशिष्ठमपि खलु यदणोलिकाकन्यकापति र्भविष्यति । राजाधिपतिस्तमेव विचिन्त्य तेन पापेन ॥ २१ ॥
हृत्वा कुमारीं भूमिगृहे क्षिप्ता तथैव सामन्ताः । कतिपयमात्रा अपि खलु तेन भेदिता द्रविणजातेन ॥ २२ ॥
ज्ञातश्च यवमुनीन्द्रः समागतस्तावन्न सुन्दरमेषः । मम विलसितं ज्ञास्यति ततो मार्यतामुपायेन ॥ २३ ॥
इति चिन्तयित्वा गर्दभनरेश्वरं भणति देव ! तव जनकः । तीव्रतपश्चरणभग्नः समागत ग्रहीष्यति राज्यम् ॥ २४ ॥
सामन्ता अपि खलु सर्वेऽपि भेदिता स्त्वंपुन र्मुणसि तदा । राज्यं यदा ग्रहीष्यति ततस्तेनोक्तं कथय युक्तम् ॥ २५ ॥
प्रभणति च दीर्घपृष्टो नीतिषु अपि जल्पितं हरति राज्यम् । यः पितापि स सर्प इव मरणमर्हति महाराज ! ॥ २६ ॥
न यथा जनापवादो जायते तथा शीघ्रमेव गत्वा । तं व्यापादयेति जल्पित्वा कथितः कुलालगृहे ॥ २७ ॥
राजापि हित एष इति चिन्तयित्वा जनकमारणनिमित्तम् । अन्धकारपटं प्रावृत्य करतले कलितकरवालम् ॥ २८ ॥
सार्द्धं भद्दलकेन गत्वा स यावन्निरीक्षितुं लग्नः । तावत्पठन्तं निश्रुणोति जनकमवघृषसीत्यादि ॥ २९ ॥
तत् श्रुत्वा नरनाथश्चिन्तयति तातेन जानितोऽहम् । ज्ञानेनाणोलिकामपि ज्ञास्यतीति चिन्तयतः ॥ ३० ॥
तस्य ततः पुन र्मुनिना पठितं तमितो गतेतीत्यादि । तत्श्रुत्वा नरनाथश्चिन्तयति पापेन मम भगिनी ॥ ३१ ॥
क्षिप्तावटे केनापि ततो भयं तस्य पार्श्वतो मम । तमपि खलु तातो ज्ञास्यति तदा पठितं साधुनैतत् ॥ ३२ ॥

★ भद्दलय-(दे.) मूषक

सुकुमालय इच्चाई तं सोउं चिंतए निवो मज्झ । मंतिसयासाओ भयं कहियं ताएण नाणेण ॥३३॥
ता मह भइणी वि हु तेण गिण्हिया नियमओ जओ ताओ । चिंतियमेत्तं पि हु कहइ मज्झ इय चिंतिउं राया ॥३४॥
गंतुं भवणे नियबलभरेण धरिऊण झत्ति तं मंतिं । जाव निहालइ भूमीहराइं ता पाविया भइणी ॥३५॥
तो पुट्ठाए सिट्ठं तीए जहा अहमणेण अवहरिया । रुट्ठेणं रन्ना वि हु सरोसमणुसासिओ मंती ॥३६॥
जाए पभायसमए सबलो राया गओ मुणिसमीवे । पणमेउं उवविट्ठो मुणिणा वि हु नियसत्तीए ॥३७॥
कहिया सद्धम्मकहा तो नरनाहो विलग्गिय कमेसु । जंपइ किह मह मोक्खो होही एयस्स पावस्स ? ॥३८॥
जंपइ साहू पावं नासइ सव्वं पि साहुदिक्खाए । एयं पि करिस्सामि त्ति जंपिउं उट्ठिओ राया ॥३९॥
गंतुं भवणम्मि तओ भइणिं परिणाविऊण भद्दलओ । अहिसित्तो नियरज्जे सयं पुणो सह सजणणीए ॥४०॥
पत्तो जणयसयासे तेण वि गंतूण गुरुसमीवम्मि । पव्वाविओ तओ ते सव्वे वि कुणंति तवचरणं ॥४१॥
मरिऊण समुप्पन्ना अमरा विप्फुरियतणुपहापडला । सिज्झिस्संति विदेहे उववज्जिय विजियकम्मभडा ॥४२॥
स-परोभयगुणहेऊ सज्काओ जह जवस्स नरवइणो । जाओ तह अन्नस्स वि जायइ इहइं च भणियं च ॥४३॥
अट्टमट्ठं पि सिक्खिज्जा सिक्खियं न निरत्थयं । अट्टमट्टप्पसाएणं जीवियं परिरक्खियं ॥४४॥

॥ यवाख्यानकं समाप्तम् ॥४४॥

स्वाध्यायकर्म कृतिनां कृतसिद्धिशर्म, सद्धर्मसाधनमपाकृतपापकर्म ।
सज्ज्ञानकारणणकारणबन्धुमेतद्, दुर्ध्यानसिन्धुरसितांकुशमाश्रयध्वम् ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे स्वाध्यायफलप्रतिपादकश्चतुर्दशाधिकारः समाप्तः ॥१४॥

सुकुमालकेत्यादि तत् श्रुत्वा चिन्तयति नृपो मम । मन्त्रिसकाशाद्भयं कथितं तातेन ज्ञानेन ॥ ३३ ॥
ततो मम भगिन्यपि खलु तेन गृहीता नियमतो यतस्तातः । चिन्तितमात्रमपि खलु कथयति ममेति चिन्तयित्वा राजा ॥ ३४ ॥
गत्वा भवने निजबलभरेण धृत्वा झटिति तं मन्त्रिम् । यावन्निभालयति भूमिगृहाणि तावत्प्राप्ता भगिनी ॥ ३५ ॥
ततः पृष्टया शिष्टं तया यथाहमनेनापहृता । रुष्टेन राज्ञापि खलु सरोषमनुशासितो मन्त्री ॥ ३६ ॥
जाते प्रभातसमये सबलो राजा गतो मुनिसमीपे । प्रणम्योपविष्ठो मुनिनापि खलु निजकशक्त्या ॥ ३७ ॥
कथिता सद्धर्मकथा ततो नरनाथो विलग्य क्रमयोः । जल्पति कथं मम मोक्षो भविष्यत्येतस्मात् पापात् ? ॥ ३८ ॥
जल्पति साधु पापं नश्यति सर्वमपि साधुदीक्षया । एनामपि करिष्यामीति जल्पित्वोत्थितो राजा ॥ ३९ ॥
गत्वा भवने ततो भगिनिं परिणाय्य भद्रलकः । अभिषिक्तो निजराज्ये स्वयं पुनः सह स्वजनन्या ॥ ४० ॥
प्राप्तो जनकसकाशे तेनापि गत्वा गुरुसमीपे । प्रव्राजितस्ततस्ते सर्वेऽपि कुर्वन्ति तपश्चरणम् ॥ ४१ ॥
मृत्वा समुत्पन्ना अमरा विस्फुरिततनुप्रभापटलाः । सेत्स्यन्ति विदेह उत्पद्य विजितकर्मभटाः ॥ ४२ ॥
स्व-परोभयगुणहेतुः स्वाध्यायो यथा यवस्य नरपतेः । जातस्तथान्यस्यापि जायत इह च भणितं च ॥ ४३ ॥
अट्टमट्टमपि शिक्षेत शिक्षितं न निरर्थकम् । अट्टमट्टप्रसादेन जीवितं परिरक्षितम् ॥ ४४ ॥

॥ यवाख्यानकं समाप्तम् ॥ ४४ ॥

●●●

[१५. नियमविधानफलाधिकारः ।]

उक्तः स्वाध्यायधिकारः । साम्प्रतं पूर्वोक्तगुणयुक्तेन नियमेन विना न स्थातव्यमिमतति नियमविधानफलमाह -

थेवो वि कओ नियमो महाफलो होइ निच्छियमणाण ।
दामन्न-बंभणी-चंडचूड-गिरि-रायहंस व्व ॥ २० ॥

व्याख्या-'स्तोकोऽपि' स्वल्पोऽपि आस्तां बहुरित्यपिशब्दार्थः 'कृत' विहितः 'नियमः' अभिग्रहविशेषः 'महाफलः' बृहद्गुणः 'भवति' जायते 'निश्चितमनसा' दृढचित्तानाम् । द्रष्टान्तानाह - दामनकश्च मत्सबन्धक-जीवः ब्राह्मणी च विप्रवधूः चण्डचूडश्चतथाविधकु लपुत्रकः गिरिश्च-डुम्बः राजहंसश्च-कुन्दकर्मकरजीवः दामन्नक-ब्राह्मणी-चण्डचूड-गिरि राजहंसाः तद्वदित्यक्षरार्थः ॥ २० ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तानि चामूनि ।

तत्र तावद् दामन्नकाख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

कत्थवि य सन्निवेसे निवसइ पयइप्पसंतयाकलिओ । एगो धीवरपुरिसो अहऽन्नया सरयपज्जन्ते ॥१॥
सरयम्मि सप्पयावं सस्ससमिद्धं खलो व्व जडपयई । हेमंतो कलिराओ व्व वाहिउं भुवणमवयरिओ ॥२॥
निव्वायगिहल्लीणं वहुवसणं फुरणतेयगमरहियं । जड्डुज्जरपव्वहियं विहियमणज्जेण जयमिण्हि ॥३॥
सच्छाइं सुद्धिजणयाइं तावहरणाइं सउणसहियाइं । सुयणकुलाइं व्व सराइं भट्ठकमलाइं विहियाइं ॥४॥

दामन्नकाख्यानकम् ॥ ४५ ॥

कुत्रापि च सन्निवेशे निवसति प्रकृतिप्रशान्ततताकलितः । एको धीवरपुरुषोऽथान्यदा शरत्पर्यन्ते ॥ १ ॥
शरदि सप्रतापसस्यसमृद्धं खल इव जडप्रकृतिः । हेमन्तः कलिराज इव वाहयितुं भुवनमवतीर्णः ॥ २ ॥
निर्वातगृहलीनं बहुवसनं स्फुरणतेजस्कमरहितम् । जाड्यान्तःप्रवहितं विहितमनार्येण जगदिदानीम् ॥ ३ ॥
स्वच्छानि शुद्धिजनकानि तापहरणानि शकुनसहितानि । सुजनकुलानीव सराणि भ्रष्टकमलानि विहितानि ॥ ४ ॥

उव्वेयकराओ तमोजुयाओ सम्मग्गगमणखलणीओ । रयणीओ रंडाओ व्व जम्मि विद्धिं पवन्नाओ ॥५॥
सद्धम्मकम्मविहिहेउणो वि सम्मग्गपयडणपरा वि । सप्पुरिसा इव दिवसा पावेणं पाविया हाणिं ॥६॥
बहुधण-धन्नक्खयकारयम्मि किर किं कहिज्जए अवरं ? । परिहहिऊणऽमयकरं दहणो सेविज्जए जम्मि ॥७॥
सुपवित्तं सरसं पि हु हिमेण विच्छाइयं सरोयवणं । गुणवंता वि हु कलिणा विच्छाइज्जंति सप्पुरिसा ॥८॥
फलरहिया सुमणसवज्जिया य साहारपभिइणो तरुणो । कुंदो उण विडवो जम्मि कुसुमिओ हसइ वगराइं ॥९॥
सूरो वि दरिद्दियमाणवो व्व खत्थो पयावधणरहिओ । जम्मि जडासयकमलंतरेसु परिभमइ खिवियकरो ॥१०॥
परमेगो तम्मि गुणो सिणेहसारम्मि जायइ जमेगा । मित्तोदयम्मि पायं परमाहारे रुई अहियं ॥११॥
चइऊण सुरससीयलसिरिखंडाईणि जम्मि सेवंति । संतावकरं कारीसजलणजायं जडत्तहया ॥१२॥
मोत्तूणं गुणवन्तं मणोहरं वित्तवं पवरहारं । वन्नंति जम्मि रल्लय-तेल्लप्पमुहं अहममहमा ॥१३॥
एवंविहहेमंते संते सो धीवरो पुराभिहिओ । मच्छयगहणनिमित्तं जालकरो निग्गओ गेहा ॥१४॥
गंतुं तरंगिणीए घेत्तूणं मच्छए पडिनियत्तो । संभ्झाए नियइ साहुं उस्सग्गठियं नईतीरे ॥१५॥
पहणिज्जंतं हिमकणविमिस्सअइसिसिरपवणपूरेण । तो तेणं करुणाए जालेणावेढिओ साहू ॥१६॥
अह नियगिहम्मि पत्तो सुत्तो काउं पलालसत्थरयं । सावच्चाए सह पिययमाए कंथिक्कपावरणो ॥१७॥
काउं पच्चासन्ने हुयासणं पज्जलंतगुरुजालं । तह वि हु पीडिज्जंतो सीएण न पावए निद्दं ॥१८॥

उद्वेगकरास्तमोयुताः सन्मार्गगमनस्खलीन्यः । रजन्यो रण्डा इव यस्मिन् वृद्धिं प्रपन्नाः ॥ ५ ॥
सद्धर्मकर्मविधिहेतवोऽपि सन्मार्गप्रकटनपरा अपि । सत्पुरुषा इव दिवसाः पापेन प्रापिता हानिम् ॥ ६ ॥
बहुधन-धान्यक्षयकारके किल किं कथ्यते अपरम् ? । परिहृत्यामृतकरं दहनः सेव्यते यस्मिन् ॥ ७ ॥
सुपवित्रं सरसमपि हु हिमेन विच्छादितं सरोजवनम् । गुणवतापि खलु कलिना विच्छाद्यन्ते सत्पुरुषाः ॥ ८ ॥
फलरहिताः सुमनसवर्जिताश्चसहकारप्रभुतयस्तरवः । कुन्दः पुनर्विटपो यस्मिन् कुसुमितो हसति वनराजिम् ॥ ९ ॥
सूर्योऽपि दारिद्रितमानव इवखस्थः प्रतापधनरहितः । यस्मिन् जलाशयकमलान्तरेषु परिभ्रमति क्षिप्तकरः ॥ १० ॥
परमेकस्तस्मिन् गुणः स्नेहसारे जायते यदेका । मित्रोदये प्रायं परमाहारे रुचिरधिकम् ॥ ११ ॥
त्यक्त्वा सुरसशीतलश्रीखण्डादिनि यस्मिन् सेवन्ते । सन्तापकरं करिषज्वलनजातं जड़त्वहताः ॥ १२ ॥
मुक्त्वा गुणवन्तं मनोहरं वित्तवान्प्रवराहारम् । वर्णयन्ति यस्मिन् रल्लक-तैलप्रमुखमधममधमाः ॥ १३ ॥
एवंविधहेमन्ते सति स धीवरः पुराभिहितः । मत्स्यग्रहणनिमित्तं जालकरो निर्गतो गृहात् ॥ १४ ॥
गत्वा तरङ्गिणीण्या गृहीत्वा मत्स्यान् प्रतिनिवृत्तः । सन्ध्यायां पश्यति साधुमुत्सर्गस्थितं नदीतीरे ॥ १५ ॥
प्रहण्यमानं हिमकणविमिश्रातिशिशिरपवनपूरेण । ततस्तेन करुणया जालेनावेष्टितः साधुः ॥ १६ ॥
अथ निजगृहे प्राप्तः सुप्तः कृत्वा पलालसस्तरकम् । सापत्यायाः सह प्रियतमायाः कंथैकप्रावरणः ॥ १७ ॥
कृत्वा प्रत्यासन्ने हुताशनं प्रज्वलद्रुरुज्वालम् । तथापि खलु पीड्यमानः शीतेन न प्राप्नोति निद्राम् ॥ १८ ॥

अहमेत्थ पियापरिरंभिओ वि सेवियसिही वि गिहमज्झे । कंथापावरणो वि हु कंपामि सतुहिणपवणेण ॥१९॥
सो उण महाणुभावो मुणी कहं होहिई निरावरणो । अइदुसह-हियाहोडयहिमकणसम्मिस्ससीएण ॥२०॥
इय एवं चिंतंतस्स तस्स जाया निसा गयप्पाया । तो सो समुट्ठिऊणं गओ तह च्चिय मुणिं नियइ ॥२१॥
तो भत्तिपगरिसुब्भिन्नपुलयपरिपूरिएण तेण मुणी । पणओ पयपंकयमिलियभालवट्टेण सप्पणयं ॥२२॥
एत्थंतरम्मि भुवणस्स जडिममवणेउमिच्छमाणेण । उइयं पुव्वदिसाए विउसेण व उण्हकिरणेण ॥२३॥
मुणिणा वि पारिऊणं उस्सग्गं तस्स देसणा विहिया । भो भद्द ! पावमूलं परिहर पाणिवहमेयं ति ॥२४॥
जओ भणियं-
हंतूण परप्पाणे अप्पाणं जो करेइ सप्पाणं । अप्पाणं दियहाणं कएण नासेइ अप्पाणं ॥२५॥
एकस्स खणं तित्ती अन्नस्स य तिहुयणं पि अत्थमइ । एवंकह मारिज्जउ खणसोक्खकएण पाणिगणो ? ॥२६॥
एक्कसरीरस्स कए सरुयस्स असासयस्स तुच्छस्स । जे मारयंति जीवे ताणं किं सासओ अप्पा ? ॥२७॥
इय मुणिवयणं सोउं पाणिवहं अत्तणो अणत्थफलं । सो जंपइ भयभीओ देसु महं पाणिवहनियमं ॥२८॥
भणिओ मुणिणा परिभाविऊण गिण्हसु पयंपए सो वि । किं मज्झ कोइ काही नियनियमे निच्छयपरस्स ? ॥२९॥
दिन्नो य साहुणा से नियमो तेणावि तोडियं जालं । एमेव गओ गेहे भणिओ भज्जाए बीयदिणे ॥३०॥
किं न हु गच्छसि मच्छयनिमित्तमह तेण अक्खिओ नियमो । तं सोउं सा कुविया गुरुसद्दं कलहियं लग्गा ॥३१॥

अहमत्र प्रियालिङ्गितोऽपि सेवितशिख्यपि गृहमध्ये । कन्थाप्रावरणोऽपि खलु कम्पे सतुहिनपवनेन ॥ १९ ॥
स पुन र्महानुभावो मुनिः कथं भविष्यति निरावरणः । अतिदुःसहहृदयताङ्यद्धिमकणसंमिश्रशीतेन ॥ २० ॥
इत्येवं चिन्तयतस्तस्य जाता निशा गतप्राया । तदा स समुत्थाय गतस्तथा चैव मुनिं पश्यति ॥ २१ ॥
ततो भक्तिप्रकर्षोद्भिन्नपुलकपरिपूरितेन तेन मुनिः । प्रणतः पदपङ्कजमिलितभालपट्टेन सप्रणयम् ॥ २२ ॥
अत्रान्तरे भुवनस्य जडिमामपनेतुमिच्छता । उदितं पूर्वदिशि विदूषेणेवोष्णकिरणेन ॥ २३ ॥
मुनिनापि पारयित्वोत्सर्गं तस्य देशना विहिता । भो भद्र ! पापमूलं परिहर प्राणिवधमेतदिति ॥ २४ ॥
यतो भणितम् -
हत्वा परप्राणानात्मानं यः करोति सप्राणम् । अल्पानां दिवसानां कृतेन नाशयत्यात्मानम् ॥ २५ ॥
एकस्य क्षणं तृप्तिरन्यस्य च त्रिभुवनमप्यस्तमेति । एवं कथं मार्यते क्षणसौख्यकृतेन प्राणिगणः ? ॥ २६ ॥
एकशरीरस्य कृते सरुजोशाश्वतस्य तुच्छस्य । ये मारयन्ति जीवांस्तेषां किं शाश्वत आत्मा ? ॥ २७ ॥
इति मुनिवचनं श्रुत्वा प्राणिवधमात्मनोऽनर्थफलम् । स जल्पति भयभीतो देहि मम प्राणिवधनियमम् ॥ २८ ॥
भणितो मुनिना परिभाव्य गृहाण प्रजल्पति सोऽपि । किं मम कोपि करिष्यति निजनियमे निश्चयपरस्य ॥ २९ ॥
दत्तश्च साधुना तस्य नियमस्तेनापि त्रोटितं जालम् । एवमेव गतो गृहे भणितो भार्यया द्वितीयदिने ॥ ३० ॥
किं न खलु गच्छसि मत्स्यनिमित्तमथ तेनाख्यातो नियमः । तत् श्रुत्वा सा कुपिता गुरुशब्दं कलहयितुं लग्ना ॥ ३१ ॥

मिलिओ य मच्छियाणं सव्वो वि हु पाडओ भणइ एवं । न हु जीवदयाधम्मो अम्हाणं निम्मिओ विहिणा ॥३२॥
इय जंपिऊण नीओ इयरेहिं तरंगिणीए मड्डाए । घल्लविओ य जालं जलम्मि भरियं च मच्छाणं ॥३३॥
मुक्का करुणारसिएण तेण सव्वे वि मुच्चमाणाणं । भग्गा एगस्स परं पंखुडिया तंतुसंगेणं ॥३४॥
एवं जालियपुरिसेहिं मड्डुया मच्छसंगहं एसो । कारविओ वारदुगं मुक्का ते तेण तह चेव ॥३५॥
तप्परओ परिपालिय नियमं अह आउयक्खए जाए । जीवदयापरिणामा बद्धं मणुयाउयं तेण ॥३६॥
रायगिहे सिट्ठिसुओ जाओ दामन्नगो कयं नामं । अट्ठवरिसस्स मारीए मारियं तस्स य कुडुंबं ॥३७॥
नायरजणेण मारीसंचरणभएण तस्स भवणस्स । चाउद्दिसं पि विहिया वाडी बहुकंटयभरेण ॥३८॥
सो पुण जीवदयावससंजायपकिट्ठपुन्नभावेण । जीवंतो नीहरिओ सणि यं कयवाडिदारेण ॥३९॥
भुंजंतो भिक्खन्नं तहा सुयंतो य सुन्नहट्टेसुं । वच्चइ विद्धिं अह अन्नया य सिसिरम्मि संपत्ते ॥४०॥
पावरणविहूणो सो सिसिरानिलकंपमाणसव्वंगो । दिट्ठो समुद्दत्तेण सेट्ठिणा जायकरुणेण ॥४१॥
नियमंदिरम्मि नीओ भोयणपावरणपभिइ सव्वं पि । संपाडिऊण विहिओ कम्मरो नियगिहे चेव ॥४२॥
अह अन्नदिणे मुणिणो समागया दोन्नि विहरणनिमित्तं । दट्ठुं दामन्नगमेगसाहुणा जंपियं ताण ॥४३॥
एसो इमस्स भवणस्स नायगो होहिही न संदोहो । निसुयं कुडुंतरिएण सेट्ठिणा साहुणो वयणं ॥४४॥
चिंतइ य मइ जियंते मज्झ सुए वा कहं इमो होही । मह भवणवई ? अहवा न अन्नहा होइ [1]मुणिभणियं ॥४५॥

मिलितश्च मात्सिकानां सर्वोऽपि खलु पाटको भणत्येवम् । न खलु जीवदयाधर्मोऽस्माकं निर्मितो विधिना ॥ ३२ ॥
इति जल्पित्वा नीत इतरैस्तरङ्गिण्या बलात् । क्षेपितश्च जालं जले भृतं च मत्स्यानाम् ॥ ३३ ॥
मुक्ताः करुणारसिकेन तेन सर्वेऽपि मुच्यमानानाम् । भग्नेकस्य परं पक्षिका तन्तुसङ्गेन ॥ ३४ ॥
एवं जालिकपुरुषै र्बलान्मत्स्यसङ्ग्रहमेषः । कारितो वारद्विकं मुक्तास्तेन तथा चैव ॥ ३५ ॥
तत्परतः परिपाल्य नियममथायुःक्षये जाते । जीवदयापरिणामाद्बद्धं मनुष्यायुस्तेन ॥ ३६ ॥
राजगृहे श्रेष्ठिसुतो जातो दामन्नकः कृतं नाम । अष्टवर्षस्य मार्या मृतं तस्य च कुटुम्बम् ॥ ३७ ॥
नागरजनेन मारीसञ्चरणभयेन तस्य भवनस्य । चातुर्दिशमपि विहिता वर्त्तिका बहुकण्टकभरेण ॥ ३८ ॥
स पुन र्जीवदयावशसञ्जातप्रकृष्टपुण्यभावेन । जीवन्निःसृतः शनैः कृतवर्त्तिकाद्वारेण ॥ ३९ ॥
भुञ्जानो भिक्षान्नं तथा शयंश्च शून्यहट्टेषु । व्रजति वृद्धिमथान्यदा च शिशिरे सम्प्राप्ते ॥ ४० ॥
प्रावरणविहीनः स शिशिरानिलकम्पमानसर्वाङ्गः । दृष्टः समुद्रदत्तेन श्रेष्ठिना जातकरुणेन ॥ ४१ ॥
निजमन्दिरे नीतो भोजनप्रावरणप्रभृति सर्वमपि । संपादय विहितः कर्मकरो निजगृहे चैव ॥ ४२ ॥
अथान्यदिने मुनी समागतौ द्वौ विहरणनिमित्तम् । दृष्ट्वा दामन्नकमेकसाधुना जल्पितं तयोः ॥ ४३ ॥
एष अस्य भवनस्य नायको भविष्यति न सन्देहः । निःश्रुतं कुड्यान्तरितेन श्रेष्ठिना साधो र्वचनम् ॥ ४४ ॥
चिन्तयति च मयि जीवति मम सुते वा कथमयं भविष्यति । मम भवनपतिः ? अथवा नान्यथा भवति मुनिभणितम् ॥४५॥

---

१. मुणिवयणं रं० ।

ता केणावि उवाएण एस मारिज्जउ त्ति चिंतेउं । वाहरिय पुव्वपरिचियचंडालं भणइ उवयरिउं ॥४६॥
रे रे ! इमं विणाससु जह कोइ न याणए तओ तेण । सह सेट्ठिणा पवंचो रइओ अह अन्नदिवसम्मि ॥४७॥
विवणीए वच्चंतं चंडालं हक्किउं भणइ सेट्ठी । रे ! मज्झ देहि दम्मे तं सोउं भणइ मायंगो ॥४८॥
इण्हिं चिय संपेससु नियपुरिसं कंपि मज्झ गेहम्मि । दम्मे जस्स समप्पेमि तयणु पट्ठावए सेट्ठी ॥४९॥
दामन्नगमेव तओ मायंगेणं कयप्पवंचेण । मायंगावाडयाओ वि दूरदेसम्मि सो नीओ ॥५०॥
तो तव्वहणनिमित्तं कालनिसाचूलय व्व अइवंका । जमजीह व्व सुभीमा कालसरूवा भुयंगि व्व ॥५१॥
आयड्ढिया कराला किवाणिया तडिलय व्व दुप्पेच्छा । तो पुव्वभवसमज्जियजीवदयासुकयकम्मेण ॥५२।
मायंगमणे करुणा जाया जह किं विणासिएणिमिणा ? । भणिओ य सो तुममहो हणाविओ सेट्ठिगा आसि ॥५३॥
ता वच्च दूरदेसे नामं पि न नज्जए जहा भद्द ! । अहयं तु तस्स पच्चयनिमित्त लेसंगुलिं तुज्झ ॥५४॥
छिंदेउं दंसिस्सामि एवमायन्निउं वराओ सो । मरणमहाभयकंपिरगत्तो दीणस्सरं भणइ ॥५५॥
मुंच ममं जीवंतं महापसाएण तयणु नीएण । छेत्तूण अंगुली से समप्पिया सेट्ठिणो गंतुं ॥५६॥
तं दट्ठुं संतुट्ठी दमन्नगो वि नासंतो । तस्सेव गोउलम्मी संपत्तो संठिओ य तहिं ॥५७॥
सो तत्थ भयविमुक्को गोउलवइणओ गिहम्मि परिवसइ । रक्खइ दक्खत्तणओ तग्गोउलवच्छरूवाणि ॥५८॥
सेट्ठी वि हु तत्थ गओ गोउलसाराकए तमायंतं । गोरसपुट्ठावयवं पेच्छिय दामन्नगो भीओ ॥५९॥

ततः केनाप्युपायेनैष मार्यतामिति चिन्तयित्वा । व्याहृत्य पूर्वपरिचितचण्डालं भणत्युपचर्य ॥ ४६ ॥
रे रे ! इमं विनाशय यथा कोपि न जानाति ततस्तेन । सह श्रेष्ठिना प्रपञ्चो रचितोऽथान्यदिवसे ॥ ४७ ॥
विपण्या गच्छन्तं चण्डालमाकार्य भणति श्रेष्ठी । रे ! मम देहि द्रम्मास्तत् श्रुत्वा भणति मातङ्गः ॥ ४८ ॥
इदानीमेव सम्प्रेषय निजपुरुषं कमपि मम गृहे । द्रम्मान् यस्य समर्पयामि तदनु प्रस्थापयति श्रेष्ठी ॥ ४९ ॥
दामन्नकमेव ततो मातङ्गेन कृतप्रपञ्चेन । मातङ्गपाटकादपि दूरदेशे स नीतः ॥ ५० ॥
तदा तद्धननिमित्तं कामनिशाचूलिकेवातिवक्रा । यमजीव्हेव सुभीमा कालस्वरुपा भुजङ्गीव ॥ ५१ ॥
आकृष्टा कराला कृपाणिका तडिल्लतेव दुष्प्रेक्ष्या । तदा पूर्वभवसमर्जितजीवदयासुकृतकर्मणा ॥ ५२ ॥
मातङ्गमनसि करुणा जाता यथा किं विनाशितेनानेन ? । भणितश्च स त्वमहो ! घातितः श्रेष्ठिनासीत् ॥ ५३ ॥
ततो व्रज दूरदेशे नामापि न ज्ञायते यथा भद्र ! । अहं तु तस्य प्रत्ययनिमित्तं लेशाङ्गुलिं तव ॥ ५४ ॥
छित्वा दर्शयिष्याम्येवमाकर्ण्य वराकः सः । मरणमहाभयकम्पमानगात्रो दीनस्वरं भणति ॥ ५५ ॥
मुञ्च मां जीवन्तं महाप्रसादेन तदनु नीतेन । छित्वाङ्गुलीं तस्य समर्पिता श्रेष्ठिनो गत्वा ॥ ५६ ॥
तद् दृष्ट्वा संतुष्टः श्रेष्ठी दामन्नकोऽपि नश्यन् । तस्यैव गोकुले सम्प्राप्तः संस्थितश्च तत्र ॥ ५७ ॥
स तत्र भयविमुक्तो गोकुलपते गृहे परिवसति । रक्षति दक्षत्वेन तद्गोकुलवत्सरूपाणि ॥ ५८ ॥
श्रेष्ठयपि खलु तत्र गतो गोकुलसाराकृते तमायान्तम् । गोरसपृष्टावयवं दृष्ट्वा दामन्नको भीतः ॥ ५९ ॥

सासंकमाणसेणं अंगुलिछेएण पच्चभिन्नाओ । चिंतयमिमिणा नूणं मुणिवयणं नऽन्नहा होही ॥६०॥
बलियं दइवं जइ वि हु तह वि पयट्टेमि पोरिसं ताव । पोरिसविहवा जम्हा दइवं पि छलंति सप्पुरिसा ॥६१॥
परिभाविऊणमेयं भणिओ दामन्नओ मह सुयस्स । लेहमिमं वच्छ ! तुमं गंतुं सिग्घं समप्पेसु ॥६२॥
सो वि विणीयत्तणओ पडिवज्जिय तं गओ तुरियगमणो । पत्तो य परिस्संतो पुरपरिसरबाहिरुज्जाणे ॥६३॥
निद्दापरव्वसो तरुतलम्मि जा सुयइ ताव सेट्ठिसुया । कीलंती संपत्ता तम्मि पएसे विसा नाम ॥६४॥
दिट्ठो य तीए लेहो निद्दाए निब्भरं सुयंतस्स । नियसहोयरनामेण लंछिओ तस्स पासम्मि ॥६५॥
थीचावलभावाओ छोडेउं वाइओ तयत्थो य । एसो एयस्स विसं दायव्वमधोयपायस्स ॥६६॥
चिंतियमिमीए तायस्स किमवरद्धं सुदूरमेएण । काराविओ जमेवं दंडो मह भायपासाओ ? ॥६७॥
अहवा वि हु मज्झ पिया संपयमहियं जराभिभूयतणू । मइ-सुइवियलो अन्नं मणम्मि अन्नं कुणइ कज्जं ॥६८॥
चिंताउरो य जम्हा अहमेव य पढमजोव्वणाभिमुहा । अड्डायतिरिच्छा विव भमामि जणयस्स जमिहुत्तं ॥६९॥
जायंति य दीणिम जणंति जोव्वणि संपत्तिय, चिंतासायरि खिवहिं तवहिं परमंदिरि जंतिय ।
पियपरिचत अहुंतपुत्त मणु तावहिं जणयहं, जम्मदिणि च्चिय नयणनीरूं तिं दिज्जइ तणयहं ॥७०॥
अहवा वि हु किमणेणं वियप्पजालेण रुच्चइ जमेसो । ..... ॥७१॥
इय चिंतिऊणमच्छीए कज्जलं सहरिसाए धेत्तूणं । विससद्दस्स विणीओ नहसुत्तीए अणुस्सारो ॥७२॥

साशङ्कमानसेनाङ्गुलिछेदेन प्रत्यभिज्ञातः । चिन्तितमनेन नूनं मुनिवचनं नान्यथा भविष्यति ॥ ६० ॥
बलिकं दैवं यद्यपि खलु तथापि प्रवर्त्तयामि पौरुषं तावत् । पौरुषविभवा यस्मादैवमपि छलयन्ति सत्पुरुषाः ॥ ६१ ॥
परिभाव्येतद्भणितो दामन्नको मम सुतस्य । लेखमिमं वत्स ! त्वं गत्वा शीघ्रं समर्पय ॥ ६२ ॥
सोऽपि विनीतत्वेन प्रतिपद्य तं गतस्त्वरितगमनः । प्राप्तश्च परिश्रान्तः पुरपरिसरबाह्योद्याने ॥ ६३ ॥
निद्रापरवशस्तरुतले यावत्शेरते तावत् श्रेष्ठि सुता । क्रीड़न्ती सम्प्राप्ता तस्मिन्प्रदेशे विषा नाम ॥ ६४ ॥
दृष्ट्श्च तया लेखो निद्राया निर्भरं सुप्तस्य । निजकसहोदरनाम्ना लञ्छितस्तस्य पार्श्वे ॥ ६५ ॥
स्त्रीचापलभावाच्छोटयित्वा वाचितस्तदर्थश्च । एष एतस्य विषं दातव्यमधौतपादस्य ॥ ६६ ॥
चिन्तितमनया तातस्य किमपराद्धं सुदूरमेतेन । कारितो यमेवं दण्डो मम भ्रातृपार्श्वात् ? ॥ ६७ ॥
अथवापि खलु मम पिता साम्प्रतमधिकं जराभिभूततनुः । मति-श्रुति विकलोऽन्यन्मनस्यन्यत्करोति कार्यम् ॥ ६८ ॥
चिन्तातुरश्च यस्मादहमेव च प्रथमयौवनाभिमुखा । वक्रतिर्यञ्चीव भ्रमामि जनकस्य यदभिमुखम् ॥ ६९ ॥
जायंते च दीनिमा जनयति यौवने सम्प्राप्ते, चिन्तासागरे क्षिपति तपति परमन्दिरे यान्ती ।
प्रियपरित्यक्ताभवत्पुत्रा मनस्तापयति जनकस्य, जन्मदिने चैव नयननीरं ताभ्यां दीयते तनयया ॥ ७० ॥
अथवापि खलु किमनेन विकल्पजालेन रोचयति यदेषः । .....॥ ७१ ॥
इति चिन्तयित्वाक्ष्णः कज्जलं सहर्षया गृहीत्वा । विषशब्दस्य विनीतो नखशुक्त्यानुस्वारः ॥ ७२ ॥

विहिओ य दीहभावो सरस्स संवत्तिऊण तह चेव । लेहो मुक्को तुरियं काऊणमिमं गया सगिहं ॥७३॥
दामन्नगो वि निद्दाखयम्मि वुद्धो गिहम्मि गंतूण । सागरदत्तस्स पुरो पक्खिवइ करेण तं लेहं ॥७४॥
धेत्तूण करे सीसेण वंदिउं जाव वायए लेहं । ता विन्नायतयत्थो मणम्मि परिभावइ मुहुत्तं ॥७५॥
एयस्स विसा ताएण दाविया सिग्घमेस लेहत्थो । कायव्वमिणं नवरं जोइसियं ताव पुच्छामि ॥७६॥
जा पुच्छइ ता तेण वि वुत्तं सुभमज्जमद्धरत्तम्मि । लग्गं पुरओ सुद्धी वरिसदुगेणं मह मईए ॥७७॥
सागरदत्तो वि हु सुणिउमेरिसं नियमणे विचिंतेइ । नूणमिमं मह जणओ नाऊणमकारविंसु दुयं ॥७८॥
तो तेण पमोएणं पमाणयंतेण नियपिउवयणं । गंधव्वविवाहेणं दुन्नि वि वीवाहियाणि लहुं ॥७९॥
सेट्ठी जावाऽऽगच्छइ पभायसमयम्मि ताणि तो नियइ । निवसियवलक्खवत्थाणि रुइरनवकंकणकराणि ॥८०॥
पुच्छइ किमेयमह तस्स दंसिओ तस्सुएण सो लेहो । जा वायइ ता पेच्छइ तहेव लेहत्थमच्चत्थं ॥८१॥
चिंतियं च तेण-
केसरिं वारिउं सक्का, वारणं वा वि भीसणं । नालं बुद्धिसमिद्धा वि वारिउं भवियव्वयं ॥८२॥
किं च-
अवि चलइ मेरुचूला, गयणाओ दिणमणी वि निवडेज्जा । न हु मुणिवयणं भुवणम्मि अन्नहा होइ कइया वि ॥८३॥
ता किं अज्ज वि जामाउयस्स चिंतेमि मारणोवायं । परमेव कए कट्ठं वच्छा कह होहिए वराई ? ॥८४॥
परमेयं न मणम्मि वि धरियव्वं नीयमणुसरंतेहिं । भमियमिणं नीइविसारएहिं वयणं जमेत्थत्थे ॥८५॥

विहितश्च दीर्घभावः स्वरस्य संवृत्य तथा चेव । लेखो मुक्तस्त्वरितं कृत्वेमं गता स्वगृहम् ॥ ७३ ॥
दामन्नकोऽपि निद्राक्षये बुद्धो गृहे गत्वा । सागरदत्तस्य पुरः प्रक्षिपति करेण तल्लेखम् ॥ ७४ ॥
गृहीत्वा करे शीर्षेण वन्दित्वा यावद्वाचयति लेखम् । तावद्विज्ञाततदर्थो मनसि परिभावयति मुहूर्त्तम् ॥ ७५ ॥
एतस्मै विषा तातेन दापयिता शीघ्रमेष लेखार्थः । कर्त्तव्यमिदं नवरं ज्योतिषं तावत्पृच्छामि ॥ ७६ ॥
यावत्पृच्छति तावत्तेनाप्युक्तं शुभमद्यार्धरात्रौ । लग्नं पुरतः शुद्धि र्वर्षद्वयेन मम मत्या ॥ ७७ ॥
सागरदत्तोऽपि खलु श्रुत्वेदृशं निजमनसि विचिन्तयति । नूनमिमं मम जनको ज्ञात्वाकार्षीद्दूतम् ॥ ७८ ॥
ततस्तेन प्रमोदेन प्रमाणयता निजपितृवचनम् । गन्धर्वविवाहेन द्वावपि विवाहितौ लघु ॥ ७९ ॥
श्रेष्ठी यावदागच्छति प्रभातसमये तौ ततः पश्यति । निवसितश्वेतवस्त्रौ रुचिरनवकङ्कणकरौ ॥ ८० ॥
पृच्छति किमेतदथ तस्यदर्शितस्तत्सुतेन स लेखः । यावद्वाचयति तावत्प्रेक्षते तथैव लेखार्थमत्यर्थम् ॥ ८१ ॥
चिन्तितं च तेन -
केसरिं वारयितुं शक्ता वारणं वापि भीषणम् । नालं बुद्धिसमृद्धा अपि वारयितुं भवितव्यताम् ॥ ८२ ॥
किञ्च -
अपि चलति मेरुचूला, गगनाद्दिनमणिरपि निपतेत् । न खलु मुनिवचनं भुवने ऽन्यथा भविष्यति कदापि ॥८३॥
ततः किमद्यापि जामातुश्चिन्तयामि मरणोपायम् । परमेवं कृते कष्टं वत्सा कथं भविष्यति वराकी ? ॥ ८४ ॥
परमेतन्न मनस्यपि धर्तव्यं नियमानुसरद्भिः । भणितमिदं नीतिविशारदै र्वचनं यदत्रार्थे ॥ ८५ ॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् । ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत् ॥८६॥
इय चिंतिऊण वुत्तं नवपरिणीयं वहू-वरं वच्छ ! । कुलदेवयाए पाएसु पाडियं किं न वऽज्ज वि य ? ॥८७॥
पुत्तो पभणइ नऽज्ज वि सेट्ठी पुण भणइ अम्ह कुलमग्गो । ता संपयमवि वच्चउ संझासमयम्मि सुमुहुत्ते ॥८८॥
इय भणिउं भंसविओ मायंगो रे ! तयं तए तइया । तह चेव कयं ? किं वा किं पि हु कावाइयं विहियं ? ॥८९॥
सो भयभीओ जा किं पि न भणई ताव सेट्ठिणा भणियं । संपयमवि मह वुत्तं करेसु तुह नऽन्नहा मोक्खो ॥९०॥
मा कुप्प सामि ! जं भणसि संपयं [1]तमहमायरिस्सामि । जइ एवं ता जो चंडियाए भवणम्मि संझाए ॥९१॥
आगच्छइ पूयत्थं पुरिसो तं सव्वहा विणासेसु । मा पुव्वं व पमायं काहिसि तुममेस सिक्खविओ ॥९२॥
दामन्नगो वि सह पिययमाए जा जाइ जाणमारूढो ता सायरदत्तेणं भणिओ तं पत्थिओ कत्थ ? ॥९३॥
तेण वि कज्जम्मि निवेइयम्मि वुत्तं तमेत्थ हट्टम्मि । उवविससु ससं कुलदेवयाए पाएसु पाडेउं ॥९४॥
जावाऽऽगच्छामि तहा कयम्मि जा जाई ताव तमसम्मि । विद्धो बाणेणं तेण झत्ति मुक्को य जीएणं ॥९५॥
हाहारवो य जाओ सिद्धं कज्जं ति जाइ जा सेट्ठी । ता दामन्नगमेसो पेच्छइ हट्टम्मि उवविट्ठं ॥९६॥
तं किं न गओ ? भणियं चे तेण एत्थेव चिट्ठसु तुमं ति । मं मोत्तुं तुह पुत्तो बला गओ किं करेमि अहं ? ॥९७॥
खुहियमणो जा चिट्ठइ सेट्ठी सिट्ठं च ताव केणावि । नाउं परंपराए सेट्ठिसुओ हा ! विणट्ठो त्ति ॥९८॥
पुणरवि एस जियंतो पावो मारावेही अपावमिमं । इय कलिउं व स सेट्ठी मुक्को सहस त्ति पाणेहिं ॥९९॥

इति चिन्तयित्वोक्तं नवपरिणीतं वधू-वरं वत्स ! । कुलदेवतायाः पादेषु पतितं किं नवाद्यापि च ? ॥ ८६ ॥
पुत्रः प्रभणति नाद्यापि श्रेष्ठी पुन र्भणत्यस्मत्कुलमार्गः । ततः साम्प्रतमपि व्रजतु सन्ध्यासमये सुमुर्हूते ॥ ८७ ॥
इति भणित्वा भेषयितो मातङ्गो रे ! तकं त्वया तदा । तथा चैव कृतम् ? किं वा किमपि खलु ★कौशल्यं विहितम् ? ॥८९॥
स भयभीतो यावत् किमपि न भणति तावत् श्रेष्ठिना भणितम् । साम्प्रतमपि ममोक्तं कुरु तव नान्यथा मोक्षः ॥ ९० ॥
मा कोपीः स्वामिन् ! यद्भणसि साम्प्रतं तदहमाचरिष्यामि । यद्येवं ततो यश्चण्डिकायाभवने सन्ध्यायाम् ॥ ९१ ॥
आगच्छति पूजार्थं पुरुषस्तं सर्वथा विनाशय । मा पूर्वमिव प्रमादं करिष्यसि त्वमेष शिक्षयितः ॥ ९२ ॥
दामन्नकोऽपि सह प्रियतमाया यावद्याति यानमारुढः । तावत्सागरदत्तेन भणितस्त्वं प्रस्थितः कुत्र ? ॥ ९३ ॥
तेनापि कार्ये निवेदिते उक्तं त्वमत्र हट्टे । उपविश स्वसारं कुलदेवताया पादेषु पातयित्वा ॥ ९४ ॥
यावदागच्छामि तथा कृते यावद्याति तावत्तमसि । विद्धो बाणेन तेन झटिति मुक्तश्च जीवेन ॥ ९५ ॥
हाहारवश्च जातः सिद्धं कार्यमिति याति यावत् श्रेष्ठी । तावद्दामनकमेष पश्यति हट्ट उपविष्टम् ॥ ९६ ॥
त्वं किं न गतः ? भणितं च तेनात्रैव तिष्ठ त्वमिति । मां मुक्त्वा तव पुत्रो बलाद्गतः किं करोम्यहम् ? ॥ ९७ ॥
क्षुभितमना यावत्तिष्ठति श्रेष्ठी शिष्टं च तावत्केनापि । ज्ञात्वा परम्परया श्रेष्ठिसुतो हा ! विनष्ठ इति ॥ ९८ ॥
पुनरप्येष जीवन् पापो मारयिष्यत्यपापामिमाम् । इति कलित्वैव स श्रेष्ठी मुक्तः सहसेति प्राणैः ॥ ९९ ॥

---

१. तमहि० रं० । ★ कावाइयं (दे.) चतुराई – कौशल्यम्

नाऊण वइयरमिमं रन्ना पुट्ठं वउप्पए कोइ । नत्थि त्ति देव ! नवरं चिट्ठइ जामाउगो एगो ॥१००॥
आगच्छउ सो पेच्छामि ताव पत्तो य निवसयासम्मि । दिट्ठो रन्ना पुव्विल्लपुन्नपयरिसपवित्तंगो ॥१०१॥
चिंतियमिमिणा मा होउ मज्झ एसो जणम्मि अववाओ । रन्नो गिहे पविट्ठं समुद्दत्तस्स सव्वस्सं ॥१०२॥
जइ वि हु एसो जामाउगो त्ति जोग्गो न गेहसामित्ते । तह वि मए दिन्नमिस्स चेव सव्वं पि सव्वस्सं ॥१०३॥
तत्तो रन्ना दामन्नगस्स नायरयलोयपच्चक्खं । दिन्नं रंजियमणसा सव्वं पि समुद्दत्तपयं ॥१०४॥
तो दामन्नगसेट्ठी संजाओ नायराण गोरव्वो । सव्वत्थ चक्खुभूओ जाओ य असेसनयरस्स ॥१०५॥
अह कइया वि विसाए परूढपणयाए साहियं तस्स । लेहस्स बिंदुफुसणाइ सव्वमेयं मए विहियं ॥१०६॥
ते पिययम ! तुह पाणे तया मए रक्खियाऽणुरत्ताए । तेण वि परितुट्ठेणं ठविया सव्वस्स सामित्ते ॥१०७॥
अह कइया वि हु चिरपेसियाणि जलहिम्मि जाणवत्ताणि । पत्ताणि ताणि पुन्नप्पभावओ तस्स सव्वाणि ॥१०८॥
वद्धाविओ य सेट्ठी जा गच्छइ ताव अंतरालम्मि । नच्चंतेण नडेणं[1] परिपढियं रंगमूमीए ॥१०९॥
अणुपुंखमावहंता वि अणत्था तस्स बहुफला हुंति । सुह-दुक्खकच्छपुडओ जस्स कयंतो वहइ पक्खं ॥११०॥
नियचरियसुमरणेणं रंजियहियएण तेण से दिन्नो । एगो लक्खो दविणस्स पाढिउं[2] पुणरवि तमेव ॥१११॥
पुणरवि दिन्नो लक्खो[3] पुणरवि पढियम्मि तइयओ दिन्नो । जा दिन्नं लक्खतिगं रन्ना रुट्ठेण तो भणिओ ॥११२॥
रे निब्भग्गय ववहरसि किह णु पाएहि छड्डिएहिं तुमं । मह पासाओ लद्धुं रिद्धिमिमं जं विणासिहिसि ॥११३॥

ज्ञात्वा व्यतीकरमिदं राज्ञा पृष्टं पौत्रके कोऽपि । नास्तीति देव ! नवरं तिष्ठति जामातृक एकः ॥ १०० ॥
आगच्छतु स पश्यामि तावत्प्राप्तश्च नृपसकाशे । दृष्टो राज्ञा पूर्वपुण्यप्रकर्षपवित्राङ्गः ॥ १०१ ॥
चिन्तितमनेन मा भवतु ममैष जने ऽपवादः । राज्ञोगृहे प्रविष्टं समुद्रदत्तस्य सर्वस्वम् ॥ १०२ ॥
यद्यपि खल्वेष जामातृक इति योग्यो न गृहस्वामित्वे । तथापि मया दत्तमस्मै चेव सर्वमपि सर्वस्वम् ॥ १०३ ॥
ततो राज्ञा दामन्नकाय नागरलोकप्रत्यक्षम् । दत्तं रञ्जितमनसा सर्वमपि समुद्रदत्तपदम् ॥ १०४ ॥
तदा दामन्नकश्रेष्ठी सञ्जातो नागराणां गौरवः । सर्वत्र चक्षुभूतो जातश्चाशेषनगरस्य ॥ १०५ ॥
अथ कदापि विषया प्ररुढप्रणयया कथितं तस्य । लेखस्य बिन्दुमृशणादि सर्वमेतन्मया विहितम् ॥ १०६ ॥
तव प्रियतम ! तव प्राणास्तदा मया रक्षिता अनुरक्तया । तेनापि परितुष्टेन स्थापिता सर्वस्य स्वामित्वे ॥ १०७ ॥
अथ कदापि खलु चिरप्रैषितानि जलधौ यानपात्राणि । प्राप्तानि तानि पुण्यप्रभावात्तस्य सर्वाणि ॥ १०८ ॥
वर्धापितश्च श्रेष्ठी यावद्गच्छति तावदन्तराले । नृत्यता नटेन परिपठितं रङ्गभूमौ ॥ १०९ ॥
अनुपुङ्खमावहन्तोऽपि अनर्थास्तस्य बहुफला भवन्ति । सुख-दुःखकक्षपूटको यस्य कृतान्तो वहति पक्षम् ॥ ११० ॥
निजचरित्रस्मरणेन रञ्जितहृदयेन तेन तस्मै दत्तः । एको लक्षो द्रविणस्य पाठयित्वा पुनरपि तमेव ॥ १११ ॥
पुनरपि दत्तो लक्ष पुनरपि पठिते तृतीयो दत्तः । यावद्दत्तं लक्षत्रिकं राज्ञा रुष्टेन तदा भणितः ॥ ११२ ॥
रे निर्भाग्य ! व्यवहरसि कथं नु पादैश्छर्दितैस्त्वम् । मम पार्श्वाल्लब्ध्वार्द्धिमिमां यद्विनक्ष्यसि ॥ ११३ ॥

१. पढिमयिणं रंग – रं० । २. पाढियं – रं० । ३. लक्खो तहेव पढि० रं० ।

भणियं च तेण जाणामि देव ! वणियाणमणुचियं एयं । कज्जेण जेण विहियं तस्स तुमं सुणसु परमत्थं ॥११४॥
मह सुमराविय्मिमिणा चरियं तो तोसओ मए दिन्नं । इय नाऊणं देवो जं जाणइ तं कुणउ मज्झ ॥११५॥
पुट्ठे नियवुत्तंतो कहिओ दामन्नगेण सव्वो वि । सुणिऊण तयमसेसं रंजियहियएण रन्ना वि ॥११६॥
परिपूइऊण महरिहवत्थालंकारपभिइणा भणिओ । वियरसु भद्द ! जहिच्छं गोरव्वो मज्झ तुममिण्हिं ॥११७॥
इय सो जणाणुरायप्पुव्वगममरोवमं मणुयसोक्खं । भुंजिय सग्गसमिद्धिं पत्तो कमसो य सिद्धिं च ॥११८॥

॥ दामन्नकाख्यानकं समाप्तम् ॥४५॥

इदानो ब्राह्मण्याख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

उज्जेणीए पुरीए वणिणो निवसंति तिन्नि जिणभत्ता । वणिजन्नदत्त-सिरिविण्हुमित्त-जिणदासनामाणो ॥१॥
धूयाओ ताण जयसिरि-विजयसिरीओऽवराइया अवरा । अन्ना वि हु ताण सही वसुमित्ता माहणस्स सुया ॥२॥
अवरोप्परं च वड्ढंतपीइपरिहासहरियहिययाण । अइकमइ ताण कालो अहऽन्नया माहणस्स सुया ॥३॥
आसाढचउम्मासयपभायसमए समीवमियराण । संपत्ता ताओ वि हु एव समुल्लविउमाढत्ता ॥४॥
पियसहि ! न रमिस्सामो अज्जऽम्हे जेण धम्मदिवसमिणं । जिणपूयं काऊणं वंदिस्सामो सुसमणीओ ॥५॥
ता गच्छ ते सगेहे पयंपिए तयणु भणइ वसुमित्ता । आगच्छिस्समहं पि हु तो ताओ भणंति को दोसो ? ॥६॥
तो चत्तारि वि जिणमंदिरम्मि गंतुं जिणिंदबिंबाण । न्हविय विलेविय पूइय पणमिय संथविय भत्तीए ॥७॥

भणितं च तेन जानामि देव ! वणिजामनुचितमेतत् । कार्येण येन विहितं तस्य त्वं श्रृणु परमार्थम् ॥ ११४ ॥
मम स्मारितमनेन चरितं ततस्तोषतो मया दत्तम् । इति ज्ञात्वा देवो यज्जानाति तत्करोतु मम ॥ ११५ ॥
पृष्टे निजवृत्तान्तः कथितो दामन्नकेन सर्वोऽपि । श्रुत्वा तकमेशेषं रञ्जितहृदयेन राज्ञापि ॥ ११६ ॥
परिपूज्य महार्हवस्त्रालङ्कारप्रभृतिना भणितः । वितर भद्र ! यथेच्छं गौरवो मम त्वमिदानीम् ॥ ११७ ॥
इति स जनानुरागपूर्वकममरोपमं मनुजसौख्यम् । भुक्त्वा स्वर्गसमृद्धिं प्राप्तः क्रमशश्च सिद्धिं च ॥ ११८ ॥

॥ दामन्नकाख्यानकम् समाप्तम् ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण्याख्यानकम् -

उज्जैन्यां पूर्यां वणिजो निवसन्ति त्रयो जिनभक्ताः । वणिग्यज्ञदत्त-श्रीविष्णुमित्र-जिनदासनामानः ॥ १ ॥
दुहितरस्तेषां जयश्री-विजयश्रीयावपरजिताऽपरा । अन्यापि खलु तासां सखी वसुमित्रा माहणस्य सुता ॥ २ ॥
परस्परं च वर्धमानप्रीतिपरिहासहृतहृदयानाम् । अतिक्रामति तासां कालोऽथान्यदा माहणस्यसुता ॥ ३ ॥
आषाढचातुर्मासकप्रभातसमये समीपमितरेषाम् । सम्प्राप्ता ता अपि खल्वेवं समुल्लपितुमारब्धाः ॥ ४ ॥
प्रियसखि ! न रमिष्यामहे अद्य वयं येन धर्मदिवसमिमम् । जिनपूजां कृत्वा वन्दिस्यामहे सुश्रमणीः ॥ ५ ॥
ततो गच्छ त्वं स्वगृहे प्रजल्पिते तदनु भणति वसुमित्रा । आगमिष्याम्यहमपि खलु ततस्ता भणन्ति को दोषः ? ॥ ६ ॥
ततश्चत्वार्यपि जिनमन्दिरे गत्वा जिनेन्द्रबिम्बान् । स्नाप्य विलेप्य पूजयित्वा प्रणम्य संस्तुत्य भक्तया ॥ ७ ॥

पत्ता य साहुणीणं सन्नेज्झे पणमिउं समुवविट्ठा । विहिया स देसणा साहुणीए तो सावयसुयाओ ॥८॥
अंगीकरंति तिन्नि वि सावयधम्मं दुवालसविहं पि । वसुमित्ता वि हु अज्जाण पणमिउं एवमुल्लवइ ॥९॥
मंस-निसभोयणाइं अहमवि नियमेमि तीए परिणामं । नाउं दिन्नो नियमो सा वि हु तं पालए सम्मं ॥१०॥
अह अन्नया य वद्धणपुराओ ससुरेण आणयणकज्जा । पट्ठाविओ नरो सा वि ताओ आउच्छिऊण गया ॥११॥
न कुणइ नियनियमाणं भंग तो जंपिया ससुरएण । निसिभोयण-मंसाइं अम्ह कमो तीए तो वुत्तं ॥१२॥
दिवसस्याष्टमे भागे, मन्दीभूते दिवाकरे । नक्तंतद्धि विजानीहि, न नक्तं निशिभोजने ॥१३॥
अवरं च राइभत्तं जइ भणियं किन्न कीरए ताय ? तीए पिंडपयाणं तम्हा न हु होइ निद्दोसं ॥१४॥
मंसं पि हु पंचिदियपाणिविणासुब्भवं सदोसमिमं । जम्हा घायग-कयगा-भक्खागा वि हु समा भणिया ॥१५॥
तेणुत्तं मह वयणं जइ न कुणसि निच्छएण तो गच्छ । नियपियहरम्मि तं निसुणिऊण सा चिंतए एवं ॥१६॥
न हु जुज्जइ जणयगिहे गंतुं एवं ठिए ममेयाणिं । पडिबोहेमि इमं पि हु ता केणावि हु उवाएण ॥१७॥
इय चिंतेऊण भणियं मेल्लावसु ताय ! तस्स पासम्मि । नियमो जस्स सयासे गहिओ तो मन्नियं तेण ॥१८॥
सासू-ससुरय-सुण्हाइयाणि चलियाणि नयरिमुज्जेणिं । गाममि जीवहरणे पत्ताणि तमस्सिणीसमए ॥१९॥
दिट्ठाणि माहवेणं दिएण तो रसवई कया गेहे । ताण निमित्तं सालणयसंगया सुमहुररसा य ॥२०॥
अद्दहियम्मि बहुतीमणम्मि थालीए उवरिभागाओ । मूसयमभिधावन्तो कसिणाही निवडिओ तत्थ ॥२१॥

प्राप्ताश्च साध्वीनां सान्निध्ये प्रणम्य समुपविष्ठाः । विहिता च देशना साधव्या ततः श्रावकसुताः ॥ ८ ॥
अङ्गीकुर्वन्ति त्रयोऽपि श्रावकधर्मं द्वादशविधमपि । वसुमित्रापि खलु आर्याः प्रणम्यैवमुल्लपति ॥ ९ ॥
मांस-निशिभोजनान्यहमपि नियच्छामि तस्याः परिणामम् । ज्ञात्वा दत्तो नियमः सापि खलु तं पालयति सम्यक् ॥ १० ॥
अथान्यदा च वर्धनपुरात् श्वसुरेणानयनकार्यात् । प्रस्थापितो नरः सापि ता आपृच्छ्य गता ॥ ११ ॥
न करोति निजनियमानां भङ्गं तदा जल्पिता श्वसुरेण । निशिभोजन-मांसादयोऽस्मत्क्रमस्तया तत उक्तम् ॥ १२ ॥
दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे । नक्तं तद्धि विजानीहि, न नकतं निशिभोजने ॥ १३ ॥
अपरं च रात्रिभक्तं यदि भणितं किं न क्रियते तात !? । तस्याः पिण्डप्रदानं तस्मान्न खलु भवति निर्दोषम् ॥ १४ ॥
मांसमपि खलु पञ्चेन्द्रियप्राणिविनाशोद्भवं सदोषमिदम् । यस्माद् घातक-क्रयका भक्षका अपि खलु समा भणिताः ॥ १५ ॥
तेनोक्तं मम वचनं यदि न करोषि निश्चयेन तदा गच्छ । निजपितृगृहे तन्निश्रुत्य सा चिन्तयत्येवम् ॥ १६ ॥
न खलु युज्यते जनकगृहे गन्तुमेवं स्थिते ममेदानीम् । प्रतिबोधयामीममपि खलु तावत्केनापि खलूपायेन ॥ १७ ॥
इति चिन्तयित्वा भणितं मेलय तात ! तस्य पार्श्वे । नियमो यस्य सकाशे गृहीतस्ततो मतं तेन ॥ १८ ॥
श्वसु-श्वसुरक-श्नुषादिकानि चलितानि नगरिमुज्जैनीम् । ग्रामे जीवहरणे प्राप्तानि तमस्विनिसमये ॥ १९ ॥
दृष्टानि माधवेन द्विजेन तदा रसवती कृता गृहे । तेषां निमित्तं सालनकसंगता सुमधुररसा च ॥ २० ॥
आद्रिते बहुतीमने स्थाल्यामुपरिभागात् । मूषकमभिधावन् कृष्णाहि र्निपतितस्तत्र ॥ २१ ॥

चालंतेणं डोएण खंडिओ तयणु माहवदिएण । भणियाणि भोयणट्ठा ताणि न मन्नेइ वसुमित्ता ॥२२॥
तीए य अजमंतीए सासू ससुरो य दो वि नो जिमिया । भुत्तो य ताण परियणलोगो विसजोगओ य मओ ॥२३॥
दिट्ठाइं गोससमए विसहरखंडाणि तीमणस्संते । तो ससुरयस्स जाओ बहुमाणो तम्मि नियमम्मि ॥२४॥
पुणरवि चलियाणि पहे पत्ताणि पुरम्मि दसउरे भज्जाए । रयणीए समुत्तिन्नाणि मंदिरे बउलदत्तस्स ॥२५॥
पुत्तो य तस्स नियगिहनिउत्तकुलपुत्तयस्स भज्जाए । आगच्चसम्मनामा अणुरत्तो तेण नाओ य ॥२६॥
तज्जणणी-जणयाणं कहियं तेहिं पि किंपि न हु भणियं । तो बहुययरं कुविओ निहालए तस्स छिड्डाणि ॥२७॥
पाहुणयाण निमित्तं मंसाणयणे य पेसिओ तेण । गच्छंतेणं नियभारियाए सह रहसि सो दिट्ठो ॥२८॥
कुविएण तओ उब्बंधिऊण तस्सेव ऊरुजुयलस्स । उक्कत्तिऊण मंसं तज्जणणीए समप्पेउं ॥२९॥
घेत्तूण य सकलत्तं कुलउत्तो नासिउं गओ कहि वि । भणिया य भोयणट्ठा पाहुणगा भोयणे सिद्धे ॥३०॥
निसिभोयण-मंसाणं नियमो तो जेमिया न वसुमित्ता । सासू-ससुरेहिं पि हु न हु भुत्तं तयणुरोहेण ॥३१॥
जोयइ जा नियपुत्तं जणओ ता नियइ तं तहावत्थं । नाओ य ससुरएणं माहणमंसस्स वुत्तंतो ॥३२॥
तो जंपइ जयउ जए नियमो तुह पुत्ति ! जप्पभावेण । नो जायं विसमरणं न भक्खियं विप्पमंसं पि ॥३३॥
तो एसो चेव जए धम्मो न हु अत्थि कोइ पुण अन्नो । जेणेरिसोवयारो जाओ एमेव य कएण ॥३४॥
अम्हे वि करिस्सामो निसिभोयण-मंसविरमणं वच्छे ! । जम्हा न एयअवरो अओ परो अत्थि वरधम्मो ॥३५॥

चालयता डोडेन खण्डितस्तदनु माधवद्विजेन । भणितानि भोजनार्थास्ते न मन्यते वसुमित्रा ॥ २२ ॥
तस्याश्चाभुञ्जन्त्याः श्वसुः श्वसूरश्च द्वावपि नजेमितौ । भुक्तश्च तेषां परिजनलोको विषयोगाच्च मृतः ॥ २३ ॥
दृष्टानि प्रत्युषसमये विषधरखण्डानि तीमनस्यान्ते । ततः श्वसुरस्य जातो बहुमानस्तस्मिन्नियमे ॥ २४ ॥
पुनरपि चलितानि पथि प्राप्तानि पुरे दशपुरे तानि । रजन्यां समुतीर्णानि मन्दिरे बकुलदत्तस्य ॥ २५ ॥
पुत्रश्च तस्य निजगृहनियुक्तकुलपुत्रकस्य भार्यायाम् । आगत्यशर्मानामानुरक्तस्तेन ज्ञातश्च ॥ २६ ॥
तज्जननी-जनकयोः कथितं ताभ्यामपि किमपि न खलुभणितम् । ततो बहुकतरं कुपितो निभालयति तस्य छिद्राणि ॥ २७ ॥
प्राघूर्णकानां निमित्तं मांसानयने च प्रेषितस्तेन । गच्छता निजभार्यया सह रहसि स दृष्टः ॥ २८ ॥
कुपितेन तत उद्बध्य तस्यैवौरुयुगलस्य । उत्कर्त्य मांसं तज्जनन्यां समर्प्य ॥ २९ ॥
गृहीत्वा च सकलत्रं कुलपुत्रो नष्ट्वा गतः क्वापि । भणिता च भोजनार्थाः प्राघूर्णका भोजने सिद्धे ॥ ३० ॥
निशिभोजन-मांसानां नियमस्तदा जेमिता न वसुमित्रा । श्वश्रु-श्वसुराभ्यामपि न खलु भुक्तं तदनुरोधेण ॥ ३१ ॥
पश्यति यावन्निजपुत्रं जनकस्तावत्पश्यति तं तथावस्थम् । ज्ञातश्च श्वसुरेण माहणमांसस्य वृत्तान्तः ॥ ३२ ॥
तदा जल्पति जयतु जगति नियमस्तव पुत्रि ! यत्प्रभावेन । न जातं विषमरणं न भक्षितं विप्रमांसमपि ॥ ३३ ॥
तत एष चैव जगति धर्मो न खल्वस्ति कोपि पुनरन्यः । येनेदृशोपकारो जात एवमेव च कृतेन ॥ ३४ ॥
वयमपि करिष्यामो निशिभोजन-मांस विरमणं वत्से ! । यस्मान्नैवापरोऽतः परोऽस्ति वरधर्मः ॥ ३५ ॥

तो तेहिं वि पडिवन्ना नियमा वलिउं गयाणि नियनयरे । जाया य हिययदइया अहियं दइयस्स वसुमित्ता ॥३६॥
तो तिन्नि वि नियनियमे सुनिम्मले पालिऊण मरिऊण । भासुरबुंदी जाया अमरा सोहम्मकप्पम्मि ॥३७॥
चविउं ससुरयजीवो जाओ एत्थेव भरहवासम्मि । सिरिधम्मो निवपुत्तो संपत्तो जोव्वणारंभं ॥३८॥
वसुमित्ता वि हु चविउं जाया तत्थेव सेट्ठिणो धूया । सिरिदेवी नामेण अवरा वि हु तत्थ नयरम्मि ॥३९॥
जायाओ चउद्दस कन्नयाओ सासूजिओ वि ताणेक्को । उप्पन्ना नामेणं देवजसा देवकुमरि व्व ॥४०॥
तत्तो चउद्दसण्हं पि सेट्ठिणा विरइयं विभूईए । वद्धावणयं कालक्कमेण पत्ताओ तारुन्नं ॥४१॥
नियवहुयनियमभंजावणुब्भवं उदयमागयं कम्मं । तो देवजसागत्ते वाढं कोढो समुप्पन्नो ॥४२॥
सिरिदिवीए सव्वाओ ताओ नेहेण नियनियनिओगे । एगा केसे संजमइ का वि उव्वट्टणं कुणइ ॥४३॥
परिहावइ आभरणे अवरा अन्ना य आसणं देइ । इय उवओगं गच्छंति तीए कज्जेसु सव्वाओ ॥४४॥
देवजसा पुण जंपइ ममं पि कारवसु किं पि नियकज्जं । पियसहि ! एरिसपरिवज्जणिज्जरोगेण सहियं पि ॥४५॥
तीए भणियं ठाणम्मि जम्मि ण्हाणं समायरामि अहं । तम्मि पएसे सुपसत्थसत्थियं देसु समईण ॥४६॥
तो तं समायरंतीए तीए पंकप्पभावओ हत्था । जाया तो तप्पाओग्गओ य सज्जं सरीरं पि ॥४७॥
जाओ सिरिधम्मस्स वि कोढो सो चेव तेण कम्मेण । पच्चक्खाओ विज्जेहिं तयणु घोसाविओ पडहो ॥४८॥
छित्तो देवजसाए भणियं च अहं करेमि निरुयमिमं । तो अणेउं नियमंदिरम्मि तीए वहम्मि ठिओ ॥४९॥

ततस्तैरपि प्रतिपन्नौ नियमौ वलित्वा गता निजनगरे । जाता च हृदयदयिताधिकं दयितस्य वसुमित्रा ॥ ३६ ॥
ततस्त्रयोऽपि निजनियमान् सुनिर्मलान् पालयित्वा मृत्वा । भासुरबोंदय जाता अमराः सौधर्मकल्पे ॥ ३७ ॥
च्युत्वा श्वसुरजीवो जातोऽत्रैव भारतवर्षे । श्रीधर्मो नृपपुत्रः सम्प्राप्तो यौवनारम्भम् ॥ ३८ ॥
वसुमित्रापि खलु च्युत्वा जाता तत्रैव श्रेष्ठिनो दुहिता । श्रीदेवी नाम्नापरावि खलु तत्र नगरे ॥ ३९ ॥
जाताश्चतुर्दश कन्याःश्वश्रुजीवोऽपि तासामेकः । उत्पन्ना नाम्ना देवयशा देवकुमारीव ॥ ४० ॥
ततश्चतुदर्शानामपि श्रेष्ठिना विरचितं विभूत्या । वर्धापनकं कालक्रमेण प्राप्तास्तारुण्यम् ॥ ४१ ॥
निजवधूकनियमभङ्गनोद्भवमुदयमागतं कर्म । ततो देवयशागात्रे गाढं कुष्टः समुत्पन्नः ॥ ४२ ॥
श्रीदेव्या सर्वास्ताः स्नेहेन निजनिजनियोगान् । एका केशान्संयच्छते कापि उद्वर्तनं करोति ॥ ४३ ॥
परिधापयत्याभरणान्यपरान्या चासनं ददाति । इत्युपयोगं गच्छन्ति तस्यां कार्येषु सर्वाः ॥ ४४ ॥
देवयशा पुन र्जल्पति ममापि कारय किमपि निजकार्यम् । प्रियसखि ! ईदृशपरिवर्त्तनीयरोगेण सहितामपि ॥ ४५ ॥
तया भणियं स्थाने यस्मिन् स्नानं समाचराम्यहम् । तस्मिन्प्रदेशे सुप्रशस्तस्वस्तिकं देहि स्वमत्या ॥ ४६ ॥
ततस्तं समाचरन्त्या तया पङ्कप्रभावतो हस्तौ । जातौ तदा तत्प्रायोगात् च सज्जं शरीरमपि ॥ ४७ ॥
जातः श्रीधर्मस्यापि कुष्टः स चैव तेन कर्मणा । प्रत्याख्यातो वैद्यैस्तदनु घोषयितः पटहः ॥ ४८ ॥
स्पृष्टो देवयशसा भणितं चाहं करोमि निरुजमिमम् । तदानीय निजमन्दिरे तया व्रणे स्थितः ॥ ४९ ॥

उव्वट्टिओऽणुदिवसं सिरिमइउव्वट्टणेण निवकुमरो । जाओ य जच्चकंचणसच्छाओ थेवदिवसेहिं ॥५०॥
परिणाविओ य सव्वाओ ताओ तुट्ठेण राइणा कुमरो । अहिसिंचिओ य रज्जे पत्थावे कणयकलसेहिं ॥५१॥
जाओ य महाराया अहऽन्नया सुहगुरूण पासम्मि । पडिवन्नो जिणधम्मो सव्वाहिं वि पणइणीहि समं ॥५२॥
तं सम्मं परिपालिय गयाणि सव्वाणि देवलोगम्मि । उप्पज्जिउं विदेहे सिद्धिसुहं लहु लहिस्संति ॥५३॥
गंथाओ नेयव्वं वित्थरओ बहिणिवच्छलाओ इमं । इय नियमं नाऊणं कायव्वो सो सुबुद्धीहिं ॥५४॥

॥ ब्राह्मण्याख्यानकं समाप्तम् ॥४६॥

इदानीं चण्डचूडाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्–

अत्थि इहेव को वि तहाविहकोडुंबियपायजणाहिट्ठिओ, रोहणाभिहाणभूहरभूमिभागो व्व महाहीरयाहारो, पंडियसहापएसो व्वो गोवाहिट्ठिओ, मरुमंडलो व्व थोववाणिओ, जणाउलनिवासो व्व अप्पसावओ, सप्पुरिसदेहो व्व सच्छायवच्छत्थलोवसोहिओ सुहत्थलाभिहाणो नाम गामो । तम्मि य एगो कुलपुत्तओ परोवहसणसीलो सहावकुडिलो चंडचूडाभिहाणो परिवसइ । अवरो वि तग्गिहसमीवे चेव दुग्गयाभिहाणो कुंभयारो खल्लिहडओ। सो य चंडचूडो पइदिणं पेच्छइ रविकिरणकरालियं पिलिपिलंतं इतो तओ नितो गिहट्ठिओ तस्स खल्लिं ।

अन्नया पासइ तहाविहसाहुसमीवे सावयाइजणं मज्ज-मंसाइनियमे गिण्हंतं । आगंतूणं उवहासपरो पभणइ–भो ! जइ एयारिसेहिं नियमेहिं धम्मो भवइ ता [1]अहमवेतस्स दुग्गयाभिहाणकुंभयारस्स जाव खल्लिं न

उद्वर्तितोऽनु दिवसं श्रीमत्युद्वर्तनेन नृपकुमारः । जातश्च जात्यकञ्चनसदृशः स्तोकदिवसैः ॥ ५० ॥
परिणायितश्च सर्वास्तास्तुष्टेन राज्ञा कुमारः । अभिषिक्तश्च राज्ये प्रस्तावे कनककलशैः ॥ ५१ ॥
जातश्च महाराजाऽथान्यदा सुगुरुणां पार्श्वे । प्रतिपन्नो जिनधर्मं सर्वाभिरपि प्रणयिनिभिः समम् ॥ ५२ ॥
तं सम्यक् परिपाल्य गताः सर्वे देवलोके । उत्पद्य विदेहे सिद्धिसुखं लघु लप्स्यन्ते ॥ ५३ ॥
ग्रन्थाज्ज्ञेयं विस्तरतो भगिनिवत्सलादिदम् । इति नियमं ज्ञात्वा कर्तव्यः स सुबुद्धिभिः ॥ ५४ ॥

॥ ब्राह्मण्याख्यानकं समाप्तम् ॥ ४६ ॥

चण्डचूडाख्यानकम् ॥ ४७ ॥

अस्तीहैव कोऽपि तथाविधकौटुम्बिकप्रयोजनाधिष्ठितो, रोहणाभिधानभूधरभूरिभाग इव महाहीरकाधारः पण्डितसभाप्रदेश इव गोपाधिष्ठितः मरुमण्डल इव स्तोकवणिग्, जनाकुलनिवास इवाल्पश्रावक, सत्पुरुषदेह इव सच्छायवक्षःस्थलोपशोभितः शुभस्थलाभिधानो नाम ग्रामः । तस्मिंश्चैकःकुलपुत्रकः परोपहसनशीलः स्वभावकुटिलश्चण्डचूडाभिधानः परिवसति । अपरोऽपि तद्गृहसमीपे चैव दुर्गताभिधानः कुम्भकारः खल्वाटः । स च चण्डचूडः प्रतिदिनं पश्यति रविकिरणकरालितं पीडिपीडन्तमितस्ततो नयन् गृहस्थितस्तस्य खल्लिम्★ ।

अन्यदा पश्यति तथाविधसाधुसमीपे श्रावकादिजनं मद्य-मांसादि नियमान् गृह्णन्तम् । आगत्योपहासपरः प्रभणति-भो ! यद्येतादृशै र्नियमै र्धर्मो भवति तदाहमप्येतस्य दुर्गताभिधानकुम्भकारस्य यावत् खल्लिं न पश्यामि तावन्न

१. ओहमप्येतस्य । ★ खल्लि - टाल (गुजराती)

पेच्छामि ताव न भुंजामि, मज्झ वि होउ एस नियमो । साहूहिं भणियं – जइ निच्छएण परिपालेसि ता अत्थि फलं । गहिओ य अवन्नाए नियमो, पालइ य तं तहा कल्लाणभायणत्तेणण सम्ममेसो ।

अन्नया य गओ सो कुंभयारो अणुग्गए चेव दिवसयरे मट्टियाखणणत्थं । जायमवरण्हं । सुइरं निरिक्खिओ वि न दिट्ठो कुंभयारो । दढपइन्नत्तणओ न भुंजए एसो । पुच्छिओ भारियाए–किं न भुंजसि ? । भणियं च णेण-मए एरिसो नियमो अंगीकओ । तीए पणयपुव्वमुवहसिओ - तुज्झ्फ वि केरिसो नियमो ? । तेण भणियं – भद्दे ! मा भणसु एवं, पडिवन्नानिव्वहणे केरिसं पुरिसत्तणं ? । तओ तीए तस्स निच्छयं जाणिऊण पुच्छियाणि दुग्गयमाणुसाणि । भणियं च तेहिं गओ मट्टियानिमित्तं खाणीए । तत्थेव गओ चंडचूडो तद्दंसणत्थं।

एत्थंतरे कुंभयारस्स मट्टियाखणणत्थं दिन्ने कुद्दालियापहारे उम्मिट्ठं निहाणभायणं । 'दिट्ठो दिट्ठो' त्ति भणिऊण वलिओ चंडचूडो । तेण यसंकिएण 'नायमणेणं' ति वालिओ । तेण वि भिउडिं काऊण भेसिऊण भणियं मम पुव्विल्लएहिं निहाणीक्यमासि । तओ तदुचियं दीणारसहस्सं दाऊण वसीकयं दविणजायं । जाओ य तप्पभावेण जणपूयणिज्जो । कुणइ य चाय-भोय-विलासाइयं । जाओ य पत्थुयनियमविसए बहुमाणो । चिंतियं च तेण अणुभूयनियमफलेणं-अहो ! मे पावपरिणई, अहो ! मे पयइकुडिलत्तणं, अहो ! मे पुरिसाहमत्तणं, अहो ! मे लोगववहारवज्झत्तणं, अहो ! मे दुद्दंतइंदियत्तणं, अहो ! मे परलोयनिरवेक्खत्तणं, अहो ! मे गुणवेसत्तणं; जेण मए मलिणपक्खेण अच्चंतमुच्छितेण लोहमइएण सुतिक्खतुंडेण परमम्मवेहिणा सव्वजणसंतावगेण चत्तगुणेण धम्मविमुक्केण बालेण व तया तारिसा वि साहुणो परोवयारनिरया

भुञ्जे, ममापि भवत्वेष नियमः । साधुभि र्भणितं -यदि निश्चयेन परिपालयसि तदास्ति फलम् । गृहीतश्चावज्ञया नियमः, पालयति च तं तथा कल्याणभाजनत्वेन सम्यगेषः।

अन्यदा च गतः स कुम्भकारोऽनुद्गते चैव दिवसकरे मृत्तिकाखननार्थम् । जातमपराह्णम् । सुचिरं निरीक्षितोऽपि न दृष्टः कुम्भकारः । दृढप्रतिज्ञत्वेन न भुनङ्क्ते एषः । पृष्टो भार्यया किं न भुङ्क्षे ? भणितं चानेन-मयेदृशो नियमोऽगीकृतः । तया प्रणयपूर्वकमुपहसितः-तवापि कीदृशो नियमः? । तेन भणितं भद्रे । मा भणैवम्, प्रतिपन्नानिर्वाहणे कीदृशं पुरुषत्वम् ? । ततस्तया तस्य निश्चयं ज्ञात्वा पृष्टा दुर्गतमनुष्याः । भणितं च तै गतो मृत्तिका-निमित्तं खान्याम् । तत्रैव गतश्चण्डचूडस्तद्दर्शनार्थम् ।

अत्रान्तरे कुम्भकारस्य मृत्तिकाखननार्थं दत्ते कुद्दालिकाप्रहारे बहिर्निर्गतम् निधानभाजनम् । 'दृष्टो दृष्ट' इति भणित्वा वलितश्चण्डचूडः। तेन च शङ्कितेन 'ज्ञातमनेने' ति वालितः । तेनापि भृकुटिं कृत्वा भेषयित्वा भणितं मम पूर्वजै निर्धानीकृतमासीत् । ततस्तदुचितं दीनारसहस्रं दत्वा वशीकृतं द्रविणजातम् । जातश्च तत्प्रभावेन जगत्पूजनीयः । करोति च त्याग-भोग-विलासादिकम् । जातश्च प्रस्तुतनियमविषये बहुमानः । चिन्तितं च तेनानुभूतनियमफलेनाहो ! मे पापपरिणतिः, अहो ! मे प्रकृति कुटिलत्वम् अहो ! मे पुरुषाधमत्वम्, अहो ! मे लोकव्यवहारबाह्यत्वम् , अहो ! मे दुर्दान्तेन्द्रियत्वम्, अहो ! मे परलोकनिरपेक्षत्वम्, अहो ! मे गुणद्वेषत्वम्, येन मया मलिनपक्षेणात्यन्तमुच्छिटेन लोभमतिना सुतीक्ष्णतुण्डेन परमर्मवेधिना सर्वजनसन्तापकेन त्यक्तगुणेन धर्मविमुक्तेन बालेनेव तदा तादृशा अपि साधवः परोपकारनिरता इहलोकनिष्पिपासाः । समशत्रुमित्राः समतृण-मणि-लेष्टु-कञ्चना एते सुमहान्तः ढिंबाचार्याः

इहलोयनिप्पिवासा समसत्तु-मित्ता समतिण-मणि-लेट्ठु-कंचणा 'एए सुवड्डुया ढिंबायरिया असंबद्ध-भासिणो भोगंतरायकारय' त्ति पावकम्मुणा निंदिया, एए वि सावया जीवदयापरायणा असच्चवावारविरया परदव्वावहारभीरुणो सकलत्तसंतुट्ठा अपरिमियपरिग्गह-राइभोयण-मज्ज-मंसाइपरिभोयनियत्तचित्ता अयाणमाणेणोवहसिया, पेच्छ ममोवहासपरस्स वि एरिसं एत्तियं नियमफलं जायं ति, ता सव्वहा अहमेत्तियस्स चेव जोगो त्ति, किं कइया वि काओ कंचणसलागामयपंजरपक्खेवमरिहइ ? किं कइया वि मायंगगेहदारमेरावयसिंधुरबंधणभायणं होइ ? किं वा छलीए मुहे कुंभंडं माइ[1] ? किं वा दोणघणवरिसणे वि गिरिसिहरे नीरावत्थाणमरिहइ ? किं वा ओममियकुंभो महुर-सीयलनीरपत्तत्तणं पावइ ? किं वा मरुमंडलं वियसियकमलसरोवरसोहाभवणं भवइ ? त्ति; किं बहुणा ? सव्वहाऽहमकल्लाणभायणं जेण मए एएहिं सावएहिं समं बहुययरनियमगहणं न कयं-ति साहुसावयगुणपक्खवायबहुमाणेण पोसियं बोहिबीयं, परित्तो कओ संसारो । आउयक्खए पत्तो तियसालयं । तओ चुओ कमेण पाविही परमपयं ति ॥

॥ चण्डचूडाख्यानकं समाप्तम् ॥ ४७ ॥

इदानीं गिरिडुम्बाख्यानकमाख्यायते । तद्यथा-

अत्थि सिरिसिरिउरं नाम नयरमइनयररम्मयाकलियं । राया तम्मि जियारी जियारिनामो जहत्थक्खो ॥१॥
पुरपरिसरम्मि डुंबो सुकुडुंबो पयइभद्दगो एगो । निवसइ नाडयवित्ती नडो व्व नामं च तस्स गिरी ॥२॥
तस्स य दो भज्जाओ सज्जाओ नाडयं चलंतस्स । पज्जंते चलमाणा तासिं पासेसु दोसुं पि ॥३॥

असंबद्धभाषिणो भोगान्तरायकारका इति पापकर्मणा निन्दिताः, एते ऽपि श्रावका जीवदयापरायणा असत्य-व्यापारविरताः परद्रव्यापहारभीरवः स्वकलत्रसंतुष्टा अपरिमितपरिग्रह-रात्रिभोजन-मद्य-मांसादि परिभोग निवर्तचित्ता अज्ञायमानेनोपहसिताः, पश्य ममोपहासपरस्यापीदृशमेतावन्नियमफलं जातमिति, ततः सर्वथाहमेतावत एव योग्य इति, किं कदापि काकः कञ्चनशलाकाभयपिञ्जरापेक्षामर्हति ? किं कदापि मातङ्गगेहद्वारमैरावतसिन्धुरबन्धनभाजनं भवति ? किं वा छलिते मुखे कुष्माण्डं माति ? किं वा द्रोणघनवर्षणेऽपि गिरिशिखरे नीरावस्थानमर्हति ? किं वापक्वकुम्भो मधुर-शीतलनीरपात्रत्वं प्राप्नोति ? किं वा मरुमण्डलं विकसितकमलसरोवरशोभाभवनं भवति ? इति, किं बहुना ? सर्वथाहमकल्याणभाजनं येन मयैतैः श्रावकैः समं बहुतरनियमग्रहणं न कृतमिति साधु-श्रावक-गुणपक्षपातबहुमानेन पुष्टं बोधिबीजम्, परित्तः कृतः संसारः । आयुःक्षये प्राप्तस्त्रिदशालयम् । ततश्च्युतः क्रमेण प्राप्स्यति परमपदमिति ।

॥ चण्डचूडाख्यानकं समाप्तम् ॥ ४७ ॥

गिरिडुम्बाख्यानकम् ॥ ४८ ॥

अस्ति श्रीश्रीपुरं नाम नगरमतिनगररम्यताकलितम् । राजा तस्मिञ्जितारिजितारिनामा यथार्थाख्यः ॥ १॥
पुरपरिसरे डुम्बः सकुटुम्बः प्रकृतिभद्रक एकः । निवसति नाटकवृत्ति र्नट इव नाम च तस्य गिरिः ॥ २ ॥
तस्य च द्वे भार्ये सज्जे नाटकं चलतः । पर्यन्ते चलन्त्यौ तेषां पार्श्वयो र्द्वयोरपि ॥ ३ ॥

---

१. मायइ रं० ।

मंसस्स छब्बयं वारओ य मज्जस्स वच्चइ चलंतो । जावेगीए पासे ता मंसं खाइ पियइ सुरं ॥४॥
तीए वि हु दाऊणं चलमाणो जाइ पासमियरीए । तत्थ वि तहेव ववसइ इय कम्मरओ वसइ तत्थ ॥५॥
अह कइया वि हु मयमल्लसूरिणो समणसंघपरियरिया । संपत्ता विहरंता तओ य भोत्तूणमवरण्हे ॥६॥
संजमवियारभूमीए पत्थिया पवरनाणिणो जाव । ताव खरतरणिकरनियरतत्ततणुणो समाभिहया ॥७॥
वच्छच्छायाए वीसमंति पेच्छंति तत्थ ताव तयं । तारिसकुकम्मकरणेक्कवावडं मूढवावारं ॥८॥
चिंतियमिमेहिं केच्चिरमेसो निंदियकुकम्मकरणाओ । पावं समायरिस्सइ सुओवओगेण तो नायं ॥९॥
खणमेत्तमिमो जीवइ तओ य परिभाविऊण करुणाए । एस वराओ कहमम्ह दिट्ठिगोयरगओ चेवं ? ॥१०॥
महुमज्ज-मंसभक्खणसंचियगुरुकम्मकयवरो कुगइं । गच्छिहिइ सम्ममाभासिऊण भो भद्द ! किं कुणसि ? ॥११॥
एवं वुत्तो मोत्तूण नाडयं रइयकरकमलकोसो । पडिउं पाएसुं भणइ देव ! किं कम्ममम्हाणं ? ॥१२॥
लज्जियहियओ नियचेट्ठिएण जावऽच्छई विलक्खमणो । ता भणिओ भद्द ! वयं समागया तुज्झ गेहम्मि ॥१३॥
सव्वो वि हु गोरव्वो समागओ होइ एस ववहारो । ता संपयमम्हाणं वुत्तं किं पि हु करेसु तुमं ॥१४॥
तेणुत्तं तुह वुत्तं केरिसमम्हेहिं तीरए काउं ? । तुब्भे भणिस्सह इमं मंसं मज्जं मुयसु भद्द ! ॥१५॥
भणियं गुरूहिमिच्छा तुहेत्थ जं तरसि तत्तियं कुणसु । जइ एवं ता पउणो जमुचियमम्हाण तं भणह ॥१६॥
भणिओ गुरूहिं गंठिं बंधसु घेत्तूण मह तुमं नामं । जावंतरालमेयं संपत्तो भक्खपासम्मि ॥१७॥

मांसस्य छब्बकं वारकश्च मद्यस्य व्रजति चलन् । यावदेकया पार्श्वं तावन्मांसं खादति पिबति सुराम् ॥ ४ ॥
तस्या अपि खलु दत्वा चलन् याति पार्श्वमितर्याः । तत्रापि तथैव व्यवसयतीति कर्मरतो वसति तत्र ॥ ५ ॥
अथ कदापि खलु मृगमल्लसूरयः श्रमणङ्घपरिवारिताः । सम्प्राप्ता विहरन्तस्ततश्च भुक्त्वापराह्णे ॥ ६ ॥
संयमविहारभूमौ प्रस्थिताः प्रवरज्ञानिनो यावत् । तावत् खरतरणिनिकरतप्ततनवः समाभिहताः ॥ ७ ॥
वृक्षच्छायायां विश्राम्यन्ति पश्यन्ति तत्र तावत्तकम् । तादृशकुकर्मकरणैकव्यावृतं मूढव्यापारम् ॥ ८ ॥
चिन्तितमिमैः कियच्चिरमेष निन्दितकुकर्मकरणात् । पापं समाचारिष्यति श्रुतोपयोगेन ततो ज्ञातम् ॥ ९ ॥
क्षणमात्रमयं जीवति ततश्च परिभाव्य करुणया । एष वराकः कथमस्मद् दृष्टिगोचरगतश्चैवम् ? ॥ १० ॥
मधु-मद्य-मांसभक्षणसञ्चितगुरुकर्मकचवरः कुगतिम् । गमिष्यति सम्यगाभाष्य भो भद्र ! किं करोषि ? ॥ ११ ॥
एवमुक्तो मुक्त्वा नाटकं रचितकरकमलकोशः । पतित्वा पादयो र्भणति देव ! किं कर्मास्माकम् ? ॥ १२ ॥
लज्जितहृदयो निजचेष्टितेन यावदास्ते विलक्षमनाः ॥ तावद्भणितो भद्र ! वयं समागतास्तव गृहे ॥ १३ ॥
सर्वोऽपि खलु गौरवः समागतो भवति एष व्यवहारः । ततः साम्प्रतमस्माकमुक्तं किमपि कुरु त्वम् ॥ १४ ॥
तेनोक्तं तवोक्तं कीदृशस्माभिश्शक्यते कर्तुम् ? ॥ यूयं भणिष्यतेमं मान्सं मद्यं मुञ्च भद्र ! ॥ १५ ॥
भणितं गुरुभिरिच्छा तवात्र यत्तरसि तावन्तं कुरु । यद्येवं तावत्प्रगुणो यदुचितमस्माकं तद्भणत ॥ १६ ॥
भणितो गुरुभि र्गण्ठिं बधान गृहीत्वा मम त्वं नाम । यावदन्तरालमेतत्सम्प्राप्तो भक्षपार्श्वे ॥ १७ ॥

भुत्ते तहेव बंधसु छोडेउं भक्खियम्मि पीयम्मि । पुणरवि तहेव बंधसु एव कए तुह सुहं होही ॥१८॥
जोगत्तणओ तेणं पडिवन्ने भावओ सनियमम्मि । तट्ठाणाओ सूरी वियारभूमीए संपत्तो ॥१९॥
इयराणि वि वक्खित्ताणि जाव चिट्ठंति नाडए तम्मि । भवियव्वयाए ताव य जं जायं तं निसामेह ॥२०॥
घेत्तूणं उग्गविसं भुयंगमं सउणिया समुप्पइया । भुयगस्स मुहाओ मज्जवारए निवडियं गरलं ॥२१॥
न य लक्खियमियरेहिं इओ य सो गंठिसंगओ डुंबो । पत्तो मंससमीवे छोडइ गंठि सरिय नामं ॥२२॥
भक्खिय मंसं जा पियइ मज्जमह गरलदोसओ झत्ति । भामियदिट्ठी भूमिए निवडिओ ताव गयचेट्ठो ॥२३॥
मुक्को पाणेहिमिओ य तस्स भज्जाओ कंदमाणीओ । काउं परिहाणं मत्थयम्मि पत्ता निवसयासं ॥२४॥
हा देव ! दुव्बलाणं बलिओ राय त्ति ता परित्ताहि । कत्तो तुम्हाण भयं ? तो भणियं ताहि सुणसु पहू ! ॥२५॥
सज्जो संपयमेव हि भत्ता अम्हाण सेयवडएहिं । दाऊण कमवि जावं विणासिओ भंदभग्गाणं ॥२६॥
रन्ना वि सम्ममपरिक्खिऊण कोवेण पेसिया पुरिसा । तेहिं वि निद्दयदट्ठोट्ठ-भिउडिभासुरसरीरेहिं ॥२७॥
भणिया सुरी चल्लह रायाएसेण रायपासम्मि । ढिंहारिएहिं तुब्भेहिं मारिओ रायडुंबडओ ॥२८॥
सो वि हु डुंबो नियमप्पभावओ सुमरिऊण गुरुनामं । मरिऊण समुप्पन्नो कवड्डिजक्खो महिड्ढीओ ॥२९॥
जो अज्ज वि सत्तुंजयगिरिसंठियरिसहवंदणपरस्स । कुणइ सया सन्निज्झं मग्गे संघस्स भत्तीए ॥३०॥
जाव पउंजइ ओहिं ता तयवत्थे निएइ नियगुरुणो । विउरुव्विऊण नयरस्स मत्थए गिरिवरं गरुयं ॥३१॥

भुक्ते तथैव बधाण छोटयित्वा भक्षिते पीते । पुनरपि तथैव बधानैवं कृते तव सुखं भविष्यति ॥ १८ ॥
योग्यत्वेन तेन प्रतिपन्ने भावतः स्वनियमे । तत्स्थानात् सूरि र्विचारभूमौ सम्प्राप्तः ॥ १९ ॥
इतराण्यपि व्याक्षिप्तानि यावत्तिष्ठन्ति नाटके तस्मिन् । भवितव्यतया तावच्चयज्जातं तन्निशामयत ॥ २० ॥
गृहीत्वोग्रविषं भुजङ्गमं शकुनिका समुत्पतिता । भुजगस्य मुखान्मद्यवारके निपतितं गरलम् ॥ २१ ॥
न च भक्षितमितरैरितश्च स गण्ठिसंगतो डुम्बः । प्राप्तो मांससमीपे छोट्यति गण्ठिं स्मृत्वा नाम ॥ २२ ॥
भक्षित्वा मान्सं यावत्पिबति मद्यमथ गरलदोषात् शीघ्रम् । भ्रामितदृष्टी भूमौ निपतितस्तावद्गतचेष्टः ॥ २३ ॥
मुक्तं प्राणैरितश्च तस्य भार्ये क्रन्दत्यौ । कृत्वा परिधानं मस्तके प्राप्ते नृपसकाशम् ॥ २४ ॥
हा देव ! दुर्बलानां बलिको राजेति तावत्परित्रायस्व । कुतो युवां भयम् ? तदा भणितं ताभ्यां श्रृणु प्रभो ! ॥ २५ ॥
सज्जः साम्प्रतमेव हि भर्ताऽऽवयोः श्वेतपटकैः । दत्त्वा कमपि जापं विनाशितो मन्दभाग्ययोः ॥ २६ ॥
राज्ञापि सम्यगपरीक्ष्य कोपेन प्रैषिताः पुरुषाः । तैरपि निर्दयदष्टौष्ठ-भृकुटिभासुरशरीरैः ॥ २७ ॥
भणिताः सूरयश्चलत राजादेशेन राजपार्श्वे । ढिंषाचायैः र्युस्माभि र्मारितो राजडुम्बकः ॥ २८ ॥
सोऽपि खलु डुम्बो नियमप्रभावात् स्मृत्वा गुरुनाम । मृत्वा समुत्पन्नः कार्पदिकयक्षो महर्द्धिकः ॥ २९ ॥
योऽद्यापि शत्रुञ्जयगिरिसंस्थितऋषभवन्दनपरस्य । करोति सदा सान्निध्यं मार्गे संघस्य भक्त्या ॥ ३० ॥
यावत्प्रयुञ्जत्यवधिं तावत्तदवस्थान् पश्यति निजगुरुन् । विकुर्व्य नगरस्य मस्तके गिरिवरं गुरुकम् ॥ ३१ ॥

उद्दंडवायदंदूलविविह (.....) कडयडंतविडविभरं । उक्खणियधूलिधूसरियसत्तसत्थं दढमसत्थं ॥३२॥
जा चिट्ठइ ताव भणंति केइ एएहऽकज्जामायरियं । डुंबव्वहकरणाओ तो जायं विड्डुरमकंडे ॥३३॥
अन्ने वि सावया सम्मदिट्ठिणो ते इमं पयंपंति । सासणदेवीए कयं सन्नेज्झं साहुभत्तीए ॥३४॥
जावेवं सव्वो वि हु नयरजणो खुहियमाणसो जाओ । ता आयासे ठाउं पयंपियं कवडिजक्खेण ॥३५॥
हंहो ! अप्पत्थियपत्थियाइ गुणकलियगलियमाहप्प ! । एवं अपरिक्खियकारगस्स तुह नत्थि कल्लाणं ॥३६॥
तत्तो भीओ राया सुइभूओ अल्लपडयपावरणो । धूयकडच्छुयहत्थो एवं भणिउं समाढत्तो ॥३७॥
देवो द दाणवो वा गंधव्वो किन्नरो व जक्खो वा । सो खमउ मज्झ सव्वं अवरद्धं पायपणयस्स ॥३८॥
इय सोऊणं जक्खो मणयं उवसंतमाणसो जाओ । सम्मदिट्ठी जीवा अणुसयरहिया भवंति जओ ॥३९॥
भणिओ सुरेण राया तुमए रायं ! विरूवमायरियं । जं एवंगुणनिहिणो कयत्थिया साहुणो एए ॥४०॥
समसत्तु-मित्तभावा जीवाण हिया दयावरा धीरा । अवरद्धे वि विरुद्धं परस्स चिंतंति न कया वि ॥४१॥
एएसि पभावेणं परोवयारेक्कमाणसाणमहं । सो तारिसो वि डुंबो जाओ जक्खो महिड्ढीओ ॥४२॥
ता एएसिं पणओ भवाहि पडिवज्ज धम्ममेएसिं । एएसि माणनिरओ भवेज्ज जइ जीवियं महसि ॥४३॥
इय सोउं सूरीणं केसेहिं पमज्जिऊण पयकमलं । भणइ निवो मरिसिज्जसु अन्नाणाओ जमवरद्धं ॥४४॥
अज्ज प्पभिइं तं मज्झ सामिओ बंधवो गुरू जणओ । आणाकारी भयवं ! सीसो हं तुम्ह[1] पयसेवी ॥४५॥

उद्दण्डवातदन्दुलविविध [.....] कडकडद्विटपिभरम् । उत्खनितधूलिधूसरितसत्त्वसार्थं दृढमस्वस्थम् ॥ ३२ ॥
यावत्तिष्ठति तावद्भणन्ति केऽपि एतैरकार्यमाचरितम् । डुम्बवधकरणात्ततो जातमाभोगमकाण्डे ★ ॥ ३३ ॥
अन्येऽपि श्रावकाः सम्यग्दृष्टयस्ते इदं पजल्पन्ति । शासनदेव्या कृतं सानिध्यं साधुभक्त्या ॥ ३४ ॥
यावदेवं सर्वोऽपि खलु नगरजनः क्षुभितमानसो जातः । तावदाकाशे स्थित्वा प्रजल्पितं कपर्दियक्षेण ॥ ३५ ॥
हंहो ! अप्रार्थितप्रार्थितानि गुणकलितगलितमाहात्म्य ! । एवमपरीक्षितकारकस्य तव नास्ति कल्याणम् ॥ ३६ ॥
ततो भीतो राजा शुचिभूत आर्द्रपटकप्रावरणः । धुपकच्छोटकहस्त एवं भणितुं समारब्धः ॥ ३७ ॥
देवो वा दानवो वा गन्धर्वः किन्नरो वा यक्षो वा । स क्षमतां मम सर्वमपराधं पादप्रणतस्य ॥ ३८ ॥
इति श्रुत्वा यक्षो मनागुपशान्तमानसो जातः । सम्यग्दृष्टयो जीवा अनुसयरहिता भवन्ति यतः ॥ ३९ ॥
भणितः सुरेण राजा त्वया राजन् । विरुपमाचरितम् । यदेवंगुणनिधयः कदर्थिताः साधवः एते ॥ ४० ॥
समशत्रु-मित्रभावा जीवानां हिता दयापरा धीराः । अपराधे अपि विरुद्धं परस्य चिन्तयन्ति न कदापि ॥ ४१ ॥
एतेषां प्रभावेन परोपकारैकमानसानामहम् । स तादृशोऽपि डुम्बो जातो यक्षो महर्द्धिकः ॥ ४२ ॥
तत एतेषां प्रणतो भव प्रतिपद्यस्व धर्ममेतेषाम् । एतेषां माननिरतो भव यदि जीवितंकाङ्क्षसि ॥ ४३ ॥
इति श्रुत्वा सूरीणां केशैः प्रमृज्य पदकमलम् । भणति नृपो मर्षतु अज्ञानाद्यमपराद्धम् ॥ ४४ ॥
अद्य प्रभृति त्वं मम स्वामी बान्धवो गुरु-र्जनकः । आज्ञाकारी भगवन् ! शिष्योऽहं तव पदसेवी ॥ ४५ ॥

---

१. तुब्भ रं । ★ विड्डुरं (दे.) आभोग

जक्खो वि हु पच्चक्खो सक्खं होऊणं सूरिपयपुरओ । दंसंतो सुररिद्धिं नियइं संथुणिउमाढत्तो ॥४६॥
अणुयकयपराणुग्गहकरणपरायण ! पसंतमणपसर ! । दुत्थियजणकरुणारसनिज्झरणगिरिंद ! तुज्झ नमो ॥४७॥
इय योऊणं जक्खो सुमरंतो सूरिपायपउमजुयं । निच्चलसम्मत्तजुओ संपत्तो अत्तणो ठाणं ॥४८॥

॥ गिरिडुम्बाख्यानकं समाप्तम् ॥४८॥

इदानीं राजहंसाख्याकमाख्याते । तच्चेदम्-

सोरट्ठदेसमज्झे पुरीए अणिमंजियाभिहाणाए । कुंदसियदंतपंती कुंदो नामेण कम्मयरो ॥१॥
कज्जलसिणिद्धतारा वि भारिया मंजरी पिया तस्स । अह अन्नया य तेणं कट्ठाण कए गएण बहिं ॥२॥
सिरिधम्मघोससूरी दिट्ठो उज्जाणमज्झयारम्मि । दिप्पंतो तवतेएण पणमिओ परमभत्तीए ॥३॥
एवमणुवासरं पि हु पणमइ पयपंकयं मुणिंदस्स । गुरुणा वि तओ सद्धम्मदेसणा तस्स परिकहिया ॥४॥
तो तेण मज्ज-मंसाणि नियमियं पणमिउं गुरूण पुरो । नियनियमपालणुज्जुत्तचित्तजुत्तस्स कुंदस्स ॥५॥
पाहुणओ संपत्तो अहऽन्नया तस्स भारियाभाया । तस्स कए निम्मवियं मंसं तह रसवई महुरा ॥६॥
सालय-भइणीवइणो[1] उवविट्ठा दो वि भोयणनिमित्तं । परिवेसियम्मि मंसे दोण्हं पि न भुंजए कुंदो ॥७॥
भुंजाविओ य नियमं अयाणमाणीए तीए मड्डाए । सुत्तो पच्छायावं निसाए सो काउमारद्धो ॥८॥
पिच्छ जहा धेत्तूणं नियमो निब्भग्गसेहरेण मए । जाणंतेण वि भग्गो अभीरुणा पावकम्मस्स ॥९॥

यक्षोऽपि खलु प्रत्यक्षः साक्षाद् भूत्वा सूरिपदपुरतः । दर्शयन् सुरर्द्धिं निजकां संस्तोतुमारब्धः ॥ ४६ ॥
अनुपकृतपरानुग्रहकरणपरायण ! प्रशान्तमनःप्रसर! । दुस्थितजनकरुणारसनिर्झरणगिरीन्द्र ! तुभ्यं नमः ॥ ४७ ॥
इति स्तुत्वा यक्षः स्मरन् सुरिपादपद्मयुगम् । निश्चलसम्यक्त्वयुतः सम्प्राप्त आत्मनः स्थानम् ॥ ४८ ॥

॥ गिरिडुम्बाख्यानकं समाप्तम् ॥ ४८ ॥

राजहंसाख्यानकम् ॥ ४९ ॥

सौराष्ट्रदेशमध्ये पूर्यामणिमञ्जिकाभिधानायाम् । कुन्दश्वेतदन्तपङ्क्तिः कुन्दो नाम्ना कर्मकरः ॥ १ ॥
कज्जलस्निग्धतारापि भार्या मञ्जरी प्रिया तस्य । अथान्यदा च तेन काष्टानां कृते गतेन बहिः ॥ २ ॥
श्रीधर्मघोषसूरि र्दृष्ट उद्यानमध्ये । दीप्यमानस्तपस्तेजसा प्रणतः परमभक्त्या ॥ ३ ॥
एवमनुवासरमपि खलु प्रणमति पदपङ्कजं मुनीन्द्रस्य । गुरुणापि ततः सद्धर्मदेशा तस्य परिकथिता ॥ ४ ॥
तदा तेन मद्य-मांसानि नियमितं प्रणम्य गुरुणां पुरः । निजनियमपालनोद्यतचित्तयुक्तस्य कुन्दस्य ॥ ५ ॥
प्राघुर्णकः सम्प्राप्तोऽथान्यदा तस्य भार्याभ्राता । तस्य कृते निर्मापितं मांसं तथा रसवती मधुरा ॥ ६ ॥
शालक-भगिनिपती उपविष्टौ द्वावपि भोजननिमित्तम् । पर्युषिते मान्से द्वयोरपि न भुङ्क्ते कुन्दः ॥ ७ ॥
भोजितश्च नियममजानन्त्या तया बलात् । सुप्तः पश्चात्तापं निशि स कर्तुमारब्ध : ॥ ८ ॥
पश्य यथा गृहीत्वा नियमो निर्भाग्यशेखरेण मया । जानतापि भग्नोऽभीरुणा पापकर्मणः ॥ ९ ॥

---

१. वयणो रं० ।

अप्पाणं निंदन्तो पुणो पुणो पुच्छिओ पिययमाए । किं सोयसि ? त्ति भणियं तेणं नियमो मए भग्गो ॥१०॥
अहह ! विरूवं जायं ति जंपिउं तीए पभणिओ भत्ता । किं मह कहियं न तए लज्जाए तम्मि समयम्मि ? ॥११॥
जं विहिओ वयभंगो अहमवि कारविया इमं पावं । ता किमिह सोइएणं ? गोसे गुरुणो कहिस्सामो ॥१२॥
तो उग्गयम्मि अरुणे गुरुण चरणारविंदमभिनमिउं । मोणमवलंबिऊणं साममुहो मणयमुवविट्ठो ॥१३॥
संजाओ लज्जाए अहोमुहो तो पयंपिओ गुरुणा । किं भद्द ! सामवयणो ? तह वि हु न पयंपए किंपि ॥१४॥
तो तस्स सहयरीए कहियं नियमस्स खंडणं गुरुणो । करुणारसिएण तओ सायरमाभासिओ गुरुणा ॥१५॥
कह वि हु कत्तंतीए संधिज्जइ किं न तुट्टओ तंतू ? । पाओ य किं न धुव्वइ असुइविलित्तो पमायवसा ? ॥१६॥
भग्गो रणम्मि सुहडो पुण भिडिओ किं न लहइ जयलच्छिं ? । एवं खंडियनियमो वि लहइ नियमप्फलं सच्चं ॥१७॥
ता तुममवि मणखेयं मुयसु पुणो वि हु पवज्ज नियममिणं । तेण वि य भावसारं पडिन्नो पुलइयंगेण ॥१८॥
तब्भज्जाए वि कओ नियमो भत्तीए मज्ज-मंसाण । दोन्नि वि पालंति पवड्ढमाणबहुमाणसाराइं ॥१९॥
कालक्कमेण सुहपरिणईए कुंदोऽभिवंदिय मुणिंदे । मरिऊण समुप्पन्नो देसे सिरिकंठनाममि ॥२०॥
नयरीए जयंतीए नरिंदकुरुचन्दअग्गमहिसीए । गब्भम्मि मंगलाए तीए इमं सुविणयं दिट्ठं ॥२१॥
लीलाचंकममाणो महुरसरो चंदबिंबसियपक्खो । वयणेण रायहंसो पविसंतो रयणिविरम्मि ॥२२॥
कहिओ य नरवरिंदस्स भणइ सो तुज्झ उत्तमो पुत्तो । होही तं सोउणं तुट्ठा गब्भं समुव्वहइ ॥२३॥

आत्मानं निन्दन् पुनः पुनः पृष्टः प्रियतमया । किं शोचसि ? इति भणितं तेन नियमो मया भग्नः ॥ १० ॥
अहह ! विरुपं जातमिति जल्पित्वा तया प्रभणितो भर्ता । किं मम कथितं न त्वया लज्जया तस्मिन् समये ? ॥ ११ ॥
यद्विहितो व्रतभङ्गोऽहमपि कारितेदं पापम् । तदा किमिह शोचितेन ? प्रत्युषे गुरोः कथयिष्यावः ॥ १२ ॥
तत उद्गतेऽरुणे गुरुणां चरणारविन्दमभिनम्य । मौनमवलम्ब्य श्याममुखो मनागुपविष्टः ॥ १३ ॥
सञ्जातो लज्जयाऽधोमुखस्तदा प्रजल्पितो गुरुणा ॥ किं भद्र ! श्यामवदनः ? तथापि खलु न प्रजल्पति किमपि ॥ १४ ॥
तदा तस्य सहचर्या कथितं नियमस्य खण्डनं गुरोः । करुणारसिकेन ततः सादरमाभाषितो गुरुणा ॥ १५ ॥
कथमपि खलु कर्तन्त्या संधीयते किं न त्रुटितस्तन्तुः ? । पादश्च किं न क्षाल्यते ऽशुचिविलसः प्रमादवशात् ? ॥ १६ ॥
भग्नो रणे सुभटः पुन र्युध्यमानः किं न लभते जयलक्ष्मीम् ? । एवं खण्डितनियमोऽपि लभते नियमफलं सत्यम् ॥ १७ ॥
ततस्त्वमपि मनःखेदं मुञ्च पुनरपि खलु प्रपद्य नियममिमम् । तेनापि च भावसारं प्रतिपन्नः पुलकिताङ्गेन ॥ १८ ॥
तद्भार्ययापि कृतो नियमो भक्त्या मद्य-मांसानाम् । द्वावपि पालयतः प्रवर्धमानबहुमानसारौ ॥ १९ ॥
कालक्रमेण शुभपरिणत्या कुन्दोऽभिवन्द्य मुनीन्द्रान् । मृत्वा समुत्पन्नो देशे श्रीकण्ठनाम्नि ॥ २० ॥
नगर्यां जयन्त्यां नरेन्द्र कुरुचन्द्राग्रमहिष्याः । गर्भे मङ्गलायास्तयेमं स्वप्नं दृष्टम् ॥ २१ ॥
लीलाचंक्रमन्मधुरस्वरश्चन्द्रबिम्बसितपक्षः । वदनेन राजहंसः प्रविशन् रजनिविरामे ॥ २२ ॥
कथितश्च नरवरेन्द्रस्य भणति स तवोत्तमः पुत्रः । भविता तत् श्रुत्वा तुष्टा गर्भं समुद्वहति ॥ २३ ॥

जाओ य दोहलो से मुणिंदपयपज्जुवासणाविसओ । संपूरिओ य रन्ना तो पसवदिणे पसूया सा ॥२४॥
जाओ य रयणपुंजो व्व गत्तदित्तीए भासियदियंतो । पुत्तो तो तस्स कयं वद्धावणयं विभूईए ॥२५॥
जाए बारसमदिणे सुविणयसरिसं कयं नरिंदेण । कुमरस्स रायहंसो नामं सम्माणिउं पउरे ॥२६॥
लालिज्जन्तो नवकमलकोमलारुणकराहिं धाईहिं । जाओ पवड्ढमाणो कमेण सो अट्ठवरिसो उ[1] ॥२७॥
जा संपत्तो पारे कुमरो निम्मलकलाकलावस्स । भवियव्वयाए राया ता संजाओ कहासेसो ॥२८॥
निवमग्गो अणुसरिओ देवीए वि रायमरणदुक्खेण । बालो त्ति रायहंसो न कओ नरनाहरज्जम्मि ॥२९॥
अहिसित्तो पउरेहिं सिरिचंदो राइणो लहू भाया । नरनाहपए सो पुण जुवरायपयम्मि संठविओ ॥३०॥
कालेण कामिणीयणदुम्मणसंपायगं सुमज्जं व । सो संपत्तो सव्वंगसुंदरं जोव्वणारंभं ॥३१॥
तो पुव्वजम्मकयनियमभंगसंजायकम्मदोसेण । सिरिचंदअग्गमहिसी तस्सुवरिं कोवमुव्वहइ ॥३२॥
एत्तो य कोइ राया नियदुग्गबलेण लूसए देसं । तो रायहंसकुमरं मोत्तुं नयरीए निवसहियं ॥३३॥
राया तग्गहणत्थं कडयं काउं तओ गओ सो वि । दुग्गबलेणं घेत्तुं न तीरए तो नरिंदो वि ॥३४॥
वेढेवि ठिओ तत्थेव दुग्गमित्तो य रायहंसो वि । निच्चं पि रइयसिंगारसुंदरो देइ अत्थाणं ॥३५॥
अत्थाणठियं तं विप्फुरंतमणि-रयणजडियमउडधरा । पणमंति मंति-मंडलियजुत्तसामंतसंघाए ॥३६॥
एमेव य भणिया वि हु आणं सीसेण (ते) पडिच्छंति । अप्पाणं कयकिच्चं तस्साऽऽएसेण मन्नंता ॥३७॥

जातश्च दोहदस्तस्या मुनीन्द्रपदपर्युपासनाविषयः । सम्पूरितश्च राज्ञा ततः प्रसवदिने प्रसूता सा ॥ २४ ॥
जातश्च रत्नपुञ्ज इव गात्रदिप्त्या भासितदिगन्तः । पुत्रस्ततस्तस्य कृतं वर्धापनकं विभूत्या ॥ २५ ॥
जाते द्वादशमदिने स्वप्नसदृशं कृतं नरेन्द्रेण । कुमारस्य राजहंसो नाम सन्मान्य पौरान् ॥ २६ ॥
लाल्यमानो नवकमलकोमलारुणकराभिर्धात्रिभिः । जातः प्रवर्धमानः क्रमेण सोऽष्टवर्षस्तु ॥ २७ ॥
यावत्सम्प्राप्तः पारे कुमारो निर्मलकलाकलापस्य । भवितव्यतया राजा तावत्सञ्जातः कथाशेषः ॥ २८ ॥
नृपमार्गोऽनुसृतो देव्यापि राजमरणदुःखेन । बाल इति राजहंसो न कृतो नरनाथराज्ये ॥ २९ ॥
अभिषिक्तः पौरैः श्रीचन्द्रो राज्ञो लघुभ्राता । नरनाथपदे स पुन र्युवराजपदे संस्थापितः ॥ ३० ॥
कालेन कामिनिजनदुर्मनसम्पादकं सुमद्यमिव । स संप्राप्तः सर्वागसुन्दरं यौवनारम्भम् ॥ ३१ ॥
तदा पूर्वजन्मकृतनियमभङ्गसञ्जातकर्मदोषेण । श्रीचन्द्राग्रमहिषी तस्योपरि कोपमुद्वहति ॥ ३२ ॥
इतश्च कोऽपि राजा निजदुर्गबलेन लोषयति देशम् । तदा राजहंसकुमारं मुक्त्वा नगर्यां नृप सहितम् ॥ ३३ ॥
राजा तद्ग्रहणार्थं कटकं कृत्वा ततो गतः सोऽपि । दुर्गबलेन ग्रहीतुं न शक्यते तदा नरेन्द्रोऽपि ॥ ३४ ॥
वेष्टयित्वा स्थितस्तत्रैव दुर्गमितश्च राजहंसोऽपि । नित्यमपि रचितशृङ्गारसुन्दरो ददात्यास्थानम् ॥ ३५ ॥
आस्थानस्थितं तं विस्फुरन्मणि-रत्नखचितमुकुटधराः । प्रणमन्ति मन्त्रि-मण्डलिकयुक्तसामन्तसंघाताः ॥ ३६॥
एवमेव च भणिता अपि खल्वाज्ञां शीर्षेण [ते] प्रतीच्छन्ति । आत्मानं कृतकृत्यं तस्यादेशेन मन्यमानाः ॥ ३७ ॥

---

१. अट्ठवारिसिओ रं० ।

सो वि हु सम्माणं कुणइ ताण सव्वेसिमइसएण सया । आलवणा-भरण-पलोयणाइउचियप्पयाणेहिं ॥३८॥
आवज्जिया तहा ते संजाया तम्मया जह सपउरा । पेच्छंति तयं जणयं व देवयं वाऽहव गुरुं व ॥३९॥
कुणइ य कयसिंगारो सिंधुरमारुहिय पुरिपरिब्भमणं । सियपुंडरीयवारियदिणयरकिरणावलीपसरो ॥४०॥
वीइज्जंतो विलसिरविलासिणीधरियचारुचमरेहिं । अणुगम्मंतो रह-तुरय-गयवरारूढराएहिं ॥४१॥
जत्तो जत्तो लीलापलोयणं कुणइ तत्थ तत्थेव । भामंति अंचले कुलवहूओ पणमंति पउरजणा ॥४२॥
इय एवं विलसंते तं दट्ठुं दुट्ठिचित्तवित्तीए । तीए नरनाहभज्जाए चिंतियं पावकम्माए ॥४३॥
नूणं इमस्स होही रज्जमिणं न उण मज्झ कुमरस्स । ता तह करेमि न जहा अरिहइ एसो नरिंदसिरिं ॥४४॥
इय चिंतिऊण पावाए तीए मंडुक्कवाहिसंजणणं । दिन्नं करावियऊणं कम्मणयं रायहंसस्स ॥४५॥
तो तप्पभावओ तस्स जढरमाऊरियं महंतेहिं । भेएहिं महं उयरं अइतणुयं पि हु तयं जायं ॥४६॥
कडयाट्ठिएण वेज्जेहि कारिया राइणा चिगिच्छा से । न तहा वि गुणो जाओ रोगो पुण वड्ढिओ अहियं ॥४७॥
चिट्ठउ तावियरजणो न कुणइ नियपरियणो वि तस्साऽऽणं । देवीभीओ पेच्छइ य केवलं तं अवन्नाए ॥४८॥
अह अन्नया य सारीर-माणसाणेगदुक्खसंतत्तो । रयणीए रायहंसो एवं चिन्तेउमारद्धो ॥४९॥
पेच्छ मए सयलजणो सुइरं परिपालिओ सजीयं व । निच्च कयप्पसाओ वि कुणइ न हु मज्झ वयणं पि ॥५०॥
माणधणा पयईए पराभवं पयणुयं पि न सहन्ति । अहमवि अहीणमाणो ता एत्थ न जुज्जए ठाउं ॥५१॥

सोऽपि खलु सन्मानं करोति तेषां सर्वेषामतिशयेन सदा । आलपना-भरण-प्रलोकनाद्युचितप्रपदानैः ॥ ३८ ॥
आवर्जितास्तथा ते सञ्जातास्तन्मया यथा सपौराः । पश्यन्ति तकं जनकमिव देवतमिवाथवा गुरुमिव ॥ ३९ ॥
करोति च कृतशृङ्गारः सिन्धुरमारुह्य पुरिपरिभ्रमणम् । श्वेतपुण्डरीकवारितदिनकरकिरणावलिप्रसरः ॥ ४० ॥
वीजयमानो विलसद्विलासिनिधृतचारुचामरैः । अनुगम्यमानो रथ-तुरग-गजवरारुढराजभिः ॥ ४१ ॥
यत्र यत्र लीलाप्रलोकनं करोति तत्र तत्रैव । भ्रामयन्त्यञ्चलानि कुलवध्वः प्रणमन्ति पौरजनाः ॥ ४२ ॥
इत्येवं विलसन्तं तं दृष्ट्वा दुष्टचित्तवृत्त्या । तया नरनाथभार्यया चिन्तितं पापकर्मया ॥ ४३ ॥
नूनमतस्य भविता राज्यमिदं न पुन र्मम कुमारस्य । ततस्तथा करोमि न यथार्हति एष नरेन्द्रश्रियम् ॥ ४४ ॥
इति चिन्तयित्वा पापया तया मण्डुकव्याधिसंजननम् । दत्तं कारयित्वा कार्मणकं राजहंसस्य ॥ ४५ ॥
तदा तत्प्रभावात्तस्य जठरमापूरितं महद्भिः । भेकै र्महदुदरमतितनुकमपि खलु तकंजातम् ॥ ४६ ॥
कटकस्थितेन वैद्यैः कारिता राज्ञा चिकित्सा तस्य । न तथापि गुणो जातो रोगो पुन र्वर्धितोऽधिकम् ॥ ४७ ॥
तिष्ठतु तावदितरजनो न करोति निजपरिजनोऽपि तस्याज्ञाम् । देवीभीतः पश्यति च केवलं तमवज्ञया ॥ ४८ ॥
अथान्यदा च शारीरमानसानेकदुःखसंतप्तः ॥ रजन्यां राजहंस एवं चिन्तयितुमारब्धः ॥ ४९ ॥
पश्य मया सकलजनः सुचिरं परिपालितः स्वजीवमिव । नित्यं कृतप्रसादोऽपि करोति न खलु मम वचनमपि ॥५०॥
मानधनाः प्रकृत्या पराभवं प्रतनुकमपि न सहन्ते । अहमपि अहीनमानस्तावदत्र न युज्यते स्थातुम् ॥ ५१ ॥

ता जावऽज्जवि सत्ती गंतुं थेवावि विज्जए मज्झ । ता वच्चामि विएसे धिसि सयणपराभवं सोढुं ॥५२॥
इय चिंतिय नीहरिओ पसुत्तनिस्सेसपउरलोगम्मि । मंदं चंकममाणो संपत्तो नयरमुज्जेणिं ॥५३॥
तो तत्थ महाकालस्स चच्चरे संठिओ तओ तस्स । वियरइ करुणाए जणो मंडयखंडाइ अणुदिवसं ॥५४॥
कालक्कमेण रोगेण बाहियं तस्स सव्वमवि अंगं । नासाऽहर-कर-चरणंगुलीओ सव्वा पविद्धाओ ॥५५॥
वालग्गाओ नहंतं जाव सरीरम्मि फोडया होउं । फुट्टंति पक्क-दुग्गंधपूयपरिपूरिया पयडं ॥५६॥
लिक्खियमेत्तकच्छोट्टनिवसणो मच्छियाहिं परियरिओ । न तरइ पयमवि गंतुं अणिट्ठदुस्सरधणी धणियं ॥५७॥
एत्तो य मंजरी तस्स भारिया आउयक्खए जाए । तीए चेव पुरीए मरिउं महसेणनरवइणो ॥५८॥
अग्गमहिसीए धूया जाया विहियं च देइणीनामं । दंतुग्गमपत्थावे तं कम्मं तीए वि उदिन्नं ॥५९॥
तो गुरुय-घोररोगेहिं पीडिया दुव्वलंगिया जाया । ताहे पच्चक्खाया नाउमसज्झ त्ति वेज्जेहिं ॥६०॥
आगासरेवईयाइदेवया पूइया नरिंदेण । जाणगजणोवइट्ठं सव्वं पि कयं विसेसेण ॥६१॥
तह वि न थेवो वि गुणो संजाओ तीए तिव्वकम्मवसा । कम्मोवसमे सयमवि तारुण्णे नीरुया जाया ॥६२॥
देवीए तओ सिंगारिऊण संपेसिया निवत्थाणे । सहिययणसंगया सा कीलइ तत्थेव निच्चं पि ॥६३॥
अहिमाणिणा नरिंदेण अन्नया नियइरिद्धि-बलकलिया । वाहरिया सव्वे वि हु सामंते पउरजणजुत्ता ॥६४॥
कयसिंगारा रह-करि-तुरंग-नर-नारिनियरपरियरिया । आउज्जसद्दपूरियदियंतरा तयणु संपत्ता ॥६५॥

ततो यावदद्यापि शक्ति र्गन्तु स्तोकापि विद्यते मम । ततो व्रजामि विदेशं धिक् स्वजनपराभवं सोढुम् ॥ ५२ ॥
इति चिन्तयित्वा निःसृतः प्रसुप्तनिःशैषपौरलोके । मन्दं चङ्क्रमन् सम्प्राप्तो नगरमुज्जैनीम् ॥ ५३॥
ततस्तत्र महाकालस्य चत्वरे संस्थितस्ततस्तस्य । वितरति करुणया जनो मण्डकखण्डान्यनुदिवसम् ॥ ५४ ॥
कालक्रमेण रोगेन बाधितं तस्य सर्वमप्यङ्गम् । नाशाऽधर-कर-चरणाङ्गुल्यः सर्वाः प्रविद्धाः ॥ ५५ ॥
वालाग्रान्नखान्तं यावत् शरीरे स्फोटा भूत्वा । स्फुटन्ति पक्व-दुर्गन्धपूतपूरिताः प्रकटम् ॥ ५६ ॥
चीरीकामात्रकच्छोट निवसनो मक्षिकाभिः परिवारितः । न शक्नोति पदमपि गन्तुमनिष्ठदुःस्वरध्वनि-र्गाढम् ॥ ५७ ॥
इतश्च मञ्जरी तस्य भार्याऽऽयुःक्षये जाते । तस्यां चैव पूर्यां मृत्वा महेश्वरनरपतेः ॥ ५८ ॥
अग्रमहिष्या दुहिता जाता विहितं च देवीनी नाम । दन्तोद्गमप्रस्तावे तत्कर्म तस्या अप्युदीर्णम् ॥ ५९ ॥
ततो गुरुक-घोररोगैः पीडिता दुर्बलाङ्गीका जाता । तदा प्रत्याख्याता ज्ञात्वासाध्येति वैद्यैः ॥ ६० ॥
आकाशरेवतिकादिदेवताः पूजिता नरेन्द्रेण । ज्ञातकजनोपदिष्टं सर्वमपि कृतं विशेषेण ॥ ६१ ॥
तथापि न स्तोकोऽपि गुणः सञ्जातस्तस्यास्तीव्रकर्मवशात् । कर्मोपशमे स्वयमपि तारुण्ये नीरुजा जाता ॥ ६२ ॥
देव्या ततः शृङ्गारित्वा सम्प्रैषिता नृपास्थाने । सखिकजनसंगता सा क्रीडति तत्रैव नित्यमपि ॥ ६३ ॥
अभिमानिना नरेन्द्रेणान्यदा निजकर्द्धि-बलकलिताः । व्याहृताः सर्वेऽपि खलु सामन्ताः पौरजनयुक्ताः ॥ ६४ ॥
कृतशृङ्गारा रथ-करि-तुरंग-नर नारिनिकरपरिवारिताः । आतोद्यशब्दपूरितदिगन्तरास्तदनु सम्प्राप्ताः ॥ ६५ ॥

पणमिय निवमुवविट्ठा पुट्ठा एवं नरिंदचंदेण । मह कहह कस्स पुन्नेहिं तुम्ह एयारिसा रिद्धी ? ॥६६॥
छंदाणूवत्तिणो ते नमियनरिंदं निबद्धकरकमला । जंपंति तुम्ह पुन्नप्पभावओ अम्ह संपत्ती ॥६७॥
सोऊण तयं कुमरीए तीए विप्फुरियदन्तदित्तीए । हसियं तं दट्ठूणं पयंपियं नरवरिंदेण ॥६८॥
वच्छे ! किमलियमेयं मह वयणं जमिणमेवमुवहससि ? । सा भणइ ताय ! तुम्हं सच्चं साहेमि ? किमसच्चं ? ॥६९॥
सच्चं ति निवेणुत्ते सा जंपइ ताय ! तुह जणो सव्वो । छंदाणुवत्तणपरो पयंपए सयलमलियमिणं ॥७०॥
सच्चं पुण निच्चं पि हु नियपुन्नसमुब्भवं सिरिं सव्वे । भुंजंति तओ न हु होइ अवरभुत्ते अवरतित्ती ॥७१॥
पुव्वकयसुकयकम्मप्पभावओ तं पि तूससे न मुहा । तव्विरहे पुण रूससि निमित्तमित्तं तमेत्थ जओ ॥७२॥
सव्वो पुव्वकयाणं कम्माणं पावए फलविवागं । अवराहेसु गुणेसु य निमित्तमेत्तं परो होइ ॥७३॥
तं सोउं नरनाहो भासुरभिउडीकरालभालयलो पभणइ रुट्ठो वच्छे ! तुह रिद्धी कस्स पुन्नेहिं ? ॥७४॥
सा जंपइ नियपुन्नप्पभावओ ताय ! न उण अन्नस्स । तं सोउं घयसित्तो व्व पावओ पज्जलिओ राया ॥७५॥
आइसइ सेवयनरे पुरीए जो कोई दुहभरक्कंतो । सिग्घं तमिहाऽऽणावह मज्झ समीवम्मि जेणाहं ॥७६॥
वियरेमि तस्स पावं जह भुंजइ नियपुन्नपब्भारं । इय सोउं निवपुरिसा भमंति नयरिं पलोयंता ॥७७॥
रायनिबंधं नाउं पयंपिया देइणी सजणणीए । सामंत-मंति-मंडलिय-पउरनियरेण जुत्ताए ॥७८॥
वच्छे ! जणयं चलणेसु लग्गिउं भणसु खमसु अवराहं । अह न भणसि ता कस्स वि दाही जह दुक्खमणुहवसि ॥७९॥

प्रणम्य नृपमुपविष्टाः पृष्टा एवं नरेन्द्रचन्द्रेण । मम कथयत कस्य पुण्यै र्युष्माकमेतादृशार्द्धिः ? ॥ ६६ ॥
छन्दानुवर्त्तिनस्ते नत्वा नरेन्द्रं निबद्धकरकमलाः । जल्पन्ति युष्मत् पुण्यप्रभावादस्माकं संपत्तिः ॥ ६७ ॥
श्रुत्वा तकं कुमार्या तया विस्फुरितदन्तदीप्त्या । हसितं तद्दृष्ट्वा प्रजल्पितं नरेन्द्रेण ॥ ६८ ॥
वत्से ! किमलिकमेतन्मम वचनं यदिममेवमुपहससि ? । सा भणति तात ! युष्माकं सत्यं कथयामि? किमसत्यम् ? ॥ ६९ ॥
सत्यमिति नृपोक्ते सा जल्पति तात ! तव जनः सर्वः । छन्दानुवर्तनपरः प्रजल्पति सकलमलिकमिदम् ॥ ७० ॥
सत्यं पुन र्नित्यमपि खलु निजपुण्यसमुद्भवां श्रियं सर्वे । भुञ्जन्ति यतो न खलु भवत्यपरभुक्तेऽपरतृप्तिः ॥ ७१ ॥
पूर्वकृतसुकृतकर्मप्रभावतस्त्वमपि तुष्यसि न मुधा । तद्विरहे पुना रुष्यति निमित्तमात्रं त्वमत्र जातः ॥ ७२ ॥
सर्वः पूर्वकृतानां कर्मणां प्राप्नोति फलविपाकम् । अपराधेषु गुणेषु च निमित्त मात्रं परो भवति ॥ ७३ ॥
तत् श्रुत्वा नरनाथो भासुरभृकुटिकरालभालतलः । प्रभणति रुष्टो वत्से ! तवर्द्धिः कस्य पुण्यैः ? ॥ ७४ ॥
सा जल्पति निजपुण्यप्रभावतस्तात ! न पुनरन्यस्य । तत् श्रुत्वा घृतसिक्त इव पावकः प्रज्वलितो राजा ॥ ७५ ॥
आदिशति सेवकनरान् पूर्यां य कोऽपि दुःखभराक्रान्तः । शीघ्रं तमिहानायपयत मम समीपे येनाहम् ॥ ७६ ॥
वितरामि तस्य पापं यथा भुनक्ति निजकपुण्यप्राग्भारम् । इति श्रुत्वा नृपपुरुषा भ्रमन्ति नगरिं प्रलोकयन्तः ॥ ७७ ॥
राजनिबन्धं ज्ञात्वा प्रजल्पिता देविनी स्वजनन्या । सामन्त-मन्त्रि-मण्डलिक-पौरनिकरेणयुक्तया ॥ ७८ ॥
वत्से ! जनकं चरणयो र्लगित्वा भण क्षमस्वापराधम् । अथ न भणसि तदा कस्मावपि दास्यति यथा दुःखमनुभवसि ॥ ७९ ॥

सा जंपइ इह अत्थे भवियव्वं जं भविस्सइ तमेव । ता किं अपत्थुएणं खामणयपयासकरणेण ? ॥८०॥
एत्तो य महाकालस्स चच्चरे रोगविहुरसव्वंगो । पुरिसेहि रायहंसो दिट्ठो तो चिंतियं एवं ॥८१॥
अन्नो एयाओ न कोइ अत्थि दुहभायणं ति तो तेहिं । नीओ उप्पाडेउं समप्पिओ नरवरिंदस्स ॥८२॥
दट्ठूण तयं हिट्ठेण राइणा जंपियं जहा भद्द ! । वीवाहसु मह धूयं तं सोउं जंपए एसो ॥८३॥
कप्पिज्जइ किं कइया वि कमिलिणी दहुरस्स सिरिभवणं ? । किं वा जुज्जइ कायस्स मंजरी चारुचूयस्स ? ॥८४॥
किं वा सव्वंगसुहा सामि ! सुहा सहइ असुरविसरस्स ? । किं वा वि हु सलहिज्जइ सामिय ! सीही सियालस्स ? ॥८५॥
ता देव ! तुज्झ तणया अन्नायकुलक्कमस्स रोरस्स । रोगक्कंतस्स कहं सलाहणिज्जा हवइ दिन्ना ? ॥८६॥
तो भणियं भूवइणा एसा तुह सव्वहा मए दिन्ना । वीवाहिऊण भणियाणि ताणि मेल्लेह मह विसयं ॥८७॥
कुमरी वि जणयचरणे पणमिय माणंसिणी अदीणमणा । उल्लवइ रायहंसं पिययम ! आरुहसु मह खंधे ॥८८॥
तो नियखंधे काऊण देइणी पुरवरीए मज्झेण । नीहरिया निसुणंती जणाववायं सजणयस्स ॥८९॥
गंतूण बहलपत्तलसहयारतलम्मि तमुववेसेउं । तस्स सरीरे मच्छीओ वीजयंती सवत्थेण ॥९०॥
भणिया करुणारसिएण रायहंसेण देइणी एवं । मह संसग्गीवसओ विणस्सिही तुह सरीरं पि ॥९१॥
तहा हि-
नहपंतिंकंतिकलियं कमजुयलं तुज्झ लक्खणधरं पि । हिमवायझलुक्कियकमलसन्निमं होहिही सुयणु ॥९२॥

सा जल्पतीहर्थे भवितव्यं यद्भविष्यति तदेव । ततः किमप्रस्तुतेन क्षामणकप्रयासकरणेन ? ॥ ८० ॥
इतश्च महाकालस्य चत्वरे रोगविधुरसर्वाङ्गः । पुरुषै राजहंसो दृष्टस्ततश्चिन्तितमेवम् ॥ ८१ ॥
अन्य एतस्मान्न कोऽप्यस्ति दुःखभाजनमिति तदा तैः । नीत उत्पाद्य समर्पितो नरवरेन्द्रस्य ॥ ८२ ॥
दृष्ट्वा तकं हृष्टेन राज्ञा जल्पितं यथा भद्र ! । विवाहय मम दुहितरं तत् श्रुत्वा जल्पत्येषः ॥ ८३ ॥
कल्प्यते किं कदापि कमलिनी दुर्दरस्य श्रीभवनम् ? । किं वा युज्यते काकस्य मञ्जरी चारुचूतस्य ? ॥ ८४ ॥
किं वा सर्वाङ्गशुभा स्वामिन् ! सुधा सहते ऽसुरविसरस्य ? । किं वापि खलु श्लाघ्यते स्वामिन् ! सिंही शृगालस्य ? ॥ ८५ ॥
ततो देव ! तव तनयाऽज्ञात कुलक्रमस्य रोरस्य । रोगाक्रान्तस्य कथं श्लाघनीया भवति दत्ता ? ॥ ८६ ॥
तदा भणितं भूपतिनैषा तुभ्यं सर्वथा मया दत्ता । विवाह्य भणितौ तौ मुञ्चतं मम विषयम् ॥ ८७ ॥
कुमार्यपि जनकचरणे प्रणम्य मनस्विन्यदीनमना । उल्लपति राजहंसं प्रियतम ! आरुह मम स्कन्धे ॥ ८८ ॥
तदा निजस्कन्धे कृत्वा देविनी पुरवर्या मध्येन । निःसृता निशृण्वन्ती जनापवादं स्वजनकस्य ॥ ८९ ॥
गत्वा बहलपत्रालसहकारतले तमुपवेशय । तस्य शरीरे मक्षिका वीजयन्ती स्ववस्त्रेण ॥ ९० ॥
भणिता करुणारसिकेन राजहंसेन देविन्येवम् । मम संसर्गीवशतो विनक्ष्यति तव शरीरमपि ॥ ९१ ॥
तथाहि -
नखपङ्क्तिकान्तिकलितं क्रमयुगलं तव लक्षणधरमपि । हिमवातदग्धकमलसन्निभं भविष्यति सुतनु ! ॥ ९२ ॥

तुह सुंदरि ! ऊरुजुयं नवरंभाखंभविब्भमधरं पि । होही दवग्गिनिद्दड्ढथाणुजुयलं व रोगहयं ॥९३॥
गयगमणि ! तुज्झ रमणं तवणीयसिलासमं पि रोगेण । होही दावानलदड्ढगिरिसिलासामलच्छायं ॥९४॥
खामोयरि ! तुह मज्झं विलसिरतिवलीतरंगरुइरं पि । होही सिप्पउडं पिव खर-फरुसं खसरसंवलियं ॥९५॥
थोरत्थणि ! थणजुयलं करिकुंभत्थलसमं पि मह संगा । होही थउडं पिडएहि सुसियमालूरफलसरिसं ॥९६॥
तुह सिरियकुसु(म)मालासुकुमालं भुयलयाजुयं सुयणु ! । सोहारहियं होही जलणझुलुक्कियसयजुयं व ॥९७॥
कंकेल्लिपल्लवारुणतलं पि सियदसणि ! पाणिजुयलं ते । होही विसुक्कएरंडपत्तजुयलं व रोगेण ॥९८॥
बिंबाफलोवमो वि हु अहरो इंगालसच्छहो होही । मंडुक्किय व्व चिविडा भविही सरला वि तुह नासा ॥९९॥
सवणंतं पत्तं पि हु तरलं पि हु पम्हलं पि पसयच्छि ! । अच्छिजुयं रोगवसा मिलाणकुसुमं व संकुइही ॥१००॥
पडिपुन्नहरिणलंछणछायं वयणं पि तुज्झ रोगेण । होही राहुग्गत्थं गयसोहं चंदबिंब व ॥१०१॥
मयणाहिपरिमलड्ढा कज्जलकसिणा वि कुंतला तुज्झ । घम्माहयखंखरदब्भसन्निभा सुब्भु ! होहिंति ॥१०२॥
ता सव्वहा वि सव्वंगसुंदरावयवमणहरं एयं । मह कज्जम्मि विणाससु नियरूवं मा मयच्छि ! तुमं ॥१०३॥
वच्चसु माउलयगिहं अवरं वा किं पि सयणमल्लियसु । तं सोऊण सविणयं पयंपिया देइणी एवं ॥१०४॥
मा अज्जउत्त ! एयं जंपसु जम्हा न होइ अलियमिणं । भत्तारदेवया कुलवहु त्ति सत्थे पसिद्धं ति ॥१०५॥
तम्हा तं मज्झ पहू बंधू सयणो सुही सुहगुरूय । वल्लीए वच्छसमासियाए वच्छो व्व तं सरणे ॥१०६॥

तव सुन्दरि ! उरुयुगं नवरम्भास्तम्भविभ्रमधरमपि । भविष्यति दवाग्निनिर्दग्धस्थाणुयुगलमिव रोगहतम् ॥ ९३ ॥
गजगमनि ! तव रमणं तपनीयशिलासममपि रोगेण । भविष्यति दावानलदग्धगिरिशिलाश्यामलच्छायम् ॥ ९४ ॥
क्षामोदरि ! तव मध्यं विलसत्त्रिवलितरंगरुचिरमपि । भविष्यति शिप्रपूटमिव खर-परुषं खरसरसंवलितम् ॥ ९५ ॥
स्थूलस्तनि ! स्तनयुगलं करिकुम्भस्थलसममपि मम संगात् । भविष्यति स्थपूटं पिटकैः शोषितकपित्थफलसदृशम् ॥ ९६ ॥
तव शिरिषकुसुममालासुकुमारं भुजलतायुग्मं सुतनु ! । शोभारहितं भविता ज्वलनदग्धसतयुगमिव ॥ ९७ ॥
कंकेलिपल्लवारुणतलमपि श्वेतदशनि ! पाणियुगलं ते । भविष्यति विशुष्कैरण्डपत्रयुगलमिव रोगेण ॥ ९८ ॥
बिम्बाफलोपमोऽपि खल्वधरोऽङ्गारसदृशो भविष्यति । मण्डुकीव चिपिटा भविष्यति सरलापि खलु तव नासा ॥ ९९ ॥
श्रवणान्तं प्राप्तमपि खलु तरलमपि खलु पक्ष्मलमपि प्रसन्नाक्षि ! । अक्षियुग्मं रोगवशान्म्लानकुसुममिव संकोचिष्यति ॥ १०० ॥
प्रतिपूर्णहरिणलञ्छनच्छायं वदनमपि तव रोगेण । भविष्यति राहुग्रस्तं गतशोभं चन्द्रबिम्बमिव ॥ १०१ ॥
मृगनाभिपरिमलाढ्याः कज्जलकृष्णा अपि कुन्तलास्तव । घर्माहतपलाशदर्भसन्निभा सुभ्रु ! भविष्यन्ति ॥ १०२ ॥
ततः सर्वथापि सर्वाङ्गसुन्दरावयवमनोहरमेतत् । मम कार्ये विनाशय निजरुपं मा मृगाक्षि ! त्वम् ॥ १०३ ॥
व्रज मातुलगृहमपरं वा किमपि स्वजनमालिनीहि । तत् श्रुत्वा सविनयं प्रजल्पिता देविन्येवम् ॥ १०४ ॥
माऽऽर्यपुत्र ! एतज्जल्प यस्मान्न भवत्यलिकमिदम् । भर्तृदेवता कुलवधुरिति शास्त्रे प्रसिद्धमिति ॥ १०५ ॥
तस्मात्त्वं मम प्रभु र्बन्धुः स्वजनः सखा-सुगुरुश्च । वल्या वत्ससमाश्रिताया वत्स इव त्वं शरणम् ॥ १०६ ॥

झिज्जउ अंगं पगलंतु लोयणा जोव्वणं अइक्कमउ । मरणं पि होउ पिययम ! तुह सुस्सूसं कुणंतीए ॥१०७॥
इय जंपिऊण तीए आसन्नावासियम्मि सत्थम्मि । गंतूण सत्थवाहो सविणयमेयारिसं भणिओ ॥१०८॥
ताय अहं पि हु तुम्हाण सुत्थसत्थेण गंतुमिच्छामि । तं सोउं सत्थाहो चिंतेउं एवमारद्धो ॥१०९॥
नूणं सुकुलुप्पन्ना नज्जइ वयणेहिं विणयगब्भेहिं । इय चिंतिय तेणुत्तं वच्छे ! सिग्घं समागच्छ ॥११०॥
तो देइणीए भणियं मज्झ पई रोगविहुरसव्वंगो । सो वि समागच्छिस्सइ तं सोउं सत्थवाहेण ॥१११॥
तस्साऽऽणनिमित्तं समप्पिओ से रहो तओ तीए । तम्मि समुप्पाडेउं चडाविओ नियभत्तारो ॥११२॥
सद्धिं सत्थेण तओ कुमरी परिहरियनिययपिउविसया । रुरु-रोज्झरउद्दाडविमज्झे आवासिए सत्थे ॥११३॥
नग्गोहसाहिसीयलतलम्मि तरुपत्तरइयसयणिज्जे । तीए समुत्तारेऊण सोविओ पहपरिस्संतो ॥११४॥
नियउच्छंगियतस्सीसकेसनियरं निरूवयंतीए । तीए सिसिरसमीरणसुहेण तस्साऽऽगया निद्दा ॥११५॥
एत्तो कुमारीजणणी तइया मरिऊण वंतरी जाया । तो तीए रायहंसो दिट्ठो तमवत्थमणुपत्तो ॥११६॥
देइणिकुमरीजाणावणत्थमिणमिंदयालमायरियं । सहस त्ति वम्मियाओ वियडफडो निग्गओ सप्पो ॥११७॥
कुमरस्स य निद्दापरवस्स वयणे समागओ सहसा । उयराओ दद्दुरो दट्ठुमेस सप्पं भणइ कुविओ ॥११८॥
रे रे हयास ! विसहर ! समहिट्ठिय संठिओ निहाणमिमं । जो तत्तजलं खिविउं हणिउं तं लेइ सो नत्थि ॥११९॥
तो तेणुत्तं रे दुट्ठ ! पावर ! मंडुक्क ! निवसुओ एसो । सव्वंगसुंदरो वि हु एयमवत्थो तए विहिओ ॥१२०॥

क्षीयत्वङ्गं प्रगलन्तु लोचनानि यौवनमतिक्रामतु । मरणमपि भवतु प्रियतम ! तव शुश्रुषा कुर्वन्त्याः ॥ १०७ ॥
इति जल्पित्वा तयाऽऽसन्नवासिते सार्थे । गत्वा सार्थवाहः सविनयमेतादृशं भणितः ॥ १०८ ॥
तात ! अहमपि खलु युष्माकं सुस्थसार्थेण गन्तुमिच्छामि । तत् श्रुत्वा सार्थवाहश्चिन्तयितुमेवमारब्धः ॥ १०९ ॥
नूनं सुकुलोपन्ना ज्ञायते वचनै विनयगर्भैः । इति चिन्तयित्वा तेनोक्तं वत्से ! शीघ्रं समागच्छ ॥ ११० ॥
ततो देविन्या भणितं मम पति रोगविधुरसर्वाङ्गः । सोऽपि समागमिष्यति तत् श्रुत्वा सार्थवाहेन ॥ १११ ॥
तस्याऽऽरोहणनिमित्तं समर्पितस्तस्य रथस्ततस्तया । तस्मिन् समुत्पात्यारोहितो निजकभर्त्ता ॥ ११२ ॥
सार्धं सार्थेन ततः कुमारी परिहृतनिजपितृविषया । रुरु-रौञ्झरौद्राटविमध्य आवासिते सार्थे ॥ ११३ ॥
न्याग्रोधशाखिशीतलतले तरुपत्ररचितशयनीये । तया समुत्तार्य सेवितः पथपरिश्रान्तः ॥ ११४ ॥
निजोत्सङ्गिततच्छीर्षकेशनिकरं निरुपयन्त्या । तया शिशिरसमीरणसुखेन तस्याऽऽगता निद्रा ॥ ११५ ॥
इतः कुमारजननी तदा मृत्वा व्यन्तरी जाता । ततस्तया राजहंसो दृष्टस्तमवस्थमनुप्राप्तः ॥ ११६ ॥
देविनिकुमारी ज्ञापनार्थमिममिन्द्रजालमाचरितम् । सहसेति वल्मिकाद्विकटफटो निर्गतः सर्पः ॥ ११७ ॥
कुमारस्य च निद्रा परवशस्य वदने समागतः सहसा । उदराद् दर्दुरो दृष्ट्वैष सर्पं भणति कुपितः ॥ ११८ ॥
रे रे हताश ! विषधर! समधिष्ठाय संस्थितो निधानमिमम् । यस्तप्तजलं क्षिप्त्वा हत्वा त्वं लाति स नास्ति ॥ ११९ ॥
तदा तेनोक्तं रे दुष्ट ! पाप ! मण्डुक ! नृपसुत एषः । सर्वाङ्ग सुन्दरोऽपि खल्वेतदवस्थस्त्वया विहितः ॥ १२० ॥

तो एत्थ नत्थि सो कोइ राइयाचुन्नमीसियं तक्कं । जो पाइउं कुमारं हणिउं तं कुणइ पउणमिमं ॥१२१॥
सप्पपयंपियमायन्निऊण चिंतेइ देइणी एवं । नूणं नरिंदपुत्तो एसो ता सुंदरं जायं ॥१२२॥
लद्धो य वाहिविगमोवाओ चत्तो य तायविसओ वि । ता गोउलम्मि कम्मि वि गम्मउ इय चिंतिउं चलिया ॥१२३॥
पत्ता य गोउलम्मिं ठिया य आउच्छिऊण सत्थाहं । गंतूण गोउलवई पयंपिओ सविणयं तीए ॥१२४॥
ताय ! इमो मज्झ पई कम्मवसा रोगविहुरसव्वंगो । निरुओ जायइ तक्केण राइयाचुन्नमिस्सेण ॥१२५॥
सो वि पयंपइ वच्छे ! धूया तं मज्झ चिट्ठसु इहेव । सुस्सूसंती कंतं जावेसो जायए निरुओ ॥१२६॥
सह राइयाहिं तक्कं पायंती पिययमं ठिया तत्थ । तो तप्पभावओ दारुणो वि वाही अवक्कंतो ॥१२७॥
नासा-ऽहर-कर-चरणा-नीहरिया रंभगब्भसुकुमाला । अइरेण वि संजाओ मणहरणो मयणसमरूवो ॥१२८॥
आउच्छियम्मि तीसे पयासिओ नियकुलक्कमो तेण । सा वि पयंपइ पिययम ! ता गम्मउ तुम्ह कुलभवणे ॥१२९॥
तेणुत्तं जुत्तमिणं परमेएसिं कयम्मि उवयारे । तं सोउं सा चिंतइ मणम्मि एसो महासत्तो ॥१३०॥
पच्चुवयारं काउं वंछइ ता दद्दुरोवइट्ठेण । दव्वेण होउ इय चिंतिऊण तो तीए दइयस्स ॥१३१॥
दद्दुर-कसियाहीणं वुत्तंतो साहिओ तओ तेण । घेत्तूण तं निहाणं उवणीयं गोउलवइस्स ॥१३२॥
भणियं च देइणीए अणुकूलो तुह विही जओ नाह ! । जाओ रोयविणासो तह संपत्तं निहाणं पि ॥१३३॥
ता गम्मउ तुह नयरे तओ पयट्टाणि ताणि मग्गम्मि । गच्छंताणि कमेणं जयंतिनयरीए पत्ताणि ॥१३४॥

ततोऽत्र नास्ति स कोपि राजिकाचूर्णमिश्रितं तक्रम् । यः पीत्वा कुमारं हत्वा त्वां करोति प्रगुणममिम् ॥ १२१ ॥
सर्पप्रजल्पितमाकर्ण्य चिन्तयति देविन्येवम् । नूनं नरेन्द्रपुत्र एष तदा सुन्दरं जातम् ॥ १२२ ॥
लब्धश्च व्याधिविगमोपायस्त्यक्तश्च तातविषयोऽपि । ततो गोकूले कस्मिन्नापि गम्यतामिति चिन्तयित्वा चलिता ॥ १२३ ॥
प्राप्ता च गोकुले स्थिता चापृच्छय सार्थवाहम् । गत्वा गोकुलपतिः प्रजल्पितः सविनयं तया ॥ १२४ ॥
तात ! अंयं मम पतिः कर्मवशाद्रोगविधुरसर्वाङ्गः । निरुग् जायते तक्रेण राजिकाचूर्णमिश्रेण ॥ १२५ ॥
सोऽपि प्रजल्पति वत्से ! दुहिता त्वं मम तिष्ठैहैव । शुश्रुषन्ती कान्तं यावदेष जायते निरुक् ॥ १२६ ॥
सह राजिकाभिस्तक्रं पायन्ती प्रियतमं स्थिता तत्र । तदा तत्प्रभावाद्दारुणोऽपि व्याधिरपक्रान्तः ॥ १२७ ॥
नासा-धर-कर-चरणा निःसृता रम्भागर्भसुकुमालाः । अचिरेणापि सञ्जातो मनोहरणो मदनसमस्वरुपः ॥ १२८ ॥
आपृष्टे तस्याः प्रकाशितो निजकुलक्रमस्तेन । सापि प्रजल्पति प्रियतम ! तावद्गम्यतां युष्मत् कुलभवने ॥ १२९ ॥
तेनोक्तं युक्तमिमं परमेतस्मिन् कृत उपकारे । तत् श्रुत्वा सा चिन्तयति मनस्येष महासत्त्वः ॥ १३० ॥
प्रत्युपकारं कर्तुं वाञ्छति तावद्दर्दुरोपदिष्टेन । द्रव्येण भवत्विति चिन्तयित्वा ततस्तया दयितस्य ॥ १३१ ॥
दर्दुर-कृष्णाहिण्यो वृत्तान्तः कथितस्ततस्तेन । गृहीत्वा तन्निधानमुपनीतं गोकुलपतेः ॥ १३२ ॥
भणितं च देविन्यानुकूलस्तव विधि र्यतो नाथ ! । जातो रोगविनाशस्तथा सम्प्राप्तं निधानमपि ॥ १३३ ॥
ततो गम्यतां तव नगरे ततः प्रवृत्तौ तौ मार्गे । गच्छन्तौ क्रमेण जयन्तिनगर्यां प्राप्तौ ॥ १३४ ॥

ता मग्गपरिस्संतो सुत्तो सहयारतरुतले कुमरो । एत्तो य तत्थ सिरिचंदनरवई पुत्तमरणम्मि ॥१३५॥
पंचत्तं संपत्तो सो वि हु सुयसोयसल्लिओ संतो । अहिसित्ताणि अपुत्तो त्ति पंच दिव्वाणि मंतीहिं ॥१३६॥
ताणि तिय-चच्चाराइसु भमिउं पत्ताणि जत्थ सो कुमरो । तो अहिसिंचिय करिणा चडाविओ नियखंधम्मि ॥१३७॥
तो मंति-मंडलेसर-सामंतप्पभिइपउरपरियरिओ । संपत्तो रायउले अहिसित्तो पुव्वरायपए ॥१३८॥
जाओ य महाराया नायं एत्तो अवंतिनाहेण । जह कोइ देसियनरो राया जाओ जयंतीए ॥१३९॥
तो तेण पेसिओ नियदूयओ रायहंसनरवइणो । भणिओ दूएण निवो वियरसु मह राइणो दंडं ॥१४०॥
अह नो ता रज्जं पि हु गिण्हिस्सइ तं निसामिउं रन्ना । भणियं जं तस्स मणे पडिहासइ कुणउ तं सिग्घं ॥१४१॥
दूएण तओ गंतुं महसेणनिवस्स साहियं सव्वं । होऊण जुज्झसज्जो विणिग्गओ सोऽभिमाणधणो ॥१४२॥
नाउं चरेहिं सिरिरायहंसराया वि विहियसन्नाहो । नीहरिओ नियबलभरपरिपूरियभूरिभूवलओ ॥१४३॥
दोन्नि वि बलाइं सन्नद्ध-बद्धकवयाइं देससीमाए । भिडियाइं मुक्कहक्काणि झत्ति जयलच्छिलुद्धाणि ॥१४४॥
करि-तुरय-रह-नरोहा गय-हय-संदण-भडाणमब्भिट्ठा । आबद्धभिउडिभीमा भूवइणो भूमिनाहाण ॥१४५॥
एवमवरुप्परं पि हु दुन्हं पि बलाण जायमइघोरं । आओहणे विणासियसिंधुर-नर-तुरयसंदोहं ॥१४६॥
बद्धो सामंतेणं महसेणो रायहंसतणएण । किं कीरउ तुह जणयस्स ? पुच्छिया देइणी रन्ना ॥१४७॥
तीए पयंपियमेयं मुच्चउ सम्माणिउं तओ रन्ना । गंतूण तेण सममेव कारियं तस्स वणकम्मं ॥१४८॥

तावन्तमार्गपरिश्रान्तः सुप्तः सहकारतरुतले कुमारः । इतश्च तत्र श्रीचन्द्रनरपतिः पुत्रमरणे ॥ १३५ ॥
पञ्चत्वं सम्प्राप्तः सोऽपि खलु सुतशोकशल्यितस्सन् । अभिषिक्तान्यपुत्र इति पञ्च दिव्यानि मन्त्रिभिः ॥ १३६ ॥
तानि त्रिक-चत्वारादिषु भ्रमितुं प्राप्तानि यत्र स कुमारः । ततोऽभिषिञ्च्य करिणाऽऽरोपितो निजकस्कन्धे ॥ १३७ ॥
ततो मन्त्रि-मण्डलेश्वर-सामन्त प्रभृतिपौरपरिवारितः ॥ सम्प्राप्तो राजकुले ऽभिषिक्तः पूर्वराजपदे ॥ १३८ ॥
जातश्च महाराजा ज्ञातामितोऽवन्तिनाथेन । यथा कोपि दैशिकनरो राजा जातो जयन्त्याम् ॥ १३९ ॥
तदा तेन प्रेषितो निजकदूतको राजहंसनरपतेः । भणितं दूतेन नृपो वितर मम राज्ञो दण्डम् ॥ १४० ॥
अथ नस्तदा राज्यमपि खलु ग्रहीष्यति तन्निशम्य राज्ञा । भणितं यत्तस्य मनसि प्रतिभाषते करोतु तत् शीघ्रम् ॥१४१॥
दूतेन ततो गत्वा महसेननृपस्य कथितं सर्वम् । भूत्वा युद्धसज्जो विनिर्गतः सोऽभिमानधनः ॥ १४२ ॥
ज्ञात्वा चरैः श्रीराजहंसराजापि विहितसन्नाहः । निःसृतो निजबलभरपरिपूरितभूरिभूवलयः ॥ १४३ ॥
द्वे ऽपि बले सन्नद्ध-बद्धकवचे देशसीमायाम् । मिलिते मुक्तहक्के झटिति जयलक्ष्मीलुब्धे ॥ १४४ ॥
करि-तुरग-रथ-नरौघा-गज-हय-स्यन्दन-भटानां समभिगताः । आबद्धभृकुटिभीमा भूपतयो भूमिनाथानाम् ॥ १४५ ॥
एवं परस्परमपि खलु द्वयोरपि बलयो र्जातमतिघोरम् । आयोधनं विनाशितसिन्धुर-नर-तुरगसन्दोहम् ॥ १४६ ॥
बद्धः सामन्तेन महासेनो राजहंससक्तेन । किं क्रियतां तव जनकस्य ? पृष्टा देविनी राज्ञा ॥ १४७ ॥
तया प्रजल्पितं मुञ्चतु सन्मान्य ततो राज्ञा । गत्वा तेन स्वयमेव कारितं तस्य व्रणकर्म ॥ १४८ ॥

पणमिय पियपयपउमा पयंपए देइणी जहा ताय ! । पयडीभूयाणि इमाणि संपयं मज्झ पुन्नाणि ॥१४९॥
भणियं महसेणनरेसरेण कहमेयमह कहइ कुमरी । दद्दुर-विसहरवज्जरियपमुहनिस्सेसनियचरियं ॥१५०॥
तं सोउं सव्वे वि हु सामंता वज्जरंति जह एसो । सो रायहंसकुमारो जो आसि विणट्ठसव्वंगो ॥१५१॥
सा एसा महसेणस्स अंगया जा तया सकोवेण । दिन्ना अणेण कोट्ठामिभूयदेहस्स दमयस्स ॥१५२॥
जं सव्वे नियपुन्नं भुंजंति इमाए आसि उल्लवियं । तं सच्चं चिय जायं जमिमाणं रज्जसंपत्ती ॥१५३॥
तो महसेणनिरंदेण जंपिओ रायहंसनरनाहो । तं मह पुत्ताण पहू अहयं तु तवं करिस्सामि ॥१५४॥
एवं विहिया सव्वे नियया‌णावत्तिणो नरवरिंदा । जाओ रायाहिवई नरेसरो रायहंसो सो ॥१५५॥
असरिसनरिंदलच्छिं उवभुंजंतस्स तस्स बहुकालो । समइक्कंतो अह अन्नया य सूरी समोसरिओ ॥१५६॥
नामेण भवंतकरो तिलउज्जाणे तओ नरवरिंदो । महरिहरिद्धीए गओ सूरिसयासम्मि सकलत्तो ॥१५७॥
अभिवंदिऊण सुगुरूण चरणतामरसमुचियठाणम्मि । उवविट्ठो तो सूरीहिं देसणा तस्स परिकहिया ॥१५८॥
भो भो भव्वा ! संविग्गमाणसा सुणह परममुणिवसणं । एसो ता संसारो चिंतिज्जंतो धुवमसारो ॥१५९॥
कम्मवसया जमेत्थं जीवा खणभंगुरस्सरूवम्मि । संपय-विवयाओ पाउणंति ता कह णु सविवेया ॥१६०॥
हरिस-विसायं वच्चंतु संपयाओ भवंति पुन्नेण । विवयाओ अपुन्नेणं ता पुन्ने जयह जमिहुत्तं ॥१६१॥
वच्चइ जत्थ सउन्नो विदेसमडविं समुद्दमज्झे वा । नंदइ तहिं तहिं चिय ता भो ! पुन्नं समज्जिणह ॥१६२॥

प्रणम्य पितृपदपद्मौ प्रजल्पति देविनी यथा तात ! । प्रकटीभूतानीमानि साम्प्रतं मम पुण्यानि ॥ १४९ ॥
भणितं महासेननरेश्वरेण कथमेतदथ कथयति कुमारी । दर्दुर-विषधरकथितप्रमुखनिःशेषनिजचरितम् ॥ १५० ॥
तत् श्रुत्वा सर्वेऽपि खलु सामन्ताः कथयन्ति यथैषः । स राजहंसकुमारो य आसीद्विनष्टसर्वाङ्गः ॥ १५१ ॥
सैषा महसेनस्याङ्गजा या तदा सकोपेन । दत्तानेन कुष्ठाभिभूतदेहाय द्रमकाय । १५२ ॥
यत्सर्वे निजपुण्यं भुञ्जन्त्यनयासीदुल्लपितम् । तत्सत्यमेव जातं यदनयो राज्यसम्प्राप्तिः ॥ १५३ ॥
ततो महसेननरेन्द्रेण जल्पितो राजहंसनरनाथः । त्वं मम पुत्राणां प्रभुरहं तु तपः करिष्यामि ॥ १५४ ॥
एवं विहिताः सर्वे निजकाज्ञावर्त्तिनो नरवेन्द्राः । जातो राजाधिपति नरेश्वरो राजहंसः सः ॥ १५५ ॥
असदृशनरेन्द्रलक्ष्मीमुपभुञ्जतस्तस्य बहुकालः। समतिक्रान्तोऽथान्यदा च सूरिः समवसृतः ॥ १५६ ॥
नाम्ना भवान्तकरस्तिलकोद्याने ततो नरवरेन्द्रः । महार्हर्द्धया गतः सूरिसकाशे सकलत्रः ॥ १५७ ॥
अभिवन्द्य सुगुरुणां चरणतामरसमुचितस्थाने । उपविष्टस्ततः सूरिभि र्देशना तस्य परिकथिता ॥ १५८ ॥
भो भो भव्याः संविग्नमानसाः शृणुत परममुनिवसनम् । एष तावत् संसारश्चिन्त्यमानो ध्रुवमसारः ॥ १५९ ॥
कर्मवशगा यदत्र जीवाः क्षणभङ्गुरस्वरुपे । सम्पद्विपदः प्राप्नुवन्ति ततः कथं नु सविवेकाः ॥ १६० ॥
हर्ष-विषादं-व्रजन्तु सम्पदो भवन्ति पुण्येन । विपदोऽपुण्येन ततः पुण्ये जयत यदिहोक्तम् ॥ १६१ ॥
व्रजति यत्र सपुण्यो विदेशमटर्वि समुद्रमध्ये वा । नन्दति तत्र तत्रैव ततो भो ! पुण्यं समर्जयत ॥ १६२ ॥

पुन्नं पि नियमभंगाइदोसओ संतरं जणइ दुक्खं । जह तुज्झ इमं जायं जम्मंतरनियमभंगेण ॥१६३॥
एत्थंतरम्मि पुट्ठो सो सूरी पणमिउं पुहइवइणा । किं भयवं ! मह रोगो जाओ तह असरिसा रिद्धी ॥१६४॥
तो भयवया वि सव्वे पुव्वभवे साहिए महीनाहो । नाऊण जाइसरणेण तं तओ भणइ एवं ति ॥१६५॥
कहिओ य रायहंसेण नियभवो सयलरायलोयस्स । जह जाया नियमेणं रिद्धी तब्भंगओ रोगो ॥१६६॥
तं निसुणिऊण बहवे पडिबुद्धा पाणिणो भवुव्विग्गा । राया वि सावयत्तं पडिवज्जिय सभवणम्मि गओ ॥१६७॥
कारेइ जिणहराइं पूएइ जिणे नमंसए गुरुणो । पुहईए पयट्टावइ रहजत्ताओ सुभत्तीए ॥१६८॥
जाओ य देइणीए पुत्तो पत्तो य जोव्वणारंभं । अहिसित्तो नियययपए निवेण सुपसत्थदिवसम्मि ॥१६९॥
तो देइणीए सहिएण रायहंसेण सुगुरुपासम्मि । गहिया जिणिंददिक्खा चरिउं अइधोरतवचरणे ॥१७०॥
मरिऊण बंभलोगे जाओ भासुरतणुप्पहो अमरो । तत्तो चुओ समाणो स पाविही सिद्धिसुहमसमं ॥१७१॥

॥ राजहंसाख्यानकं समाप्तं ॥४९॥

जह एयाणं नियमो संजाओ गुरुगुणाण संजणओ ।
तह अन्नस्स वि जायइ ता तग्गहणे कुणह जत्तं ॥१॥

पुण्यानुबन्धजनकं शुभभावसारमङ्गीकृतस्वनियमग्रहणं क्रमेण ।
स्वर्गा-ऽपवर्गफलदायि दिताभिमानाः प्रत्यग्रपापमथनावहमामनन्ति ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे नियमफलप्रतिपादको नाम पञ्चदशोऽधिकारः समाप्तः ॥१५॥

पुण्यमपि नियमभङ्गादिदोषतः सान्तरं जनयति दुःखम् । यथा तवेदं जातं जन्मान्तरनियमभङ्गेन ॥ १६३ ॥
अत्रान्तरे पृष्टः स सूरिः प्रणम्य पृथिवीपतिना । किं भगवन् ! मम रोगो जातस्तथासदृशार्द्धिः ॥ १६४ ॥
ततो भगवतापि सर्वे पूर्वभवाः कथयता महीनाथः । ज्ञात्वा जातिस्मरणेन तं ततो भणत्येवमिति ॥ १६५ ॥
कथितश्च राजहंसेन निजभवः सकलराजलोकस्य । यथा जाता नियमेनर्द्धिस्तद्भङ्गतो रोगः ॥ १६६ ॥
तन्निश्रुत्य बहवः प्रतिबुद्धाः प्राणिनो भवोद्विग्नाः । राजापि श्रावकत्वं प्रतिपद्य स्वभवने गतः ॥ १६७ ॥
कारयति जिनगृहाणि पूजयति जिनान्नमति गुरुन् । पृथिव्यां प्रवर्तयति रथयात्राः सुभक्त्या ॥ १६८ ॥
जातश्च देविन्या पुत्रः प्राप्तश्च यौवनारम्भम् । अभिषिक्तो निजपदे नृपेण सुप्रशस्तदिवसे ॥ १६९ ॥
ततो देविन्या सहितेन राजहंसेन सुगुरुपार्श्वे । गृहीता जिनेन्द्रदिक्षा चरित्वातिघोरतपश्चरणम् ॥ १७० ॥
मृत्वा ब्रह्मलोके जातो भासुरतनुप्रभोऽमरः । ततश्च्युतः सन् स प्राप्स्यति सिद्धिसुखमसमम् ॥ १७१ ॥

॥ राजहंसाख्यानकं समाप्तम् ॥ ४९ ॥

यथैतेषां नियमः सञ्जातो गुरुगुणानां सञ्जनकः ।
तथान्यस्यापि जायते ततस्तद्ग्रहणे कुरुत यत्नम् ॥ १ ॥

• • •

[१६. मिथ्यादुष्कृतदानफलाधिकारः ।]

नियममालिन्ये च मिथ्यादुष्कृतं दातव्यमित्यनेन सम्बन्धेनाऽऽयातं मिथ्यादुष्कृतं व्याख्यातुकाम आह -

खमगा य चंडरुद्दो मिगावई तह पसन्नचंदो य ।
सम्मं मिच्छाउक्कडदाणफले हुंति आहरणा ॥ २० ॥

व्याख्या-'क्षपकाश्च' प्रतीता एव, 'चण्डरुद्रः' समयप्रसिद्धः सूरिः, 'मृगावती'[1] शतानिकनृपतिभार्या, 'तथा' तेन प्रकारेण 'प्रसन्नचन्द्रश्च' पोतनपुराधिपतिः, 'सम्यग्' भावसारं 'मिथ्यादुष्कृतदानफले' स्वदोषप्रतिपत्ति-वितरणगुणे 'भवन्ति' जायन्ते "आहरण" त्ति दृष्टान्ता इत्यक्षरार्थः ॥ २१ ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकेभ्योऽवसेयः । तानि चामूनि ।

तत्र तावत् क्षप(का)ख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

अत्थि तहाविहगच्छे करुणारसपूरियम्मि विच्छिन्ने । जलहिम्मि व खमगरिसी परमपहावो वरमणि व्व ॥१॥
सो भुंजइ मासं केसरि व्व कइया वि पारणगदिवसे । भिक्खट्ठाए पविट्ठो खमगरिसीं खुड्डुएण समं ॥२॥
मच्छियपमाणमंडुक्कियाहिं पच्छाइयम्मि मग्गम्मि । खमरिसिणा अक्कंता कमेण मंडुक्किया एगा ॥३॥
भणिओ य खुड्डुएणं खमग ! तए पेच्छ मारिया एसा । कहियव्वा य गुरूणं चारित्तायारसोहिकए ॥४॥

क्षपकाख्यानकम् —

अस्ति तथाविधगच्छे करुणारसपूरिते विस्तीर्णे । जलधाविव क्षपकर्षिं परमप्रभावो वरमणिरिव ॥ १ ॥
स भुङ्क्ते मासं केसरीव कदापि पारणकदिवसे । भिक्षार्थाय प्रविष्टः क्षपकर्षिः क्षुल्लकेन समम् ॥ २ ॥
मक्षिकाप्रमाणमण्डुकिभिः प्रच्छादिते मार्गे । क्षपकर्षिणाऽऽक्रान्ता क्रमेण मण्डुकियैका ॥ ३ ॥
भणितश्च क्षुल्लकेन क्षपक ! त्वया पश्य मारितैषा । कथितव्या च गुरुणां चारित्राचारशोधिकृते ॥ ४ ॥

---

१. मृगापतिः रं० ।

तं सोउं सो रुट्ठो इमाओ पाविट्ठ ! केण वहियाओ । दंसइ लोएणं मारियाओ जो चिंतियमिमेण ॥५॥
आवस्सयवेलाए पसंतहिययस्स संभराविस्सं । ता पारावउ एसो छुहियस्स न एस पत्थावो ॥६॥
जओ-
नासइ खंती परिगलइ पोरिसं लहु पलायइ विवेगो । सिक्खा वि ठाइ न मणे छुहाभिभूयाण जीवाणं ॥७॥
किर किमसंगयमिमिणा चुक्क-क्खलियम्मि चोइओ जमिमो ? । परमिह दुजओ कोवो गुणट्ठियाण वि महासत्तू ॥८॥
कट्ठं करंति समरे मरंति जलणं धरंति सीसेण । न उणो जिणन्ति कोवं पावमिणं धम्मवणदहणं ॥९॥
पढउ सुयं धरउ वयं कुणउ तवं चरउ बंभचेराई । तह वि तयं सव्वं पि हु निरत्थयं कोववसगस्स ॥१०॥
जइ जलइ जलउ लोए कुसत्थपवणाहओ कसायग्गी । तं चोज्जं जं जिणवयणवारिसित्तो वि पज्जलइ ॥११॥
तो सो अणुसयवसओ तहेव भुत्तो वियालवेलाए । सुमरावियम्मि कोवेण पजलिओ खुड्डुयस्सुवरिं ॥१२॥
मिलियाण मज्झयारे विगोविओ अहमणेण पावेण । ता मारेमि सयमहं खुड्डुयमेयं ति चिंतेउं ॥१३॥
गहिऊण खेलमल्लगमसुहज्झाणो पहाविओ जाव । तावाऽऽवडिओ खंभे विम्हरियपओ[1] मओ खमओ ॥१४॥
जाओ कुलम्मि मइलियवयाण[2] दिट्ठीविसाण सप्पाण । कुगईए संपत्तो दीणमुहो चिंतिउं लग्गो ॥१५॥
तं जहा-
रे जीव ! कसायहुयासणेण दड्ढे चरित्तघरसारे । भमिहिसि भवकंतारे दीणमुहो दुक्खिओ य तुमं ॥१६॥
तो जायजाइसरणो रयणीए दयावरो परियडेति । मा रविकरसंपक्का दिणम्मि दिट्ठी वहउ जीवे ॥१७॥

तत् श्रुत्वा स रुष्ट इमाः पापिष्ठ ! केन घातिताः । दर्शयति लोकेन मारितास्ततश्चिन्तितमनेन ॥ ५ ॥
आवश्यकवेलायां प्रशान्तहृदयस्य स्मारिष्यामि । ततः पारयत्वेष क्षुधितस्य नैष प्रस्तावः ॥ ६ ॥
यतः- नाशयति क्षान्तिं परिगलति पौरुषं लघु पलायते विवेकः । शिक्षापि तिष्ठति न मनसि क्षुधाभिभूतानां जीवानाम् ॥७॥
किल किमसंगतमनेन भ्रंश-स्खलिते चोदितो यदयम् ? । परमिह दुर्जयः कोपो गुणस्थितानामपि महाशत्रुः ॥ ८ ॥
कष्टं कुर्वन्ति समरे म्रियन्ते ज्वलनं धरन्ति शीर्षेण । न पुन र्जयन्ति कोपं पापमिमं धर्मवनदहनम् ॥ ९ ॥
पठतु श्रुतं धरतु व्रतं करोतु तपश्चरतु ब्रह्मचर्यादि । तथापि तकं सर्वमपि खलु निरर्थकं कोपवशगस्य ॥ १० ॥
यदि जलति जलतु लोके कुशास्त्रपवनाहतः कषायाग्निः । [3]च्चाद्यं यज्जिनवचनवारिसिक्तोऽपि प्रज्वलति ॥ ११ ॥
ततः सोऽनुशयवशगस्तथैवभुक्तो विकालवेलायाम् । स्मारिते कोपेन प्रज्वलितः क्षुल्लकस्योपरि ॥ १२ ॥
मिलितानां मध्ये विगोपितोऽहमनेन पापेन । ततो मारयामि स्वयमहं क्षुल्लकमेनमिति चिन्तयित्वा ॥ १३ ॥
गृहीत्वा खेलमल्लकमशुभध्यानः प्रधावितो यावत् । तावदापतितः स्तम्भे विस्मृतपश्चात्तापो क्षपकः ॥ १४ ॥
जातः कुले मलिनीतव्रतानां दृष्टिविषाणां सर्पाणाम् । कुगत्यां सम्प्राप्तो दीनमुखश्चिन्तयितुं लग्नः ॥ १५ ॥
तं यथा- रे जीवा कषायहुताशनेन दग्धे चारित्रगृहसारे । भ्रमिष्यसि भवकान्तारे दीनमुखो दुःखितश्च त्वम् ॥ १६ ॥
ततो जातजातिस्मरणो रजन्यां दयापरः पर्यटति । मा रविकरसम्पर्काद् दिने दृष्टि र्हन्तु जीवान् ॥ १७ ॥

---

१. विस्मृतपश्चात्तापः । २. मयलिय० रं० । ३. आश्चर्यम् ।

एत्तो य वसंतपुरे कुमरो अरिमद्दणस्स नरवइणो । तइया भुयंगदट्ठो मुक्को सहस त्ति पाणेहिं ॥१८॥
राया वि सुयसिणेहा कुविओ सप्पाण ते विणासेउं । जो दंसइ सप्पसिरं दीणारं देइ तस्स तओ ॥१९॥
संजाए सप्पखए वणम्मि रयणीए संचरंताणं । घसणीउ नियइ एगो गारुडिओ तेसि वहणत्थं ॥२०॥
मेल्लेइ ओसहीओ बिलेसु तो तेसि गंधमसहंता । निग्गच्छंति वराया सो ते मारेइ दविणकए ॥२१॥

ग्रान्थाग्रम्-६०००॥

सो वि हु खमगभुयंगो ओसहिगंधेण विहुरियसरीरो । बिलमज्झम्मि य चिट्ठिउमचयंतो चिंतए एवं ॥२२॥
एस वराओ को वि हु मुहेण जइ नीहरामि ता मरिही । मह दिट्ठीविसदोसा इय करुणापरिगओ धणियं ॥२३॥
निग्गच्छइ पुच्छेणं जत्तियमेत्तं च निस्सरइ बाहिं । तत्तियमेत्तं छिंदइ गारुडिओ सो उ चिंतेइ ॥२४॥
रे जीव ! सुइविवज्जिय निहीण ! निब्भग्गसेहर ! अणज्ज ! । संपयमवि मा कुप्पसु अणुभूयं कोवफलमेयं ॥२५॥
जइ संतियाए किर चोइओ तया तेण समणरूवेण । ता तस्सोवरि कुवियस्स तुज्झ किं कस्स संजायं ? ॥२६॥
तं तारिससुगुरूणं विजोजिओ धम्मबंधवाणं पि । तह तारिससंजमगिरिवराओ पडिऊण खडहडिओ ॥२७॥
तारिससामग्गीए तइया एयस्स तारिसो कोवो । इण्हि पुण एस खमा अहो ! हु कम्माण कुडिलत्तं ॥२८॥
इय सो वेरग्गगओ विसहंतो वेयणं तमइदुसहं । मणुयाउं निव्वत्तइ सुकुलुप्पत्तिं च खमगाही ॥२९॥
अह नागदेवयाए सुमिणम्मि नेविइयं नरवइस्स । विरमसु नागवहाओ तुह पुत्तो होहिही राया ॥३०॥
सो मरिउं खमगजिओ संजाओ तस्स राइणो पुत्तो । झस-कुलिस-चक्कलंछणलंछियसुहविग्गहावयवो ॥३१॥

इतश्च वसन्तपुरे कुमारोऽरिमर्दनस्य नरपतेः । तदा भुजङ्गदष्टो मुक्तः सहसेति प्राणैः ॥ १८ ॥
राजापि सुतस्नेहात् कुपितः सर्पांस्तान् विनश्यतु । यो दर्शयति सर्पशिरो दिनारं ददाति तस्मै ततः ॥ १९ ॥
सञ्जाते सर्पक्षये वने रजन्यां सञ्चरताम् । घर्षण्यः पश्यत्येको गारुडिकस्तेषां हननार्थम् ॥ २० ॥
मुञ्चत्यौषधीन् बिलेषु तदा तासां गन्धमसहमानाः । निर्गच्छन्ति वराकाः स तान्मारयति द्रविणकृते ॥ २१ ॥
सोऽपि खलु क्षमकभुजङ्ग औषधिगन्धेनविधुरितशरीरः । बिलमध्ये च स्थातुमपारयँश्चिन्तयत्येवम् ॥ २२ ॥
एष वराकः कोऽपि खलु मुखेन निःसरामि तदा मरिष्यति । मम दृष्टिविषदोषादिति करुणापरिगतो बाढम् ॥ २३ ॥
निर्गच्छति पृच्छेन यावन्मात्रं च निःसरति बहिः । तावन्मात्रं छिनत्ति गारुडिकः स तु चिन्तयति ॥ २४ ॥
रे जीव ! श्रुतिविवर्जित ! निहीन ! निर्भाग्यशेखर ! अनार्य ! । साम्प्रतमपि मा कोपीरनुभूतं कोपफलमेतत् ॥ २५ ॥
यदि शान्त्यै किल चोदितस्तदा तेन श्रमणरुपेण । तदा तस्योपरि कुपितस्य तव किं कस्य सञ्जातम् ? ॥ २६ ॥
त्वं तादृशसुगुरो र्वियोजितो धर्मबान्धवेभ्योऽपि । तथा तादृशसंयमगिरिवरात्पतित्वा शिथिलितः ॥ २७ ॥
तादृशसामाग्र्यास्तदैतस्य तादृशः कोपः । इदानीं पुनरेषा क्षमाहो ! खलु कर्माणां कुटिलत्वम् ॥ २८ ॥
इति स वैराग्यगतो विषहमानो वेदनां तामतिदुःसहाम् । मनुष्यायु र्निवर्तयति सुकुलोत्पत्तिं च क्षमकाहिः ॥ २९ ॥
अथ नागदेवतया स्वप्ने निवेदितं नरपतेः । विरम नागवधात्तवपुत्रो भविष्यति राजा ॥ ३० ॥
स मृत्वा क्षमकजीवः सञ्जातस्तस्य राज्ञः पुत्रः । झष-कुलिश-चक्रलञ्छनलञ्छितशुभविग्रहावयवः ॥ ३१ ॥

विहियं वद्धावणयं सुयजम्ममहूसवम्मि नरवइणा । दिन्नं च देवयाए नामं से नागदत्तो त्ति ॥३२॥
अह देहोवचएणं कलाकलावेण विद्धिमणुपत्तो । सयलजणनयणसुहओ ससि व्व पयईए सोमतणू ॥३३॥
सुहओ पुव्वाभासी पुव्वभवब्भासओ य नायपिओ । देव-गुरुपूयणरओ पच्चक्खो पसमधम्मो व्व ॥३४॥
संसारियसुहविमुहो रज्जसिरीसंगमस्स निरवेक्खो । कारागारगओ विव निव्वेयाओ वसइ गेहे ॥३५॥
अह अन्नया कया वि हु गुणवंताणं गुरूण पासम्मि । मोयाविऊण पियरं निक्खंतो जायसंवेगो ॥३६॥
पंचसमिओ तिगुत्तो दसविहमुणिचक्कवालकिरियाए । सययं चिय उवउत्तो वेयावच्चे विसेसेण ॥३७॥
अह तम्मि चेव गच्छे खमगा चत्तारि चरणसंपन्ना । मास-दुमास-तिमासिय-चउमासतवोविसेसरया ॥३८॥
अममत्ता निस्संगा कट्ठाणुट्ठाणसोसियसरीरा । खुड्डगसाहू तेसिं विसेसओ कुणइ बहुमाणं ॥३९॥
सो उण तिरिक्खजोणीसमागमा सययमेव य छुहालु । भुंजइ पइक्खणं चिय विसुद्धमाहारमाणेउं ॥४०॥
वहइ य मणम्मि खेयं धिसि धिसि मम देह-जीवियव्वाण । पढमपरीसहभीओ जाऽहमसत्तो तवं काउं ॥४१॥
एए महाणुभावा पेच्छह सरिसे वि माणुसत्तम्मि । दुक्करतवचरणरया खवेंति पोरायणं कम्मं ॥४२॥
अह अन्नया पभाए भरिउं दोसीणकूरदहियस्स । नियपडिगहयं पत्तो आलोएउं गुरुसयासे ॥४३॥
साहवो तो चियत्तेण, निमंतेज्ज जहक्कमं । जइ तत्थ कोई इच्छेज्जा, तेहिं सद्धिं तु भुंजए ॥४४॥
इय वयणमणुसरंतेण तेसि सव्वेसि दंसियो कमसो । निच्छूढं सव्वेहि वि पडिग्गहे कोववसगेहिं ॥४५॥

विहितं वर्धापनकं सुतजन्ममहोत्सवे नरपतिना । दत्तं च देवतया नाम तस्य नागदत्त इति ॥ ३२ ॥
अथ देहोपचयेन कलाकलापेन वृद्धिमनुप्राप्तः । सकलजननयनसुभगः शशीव प्रकृत्या सौम्यतनूः ॥ ३३ ॥
सुभगः पूर्वाभ्यासी पूर्वभवाभ्यासाच्च न्यायप्रियः । देव-गुरुपूजनरतः प्रत्यक्षः प्रशमधर्म इव ॥ ३४ ॥
सांसारिकसुखविमुखो राज्यश्रीसंगमस्य निरपेक्षः । कारागृहगत इव निर्वेदाद्वसति गृहे ॥ ३५ ॥
अथान्यदा कदापि खलु गुणवतां गुरुणां पार्श्वे । मोचयित्वा पितरं निष्क्रान्तो जातसंवेगः ॥ ३६ ॥
पञ्चसमितस्त्रिगुप्तो दशविधमुनिचक्रवालक्रियायाः । स्वयं चैवोपयुक्तो वैयावृत्ये विशेषणो ॥ ३७ ॥
अथ तस्मिंश्चैव गच्छे क्षमकाश्चत्वारश्चरणसंपन्नाः । मास-द्विमास-त्रिमासिक-चतुर्मासतपो विशेषरताः ॥ ३८ ॥
अममत्वा निस्संगाः कष्टानुष्ठानशोषितशरीराः । क्षुल्लकसाधुस्तेषां विशेषतः करोति बहुमानम् ॥ ३९ ॥
स पुनस्तिर्यग्योनीसमागमात् स्वयमेव च क्षुधालुः । भुङ्क्ते प्रतिक्षणं चैव विशुद्धमाहारमानीय ॥ ४० ॥
वहति च मनसि खेदं धिग्धिग्मम देह-जीवितव्ययोः । प्रथमपरीषहभीतो योऽहमसक्तस्तपः कर्तुम् ॥ ४१ ॥
एते महानुभावाः पश्यथ सदृशेऽपि मनुष्यत्वे । दुष्करतपश्चरणरताः क्षपयन्ति पौराणकं कर्म ॥ ४२ ॥
अथान्यदा प्रभाते भृत्वा दोसीणकूरदध्नः । निजपतद्ग्रहकं प्राप्त आलोचयितुं गुरुसकाशे ॥ ४३ ॥
साधूंस्तदा प्रीत्या निमन्त्रयेद् यथाक्रमम् । यदि तत्र कोऽपीच्छेत्तै सार्धं तु भुञ्जयेत् ॥ ४४ ॥
इति वचनमनुस्मरता तेषां सर्वेषां दर्शितः क्रमशः । निष्ठ्यूतं सर्वैरपि पतद्ग्रहे कोपवशगैः ॥ ४५ ॥

सो उण तहेव भुत्तो पवित्तमेयं मणम्मि चिंतंतो । मणयं पि हु न पउट्ठो अहो ! हु से पसमपगरिसया ॥४६॥
चिंतइ पसंतहियओ नडिओऽहमणेण निच्चमुयरेण । एएसि खेलमल्लयमवि सत्तो न हु समप्पेउं ॥४७॥
अह अन्नया य खुड्डुयपसमगुणावज्जियाए ते खमए । मोत्तूण देवयाए गंतूणं वंदिओ खुड्डो ॥४८॥
निग्गच्छंती वत्थंचलम्मि धरिऊण मच्छरवसेण । चउमासियखमगेणं भणिया सामरिसवयणेण ॥४९॥
कडपूयणि ! पावे ! पावपडलपच्छन्ननिम्मलविवेए ! । गुण-दोसवियारविसेससुन्नहियए ! हयपयावे ! ॥५०॥
मोत्तूणऽम्हे खवगे दुक्करतवचरणसोसियसरीरे । एयं तिकालभोइं वंदसि कह खुड्डुयं लहुयं ? ॥५१॥
तीए वुत्तं भो दव्वखवग ! वंदामि भावखवगमहं । तेणुत्तं कहमेवं जंपसि पावे ! पदुट्ठमणे ! ? ॥५२॥
एयस्स अप्पणो वि य विसेसमिण्हिं पि पासिहह पयडं । इय वोत्तूणं खवगं सट्ठाणं देवया पत्ता ॥५३॥
एवं खुड्डुयमुणिणो निरवज्जाहारभोइणो सययं । उवसंतमणस्स दढं वेयावच्चम्मि निरयस्स ॥५४॥
गुणपक्खवायबहुमाणवसणिणो गुरुकुले वसंतस्स । उल्लसियजीवविरियस्स खवगसेढिं पवन्नस्स ॥५५॥
सुक्कज्झाणहुयासणविसेसनिद्दड्ढघाइकम्मस्स । लोयालोयपयासं उप्पनं केवलं नाणं ॥५६॥
केवलमहिमं काउं खुड्डुयमुणिणो सुरेहि भत्तीए । रइयम्मि कणयकमले उवविट्ठे खुड्डुयमुणिम्मि ॥५७॥
आगन्तूणं भणिया ते खवगा देवयाए सामरिसं । पेच्छह खुड्डुयमुणिणो अप्पाणस्सावि य विसेसं ॥५८॥
एवं ते भणिया देवयाए तह कहवि सम्ममाउट्टा । जह अप्पाणं निंदिउमाढत्ता पसमरसवसया ॥५९॥

स पुनस्तथैवभुङ्क्त पवित्रमेतन्मनसि चिन्तयन् । मनागपि खलु न प्रदुष्टोऽहो ! खलु तस्य प्रशमप्रकर्षः ॥ ४६ ॥
चिन्तयति प्रशान्तहृदयो नटितोऽहमनेन नित्यमुदरेण । एतेषां खेलमात्रकमपि शक्तो न खलु समर्पयितुम् ॥ ४७ ॥
अथान्यदा च क्षुल्लकप्रशमगुणावर्जितया तान् क्षपकान् । मुक्त्वा देवतया गत्वा वन्दितः क्षुल्लकः ॥ ४८ ॥
निर्गच्छन्ती वस्त्रांचले धृत्वा मत्सरवशेन । चातुर्मासिकक्षपकेन भणिता सामर्शवचनेन ॥ ४९ ॥
कटपूतनि ! पापे ! पापपटलप्रच्छन्ननिर्मलविवेके ! । गुण-दोषविचारविशेषशून्यहृदये ! हतप्रतापे ? ॥ ५० ॥
मुक्त्वास्मान् क्षपकान् दुष्करतपश्चरणशोषितशरीरान् । एनं त्रिकालभोजिनं वन्दसे कथं क्षुल्लकं लघुकम् ? ॥ ५१ ॥
तयोक्तं भो द्रव्यक्षपक ! वन्दे भावक्षपमहम् । तेनोक्तं कथमेव जल्पसि पापे ! प्रदुष्टमना ! ? ॥ ५२ ॥
एतस्यात्मनोऽपि च विशेषमिदानीमपि पश्यथ प्रकटम् । इत्युक्त्वा क्षपकं स्वस्थानं देवता प्राप्ता ॥ ५३ ॥
एवं क्षुल्लकमुने र्निरवद्याहारभोजिनः सततम् । उपशान्तमनसो दृढं वैयावृत्ये निरतस्य ॥ ५४ ॥
गुणपक्षपातबहुमानव्यसनिनो गुरुकुले वसतः । उल्लसितजीववीर्यस्य क्षपकश्रेणिं प्रपन्नस्य ॥ ५५ ॥
शुक्लध्यानहुताशनविशेषनिर्दग्धघातिकर्मणः । लोकालोकप्रकाशमुत्पन्नं केवलं ज्ञानम् ॥ ५६ ॥
केवलमहिमानं कर्तुं क्षुल्लकमुनेः सुरै र्भक्त्या । रचिते कनककमले उपविष्टे क्षुल्लकमुनौ ॥ ५७ ॥
आगत्य भणितास्ते क्षपका देवतया सामर्षम् । पश्यथ क्षुल्लकमुनेरात्मनोऽपि च विशेषम् ॥ ५८ ॥
एवं ते भणिता देवतया तथा कथमपि सम्यगावृत्ताः । यथात्मानं निन्दितुमारब्धाः प्रशमरसवशगाः ॥ ५९ ॥

धिसि धिसि अम्हाणं कोवसत्तुवसयाण कट्ठनिरयाणं । जेहिमिमं पि न नायं गुरूवएसं सुणंतेहिं ॥६०॥
निरवज्जाहाराणे साहूणं निच्चमेव उववासो । कोहंधाणं तु तवो वि निप्फलो कासकुसुमं व्व ॥६१॥
इय तेसिं पि हु सम्मं मिच्छाउक्कडपुरस्सरं हियए । सुहभावणावसेणं संजायं केवलन्नाणं ॥६२॥

॥ क्षपकाख्यानक समाप्तम् ॥५०॥

इदानीं चण्डरुद्राख्यानकं व्याख्यायते । तच्चेदम्-

उज्जेणीए पुरीए सूरी बहुगुणगणेहिं परियरिओ । नामेण चण्डरुद्दो रुद्दो व्व सिवासयसणाहो ॥१॥
सब्भावेण सकोवो त्ति नियसिस्साण भिन्नवसहीए । चिट्ठइ तन्निस्साए सज्झायपरो महासत्तो ॥२॥
अह अन्नया य एसो विलसिरसिङ्गारसुंदरसरीरो । नवपरणिओ बहुमित्तसंजुओ इब्भवणियसुओ ॥३॥
साहुसयासं पत्तो परिहासेणं भणंति से मित्ता । भयवं भवउव्विग्गोऽभिवंछए एस पव्वज्जं ॥४॥
नाउं परिहासमिमेसि साहुणोऽवगणिऊण तव्वयणं । सज्झायप्पभिईयं वावारं काउमारद्धा ॥५॥
ते वि हु पुणो पुणो वि य परिहासेणं तहा पयंपंति । दुस्सिक्खियाणमोसहमिमेसि सूरि त्ति चिंतेउं ॥६॥
भणियं मुणीहि गुरुणो दिक्खं वियरंति इय पयंपेउं । भिन्नट्ठाणम्मि ठिओ सूरी वि य दंसिओ तेसिं ॥७॥
केलीकिलत्तणेणं ते सव्वे सूरिणो समीवम्मि । संपत्ता परिहासेण पणमिउं तत्थ उवविट्ठा ॥८॥
भणियं च तेहिं भयवं ! भवभमणुव्विग्गमाणसो धणियं । अम्ह वयंसो एसो पव्वज्जं गेण्हिउं महइ ॥९॥

धिग्धिगस्मान् कोपशत्रुवशगान् कष्टनिरतान् । यैरिदमपि न ज्ञातं गुरूपदेशं शृणवद्भिः ॥ ६० ॥
निरवद्याहाराणां साधूनां नित्यमेवोपवासः । क्रोधान्धानां तु तपोऽपि निष्फलः कासकुसुममिव ॥ ६१ ॥
इति तेषामपि खलु सम्यग्मिथ्यादुष्कृतपुरस्सरं हृदये । शुभभावनावशेन सञ्जातं केवलज्ञानम् ॥ ६२ ॥

॥ क्षपकाख्यानकं समाप्तम् ॥ ५० ॥

चण्डरुद्राख्यानकम् - ॥ ५१ ॥

उज्जैन्यां पूर्यां सूरि र्बहुगुणगणैः परिवारितः । नाम्ना चण्डरुद्रो रुद्रइव शिवासयसनाथः ॥ १ ॥
सद्भावेन सकोप इति निजकशिष्येभ्यो भिन्नवसतौ । तिष्ठति तन्निश्रायां स्वाध्यायपरो महासत्त्वः ॥ २ ॥
अथान्यदा चैको विलसच्छृङ्गारसुन्दरशरीरः । नवपरिणीतो बहुमित्रसंयुक्त इभ्यवणिक्सुतः ॥ ३ ॥
साधुसकाशं प्राप्तः परिहासेण भणन्ति तस्य मित्राणि । भगवन् भयोद्विग्नोऽभिवाञ्छत्येष प्रव्रज्याम् ॥ ४ ॥
ज्ञात्वा परिहासमेतेषां साधवोऽवगण्य तद्वचनम् । स्वाध्यायप्रभृति व्यापारं कर्तुमारब्धा ॥ ५ ॥
ते ऽपि खलु पुनः पुनरपि च परिहासेण तथा प्रजल्पन्ति । दुःशिक्षितनामौषधमेतेषां सूरिरिति चिन्तयित्वा ॥ ६ ॥
भणितं मुनिभिर्गुरवो दिक्षां वितरन्तीति प्रजल्प्य । भिन्नस्थाने स्थितः सूरिरपि च दर्शितस्तेषाम् ॥ ७ ॥
केलिक्रीडत्वेन ते सर्वे सूरेः समीपे । सम्प्राप्ताः परिहासेण प्रणम्य तत्रोपविष्टाः ॥ ८ ॥
भणितं च तै र्भगवन् ! भवभ्रमणोद्विग्नमानसो गाढम् । अस्मद्वयस्य एष प्रवज्यां ग्रहीतुमिच्छति ॥ ९ ॥

एयत्थमेव सव्वंगसुंदरं विरइऊण सिंगारं । तुम्ह कमकमलजुयलं दुहसयदलणं समल्लीणो ॥१०॥
ता काऊण पसायं दिक्खादाणेणऽणुग्गहह एयं । इय निसुणिऊण सिरिचंडरुद्दसूरी वि कोववसा ॥११॥
चिंतेइ पेच्छ पावा मामवि कहमुवहसंति ता एए । दुव्विलसियफलमिण्हिं भुंजंतु विचिंतिउं भणइ ॥१२॥
जइ एवं ता भूइं दुयं समप्पेह सूरिणा भणिए । उवणेंति तयं ते वि हु कुओ वि ठाणाओ आणेउं ॥१३॥
तयणंतरं सकोवेण सुरिणा भिउडिभीमभालेण । पेच्छंताण वि ताणं सिरम्मि निप्फाइओ लोओ ॥१४॥
ते वि हु विलक्खवयणा नियनियठाणेसु पडिगया मित्ता । तत्तो य इब्भपुत्तो कयंजली सुद्धपरिणामो ॥१५॥
पणमियतप्पयपउमो पयंपए पहु ! पयच्छ पव्वज्जं । सम्मं चिय परिणमिओ परिहासो वि हु इमो मज्झ ॥१६॥
तो इब्भकुलुब्भूओ सम्मं पव्वाविओ मुणिंदेण । पुणरवि गुरूण चरणे पणमित्तु पयंपए एवं ॥१७॥
भयवं ! बहुसयणो हं मा मे धम्मंतराइयं होउ । ता वच्चामो अन्नत्थ कत्थई भणइ तो सूरी ॥१८॥
जइ एवं पडिलेहसु मग्गं इच्छंति जंपिऊण गओ । सुविणीओ सुविणेओ मग्गं पडिलेहिउं पत्तो ॥१९॥
तत्तो निसाए सूरी गंतुमसत्तो पयं पि एगागी । वुड्ढत्तणेण नवसिक्खगस्स खंधे भुयं काउं ॥२०॥
संचलिओ खलियम्मि वि पयम्मि पयइप्पभूयकोवत्ता । तं निब्भच्छिय ताडइ सिरम्मि दंडप्पहारेण ॥२१॥
सो वि हु महाणुभावो चित्तब्भंतरभवंतसुहभावो । चिंतेइ मए किह एस पाडिओ एरिसे वसणे ? ॥२२॥
एयस्स महासत्तस्स साहुसज्झायजुत्तचित्तस्स । जणयंतेणमसोक्खं अहह ! मए पावमायरियं ॥२३॥

एतदर्थमेव सर्वाङ्गसुन्दरं विरच्य शृङ्गारम् । युष्मत्क्रमकमलयुगलं दुःखशतदलनं समालीनः ॥ १० ॥
ततः कृत्वा प्रसादं दिक्षादानेनानुगृह्णीतैनम् । इति निःश्रुत्य श्रीचण्डरुद्रसूरिरपि कोपवशात् ॥ ११ ॥
चिन्तयति पश्य पापा मामपि कथमुपहसन्ति तत एते । दुर्विलसितफलमिदानीं भुञ्जन्तु विचिन्त्य भणति ॥ १२ ॥
यद्येवं तदा भूतिं द्रुतं समर्पयत सूरिणा भणिते । उपनयन्ति तकं तेऽपि खलु कुतोऽपि स्थानादानीय ॥ १३ ॥
तदनन्तरं सकोपेन सूरिणा भृकुटिभीमभालेन । पश्यतामपि तेषां शिरसि निष्पादितो लोचः ॥ १४ ॥
तान्यपि खलु विलक्षणवदनानिनिजनिजस्थानेषु प्रतिगतानिमित्राणि । ततश्चेभ्यपुत्रः कृताञ्जलिः शुद्धपरिणामः ॥ १५ ॥
प्रणततत्पदपद्मः प्रजल्पति प्रभो ! प्रयच्छ प्रव्रज्याम् । सम्यगेव परिणतः परिहासोऽपि खल्वयं मम ॥ १६ ॥
तत इभ्यकुलोद्भूतः सम्यक् प्रव्राजितो मुनीन्द्रेण । पुनरपि गुरोश्चरणे प्रणम्य प्रजल्पत्येवम् ॥ १७ ॥
भगवन् बहुस्वजनोऽहं मा मे धर्मातन्तरायिकं भवतु । ततो व्रजावोऽन्यत्र कुत्रचिद्भणति तदा सूरिः ॥ १८ ॥
यद्येवं प्रतिलेखय मार्गमिच्छमिति जल्पित्वा गतः । सुविनीतः सुविनेयो मार्गंप्रतिलेख्य प्राप्तः ॥ १९ ॥
ततो निशि सूरि र्गन्तुमशक्तः पदमप्येकाकी । वृद्धत्वेन नवशिक्षकस्य स्कन्धे भुजां कृत्वा ॥ २० ॥
सञ्चलितः स्खलितेऽपि पदे प्रकृतिप्रभृतकोपत्वात् । तं निर्भर्त्स्य ताडयति शिरसि दण्डप्रहारेण ॥ २१ ॥
सोऽपि खलु महानुभावश्चित्ताभ्यन्तरभवच्छुभभावः । चिन्तयति मया कथमेष पातित ईदृशे व्यसने ? ॥ २२ ॥
एतस्य महासत्त्वस्य साधुस्वाध्याययुक्तचित्तस्य । जनयतासौख्यमहह ! मया पापमाचरितम् ॥ २३ ॥

नियसयलसाहुसामायारीपरिपालणेक्कचित्तस्स । जणयंतेणमसोक्खं अहह ! मए पावमायरियं ॥२४॥
बहुदिवसजराजज्जरियाविहुरगत्तस्स भुवणचि(मि?)त्तस्स । जणयंतेणमसोक्खं अहह ! मए पावमायरियं ॥२५॥
एरिसपरिणामवसुल्लसंतसुविसुद्धसुक्कझाणस्स । नवमुणिवरस्स विमलं संजायं केवलन्नाणं ॥२६॥
तप्पभिई सो तह कहवि नेइ जह से न होइ पयखलणा । तेणुत्तं तं संपइ कह सम्मं नेसि मं भद्द ! ? ॥२७॥
अइमयभावाओ अहं सम्मं पासामि भणइ सो भयवं ! । पडिवाइ अपडिवाइ ? त्ति भणइ सूरी कहसु एयं ॥२८॥
तेणुत्तमपडिवाई[1] गुरू वि संवेगमागओ देइ । सम्मं मिच्छाउक्कडमेत्तो सूरुग्गमणसमए ॥२९॥
सो चंडरुद्दसूरी नियइ सयं चेव नियसीसस्स । दढदंडताडणुब्भूयरुहिरधारारुणं सीसं ॥३०॥
तयणंतरं विचिंतइ सूरी संजायगरुयवेरग्गो । अहह ! महापावमिणं मए कयं कोववसगेण ॥३१॥
अज्जदिणदिक्खियस्स वि अन्नाणस्स वि य वालयस्सावि । अन्नायविवेयस्स वि अहो ! खमा पेच्छ एयस्स ॥३२॥
बहुदिणपव्वइयस्स वि सिद्धंतसमुद्दपत्ततीरस्स । तित्थप्पहावगस्स वि मह पुण एयारिसो कोवो ॥३३॥
बालो वि वरं एसो जो एयारिसखमाए परिकलिओ । न उणो अहयं परिणयवओ वि कोवंधनयणजुओ ॥३४॥
ता एयस्स मए जं किंपि हु मणदुक्कडं कयं इण्हिं । तं होउ भावसारं मह मिच्छादुक्कडं विहिणा ॥३५॥
तस्स वि हिययब्भंतरभवंतसुहभावणाओ संजायं । पयडियलोगा-ऽलोगं केवलनाणं मुणिंदस्स ॥३६॥
केवलिपरियायं पालिऊण पडिबोहिऊण भवियजणं । ते दो वि खवियकम्मा संपत्ता सासयं ठाणं ॥३७॥

॥ चण्डरूद्राख्यानकं समाप्तम् ॥५१॥

निजसकलसाधुसामाचारीपालनैकचित्तस्य । जनयतासौख्यमहह ! मया पापमाचरितम् ॥ २४ ॥
बहुदिवसजराजर्जरितविधुरगात्रस्य भुवनचि(मि?) त्तस्य । जनयतासौख्यमहह ! मया पापमाचरितम् ॥ २५ ॥
ईदृश परिणामवशोल्लसत्सुविशुद्धशुक्लध्यानस्य । नवमुनिवरस्य विमलं सञ्जातं केवलज्ञानम् ॥ २६ ॥
ततः प्रभृतिः स तथा कथमपि नयति यथा तस्य न भवति पदस्खलना । तेनोक्तं त्वं सम्प्रति कथं सम्यग् नयसि मां भद्र ! ॥२७॥
अतिशयभावादहं सम्यक् पश्यामि भणति स भगवन् ! । प्रतिपात्याप्रतिपातीति ? भणति सूरिः कथयैतत् ॥ २८ ॥
तेनोक्तमप्रतिपाती गुरुरपि संवेगमागतो ददाति । सम्यग् मिथ्यादुष्कृतमितः सूर्योद्गमनसमये ॥ २९ ॥
स चंडरुद्रसूरिः पश्यति स्वयमेव निजशिष्यस्य । दृढदण्डताडनोद्भूतरुधिरधारारुणं शीर्षम् ॥ ३० ॥
तदन्तरं विचिन्तयति सूरिः सञ्जातगुरुकवैराग्यः । अहह ! महापापमिदं मया कृतं कोपवशगेन ॥ ३१ ॥
अद्यदिनदिक्षितस्याप्यज्ञानस्यापि च बालकस्यापि । अज्ञातविवेकस्याप्यहो ! क्षमा पश्यैतस्य ॥ ३२ ॥
बहुदिनप्रव्रजितस्यापि सिद्धान्तसमुद्रप्राप्ततीरस्य । तीर्थप्रभावकस्यापि मम पुनरेतादृशः कोपः ॥ ३३ ॥
बालोऽपि वरमेष य एतादृशक्षमायाः परिकलितः । न पुनरहं परिणतवयोऽपि कोपान्धनयनयुतः ॥ ३४ ॥
तत एतस्य मया यत्किमपि खलु मनोदुष्कृतं कृतमिदानीम् । तद्भवतु भावसारं मम मिथ्यादुष्कृतं विधिना ॥ ३५ ॥
तस्यापि हृदयाभ्यन्तरभवच्छुभभावनातः सञ्जातम् । प्रकटितलोकालोकं केवलज्ञानं मुनीन्द्रस्य ॥ ३६ ॥
केवलिपर्यायं पालयित्वा प्रतिबोध्य भविकजनम् । तौ द्वावपि क्षपितकर्माणौ सम्प्राप्तौ शाश्वतं स्थानम् ॥ ३७ ॥

॥ चण्डरुद्राख्यानकं समाप्तम् ॥

---

१. वाइ य गुरू रं० ।

अधुना मृगावत्याख्यानकस्यावसरः । तच्च चित्रप्रिययक्षाख्यानके वक्ष्यते इत्यत्र नोच्यत्ते । क्रमप्राप्तं तु प्रसन्नचंद्राख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

अत्थि समुन्नयपव्वयपओहराए रसावरवहूए । हाररयणं व गुणरयणपोयणं पोयणं नयरं ॥१॥
तत्थाऽऽसि सोमचंदो चंदो व्व सुहायरो सुहो राया । तं सासंतो वि हु नवरमत्तिजणगो न लोयाणं ॥२॥
तस्साऽऽसि ससहरस्सेव रोहिणी व सुहवच्छा । सीलाइगुणालंकारधारिणी धारिणी भज्जा ॥३॥
तीए पसन्नमुत्ती पसन्नचंदो सुओ पसन्नमुहो । पणइयणबंधुकइरववणवियसावणपसन्नकरो ॥४॥
एवं तेसिं चउरंगवलसमग्गं समिद्धरज्जसिरिं । पालंताणं वच्चंति वासरा सुत्थहिययाणं ॥५॥
अह समयणमसमवसंतलच्छिसमलंकियं जयं सुहियं । दट्ठुं अचयंतो दुज्जणो व्व गिम्हो समणउपत्तो ॥६॥
मन्ने रविरहतुरया वि तरणिकरताविया परिस्संता । तुरियं गंतुमसत्ता तेण तहिं दीहरा दियहा ॥७॥
जम्मि य रविकरतविया जलासया सुहरसा वि संजाया । खलसंगे सुयणा इव असेवणिज्जा य सुसिया य ॥८॥
सो चेव रवी ते चेव रविकरा जम्मि संतवंति जणं । मित्तो वि तवइ भुवणं अहवा विगुणेसु दियहेसु ॥९॥
चीरीरवेहिं गायइ वणराई जम्मि गिम्हनवनिवइं । उदयं पत्तो संतावगो वि सेविज्जइ (ज) यम्मि ॥१०॥
जम्मि य मयणाहियदुसहतावलूयाझुलुक्कियसरीरा[1] । पहिया जडहयहिययाजोयंति[2] पवालियावयणं ॥११॥
एवंविहम्मि गिम्हे सीयलवायायणोवविट्ठाए । नियपिययमस्स दूरं परूढपणयाए देवीए ॥१२॥

प्रसन्नचन्द्राख्यानकम् — ॥ ५२ ॥

अस्ति समुन्नतपर्वतपयोधराया रसावरवध्वाः । हाररत्नमिव गुणरत्नपोतनं पोतनं नगरम् ॥ १ ॥
तत्रासीत् सोमचन्द्रश्चन्द्रइव सुखाकरः शुभो राजा । तं शासन्नपि खलु नवरमर्त्तिजनको न लोकानाम् ॥ २ ॥
तस्यासीच्छशधरस्यैव रोहिणी रोहिणीव शुभवत्सा । शीलादिगुणालङ्कारधारिणी धारिणी भार्या ॥ ३ ॥
तस्याः प्रसन्नमूर्तिः प्रसन्नचन्द्रः सुतः प्रसन्नमुखः । प्रणतिजनबन्धुकैरववनविकसावनप्रसन्नकरः ॥ ४ ॥
एवं तेषां चतुरङ्गबलसमग्रं समृद्धराज्यश्रियम् । पालयतां व्रजन्ति वासराः स्वस्थहृदयानाम् ॥ ५ ॥
अथ समदनमसमवसन्तलक्ष्मीसमलङ्कृतं जगत् सुखिकम् । द्रष्टुमपारयन् दुर्जन इव ग्रीष्मः समनुप्राप्तः ॥ ६ ॥
मन्ये रविरथतुरगा अपि तरणिकरतापिताः परिश्रान्ताः । त्वरितं गन्तुमसक्तास्तेन तत्र दीर्घा दिवसाः ॥ ७ ॥
यस्मिंश्च रविकिरणतप्ता जलाशया शुभरसा अपि सञ्जाताः । खलसङ्गे सुजना इवासेवनीयाश्च शोषिताश्च ॥ ८ ॥
स चैव रविस्ते चैव रविकरा यस्मिन् सन्तापयन्ति जनम् । मित्रोऽपि तपति भुवनमथवा विगुणेषु दिवसेषु ॥ ९ ॥
चीरीरवै र्गायति वनराजी यस्मिन् ग्रीष्मनवनृपतिम् । उदयं प्राप्तः सन्तापकोऽपि सेव्यते जगति ॥ १० ॥
यस्मिंश्च मदनाहितदुसहतापभूता दग्धशरीराः । पथिका जड़हतहृदया पश्यन्ति प्रपालिकापतनम् ॥ ११ ॥
एवंविधे ग्रीष्मे शीतलवातायनोपविष्टया । निजप्रियतमस्य दूरं प्ररूढप्रणतया देव्या ॥ १२ ॥

---

१. भ्कलक्किय रं० । २. प्रपाऽऽलिकाऽऽपतनम् । प्रवालिकावदनम्

चिहुरे विउरंतीए दिट्ठं तम्मज्झसंठियं पलियं । ससहरसियनियकंतीकलावचवलियदिसावलयं ॥१३॥
वुत्तं तीए पहसियमुहीए दूओ समागओ देव ! जा जोयइ तरलच्छो तीए हसिऊण तो भणियं ॥१४॥
देव ! न माणुसरूवं दूयमहं संपयं निवेयेमि । किंतु पलियं पि दूयं विउसा वन्नंति जेणुत्तं ॥१५॥
उज्झसु विसए परिहरसु दुन्नए ठवसु नियमणं धम्मे । ठाऊण कन्नमूले इट्ठं सिट्ठं व पलिएण ॥१६॥
तं सोउं साममुहो जाओ राया पियाए पुण भणिओ । भावं अमुणंतीए लज्जसि पलिएण किं देव ! ॥१७॥
सो भणइ मज्झ लज्जा न एस अज्ज वि य हरिसठाणमिणं । किंतु मए नियया[1]णं मज्जाया लंघिया देवि ! ॥१८॥
जम्हा अदिट्ठपलिया पुव्विल्ला पव्वइंसु महपुरिसा । अहयं पुण एमेव य विसयासत्तो गिहम्मि ठिओ ॥१९॥
ता संपइ मुयसु ममं तं पुण रज्जं सुयं च पालेसु । तीए भणियं एयं न भवइ सामिय ! जुयंते वि ॥२०॥
तो अहसिंचिय रज्जे पसन्नचंदं गया य वणवासे । तीए गब्भो आसी पच्छन्नो तो सुओ जाओ ॥२१॥
ठइओ य वक्कलेहिं वक्कलचीरि त्ति से कयं नामं । अणुचियसामग्गीए देवी मरिउं सुरेसु गया ॥२२॥
वणमहिसीरूवेणं पायइ नेहेण दुद्धमागंतुं । जाओ य अट्ठवरिसो कमेण सो तावसवणम्मि ॥२३॥
एत्तो पसन्नचंदो संजाओ पयडसासणो राया । नायं च जहा भाया चिट्ठइ मह जणपयासम्मि ॥२४॥
तस्साऽऽणयणनिमित्तं कुमरीओ तस्समाणरूवाओ । पच्चइयनरेहिं समं मोयगसंबलयकलियाओ ॥२५॥
पेसइ जम्हा बालो हीरइ सुव्वत्तमन्न-पाणेहिं । मोयगपुंजे विरयन्ति ताणि रुक्खाण छायासु ॥२६॥

चिकुरान् विकुर्वन्त्या दृष्टं तन्मध्यसंस्थितं पलितम् । शशधरसितनिजकान्तिकलापचपलितदिशावलयम् ॥ १३ ॥
उक्तं तया प्रहसितमुखया दूतः समागतो देव ! । यावत्पश्यति तरलाक्षस्तया हसित्वा तदा भणितम् ॥ १४ ॥
देव ! न मनुष्यरुपं दूतमहं साम्प्रतं निवेदयामि । किन्तु पलितमपि दूतं विद्वांसो वर्णयन्ति येनोक्तम् ॥ १५ ॥
उज्झ विषयान् परिहर दुर्नयान् स्थापय निजमनो धर्मे । स्थित्वा कर्णमूले इष्टं शिष्टमिव पलितेन ॥ १६ ॥
तत् श्रुत्वा श्याममुखो जातो राजा प्रियया पुन र्भणितः । भावमजानन्त्या लज्जसे पलितेन किं देव ! ॥ १७ ॥
स भणति मम लज्जा नैषाद्यापि च हर्षस्थानमिदम् । किन्तु मया निजकानां मर्यादा लङ्घिता देवि ! ॥ १८ ॥
यस्माददृष्टपलिताः पूर्वजाः प्रव्रजिता महापुरुषाः । अहं पुनरेवमेव च विषयासक्तो गृहे स्थितः ॥ १९ ॥
ततः सम्प्रति मुञ्च मां त्वं पुना राज्यं सुतं च पालय । तया भणितमेतन्न भवति स्वामिन् ! युगान्तेऽपि ॥ २० ॥
तदाभिषिञ्चय राज्ये प्रसन्नचन्द्रं गतौ च वनवासे । तस्या गर्भ आसीत् प्रच्छन्नस्ततः सुतो जातः ॥ २९ ॥
स्थगितश्च वल्कलै र्वल्कलचिरीति तस्य कृतं नाम । अनुचितसामग्र्या देवी मृत्वा सुरेषु गता ॥ २२ ॥
वनमहिषीरुपेण पाययति स्नेहेन दुग्धमागत्य । जातश्चाष्टवार्षिकः क्रमेण स तापसवने ॥ २३ ॥
इतः प्रसन्नचन्द्रः सञ्जातः प्रकटशासनो राजा । ज्ञातं च यथा भ्राता तिष्ठति मम जनकपार्श्वे ॥ २४ ॥
तस्याऽऽनयननिमित्तं कुमार्यस्तत्समानरुपाः । प्रत्यायितनरैः समं मोदकशम्बलकलिताः ॥ २५ ॥
प्रेषयति यस्माद्बालो ह्रियते सुव्यक्तमन्न-पानैः । मोदकपुञ्जान् वितरन्ति तानि वृक्षाणां छायासु ॥ २६ ॥

---

१. पव्वयंसु रं० ।

सो विहु वक्कलचीरी गिण्हइ ते मोयगे तरुतलाओ । रुक्खाणमिमाणि फलाणि मुणिय संजायविस्संभो ॥२७॥
एवं कुमरो मोयगलोभाओ तासि सविहमल्लियइ । जम्हा पसू वि घिप्पइ लोभेणं किं पुण मणुस्सो ? ॥२८॥
ताउ वि दरिसावेंतस्स दिंति विस्संभयंति वयणेहिं । दूरे जा आणीओ ता दिट्ठो तावसो इंतो ॥२९॥
आरुहिऊणं जाणेसु ताणि नट्ठाणि तस्स सावभया । सो ऊण न तेसि मिलिओ न यावि जणयस्स वणमज्झे ॥३०॥
दिट्ठो रहिएण सभारिएण देसंतराओ वलिएण । भणिउमभिवायए ताय ! तेण विहिओ पणामो से ॥३१॥
तावसकुमरो कोवेस भमइ ता मा विणस्सउ कहिंपि । इय संजायदएणं रहम्मि आरोविओ रहिणा ॥३२॥
दिन्ना य तस्स संबलयमोयगा तेण जंपियमिमाणि । रुक्खप्फलाणि पोयणतवोवणे पत्तपुव्वाणि ॥३३॥
पत्ताणि पोयणपुरे भणिओ गिण्हाहि उडवयं किंपि । ओयारियं रहाओ मुक्को रहिएण पुरबाहिं ॥३४॥
सो वि पविट्ठो गणियागिहम्मि तीए निमित्तसंवाया । धरिओऽणिच्छंतो वि हु नहसोहणपभिइ कारविओ ॥३५॥
दिन्ना से नियधूया वत्थालंकारभूसियसरीरो । सकलत्तो पल्लंके निवेसिओ सा य तुट्ठमणा ॥३६॥
जा चिट्ठइ निब्भरसरसगीयपेक्खणयविहियवक्खेवा । पुरिसेहिं ता कहिओ रन्नो कुमरस्स वुत्तंतो ॥३७॥
तं सोउं दुहियमणो गयनिद्दो जाव चिट्ठए राया । ता निसुणइ गिज्जंतं गणियागेहम्मि तं गेयं ॥३८॥
को एस मए दुहियम्मि सुत्थिओ पुरवरे महापावो ? । जोयावियम्मि रन्ना कहिओ गणियाए वुत्तंत्तो ॥३९॥
रुट्ठेणं वाहरिया तीयुत्तं सुणसु देव ! परमत्थं । मह अत्थि पिया दुहिया सा सुहिया किर कहं होही ? ॥४०॥

सोऽपि खलु वल्कलचीरी गृह्णाति तान्मोदकान् तरुतलात् । वृक्षाणामिमानि फलानि ज्ञात्वा सञ्जातविश्रम्भः ॥ २७ ॥
एवं कुमारो मोदकलोभात्तासां सविधमालीनाति । यस्मात् पशुरपि गृह्यते लोभेन किं पुन र्मनुष्यः ? ॥ २८ ॥
ता अपि दर्शयतो ददति विश्रम्भयति वचनैः । दूरे यावदानीतस्तावद् दृष्टस्तापस आयान् ॥ २९ ॥
आरुह्य यानेषु तानि नष्टानि तस्य शापभयात् । स पुन र्न तासां मिलितो न चापि जनकस्य वनमध्ये ॥ ३० ॥
दृष्टो रथिकेन सभार्येण देशान्तराद्वलितेन । भणित्वाभिवादयति तात ! तेन विहितः प्रणामस्तस्य ॥ ३१ ॥
तापसकुमारः को वैष भ्रमति तावन्मा विनश्यतु क्वापि । इति सञ्जातदयेन रथे आरोपितो रथिना ॥ ३२ ॥
दत्ता च तस्य शम्बलमोदकास्तेन जल्पितमिमानि । वृक्षफलानि पोतनतपोवने प्राप्तपूर्वाणि ॥ ३४ ॥
प्राप्तानि पोतनपुरे भणितो गृहाणोटजं किमपि । अवतार्य रथान्मुक्तो रथिकेन पुर्बहिः ॥ ३४ ॥
सोऽपि प्रविष्टो गणिकागृहे तया निमित्तसंवादात् । धृतोऽनिच्छन्नपि खलु नखशोधनप्रभृति कारितः ॥ ३५ ॥
दत्ता तस्य निजदुहिता वस्त्रालङ्कारभूषितशरीरः । सकलत्रः पल्यङ्के निवेशितः सा च तुष्टमना ॥ ३६ ॥
यावत्तिष्ठति निर्भरसरसगीतप्रेक्षणकविहितव्याक्षेपात् । पुरुषैस्तावत् कथितो राज्ञः कुमारस्य वृत्तान्तः ॥ ३७ ॥
तत् श्रुत्वा दुःखितमना गतनिद्रो यावत्तिष्ठति राजा । तावन्निशृणोति गीयमानं गणिकागृहे तं गेयम् ॥ ३८ ॥
क एष मयि दुःखिते सुस्थितः पुरवरे महापापः ? । दर्शिते राज्ञा कथितो गणिकाया वृत्तान्तः ॥ ३९ ॥
रुष्टेन व्याहृता तयोक्तं शृणु देव ! परमार्थम् । ममास्ति प्रिया दुहिता सा सुखिता किल कथं भविता ? ॥ ४० ॥

एयत्थं च सुवयणो पुट्ठो नेमित्तिओ मए एगो । तेणुत्तं तावसरूवधारिपुरिसो अमुगदिवसे ॥४१॥
जो आगच्छइ तं तस्स देसु ता होहिही इमा सुहिया । तं मज्झ अज्ज जायं नेमित्तियवयणमवियप्पं ॥४२॥
हरिसाऊरियहिययाए विहियमेयं अयाणमाणीए । मह उवरि देवपाया सकोवणा हुंतु मा तम्हा ॥४३॥
तं सोऊणे रन्ना सो वि हु कइया वि होज्ज इय मुणिउं । ते पुरिसा पट्ठविया तेहिं वि सो पच्चभिन्नाओ ॥४४॥
आणीओ निवपासे एसो च्चिय तुह सहोयरो देव ! विहियं वद्धावणयं गणियाधूया य आणीया ॥४५॥
रज्जसिरिमणुहवंताण ताण वच्चंति जाव दिवसाणि । ता सो तावसजणओ वक्कलचीरीविओगम्मि ॥४६॥
सोएण नयणनीलीरोएणं नवरमंधओ जाओ । नाऊणमिमं राया सपरियणो तत्थ संपत्तो ॥४७॥
पणओ पिउणो तेण वि सायरमाभासिओ य वच्छ ! तुमं । कुसली पालसु रज्जं धम्मपरो खत्तनाएणं ॥४८॥
वक्कलचीरी पणमइ भयवं ! तुह पायपउममिइ सोउं । हरिसविसप्पियहियओ उच्छंगम्मि निवेसेउं ॥४९॥
नियकरयलहिं कुमरं परामुसंतस्स सुहियहिययस्स । हरिसंसूहि समं चिय नट्ठा नीली निरुयनयणो ॥५०॥
पासइ सव्वं जणओ इय तेसिं हरिसमुव्वहंताणं । वक्कलचीरी उडवेसु भंडयं पुव्वविहिणा उ ॥५१॥
जा पडिलेहइ मुणिपायकेसरीपत्तयप्पयारेण । ता जायजाइसरणो जाओ पत्तेयबुद्धमुणी ॥५२॥
संपत्तखवगसेढी सुहपरिणामेण केवली जाओ । कहिओ तेसिं धम्मो पडिवन्ना जिणवरमयं ते ॥५३॥
नीया य वीरपासे सम्मं पव्वाविया जिणिंदेण । अह कइया वि हु वीरो समागओ पोयणपुरम्मि ॥५४॥

एतदर्थं च सुवदनः पृष्टो नैमित्तिको मयैकः । तेनोक्तं तापसरुपधारीपुरुषोऽमुकदिवसे ॥ ४१ ॥
य आगच्छति त्वं तस्य देहि ता भविष्यतीमा सुखिता । तं ममाद्य जातं नैमित्तिकवचनमविकल्पम् ॥ ४२ ।
हर्षापूरितहृदयया विहितमेतदजानन्त्या । ममोपरि देवपादाः सकोपना भवन्तु मा तस्मात् ॥ ४३ ॥
तत् श्रुत्वा राज्ञा सोऽपि खलु कदापि भवेदिति ज्ञात्वा । ते पुरुषाः प्रस्थापिता तैरपि स प्रत्यभिज्ञातः ॥ ४४ ॥
आनीतो नृपपार्श्वे एष चैव तव सहोदरो देव ! । विहितं वर्धापनकं गणिकादुहिता चानीता ॥ ४५ ॥
राज्यश्रियमनुभवतां तेषां गच्छन्ति यावद्दिवसानि । तावत् स तापसजनको वल्कलचीरिवियोगे ॥ ४६ ॥
शोकेन नयननीलीरोधेन नवरमन्धो जातः । ज्ञात्वेदं राजा स परिजनस्तत्र सम्प्राप्तः ॥ ४७ ॥
प्रणतः पितुस्तेनापि सादरमाभाषितश्च वत्स ! त्वम् । कुशली पालय राज्यं धर्मपरः क्षत्रज्ञातेन ॥ ४८ ॥
वल्कलचीरी प्रणमति भगवन् ! तव पादपद्ममिति श्रुत्वा । हर्षविसर्पितहृदय उत्सङ्गे निवेश्य ॥ ४९ ॥
निजकरतलाभ्यां कुमारं स्पृशतः सुखितहृदयस्य । हर्षाश्रुभिः समं चैव नष्टा नीली निरुग्नयनः ॥ ५० ॥
पश्यति सर्वं जनक इति तेषां हर्षमुद्वहताम् । वल्कलचीरी उटजेषु भाण्डकं पूर्वविधिना तु ॥ ५१ ॥
यावत्प्रतिलेखयति मुनिपादकेसरीपात्रकप्रकारेण । तावज्जातिस्मरणो जातः प्रत्येकबुद्धमुनिः ॥ ५२ ॥
सम्प्राप्तक्षपकश्रेणी शुभपरिणामेन केवली जातः । कथितस्तेषां धर्मः प्रतिपन्ना जिनवरमतं ते ॥ ५३ ॥
नीताश्च वीरपार्श्वे सम्यक् प्रव्राजिता जिनेन्द्रेण । अथ कदापि खलु वीरः समागतः पोतनपुरे ॥ ५४ ॥

राया पसन्नचंदो रज्जे अभिसिंचिऊण नियकुमरं । पव्वइओ वीरेणं सह पत्तो रायगिहनयरे ॥५५॥
नयर-समोसरणाणं आयावइ अंतरम्मि स महप्पा । सेणियराया वि जिणिंदवंदणत्थं विणिक्खंतो ॥५६॥
सुम्मुह-दुम्मुहनामा रन्नो दो सेवगा रयभएण । अग्गे गच्छंतेणं भणियं सुमुहेण मित्त ! इमो ॥५७॥
राया पसन्नचंदो कयपुन्नो उज्झिऊण रज्जसिरिं । आयावइ निस्संगो बीएणुत्तं कहं मित्त ! ॥५८॥
पावइ एस पसंसं ? जो बालं नियसुयं ठविय रज्जे । निक्खंतो सो संपइ सीवालेहिं पराभूओ ॥५९॥
इय कन्नकडुयवयणायन्नणसंजायरोसरत्तच्छो । चिंतइ मइ जीवंते को मम पुत्तं पराभवइ ? ॥६०॥
हिययब्भं(त)रविप्फुरियरोसपारद्धसमरभूमीए । सत्तूहिं समं झस-सत्ति-सेल्ल-वावल्लसत्थेहिं ॥६१॥
जुज्झंतस्स पहुत्तो सेणियराया पयाहिणं काउं । तं वंदिऊण य गओ सुमरंतो तस्स गुणनियरं ॥६२॥
वंदित्तु जिणं पुच्छइ जं समयं वंदिओ मए भयवं ! । राया पसन्नचंदो तं समयं कुणइ जइ कालं ॥६३॥
ता जाइ कहिं ? भणियं जिणेण सत्तममहिं महाराय ! । तुण्हिक्को जाव ठिओ तो तेण पसन्नचन्देण ॥६४॥
मुक्केसु पहरणेसुं पहाणसत्तुम्मि विसहमायाए । जाव पसारइ हत्थं तव्वहणत्थं सिरत्ताणे ॥६५॥
ता पेच्छइ नियसिरं विलुत्तकेसं तओ महासत्तो । पच्चागयसंवेगो चिंतिउमेवं समाढत्तो ॥६६॥
रे जीव ! कत्थ समरो ? कत्थ तुमं संजमं समभिरूढो ? । अप्पाणं मोत्तूणं ! तं पत्थिओ कत्थ ? ॥६७॥
चारित्तरायसुहडत्तमस्सिओ तं पहाय नियपहुं । मिलिओ सि मूढ ! पडिवक्खमोहरायस्स सेन्नम्मि ॥६८॥

राजा प्रसन्नचन्द्रो राज्ये ऽभिषिञ्च्य निजकुमारम् । प्रव्रजितो वीरेण सह प्राप्तो राजगृहनगरे ॥ ५५ ॥
नगर-समवसरणयोरातापयत्यन्तरे स महात्मा । श्रेणिकराजापि जिनेन्द्रवन्दनार्थं विनिष्क्रान्तः ॥ ५६ ॥
सुमुख-दुर्मुखनामानौ राज्ञो द्वौ सेवकौ रजोभयेन । अग्रे गच्छता भणितं सुमुखेन मित्र ! अयम् ॥ ५७ ॥
राजा प्रसन्नचन्द्रः कृतपुण्य उज्झित्वा राज्यश्रियम् । आतापयति निःसङ्गो द्वितीयेनोक्तं कथं मित्र ! ॥ ५८ ॥
प्राप्नोत्येष प्रशंसाम् ? यो बालं निजसुतं स्थापयित्वा राज्ये । निष्क्रान्तः स सम्प्रति सीमापालैः पराभूतः ॥ ५९ ॥
इति कर्णकटूकवचनाकर्णनसञ्जातरोषरक्ताक्षः । चिन्तयति मयि जीवति को मम पुत्रं पराभवति ? ॥ ६० ॥
हृदयाभ्यन्तरविस्फुरितरोषप्रारब्धसमरभूमौ । शत्रुभिः समं झस-शक्ति-शल्य-वावल्लशस्त्रैः ॥ ६१ ॥
युध्यमानस्यः प्रभूतः श्रेणिकराजा प्रदक्षिणां कृत्वा । तं वन्दित्वा च गतः स्मरंस्तस्य गुणनिकरम् ॥ ६२ ॥
वन्दित्वा जिनं पृच्छति यत्समयं वन्दितो मया भगवन् ! । राजा प्रसन्नचन्दस्तत्समयं करोति यदि कालम् ॥ ६३ ॥
तदा याति क्व ? भणितं जिनेन सप्तममहिं महाराजा ! । तुष्णिको यावत् स्थितस्तदा तेन प्रसन्नचन्द्रेण ॥ ६४ ॥
मुक्तेषु प्रहरणेषु प्रधानशत्रौ विसहमायाते । यावत् प्रसारयति हस्तं तद्धननार्थं शिरस्त्राणे ॥ ६५ ॥
तावत्पश्यति निजकशिरो विलुप्तकेशं ततो महासत्त्वः । प्रत्यागतसंवेगश्चिन्तयितुमेवं समारब्धः ॥ ६६ ॥
रे जीव ! कुत्र समरः ! कुत्र त्वं संयमं समभिरुढः ? । आत्मानं मुक्त्वानार्य ! त्वं प्रस्थितः क्व ? ॥ ६७ ॥
चारित्रराजसुभटत्वमाश्रितस्त्वं प्रहाय निजकप्रभुम् । मिलितोऽसि मूढ ! प्रतिपक्षमोहराज्ञय सैन्ये ? ॥ ६८ ॥

एरिसमुहेण रंजिहसि निच्छियं तं चरित्तनिवइममुं । पाविहसि जयपडायं सिवपुररज्जं च मन्ने हं ? ॥६९॥
भयवइवयणं सुहयं तमेगमेगस्स णं ति सुमरंतो । कत्थ तुमं ? कत्थ सुओ ? किं मूढमणो परिब्भमसि ? ॥७०॥
इय पच्चागयभावो पुणो वि तं कहवि झाणमारूढो । सम्मं मिच्छाउक्कडदाणपुरस्सरमिमो भयवं ! ॥७१॥
जह खवगसेढिमारुहिय घाइकम्मक्खएण खणमज्झे । जाणियसव्वपयत्थं संपत्तो केवलन्नाणं ॥७२॥
देवेहिं कया महिमा पहयाओ दुंदुहीओ तं दट्ठुं । सेणियनिवेण पुट्ठुं भयवं ! किं एस सुरविसरो ? ॥७३॥
जायं पसन्नचंदस्स केवलं कहमिमं ? ति सव्वो वि । रन्नो मणवावारो निवेइओ वीरनाहेण ॥७४॥

॥ प्रसन्नचन्द्राख्यानकं समाप्तम् ॥५२॥

मिच्छाउक्कडदाणा जह एएसिं महाणुभावाणं । जायं केवलनाणं तह अन्नस्स वि य होइ तयं ॥१॥

वैरानुबन्धमभिहन्ति महन्ति(-)स्य, दातारमङ्गिनमनङ्गजितां मतेऽस्मिन् ।
निःशेषकर्मशमकं जनकं च शुद्धेर्मिथ्येति दुष्कृतपदानुगमो मनन्ति ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे सम्यग्मिथ्यादुष्कृतदानफलवर्णनः षोडशोऽधिकारः समाप्तः ॥१६॥

इदृशमुखेन रञ्जिष्यसि निश्चितं त्वं चारित्रनृपतिममुम् । प्राप्स्यसि जयपताकां शिवपुरराज्यं च मन्येऽहम् ? ॥ ६९ ॥
भगवतीवचनं सुभगं तमेकमेकस्य णमिति स्मरन् । क्व त्वं ? कुत्र सुतः ? किं मूढमनाः परिभ्रमसि ? ॥ ७० ॥
इति प्रत्यागतभावः पुनरपि तं कथमपि ध्यानमारुढः । सम्यग् मिथ्यादुष्कृतदानपुरस्सरमयं भगवन् ! ॥ ७१ ॥
यथा क्षपकश्रेणिमारुह्य घातिकर्मक्षयेन क्षणमध्ये । ज्ञातसर्वपदार्थं सम्प्राप्तः केवलज्ञानम् ॥ ७२ ॥
देवैः कृता महिमा प्रहता दुन्दुभयस्तद् दृष्ट्वा । श्रेणिकनृपेण पृष्टं भगवन् ! किमेष सुरविसरः ? ॥ ७३ ॥
जातं प्रसन्नचन्द्रस्य केवलं कथमिति ? सर्वोऽपि । राज्ञो मनोव्यापारो निवेदितो वीरनाथेन ॥ ७४ ॥

प्रसन्नचन्द्राख्यानकं समाप्तम् ॥ ५२ ॥

मिथ्यादुष्कृतदानाद्यथैतेषां महानुभावानाम् ।
जातं केवलज्ञानं तथान्यस्यापि च भवति तकम् ॥ १ ॥

[१७. विनयफलवर्णनाधिकारः ।]

उक्तो मिथ्यादुष्कृताधिकारः । साम्प्रतं मिथ्यादुष्कृतशुद्धेन विनयो इत्यनेन सम्बन्धेनाऽऽयातं विनयाधिकारं व्याख्यातुकाम आह-

विणएण कज्जसिद्धी सिज्झं ति सुरा वि विणयकरणेण ।
जह चित्तपिओ जक्खो जहेव वणवासिणो जक्खा ॥ २२ ॥

व्याख्या- 'विनयेन' औचित्यप्रतिपत्तिलक्षणेन 'कार्यसिद्धिः' प्रयोजननिष्पत्तिर्भवतीति शेषः । 'सिध्यन्ति' वशीभवन्ति सुरा अपि आसतां मनुष्यादयः 'विनयकरणेन' भक्तिसम्पादनेन । अत्र दृष्टान्तावाह - 'यथा' येन प्रकारेण 'चित्रप्रियः' दयितचित्रकर्मा 'यक्षः' देवविशेषः, यथैव 'वनवासिनः' उद्यानवसतयो 'यक्षाः' सुरविशेषा [इ]ति गाथाक्षरार्थः ॥ २२ ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकेभ्योऽवसेयः । ते चामू ।

तत्र तावत् चित्रप्रिययक्षाख्यानकमाख्यायते । तच्चेम्-

अत्थि महायणकिज्जंतरायमाणं विरायमाणं पि । सग्गसिरीए अलब्भं पि पुरवरं नाम साकेयं ॥१॥
तस्सुत्तरदिसिभाए रम्मुज्जाणे(य) सुरपिओ जक्खो । सो चित्तपिओ जत्तं काउं चित्तियइ वरिसंते ॥२॥
चित्तयरं पुण मारइ एवमविहिए जणं पि मारेइ । मयवसगस्सऽहव सुरप्पियस्स जुज्जइ इमं चेव ॥३॥
चित्तयरा तस्स भया सव्वे लग्गा पलाइउं बद्धा । संकलिगाए जस्सेइ नामगं सो वि चिंतेइ ॥४॥

चित्रप्रियक्षाख्यानकम् — ॥ ५३ ॥

अस्ति महाजनक्रियमाणराजमानं विराजमानमपि । स्वर्गश्रियाऽलभ्यमपि पुरवरं नाम साकेतम् ॥ १ ॥
तस्योत्तरदिग्भागे रम्योद्याने [च] सुरप्रियो यक्षः । स चित्रप्रियो यात्रां कृत्वा चित्रियते वर्षान्ते ॥ २ ॥
चित्रकारं पुन र्मारयति एवमविधिना जनमपि मारयति । मदवशगस्याथवा सुरप्रियस्य युज्यत इमं चैव ॥ ३ ॥
चित्रकरास्तस्य भयात् सर्वे लग्नाः पलायितुं बद्धाः । शृङ्खलिकया यस्यैति नामकं सोऽपि चिन्तयति ॥ ४ ॥

कोसंबीओ चित्तयरदारओ चित्तसिक्खणनिमित्तं । तत्थाऽऽयाओ विद्धाए एगपुत्ताए गेहम्मि ॥५॥
तीए सुयस्स नामं समागयं सा वि रोविउं लग्गा । आगंतुगेण वुत्तं अम्मो । किं रुयसि ? तीयुत्तं ॥६॥
जहवत्तं तेणुत्तं अंब ! अहं चेव चित्तइस्सामि । तीए वि हु संलत्तं किं वच्छ ! तुमं मह न पुत्तो ? ॥७॥
सच्चमिमं तह वि मए कायव्वमिमं ति निच्छयं काउं । कयण्हाणो सुईभूओ सियवत्थो बंभवयधारी ॥८॥
काऊणं छट्ठतवं पवित्तवन्नेहि विणयपुव्वमिमो । तह कहवि चित्तिओ खामिओ य जह तस्स सो तुट्ठो ॥९॥
वरसु वरं देमि तयं तुट्ठो हं तुज्झ किंपि मणरुइयं । तेणुत्तं जइ एवं जणस्स मा मारणं कुणसु ॥१०॥
जायमिमं अन्नं पि हु भणसु महाभाग ! मह समाहिकए । तेणुत्तं दुपय-चउप्पयस्स[1] पासामि जं देसं ॥११॥
तस्साणुसारओ च्चिय लिहेज्ज सेसं पि एस होज्ज वरो । पडिवन्ने तेणमिमो संपत्तो अक्खयसरीरो ॥१२॥
रायाईणं कहिओ सव्वो वि हु जक्खवइयरो तेण । तं सोउं तुट्ठेणं सलाहिओ पूइओ एसो ॥१३॥
नियनयरं संपत्तो इओ सयाणीयराइणा तत्थ । चित्तेउं चित्तसभा पारद्धा तयणु सव्वेसिं ॥१४॥
चित्तयराण समाए[2] विभइज्जंतेसु भूमिभाएसु । अंतेउरस्स पासे भूभाओ तेण संपत्तो ॥१५॥
तेणं मियावईए पायंगुट्ठो कहिंपि सच्चविओ । तो तयणुसारओ च्चिय रूवं देवीए निम्मिवियं ॥१६॥
जावसम्वारइ चक्खुं ता पडिओ ऊरुयम्मिं मसिबिंदू । फुसिओ वि पुणो पडिओ एवं दो तिन्नि वाराओ ॥१७॥

कौसाम्ब्या श्चित्रकारदारकश्चित्रशिक्षणनिमित्तम् । तत्राऽऽयातो वृद्धाया एकपुत्राया गृहे ॥ ५ ॥
तस्याः सुतस्य नाम समागतं सापि रोदितुं लग्ना । आगन्तुकेनोक्तमम्मो ! किं रोदिषि ? तयोक्तम् ॥ ६ ॥
यथावृत्तं तेनोक्तमम्ब ! अहं चैव चित्रयिष्यामि । तयापि खलु संलप्तं किं वत्स ! त्वं मम न पुत्रः ? ॥ ७ ॥
सत्यमिदं तथापि मया कर्तव्यमिदमिति निश्चं कृत्वा । कृतस्नानः शुचीभूतः श्वेतवस्त्रो बह्मव्रतधारी ॥ ८ ॥
कृत्वा षष्टतपः पवित्रवर्णै र्विनयपूर्वमयम् । तथा कथमपि चित्रितः क्षामितश्च यथा तस्य स तुष्टः ॥ ९ ॥
वर वरं ददामि तकं तुष्टोऽहं तुभ्यं किमपि मनोरुचितम् । तेनोक्तं यद्येवं जनस्य मा मारणं कुरु ॥ १० ॥
जातमिममन्यदपि खलु भण महाभाग ! मम समाधिकृते । तेनोक्तं द्विपद-चतुष्पदस्य पश्यामि यद्देशम् ॥ ११ ॥
तस्यानुसारतश्चैव लिखामि शेषमप्येष भवेद्वरः । प्रतिपन्ने तेनायं सम्प्राप्तोऽक्षयशरीरः ॥ १२ ॥
राजादीनां कथितः सर्वोऽपि खलु यक्षव्यतीकरस्तेन । तत् श्रुत्वा तुष्ठेन श्लाघितः पूजित एषः ॥ १३ ॥
निजनगरे सम्प्राप्त इतः शतानिकराज्ञा तत्र । चिन्त्रयितुं चित्रसभा प्रारब्धा तदनु सर्वेषाम् ॥ १४ ॥
चित्रकाराणां समवाये विभज्यमानेषु भूमिभागेषु । अन्तःपुरस्य पार्श्वे भूभागस्तेन सम्प्राप्तः ॥ १५ ॥
तेन मृगावत्या पादङ्गुष्टः क्वापि दृष्टः । ततस्तदनुसारतश्चैव रुपं देव्या निर्मापितम् ॥ १६ ॥
यावत् सम्वारयति चक्षुस्तावत्पतित उरूके मषीबिन्दुः । मृष्टोऽपि पुनःपतित एवं द्वे त्रिणि वाराः ॥ १७ ॥

---

१. प्पय-अपयस्स पासामि खं० रं० । २. समवाये इत्यर्थः ।

पडियम्मि तम्मि नायं एवं चिय नूणमेत्थ भवियव्वं । निप्पन्नम्मि य चित्ते जाव निवो नियइ चित्तसहं ॥१८॥
ता तम्मि तहा दिट्ठे मम पत्ती धरिसिया अणेणं ति । जा वज्झो आणत्तो ता मिलिया चित्तयरसेणी ॥१९॥
देवेस वरगुणेणं अदिट्ठमवि रूवयं लिहइ सव्वं । अवयवदरिसणओ च्चिय ता पसिऊणं मुयसु एयं ॥२०॥
खुज्जाए अंगुट्ठो जवणंतरियाए दंसिओ तत्तो । तीए रूवे निम्मावियम्मि से पच्चओ जाओ ॥२१॥
अंगुलिअंगुट्ठपुडं तहा वि छिदाविऊण वेरवसा । मुक्को रन्ना तेण वि पुणरवि आराहिओ जक्खो ॥२२॥
वामकरेण वि चित्तिहसि तेण दिन्ने वरम्मि अमरिसओ । लिहिऊण चित्तफलए मियावई दंसिया तेण ॥२३॥
पज्जोयस्स निवइणो तेण वि दूओ सयाणियनिवस्स । जह पेसविओ नयरी य रोहिया जह य खोभेणं ॥२४॥
रायम्मि मयम्मि जहा कारिय सुत्थत्तणं विसंवइया । संभरियं तीए जाहा सिरिवीरजिणिंदपायाणं ॥२५॥
वीरम्मि समोसरिए जह पव्वइया जहा य सविमाणा । अवयरिया चंद-रवी जह तत्थ ठिया अणाभोगा ॥२६॥
वेलाइक्कमभीया जह पत्ता चंदणाए पयमूलं । जह संतियाए सा चोयणाए तीए वि सिक्खविया ॥२७॥
तारिसकुलजायाए तारिसगुरुदिक्खियाए तुह जुत्तं । एगागिणीए ठाउं एत्तियवारं पमायवसा ॥२८॥
जह एवं सिक्खविया तीए चलणेसु निवडिया संती । जह निंदिउमारद्धा अप्पाणं गुरुपमायवसा ॥२९॥
रे जीव ! किमुच्चरियं अज्ज वि तुह गुरुगुणाए गुरुणीए । पडिचोइयस्स ? एवं बुज्झसु जइ अत्थि चेयन्नं ॥३०॥
तं कत्थ गओ सुज्झसि ? कत्थ गओ निव्वुइं तुमं लहसि ? । दंससि तं कस्स मुहं काऊणं एरिसपमायं ? ॥३१॥

पतिते तस्मिन् ज्ञातमेवमेव नूनमत्र भवितव्यम् । निष्पन्ने च चित्रे यावन्नृपः पश्यति चित्रसभाम् ॥ १८ ॥
तदा तस्मिंस्तथा दृष्टे मम पत्नी धर्षितानेनेति । यावद्वध्य आज्ञप्तस्तावन्मिलिता चित्रकारश्रेणी ॥ १९ ॥
देवैष वरगुणेनादृष्टमपि रुपकं लिखति सर्वम् । अवयवदर्शनाच्चैव ततः प्रसीद्य मुञ्चैनम् ॥ २० ॥
कुब्जाया अङ्गुष्ठो यवनिकान्तरिताया दर्शितस्ततः । तस्या रुपे निर्मापिते तस्य प्रत्ययो जातः ॥ २१ ॥
अङ्गुल्यङ्गुष्टपुटं तथापि छेदयित्वा वैरवशात् । मुक्तो राज्ञा तेनापि पुनरपि आराधितो यक्षः ॥ २२ ॥
वामकरेणापि चित्रिष्यसि तेन दत्ते वरे आमर्षतः । लिखित्वा चित्रफलके मृगावती दर्शिता तेन ॥ २३ ॥
प्रद्योतस्य नरपतेस्तेनापि दूतः शतानिकनृपस्य । यथा प्रैषितो नगरी च रुद्धा यथा च क्षोभेन ॥ २४ ॥
राज्ञि मृते यथा कारितं सुस्थत्वं विसंवदिता । स्मृतं तया यथा श्रीवीरजिनेन्द्रपादानाम् ॥ २५ ॥
वीरे समवसृते यथा प्रव्रजिता यथा च सविमानौ । अवतरितौ सूर्या-चन्दमसौ यथा तत्र स्थितानाभोगात् ॥ २६ ॥
वेलातिक्रमभीता यथा प्राप्ता चन्दनायाः पादमूलम् । यथा सत्काया सा चोदनया तयापि शिक्षयिता ॥ २७ ॥
तादृशकुलजातायास्तादृशगुरुदिक्षितायास्तव युक्तम् । एकाकिन्याः स्थातुमेतावद्वारं प्रमादवशात् ॥ २८ ॥
यथैवं शिक्षयिता तस्याश्चरणयो र्निपतिता सती । यथा निन्दितुमारब्धात्मानं गुरुप्रमादवशात् ॥ २९ ॥
रे जीव ! किमुच्चरितमद्यापि तव गुरुगुणाया गुरुण्याः । प्रतिचोदितस्य ? एवं बुध्यस्व यद्यस्ति चैतन्यम् ॥ ३० ॥
त्वं कुत्र गतः शुध्यसि ? क्व गतो निर्वृत्तिं त्वं लभसे ? । दर्शयसि त्वं कस्य मुखं कृत्वेदृशप्रमादम् ? ॥ ३१ ॥

इय पसमामयसित्ताए तीए नियगरुयदोसपडिवत्तिं । मंसंतीए तइया सो को वि सुहो समुल्लसिओ ॥३२॥
परिणामो अप्पुव्वो जेणारूढाए खवगसेढीए । पयडियजीवा-ऽजीवं उप्पन्नं केवलं नाणं ॥३३॥
रयणीए सप्पदंसणपभिई जह पुच्छियं तहा सव्वं । गंथंतराओ नेयं एत्थ न भणियं पसिद्धं ति ॥३४॥

॥ चित्रप्रिययक्षाख्यानकं समाप्तम् ॥५३॥

इदानीं वनवासियक्षाख्यानकमारभ्यते । तद्यथा-

अत्थि तहाविहधम्मियजणाउले महइ सन्निवेसम्मि । विंज्झो व्व गुरुपमाणो पालियसावयवओ सड्ढो ॥१॥
अह अन्नया य सम्मेयसेलसिहरम्मि तित्थजत्ताए । सत्थेण समं चलिओ जा पत्तो तस्समीवम्मि ॥२॥
एगम्मि सन्निवेसे बाहिं आवासियम्मि सत्थम्मि । जक्खाययणस्स वणे पलासतरुणो समतलम्मि ॥३॥
नियइ तहाविहलोयाण पूयणिज्जाओऽहिट्ठियधणाओ । निक्खयकीलयरूवाओ जक्खपडिमाओ णेगाओ ॥४॥
ताण य मज्झे पासइ पलासपोयं निहाणकयसूयं । अन्नस्स कहिस्समिमं मज्झ वयाइक्कमो जम्हा ॥५॥
तत्तो य गाममज्झे सावयगिहपडिमवंदणनिमित्तं । जाव पविट्ठो ता नियइ सावगं दुग्गयं एगं ॥६॥
परमच्चंतविणीयं तस्स गिहे वंदिऊण जिणबिंबं । जावऽच्छइ ता तेणं साहम्मियविणयकरणेणं ॥७॥
रंजियचित्तो साहइ निहाणसंबद्धवइयरं तस्स । तेण वि दीहदरिसित्तणेण रन्नो तयं कहियं ॥८॥
रन्ना वि तस्स रिजुया-विणयाइगुणेण रंजियमणेण । अणुजाणियं निहाणं गिन्हसु सव्वं पि तुह दिन्नं ॥९॥

इति प्रशमामृतसिक्तायास्तस्या निजगुरुकदोषप्रतिपत्तिम् । मृशन्त्यास्तदा स कोपि शुभः समुल्लसितः ॥ ३२ ॥
परिणामोऽपूर्वो येनारुढायाः क्षपकश्रेण्याम् । प्रकटितजीवा-ऽजीवमुत्पन्नं केवलं ज्ञानम् ॥ ३३ ॥
रजन्यां सर्पदर्शनप्रभृति र्यथा पृष्टं तथा सर्वम् । ग्रन्थान्तराज्ज्ञेयमत्र न भणितं प्रसिद्धमिति ॥ ३४ ॥

॥ चित्रप्रियाख्यानकं समाप्तम् ॥ ५३ ॥

वनवासियक्षाख्यानकम् ॥ ५४ ॥

अस्तितथाविधधार्मिकजनाकुले महति सन्निवेशे । विन्ध्य इव गुरुप्रमाणः पालितश्रावकव्रतः श्राद्धः ॥ १॥
अथान्यदा च सम्मेतशैलशिखरे तीर्थयात्रायाः । सार्थेन समं चलितो यावत्प्राप्तस्तत्समीपे ॥ २ ॥
एकस्मिन् सन्निवेशे बहिरावासिते सार्थे । यक्षायतनस्य वने पलाशतरोः समतले ॥ ३ ॥
पश्यति तथाविधलोकानां पूजनीया अधिष्ठितधनाः । निखातकीलकरुपा यक्षप्रतिमा नैकाः ॥ ४ ॥
तेषां च मध्ये पश्यति पलाशपोतं निधानकृतसूचम् । अन्यस्य कथयिष्यामीदं मम व्रतातिक्रमो यस्मात् ॥ ५ ॥
ततश्चग्राममध्ये श्रावकगृहप्रतिमावन्दननिमित्तम् । यावत्प्रविष्टस्तावत् पश्यति श्रावकं दुर्गतमेकम् ॥ ६ ॥
परमत्यन्तविनीतं तस्य गृहे वन्दित्वा जिनबिम्बम् । यावदासते तावत्तेन साधर्मिकविनयकरणेन ॥ ७ ॥
रञ्जितचित्तः कथयति निधानसम्बद्धव्यतीकरं तस्य । तेनापि च दीर्घदर्शीत्वेन राज्ञस्तकं कथितम् ॥ ८ ॥
राज्ञापि तस्य ऋजुता-विनयादिगुणेन रञ्जितमनसा । अनुज्ञातं निधानं गृहाण सर्वमपि तुभ्यं दत्तम् ॥ ९ ॥

तेण वि सुइभूएणं विणएणाऽऽवज्जिऊण ते जक्खे । सुमुहुत्ते सव्वं पि हु वसीकयं दविणजायं तं ॥१०॥
जिणभवणाइसु सत्तसु खेत्तेसुं वइय निच्चमेव तयं । पज्जंते सुगईए पत्तो काऊण धम्ममिमो ॥११॥
जह एयाणं जाओ इह-परलोयाण साहओ विणओ । तह अन्नस्स वि जायइ ता जइयव्वं इमम्मि सया ॥१२॥

॥ वनवासियक्षाख्यानकं समाप्तम् ॥५४॥

प्राणप्रियो विनयवानिह लोक एव, सर्वज्ञशासनमिदं विनयात् प्रवृत्तम् ।
कुर्वन्ति तीर्थपतयोऽपि यदेनमेवं, सद्धर्मकल्पतरुमूलमुशन्ति सन्तः ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचित्तवृत्तावाख्यानकमणिकोशे विनयफलवर्णनो नाम सप्तदशोऽधिकारः समाप्तः ॥१७॥

तेनापि शुचीभूतेन विनयेनावर्ज्य तान् यक्षान् । सुमुहूर्ते सर्वमपि खलु वशीकृतं द्रविणजातं तत् ॥ १० ॥
जिनभवनादिषु सप्तसु क्षेत्रेषु व्ययित्वा नित्यमेव तकत् । पर्यन्ते सुगतौ प्राप्तः कृत्वा धर्ममयम् ॥ ११ ॥
यथैतेषां जात इह-परलोकयोः साधको विनयः । तथान्यस्यापि जायते ततो यतितव्यमेतस्मिन् सदा ॥ १२ ॥

॥ वनवासियक्षाख्यानकं समाप्तम् ॥ ५४ ॥

●●●

[१८. प्रवचनोन्नत्यधिकारः ।]

व्याख्यातः सामान्येन विनयः ! साम्प्रतं प्रभावनारुपं विशेषविनयमभिधित्सुराह -

मोक्खसुहबीयभूयं सत्तीए पवयणुन्नइं कुज्जा ।
विण्हुमुणि-वइर-सिरिसिद्ध-मल्ल-समियऽज्जखउड व्व ॥ २३ ॥

व्याख्या - 'मोक्षसुखबीजभूतं' निर्वाणशर्मैककारणं 'शक्तौ' सामर्थ्ये सति प्रवचनोन्नतिं तीर्थप्रभावनां 'कुर्याद्' विदध्यात् । दृष्टान्तानाह-विष्णुश्च-विष्णुकुमारो राजपुत्रः वैरश्च-वैरस्वामी [श्रीसिद्धश्च] श्रीसिद्धसेनदिवाकरो [मल्लश्च] मल्लवादी समितश्च वैरस्वामिगुरुः आर्यखपुटश्च-समयप्रसिद्धो विद्यासिद्धः ते तथोक्ताः, ते इव तद्वद् इत्यक्षरार्थः ॥ २३ ॥

भावार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तानि चामूनि । तत्र तावद् विष्णुकुमाराख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

हत्थिणउरम्मि नयरे दुव्वन्नजुओ सुवन्नजुत्तो वि । अट्ठावयपरिकलिओ आवयरहिओ वि जत्थ जणो ॥१॥
मणपवणजवणवाहो बाणासणगुणकिणाभरणबाहो । पउमुत्तरनरनाहो तत्थऽत्थि महाबलसणाहो ॥२॥
समुवज्जियगुणमाला जाला नामेण आसि से देवी । अन्नोन्ननेहसाराण ताण-कालो अइक्कमइ ॥३॥
केसरिसुविणयसिट्ठो विण्हुकुमारो त्ति ताण पढमसुओ । बीओ य चउद्दससुमिणसूइओ सिरिमहापउमो ॥४॥
तत्थ निरीहो जेट्ठो रज्जसिरिं ईहए पुण कणिट्ठो । जुवरायपए रन्ना तो अहिसित्तो महापउमो ॥५॥

विष्णुकुमाराख्यानकम् ॥ ५५ ॥

हस्तिनापुरे नगरे दुवर्णयुतः सुवर्णयुक्तोऽपि । अष्टापदपरिकलित आपद्रहितोऽपि यत्र जनः ॥ १ ॥
मनःपवनजवनवाहो बाणासनगुणकिणाभरणबाहुः । पद्मोत्तरनरनाथस्तत्रास्ति महाबलसनाथः ॥ २ ॥
समुपार्जितगुणमाला ज्वाला नाम्नासीत्तस्य देवी । अन्योन्यस्नेहसारयोस्तयोः कालोऽतिक्रामति ॥ ३ ॥
केसरिस्वप्नशिष्टो विष्णुकुमार इति तयोः प्रथमसुतः । द्वितीयश्च चतुर्दशस्वप्नसूचितः श्रीमहापद्मः ॥ ४ ॥
तत्र निरीहो ज्येष्ठो राज्यश्रियमीहते पुनः कनिष्ठः । युवराजपदे राज्ञा तदाभिषिक्तो महापद्मः ॥ ५ ॥

एत्तो य अवंतीए पुरीए सिरिधम्मनामओ राया । सव्भावेण पउट्ठो मंती नामेण नमुई से ॥६॥
सिरिमुणिसुव्वयजिणनाहसंतिओ सुव्वयाभिहो सूरी । समवसरिओ पुरीए उज्जाण सुमुणिपरियरिओ ॥७॥
सह नमुइमंतिणा नरवई गओ सूरिवंदणनिमित्तं । पणमिउमुवविट्ठे तम्मि रायपज्जंतलोयम्मि ॥८॥
सह सूरिण वितंडावाओ पारंभिओ अमच्चेण । अवहीरिओ मुणिंदेण मोणमालंबिय खमाए ॥९॥
एसो हु बलीवद्दप्पाओ सूरी न याणए किंपि । इय तेणुत्ते नियगुरुपराभवं असहमाणेण ॥१०॥
एगेण विणेएणं नरिंदपज्जन्तपउरपच्चक्खं । विहिओ निरुत्तरो सो महापओसं गओ तयणु ॥११॥
मुणिमारणाय रयणीए आगओ कड्ढिउण करवालं । धरिओ तहेव पावो सासणदेवीए थंमेउं ॥१२॥
दिट्ठो तहट्ठिओ सो गोसे रन्ना सपउरलोगेण । तं दट्ठुं वहुमाणो जाओ साहूसु लोगस्स ॥१३॥
मुक्को य देवयाए करुणाए तत्थ लोयलज्जन्तो । हत्थिणउरम्मि गंतुं अल्लीणो निवमहापउमं ॥१४॥
तेण कओ मंतिपए अहऽन्नया सीहवलनिवो तस्स । नियदुग्गबलसमेओ लुडइ निस्सेसमवि देसं ॥१५॥
सो नियवुद्धिपगरिसपभावओ नमुइमंतिणा वद्धो । तुट्ठेण वरो दिन्नो रन्ना तेण वि भणियमेयं ॥१६॥
चिट्ठउ तुम्ह सयासे जायम्मि पओयणे गहिस्सामि । अह अन्नया य जालादेवीए दविणजाएण ॥१७॥
कारवियं रहरयणं जिणस्स बंभस्स पुण सवत्तीए । लच्छीनामाए तओ जाओ दोण्ह वि विसंवाओ ॥१८॥
पढमं रहजत्ताए तो पउमुत्तरनिवेण पडिसिद्धा । दोन्ह वि रहा महापउमजुवनिवो तयणु रयणीए ॥१९॥

इतश्चावन्त्यां पूर्यां श्रीधर्मनामको राजा । स्वभावेन प्रदुष्टो मन्त्री नाम्ना नमुची तस्य ॥ ६ ॥
श्री मुनिसुव्रतजिननाथसत्कः सुव्रताभिधः सूरिः । समवसृतः पूर्यामुद्याने सुमुनिपरिवारितः ॥ ७ ॥
सह नमुचीमन्त्रिणा नरपति र्गतः सूरिवन्दननिमित्तम् । प्रणम्योपविष्टे तस्मिन् राजपर्यन्तलोके ॥ ८ ॥
सह सूरिणा वितण्डवादः प्रारम्भितोऽमात्येन । अवधीरितो मुनीन्द्रेण मौनमालम्ब्य क्षमया ॥ ९ ॥
एष खलु बलीवर्दप्रायः सूरि र्न जानाति किमपि । इति तेनोक्ते निजगुरुपराभवमसहमानेन ॥ १० ॥
एकेन विनेयेन नरेन्द्रपर्यन्तपौरप्रत्यक्षम् । विहितो निरुत्तरः स महाप्रद्वेषं गतस्तदनु ॥ ११ ॥
मुनि मारणाय रजन्यामागतः कृष्टवा करवालम् । धृतस्तथैव पापः शासनदेव्या स्तम्भित्वा ॥ १२ ॥
दृष्टस्तथास्थितः स प्रत्यूषे राज्ञा सपौरलोकेन । तं दृष्ट्वा बहुमानो जातः साधुषु लोकस्य ॥ १३ ॥
मुक्तश्च देवतया करुणया तत्र लोकलज्जमानः । हस्तिनापुरे गत्वालीनो नृपमहापद्मम् ॥ १४ ॥
तेन कृतो मन्त्रिपदे ऽथान्यदा सिंहबलनृपस्तस्य । निजदुर्गबलसमेतो लोषति निःशेषमपि देशम् ॥ १५ ॥
स निजकबुद्धिप्रकर्षप्रभावतो नमुचीमन्त्रिणा बद्धः । तुष्टेन वरो दत्तो राज्ञा तेनापि भणितमेतत् ॥ १६ ॥
तिष्ठतु युष्मत्सकाशे जाते प्रयोजने ग्रहीष्यामि । अथान्यदा च ज्वालादेव्या द्रविणजातेन ॥ १७ ॥
कारितं रथरत्नं जिनस्य ब्रह्मणः पुनः सपत्न्या । लक्ष्मीनाम्ना ततो जातो द्वयोरपि विसंवादः ॥ १८ ॥
प्रथमं रथयात्रायां ततः पद्मोत्तरनृपेण प्रतिषिद्धौ । द्वावपि रथौ महापद्मयुवनृपस्तदनु रजन्याम् ॥ १९ ॥

जणणीअवमाणं मन्निऊण सो एगगो वि नीहरिओ । वीवाहिंतो नर-खयर-रायकन्नाओ परिभमिओ ॥२०॥
सयलं पि चक्किरिद्धं आसाएऊण हत्थिणपुरम्मि । जाओ पयडपयावो छक्खंडवई महापउमो ॥२१॥
जो रन्ना पडिसिद्धो जणणीए रहवरो तया आसि । सो गरुयविभूईए नियनयरे भामिओ तेण ॥२२॥
एवं सो चक्कवई पुन्नपभावेण परममाहप्पं । पत्तो अहऽन्नया तत्थ आगओ सुव्वओ सूरी ॥२३॥
राय-महापउमेहिं रज्जनिमित्तं पयंपिओ विण्हू । विसयपिवासाविरएण तेण परिवज्जिए रज्जे ॥२४॥
अहिसित्तो सुमुहुत्ते पउमुत्तरराइणा महापउमो । पव्वइओ य सविण्हू राया सूरीण पासम्मि ॥२५॥
कयचारुतवच्चरणो राया सिद्धिं गओ निहयकम्मो । जाओ विण्हुकुमारो वि सयलसिद्धंततत्तविउ ॥२६॥
आगासगमप्पभिईओ तस्स जायाओ असमलद्धीओ । विहरेइ महासत्तो उवसंतो सो महीवीढे ॥२७॥
अह अन्नया य हत्थिणउरम्मि विहियम्मि वरिसयालम्मि । सिरिसुव्वयसूरीहिं बहुमुणिपरिवारकलिएहिं ॥२८॥
दिट्ठा य अन्नया नमुइमंतिणा ते पओसजुत्तेण । पुव्वपराजयसंभरणमच्छरप्फुन्नहियएण ॥२९॥
एसो समओ नियवेरसाहणे इय विचिंतयंतेण । चक्कीकयप्पणामेण नियवरं मग्गिओ तेण ॥३०॥
वेउत्तविहाणेणं देव ! महाजन्नमायरिस्समहं । ता मज्झ केत्तियाणि वि दिणाणि रज्जं पयच्छेहिं ॥३१॥
अंतेउरे पविट्ठो नरेसरो तस्स रज्जमप्पेउं । अलियकयजन्नदिक्खो संपत्तो जन्नवाडम्मि ॥३२॥
पासंडिणो सपउरा वद्धावणए समागया तस्स । नवरं न गया समणा तो वाहरिऊण तेणुत्ता ॥३३॥

जनन्यपमानं मत्वा स एककोऽपि निःसृतः । विवाहयन्नर-खचर-राजकन्याः परिभ्रान्तः ॥ २० ॥
सकलामपि चक्रिर्द्धिमासाद्य हस्तिनापुरे । जातः प्रकटप्रतापः षट्खण्डपति र्महापद्मः ॥ २१ ॥
यो राज्ञा प्रतिषिद्धो जनन्या रथवरस्तदाऽऽसीत् । स गुरुकविभूत्या निजनगरे भ्रामितस्तेन ॥ २२ ॥
एवं स चक्रवर्ती पुण्यप्रभावेन परममाहात्म्यम् । प्राप्तोऽथान्यदा तत्रागतः सुव्रतः सूरिः ॥ २३ ॥
राजा-महापद्माभ्यां राज्यनिमित्तं प्रजल्पितो विष्णुः । विषयपिपासाविरतेन तेन परिवर्जिते राज्ये ॥ २४ ॥
अभिषिक्तः सुमुहूर्ते पद्मोत्तरराज्ञा महापद्मः । प्रव्रजितश्च सविष्णू राजा सूरीणां पार्श्वे ॥ २५ ॥
कृतचारुतपश्चरणो राजा सिद्धिं गतो निहतकर्माः । जातो विष्णुकुमारोऽपि सकलसिद्धान्ततत्त्वविदुः ॥ २६ ॥
आकाशगमप्रभृतयस्तस्य जाता असमलब्धयः । विहरति महासत्त्व उपशान्तः स महीपीठे ॥ २७ ॥
अथान्यदा च हस्तिनापुरे विहिते वर्षाकाले । श्रीसुव्रतसूरिभि र्बहुमुनिपरिवारकलितैः ॥ २८ ॥
दृष्टाश्चान्यदा नमुचीमन्त्रिणा ते प्रद्वेषयुक्तेन । पूर्वपराजयस्मरणमत्सरस्पृष्टहृदयेन ॥ २९ ॥
एष समयो निजवैरसाधन इति विचिन्तयता । चक्रीकृतप्रणामेन निजवरो मार्गितस्तेन ॥ ३० ॥
वेदोक्तविधानेन देव ! महायज्ञमाचरिष्याम्यहम् । ततो मम कतिपयान्यपि दिनानि राज्यं प्रयच्छ ॥ ३१ ॥
अन्तःपुरे प्रविष्टो नरेश्वरस्तस्मै राज्यमर्पयित्वा । अलीककृतयज्ञदिक्षः सम्प्राप्तो यज्ञपाटके ॥ ३२ ॥
पाखण्डिनः सपौरा वर्द्धापनके समागतास्तस्य । नवरं न गताः श्रमणास्ततो व्याहृत्य तेनोक्ताः ॥ ३३ ॥

वद्धाविउं न पत्ता तुब्भे मं जन्नदिक्खियं एत्थ । ता चयह संपयं मे देसं तो जंपए सूरी ॥३४॥
पंचप्पयारसज्झायकरणवक्खित्तचित्तवित्तीहिं । परिहरियसयलसावज्जलोयतत्तीहिं अम्हेहिं ॥३५॥
वद्धाविओ न तं नरवरिंद ! न हु किंपि कारणं अन्नं । ता मा कोवं कुण अम्हमुवरि इय जंपिओ तेहिं ॥३६॥
सुट्ठुयरं कुविओ सो पयंपए सत्तदिवसपज्जंते । जो चिट्ठीही स नियमेण मारियव्वो मए पावो ॥३७॥
गंतुं नयरुज्जाणम्मि सूरिणो सह समग्गसंघेण । आलोचिउं पयत्ता किह उवसमिही इमो मंती ॥३८॥
ता एगेण विणेएण पभणियं एइ कहवि जइ एत्थ । विण्हुकुमारमुणी ता उवसमइ न अन्नहा एसो ॥३९॥
सो पुण अंगामंदिरसेले ता भणइ मुणिवरो अवरो । आगासगमणसत्ती विज्जइ मह न उण आगमणे ॥४०॥
जइ एवं ता सो वि हु तमिहाऽऽणेहीइ पभणिओ गुरुणा । इय भणिए उप्पइओ तमालदलसामलं गयणं ॥४१॥
दट्ठुण तयं संघस्य कारणं किंपि होहिही गुरुयं । जं पाउसे वि साहू समेइ इय चिंतयंतस्स ॥४२॥
विण्हुकुमारस्स मुणी समागओ पणमिऊण तच्चरणं । कहिओ सव्वो वि हु नमुइमंतिणो बइयरो तस्स ॥४३॥
तो विण्हुकुमारमुणी तं घेत्तुं नहयलेण संपत्तो । पणमियगुरुकमकमलो समागओ नमुइअत्थाणे ॥४४॥
सामंत-मंति-मंडलिय-पउरपज्जंतरायलोएण । नमुइविहूणेण महीमिलंतभालेण पणओ सो ॥४५॥
तो तेणुत्तो मंती नरिंद ! विरयम्मि वरिसयालम्मि । गच्छिस्सामो अन्नत्थ सहसु ता कइवयदिणाणि ॥४६॥
तं सोउं घयसित्तो व्व पावओ (पावओ) नमुइमंती । पभणइ जइ भणियदिणाणमुवरि तुम्हाणमेगं पि ॥४७॥

वर्द्धापयितुं न प्राप्ता यूयं मां यज्ञदिक्षितमत्र । ततस्त्यजत साम्प्रतं मे देशं तदा जल्पति सूरिः ॥ ३४ ॥
पञ्चप्रकारस्वाध्यायकरणव्याक्षिप्तचित्तवृत्तिभिः । परिहृतसकलसावद्यलोकतप्तीभिरस्माभिः ॥ ३५ ॥
वर्द्धापितो न त्वं नरवरेन्द्र ! न खलु किमपि कारणमन्यत् । ततो मा कोपं कुर्वस्मदुपरीति जल्पितस्तैः ॥ ३६ ॥
सुष्ठुतरं कुपितः स प्रजल्पति सप्तदिवसपर्यन्ते । यः स्थास्यति स नियमेन मारितव्यो मया पापः ॥ ३७ ॥
गत्वा नगरोद्याने सूरीणां सह समग्रसंघेन । आलोचयितुं प्रवृत्ताः कथमुपशमिष्यत्ययं मन्त्री ॥ ३८ ॥
तावदेकेन विनेयेन प्रभणितमेति कथमपि यद्यत्र । विष्णुकुमारमुनिस्तदोपशाम्यति नान्यथैषः ॥ ३९ ॥
स पुनरङ्गामंदिरशैले ततो भणति मुनिवरोऽपरः । आकाशगमनशक्ति र्विद्यते मम न पुनरागमने ॥ ४० ॥
यद्येवं तदा सोऽपि खलु त्वमिहानेष्यति प्रभणितो गुरुणा । इति भणिते उत्पतितस्तमालदलश्यामलं गगनम् ॥ ४१ ॥
दृष्ट्वा तकं संघस्य कारणं किमपि भविष्यति गुरुकम् । यत्प्रावृष्यपि साधुः समेतीति चिन्तयतः ॥ ४२ ॥
विष्णुकुमारस्य मुनिः समागतः प्रणम्य तच्चरणौ । कथितः सर्वोऽपि खलु नमुचीमन्त्रिणो व्यतीकरस्तस्य ॥ ४३ ॥
तदा विष्णुकुमारमुनिस्तं गृहीत्वा नभस्तलेन सम्प्राप्तः । प्रणतगुरुक्रमकमलः समागतो नमुच्यास्थाने ॥ ४४ ॥
सामन्त-मन्त्रि-मण्डलिक-पौरपर्यन्तराजलोकेन । नमुचीविहीनेन महीमिलद्भालेन प्रणतः सः ॥ ४५ ॥
ततस्तेनोक्तो मन्त्री नरेन्द्र ! विरते वर्षाकाले । गमिष्यामोऽन्यत्र सहस्व ततः कतिपयदिनानि ॥ ४६ ॥
तत् श्रुत्वा घृतसिक्त इव पावको [पापको] नमुचीमन्त्री । प्रभणति यदि भणितदिनानामुपरि युष्माकमेकमपि ॥ ४७ ॥

पेच्छिस्सामि समग्गं पि दंसणं ता तहा हणिस्सामि । न जहा तुम्हाणं कोइ कत्थई दीसई भुवणे ॥४८॥
एयारिसं निसामिय चित्तब्भंतरसमुच्छलियकोवो । पगलंतसेयजालो भिउडीभीसावणनिडालो ॥४९॥
दुप्पेच्छरत्तनेत्तो खलंतजीहाविणिस्सरियवयणो । फुरफुरियहोट्ठजुयलो एवं भणिउं समाढत्तो ॥५०॥
अहो ! प्रकृतिसादृश्यं श्लेष्मणो दुर्जनस्य च । मधुरैः कोपमायाति, कटुकैरुपशाम्यति ॥५१॥
जइ वि हु एवं तह वि हु वियरसु तिण्हं पयाण मह ठाणं । तेणावि अवन्नाए भणियं गिण्हसु पए तिन्नि ॥५२॥
तो वेउव्वियलद्धीए वद्धिओ लक्खजोयणपमाणो । विकरालकालकाओ भयंकरो तिहुयणस्सावि ॥५३॥
दट्ठुं महाभयंकरकरालरूवं महापमाणं तं । नर-अमरा-ऽसुर-खेयरनियरा भयकंपिरा जाया ॥५४॥
गरुयप्पमाणपव्वयनिट्ठुरपयदद्दरे कए तेण । विस्संभरा सगिरिनियरकंदरा कंपिउं लग्गा ॥५५॥
झल्लज्झलिया सव्वे वि सायरा खडहडंति पायारा । इय असमंजसरूवं तिजयं सव्वं पि संजायं ॥५६॥
दाउं सिरम्मि पायं पायाले घत्तिओ नमुइमंती । साहुवियंभियमेरिसममच्चनाहेण नाऊण ॥५७॥
पट्ठवियाओ सिंगारियाओ अमरीओ कोवसमणट्ठा । ठाऊण ताओ मुणिसवणजुयलसविहम्मि मिउवयणा ॥५८॥
मुणिउवसमसंबद्धं गेयं गायंति महुरसद्देण । तह अमर-चारणा वि हु पारद्धा उवसमं पढिउं ॥५९॥
कुव्वंति संतिकम्मं विप्पा तह सावया वि भयभीया । जाया जिणेसराणं न्हवण-ऽच्चणकरणतल्लिच्छा ॥६०॥
मुणिणो उवसमरसपूरियाइं वयणाणि भणिउमाढत्ता । सह चक्किणा जणो से लग्गो चलणेसु सव्वो वि ॥६१॥

दक्ष्यामि समग्रमपि दर्शनं तदा तथा हनिष्यामि । न यथा युष्माकं कोपि कुत्रचिद् दृश्यते भुवने ॥ ४८ ॥
एतादृशं निशम्य चित्ताभ्यन्तरसमुच्छलितकोपः । प्रगलत्स्वेदजालो भृकुटीभयानकनिडालः ॥ ४९ ॥
दुष्प्रेक्ष्यरक्तनेत्रः स्खलज्जीव्हाविनिसृतवचनः । स्फुरस्फुरितौष्ठयुगल एवं भणितुं समारब्धः ॥ ५० ॥
अहो ! प्रकृतिसादृश्यं श्लेष्मणो दुर्जनस्य च । मधुरैः कोपमायाति, कटुकैरुपशाम्यति ॥ ५१ ॥
यद्यपि खल्वेवं तथापि खलु वितर त्रिणि पदानां ममस्थानम् । तेनाप्यवज्ञया भणितं गृहाण पदानि त्रिणि ॥ ५२ ॥
तदा वैक्रियलब्ध्या वर्धितो लक्षयोजनप्रमाणः । विकरालकालकायो भयंकरस्त्रिभुवनस्यापि ॥ ५३ ॥
दृष्ट्वा महाभयंकरकरालरुपं महाप्रमाणं तम् । नराऽमराऽसुर-खेचरनिकरा भयकम्पन्माना जाताः ॥ ५४ ॥
गुरुकप्रमाणपर्वतनिष्ठुरपददरे कृते तेन । विश्वंभरा सगिरिनिकरकन्दरा कम्पितुं लग्ना ॥ ५५ ॥
क्षुब्धाः सर्वेऽपि सागराः खटखटन्ति प्राकाराः । इत्यसमंजसरुपं त्रिजगत्सर्वमपि सञ्जातम् ॥ ५६ ॥
दत्वा शिरसि पादं पाताले क्षिप्तो नमुचीमन्त्री । साधुविजृम्भितमीदृशममात्यनाथेन ज्ञात्वा ॥ ५७ ॥
प्रस्थापिताः शृङ्गारिता अमर्यः कोपशमनार्थाः । स्थित्वा ता मुनिश्रवणयुगलसविधे मृदुवचनाः ॥ ५८ ॥
मुन्युपशमसम्बद्धं गेयं गायन्ति मधुरशब्देन । तथामरचारणा अपि खलु प्रारब्धा उपशमं पठितुम् ॥ ५९ ॥
कुर्वन्ति शान्तिकर्म विप्रास्तथा श्रावका अपि भयभीताः । जाता जिनेश्वराणां स्नपना-ऽर्चनकरणतत्पराः ॥ ६० ॥
मुनय उपशमरसपूरितानि वचनानि भणितुमारब्धाः । सह चक्रिणा जनस्तस्य लग्नश्चरणयोः सर्वोऽपि ॥ ६१ ॥

तो उवसंतो स मुणी उवसमरसगब्भवयणसवणेण । जिणपवयणस्स जाया समुन्नई तप्पभावेण ॥६२॥
तद्दियहाओ जाओ जयम्मि स मुणी तिविक्कमऽभिहाणो । उप्पाडिउं कमेण य केवलनाणं गओ सिद्धिं ॥६३॥
चक्की वि महापउमो भारहखेत्तं समग्गमवि भोत्तुं । कयपव्वज्जो संजायकेवलो सिवपुरिं पत्तो ॥६४॥

॥ विष्णुकुमाराख्यानकं समाप्तम् ॥५५॥

अधुना वैरस्वाम्याख्यानकमाख्यायते । तद्यथा-

इह जइया किल भयवं गोयमसामी जिणे(ण)ऽणुन्नाओ । अट्ठावयमारूढो नीसेसपमायरहिओ वि ॥१॥
आयासगमणलद्धी वि परमिमो खेयरहियगइगमणो । पुट्ठो वेसमणेणं रयणीए महातवस्सिगुणो ॥२॥
जह जाए संदेहम्मि तस्स कुवियप्पविउडणनिमित्तं । पुंडरिय कंडरीयाण तणयमज्झयणमकहिंसु ॥३॥
पढियमसेसं पि हु जेण तप्परीवारगुज्झगेण तयं । तुंबवणसन्निवेसे सो जाओ वइरसामिमुणी ॥४॥
तत्तो गब्भत्थस्स वि जणओ मोयाविऊण पव्वइओ । जह सो बालो दिन्नो तइया जणणीए जणयस्स ॥५॥
जह य विवाए जाए जित्तं संघेण तम्मि पत्थावे । जह पव्वइओ निइमइगुणेण जह रंजिओ सुगुरू ॥६॥
जब गुज्झएहिं बालो निमंतिओ जह य गणहरपयम्मि । नियगुरुणा संठविओ जाओ आएज्जवयणो य ॥७॥
जह तस्स रूय-लायन्न-कंति-सोहग्गगुणकलावेण । हयहिययाए धूयाए सेट्ठिणो पत्थिओ भयवं ॥८॥
वेउव्वियलद्धीए कुसुमपुरे रंजिओ जहा राया । जह ओराला जस-कित्ति-वन्न-सद्दा य से जाया ॥९॥

तदोपशान्तः स मुनिरुपशमरसगर्भवचनश्रवणेन । जिनप्रवचनस्य जाता समुन्नतिस्तत्प्रभावेन ॥ ६२ ॥
तद्दिवसाज्जातो जगति स मुनिस्त्रिविक्रमाभिधानः । उत्पाद्य क्रमेण च केवलज्ञानं गतः सिद्धिम् ॥ ६३ ॥
चक्रयपि महापद्मो भारतक्षेत्रं समग्रमपि भुक्त्वा । कृतप्रव्रज्यः सञ्जातकेवलः शिवपुरीं प्राप्तः ॥ ६४ ॥

॥ विष्णुकुमाराख्यानकं समाप्तम् ॥ ५५ ॥

वैरस्वाम्याख्यानकम् ॥ ५६ ॥

इह यदा किल भगवान् गौतमस्वामी जिनेनानुज्ञातः । अष्टापदमारुढो निःशेषप्रमादरहितोऽपि ॥ १ ॥
आकाशगमनलब्धिरपि परमयं खेदरहितगतिगमनः । पृष्टो वैश्रमणेन रजन्यां महातपस्विगुणः ॥ २ ॥
यथा जाते सन्देहे तस्य कुविकल्पविनाशननिमित्तम् । पुण्डरिक-कण्डरिकयोः सत्कमध्ययनमकथयत् ॥ ३ ॥
पठितमशेषमपि खलु येन तत्परिवारगुह्यकेन तकत् । तुम्बवनसन्निवेशे स जातो वैरस्वामिमुनिः ॥ ४ ॥
ततो गर्भस्थस्यापि जनको मोचयित्वा प्रव्रजितः । यथा स बालो दत्तस्तदा जनन्या जनकाय ॥ ५ ॥
यथा च विवादे जाते जितं संघेन तस्मिन्प्रस्तावे । यथा प्रव्रजितो नीतिमतिगुणेन यथा रञ्जितः स्वगुरुः ॥ ६ ॥
यथा गुह्यकै र्बालो निमन्त्रितो यथा च गणधरपदे । निजगुरुणा संस्थापितो जात आदेयवचनश्च ॥ ७ ॥
यथा तस्य रूप-लावण्य-कान्ति-सौभाग्यगुणकलापेन । हृतहृदयया दुहित्रा श्रेष्ठिनः प्रार्थितो भगवान् ॥ ८ ॥
वैक्रीयलब्ध्या कुसुमपुरे रञ्जितो यथा राजा । यथौदारिका यश-कीर्ति-वर्ण-शब्दाश्च तस्य जाताः ॥ ९ ॥

किंच हुयासणगेहाओ कुंभमाणेण कुसुमनियरेण । गुणमणिरोहणगिरिणा पभावणा जह कया तत्थ ॥१०॥
पुव्वदिसाओ उत्तरपहम्मि पत्तेण महइ दुब्भिक्खे । पडविज्जाए य जहा संधो नित्थारिओ तेण ॥११॥
सिरिवीरजिणेसरतित्थनाहतित्थं पभावयंतेण । विहरंतेण पभूयं कालं कलिकलुसमहणेण ॥१२॥
पच्छिमवयम्मि कइया वि तस्स सिंभाहियम्मि संजाए । सुंठीए विम्हरणे अणसणमाराहियं तेण ॥१३॥
नियपरिवारजुएणं जहा रहावत्तपव्वयवरम्मि । आवस्सयाओ नेयं सव्वं पि हु वित्थरेण तहा ॥१४॥

॥ वैरस्वाम्याख्यानकं सङ्क्षेपतः समाप्तमिति ॥५६॥

अधुना (क्रम) प्राप्तं श्रीसिद्धसेनाख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

उज्जेणीए पुरीए सूरी सिद्धंतपारगो आसि । नामेण विद्धवाई सिरोमणी विउसवग्गस्स ॥१॥
नियविउसत्तवसेणं तहा महागरुयगव्वयाए इमो । विहियपइन्नो नज्जइ सव्वत्थ इमेण पढिएण ॥२॥
मद्गोः श्रृङंशक्रयष्टिप्रमाणं, शीतो वह्निर्मारुतः स्थैर्ययुक्तः ।
यद्धा यस्मैरोचते यन्न किञ्चिद्, वृद्धो वादी भाषते कः किमाह ? ॥३॥
सोऊणेरिसगव्वं बंभणवंसुब्भवो गुरुमरट्ठो । सिरिसिद्धसेणनामो परियरिओ नियय[1]छत्तेहिं ॥४॥
वायं दाउं पत्तो सद्धिं सो विद्धवाइसूरीहिं । सह बंभणेहिं कलहं को काही ? इय विचिंतेउं ॥५॥
सूरी चलिओ कम्मि वि गामे जा ताव सिद्धसेणो वि । नट्ठो त्ति विचिंतिय झत्ति धाइओ तस्स पट्ठीए ॥६॥
गच्छंतो संपत्तो सूरी सिग्घयर बडुयवग्गेण । भणिओ य कहिं वच्चसि नट्ठो सेवडय ! तमियाणिं ? ॥७॥

किंच हुताशनगेहात् कुम्भमानेन कुसुमनिकरेण । गुणमणिरोहणगिरिणा प्रभावना यथा कृता तत्र ॥ १० ॥
पूर्वदिश उत्तरपथि प्राप्तेन महति दुर्भिक्षे । पटविद्यया च यथा संघो निस्तारितस्तेन ॥ ११ ॥
श्रीवीरजिनेश्वरतीर्थनाथतीर्थं प्रभावयता । विहरता प्रभूतं कालं कलिकालुष्यमथनेन ॥ १२ ॥
पश्चिमवयसि कदापि तस्य श्लेष्माधसि सज्जाते । सुण्ठीके विस्मरणे ऽनशनमाराधितं तेन ॥ १३ ॥
निजपरिवारयुतेन यथा रथावर्तपर्वतवरे । आवश्यकाज्ज्ञेयं सर्वमपि खलु विस्तरेण ॥ १४ ॥

॥ वैरस्वाम्याख्यानकं संक्षेपतः समाप्तमिति ॥ ५६ ॥

श्री सिद्धसेनाख्यानकम् ॥ ५७ ॥

उज्जैन्यां पूर्यां सूरिः सिद्धान्तपारग आसीत् । नाम्ना वृद्धवादी शिरोमणी विद्वद्वर्गस्य ॥ १ ॥
निजविद्वत्त्ववशेन तथा महागुरुकगर्वतयायम् । विहितप्रतिज्ञो ज्ञायते सर्वत्रानेन पठितेन ॥ २ ॥
श्रुत्वेदृशगर्वं ब्राह्मणवंशोद्भवो गुरुगर्वः । श्रीसिद्धसेननामः परिवारितो निजकछात्रैः ॥ ४ ॥
वादं दातुं प्राप्तः सार्द्धं स वृद्धवादिसूरिभिः । सह ब्राह्मणैः कलहं कः करिष्यति ? इति विचिन्त्य ॥ ५ ॥
सूरिश्चलितः कस्मिन्नपि ग्रामे यावत्तावत् सिद्धसेनोऽपि । नष्ट इति विचिन्त्य झटिति धावितस्तस्य पृष्टे ॥ ६ ॥
गच्छन्सम्प्राप्तः सूरिः शीघ्रसितरं बटुकवर्गेण । भणितश्च कुत्र व्रजसि नष्टो श्वेतपटक ! त्वमिदानीम् ? ॥ ७ ॥

---

१. श्लेष्माधसि श्लेष्मरोगे ।

भणिया य सूरिणा ते नाहं नट्ठो कुओ वि हु भएण । एवं जंपंताणं संपत्तो सिद्धसेणो वि ॥८॥
भणइ य नियपइन्नं पालसु वियरसु मए समं वायं । जंपइ सूरी नयरीए वियरिमो विउसपच्चक्खं ॥९॥
तेणुत्तं एत्थेव य आह मुणिंदो न संति इह सब्भा । सो जंपइ एमेव य वियरसु सूरी वि पडिभणइ ॥१०॥
एए वि ताव गोवाल-हलहरा हुंतु इह सहावयिणो । तेणाणुमन्निए ते वाहरिया सूरिणा सव्वे ॥११॥
जो हारिही स सिस्सो होही इयरस्स सिद्धसेणेण । विहिया इमा पइन्ना पच्चक्खं हलहराईणं ॥१२॥
तुह चेव पुव्वपक्खो होउ त्ति पयंपिए मुणिंदेण । सो सक्कयवाणीए विप्पो जंपेउमारद्धो ॥१३॥
नत्थि जए सव्वन्नू पमाणपंचगपवत्तणाभावा । गयणारविंदमिव ता अभावमाणस्स विसओ सो ॥१४॥
तहाहि-
पच्चक्खपमाणेणं सव्वन्नू ता न दीसए लोए । लिंगाभावाओ तहा अणुमाणेणावि तह चेव ॥१५॥
उवमाणेण वि तत्तुल्लऽदंसणाओ न सो भवे गज्झो । गम्मइ न आगमेण वि विरोहओ तेसिमन्नोन्नं ॥१६॥
अत्थावत्तीए वि हु दूरं गम्मई न सो भुवणभाणू । जम्हा तेण विणा वि हु सव्वे अत्थे पसिज्झंति ॥१७॥
तम्हा अभावविसओ सव्वन्नू मुयह तम्मि पडिबंधं । धम्मा-ऽधम्मवियारो वेयाओ गम्मए सव्वो ॥१८॥
कत्तारदोसरहिए अपोरुसेए सया वि किल वेए । गयणं व सव्वतुल्ले सइ किं सव्वन्नुकप्पणया ? ॥१९॥
इय सव्वन्नुनिसेहप्पहाणमेयं सुणित्तु दियवयणं । हलहरसहाए उचियं पभणइ सिरिविद्धवाई वि ॥२०॥

भणिताश्च सूरिणा ते नाहं नष्टः कुतोऽपि खलु भयेन । एवं जल्पतां सम्प्राप्तः सिद्धसेनोऽपि ॥ ८ ॥
भणति च निजप्रतिज्ञां पालय वितर मया समं वादम् । जल्पति सूरि र्नगर्यां वितरामि विद्वत्प्रत्यक्षम् ॥ ९ ॥
तेनोक्तमत्रैव चाह मुनीन्द्रो न सन्तीह सभ्याः । स जल्पत्येवमेव च वितर सूरिरपि प्रतिभणति ॥ १० ॥
एते ऽपि तावद्गोपाल-हलधरा भवन्त्विह सभावर्तिनः । तेनानुमते ते व्याहृता सूरिणा सर्वे ॥ ११ ॥
यः हारयिष्यति स शिष्यो भविष्यतीतरस्य सिद्धसेनेन । विहितेमा प्रतिज्ञा प्रत्यक्षं हलधरादीनाम् ॥ १२ ॥
तव चैव पूर्वपक्षो भवतु इति प्रजल्पिते मुनीन्द्रेण । स संस्कृतवाण्या विप्रो जल्पितुमारब्धः ॥ १३ ॥
नास्ति जगति सर्वज्ञः प्रमाणपञ्चकप्रवर्तनाभावात् । गगनारविन्दमिव ततोऽभावमानस्य विषयः सः ॥ १४ ॥
तथाहि -
प्रत्यक्षप्रमाणेन सर्वज्ञस्तावन्न दृश्यते लोके । लिङ्गाभावात्तथाऽनुमानेनापि तथा चैव ॥ १५ ॥
उपमानेनापि तत्तूल्यादर्शनान्न स भवेद्ग्राह्यः । गम्यते नागमेनापि विरोधतस्तेषामन्योन्यम् ॥ १६ ॥
अर्थापत्यापि खलु दूरं गम्यते न स भुवनभानुः । यस्मात्तेन विनापि खलु सर्वेऽर्थाः प्रसिध्यन्ति ॥ १७ ॥
तस्मादभावविषयः सर्वज्ञ मुञ्चत तस्मिन् प्रतिबन्धम् । धर्मा-ऽधर्मविचारो वेदाद्गम्यते सर्वः ॥ १८ ॥
कर्तादोषरहिते ऽपौरुषेये सदापि किल वेदे । गगनमिव सर्वतूल्ये सति किं सर्वज्ञकल्पनया ? ॥ १९ ॥
इति सर्वज्ञनिषेधप्रधानमेतत् श्रुत्वा द्विजवचनम् । हलधरसभाया उचितं प्रभणति श्रीवृद्धवाद्यपि ॥ २० ॥

धम्मु सामिउ सयलसत्ताहं, विणु धर्म्मि नाहिं धर .... । ..... ॥१॥
..... धणु धन्नु धम्मह पसाएण । धम्मक्खरबाहिरिण धिसि, धिरत्थु किं तेण जाएण ? ॥२॥
धरणिहिं भारु करंतेण, पयपूरणपुरिसेण । किउ संसारि भमंतेण, धम्मु सुमित्तु न जेण ॥३॥
इय पढिऊणं पुट्ठा मुणिवइणा हलहरा सहावइणो । मज्झमिमस्स य पढिए भव्वमभव्वं भणह तुब्भे ॥२१॥
तेहुत्तं तुह पढिए सुइजुयममएण सिंचियं अम्ह । एयस्स संतियं पुण न किं पि अम्हे सुहावेई ॥२२॥
ता किंपि भणियमिमिणा न बुद्धमम्हेहिं तत्तमेयस्स । सूरी वि भणइ निसुणह जं भणियमिमेण तस्सत्थं ॥२३॥
जंपियमणेण तुम्हाण देवहरयम्मि नत्थि अरहंतो । ते बिंति अत्थि अम्हेहिं पणमिओ संपयं तेव ॥२४॥
जइ एरिसं पयंपइ पिया वि अलिओ इमस्स ता नूणं । इय जंपिऊण विप्पं घेत्तुं बाहाहिं ते बिंति ॥२५॥
आगच्छसु जह तुज्झ वि दंसेमो जिणहरम्मि अरहंतं । सव्वेहिं तओ दिन्नो जयवाओ मुणिवरिंदस्स ॥२६॥
विप्पेण वि नियपइन्नपालणुज्जुत्तमाणसेण तओ । भणियमहं तुम्हाणं सिस्सो ता देह से दिक्खं ॥२७॥
तो दिक्खि(ओ) मुणिंदेण सिद्धसेणो पसत्थदिवसम्मि । जाओ य सयलसिद्धंतपारगामी महासत्तो ॥२८॥
बहुगुणगणपरिकलिओ ठविओ सो नियपयम्मि सूरीहिं । विहरइ वीरजिणेसरविसिट्ठतित्थं पभावंतो ॥२९॥
उज्जेणीए पुरीए कमेण पत्तो महीए विहरंतो । निसुणइ जणाववायं पाययसिद्धंतविसयम्मि ॥३०॥
मेलेऊणं संघं कयंजली मुणिवइं भणइ एवं । जइ साएसं संघो मह वियरइ विरइयपसाओ ॥३१॥

धर्मः स्वामी सकलसत्त्वस्य, विना धर्मं नास्ति धर... । ..... ॥ १ ॥
..... धनं धान्यं धर्मप्रसादेन । धर्माक्षरबाह्येन धिग्धिगस्तु किं तेन जातेन ? ॥ २ ॥
धरण्यां भारं कुर्वता, पदपुरणपुरुषेण । किमु संसारे भ्रमता, धर्मः सुमित्रो न येन ॥ ३ ॥
इति पठित्वा पृष्टा मुनिपतिना हलधराः सभावर्तिनः । ममैतस्य च पठिते भव्यमभव्यं भणथ यूयम् ॥ २१ ॥
तैरुक्तं तव पठिते श्रुतियुगममृतेन सिञ्चितमस्माकं । एतस्य सत्कं पुनर्न किमप्यस्मान् सुखायति ॥ २२ ॥
ततः किमपि भणितमनेन न बुद्धमस्माभिस्तत्त्वमेतस्य । सूरिरपि भणति निशृणुथ यद्भणितमनेन तस्यार्थम् ॥ २३ ॥
जल्पितमनेन युष्माकं देवगृहे नास्त्यर्हन् । ते ब्रुवन्त्यस्त्यस्माभिः प्रणतः साम्प्रतं चैव ॥ २४ ॥
यदीदृशं प्रजल्पति पिताप्यलिक अस्य तावन्नूनम् । इति जल्पित्वा विप्रं गृहीत्वा बाहुभिस्ते ब्रुवन्ति ॥ २५ ॥
आगच्छ यथा तवापि दर्शयामो जिनगृहे ऽर्हन्तम् । सर्वैस्ततो दत्तो जयवादो मुनिवरेन्द्रस्य ॥ २६ ॥
विप्रेणापि निजकप्रतिज्ञापालनोद्यतमानसेन ततः । भणितमहं युष्माकं शिष्यस्तावददत मे दिक्षाम् ॥ २७ ॥
ततो दिक्षितो मुनीन्द्रेण सिद्धसेनः प्रशस्तदिवसे । जातश्च सकलसिद्धान्तपारगामी महासत्त्वः ॥ २८ ॥
बहुगुणपरिकलितः स्थापितः स निजपदे सूरिभिः । विहरति वीरजिनेश्वरविशिष्ठतीर्थं प्रभावयन् ॥ २९ ॥
उज्जैन्यां पूर्यां क्रमेण प्राप्तो मह्यां विहरन् । निश्रृणोति जनापवादं प्राकृतसिद्धान्तविषये ॥ ३० ॥
मेलयित्वा सङ्घं कृताञ्जलि र्मुनिपतिं भणत्येवम् । यदि आदेशं संघो मम वितरति विरचितप्रसादः ॥ ३१ ॥

सिद्धंतं सव्वं पि हु करेमि भासाए सक्कयाए अहं । सोऊण तयं संघो वि एवमुल्लविउमारद्धो ॥३२॥
दूरे ता भणियव्वं एसा चिंता वि जुज्जइ न तुम्हा । जम्हा चिंतियमेत्ते वि जायए गरुयपच्छित्तं ॥३३॥
तो सिद्धसेणसूरी पयंपए मज्झ चरिमपच्छित्तं । संपइ संपन्नमिमं पुण न हु मह वट्टए इण्हिं ॥३४॥
ता काऊण पसायं संधो मह देउ चरिमपच्छित्तं । तस्सऽब्भासाओ जेण मज्झ संजायए सुद्धी ॥३५॥
तं पुण बारसवासप्पमाणमव्वत्तलिंगधारीहिं । पायच्छित्तं किज्जइ संजाए एरिसे पावे ॥३६॥
अणुजाणिओ समाणो संघेणं सिद्धसेणमुणिनाहो । अव्वत्तलिंगधारी होउं तं चरिउमारद्धो ॥३७॥
चिंतइ य महीवीढे परिब्भमंतो पसंत-थिरचित्तो । ते धन्ना मुणिवसभा सलाहणिज्जा तिहुयणम्मि ॥३८॥
जायं चुक्कक्खलियं न जेसि कइया वि एरिससरूवं । अक्खंडचरणपरिणामसुंदरा ते जयंतु जए ॥३९॥
इय एरिससुहभावगपडिहयपावस्स तस्स वरिसाणि । बारस जाव अईयाणि ताव पत्तो अवंतीए ॥४०॥
सो तत्थ कुडंगेसरदेवस्स मढम्मि संठिओ मइमं । संथुणइ न तं देवं इय नाउं नयरिलोएण ॥४१॥
विन्नत्तं नरवइणो देव ! कुडंगेसरस्स देवस्स । चिट्ठइ मढम्मि अव्वत्तलिंगिओ थुणइ न हु देवं ॥४२॥
तं सोउं नरनाहो संपत्तो तत्थ तं पयंपेइ । को सि तुमं ? सो वि हु भणइ धम्मिओ हमिह संपत्तो ॥४३॥
तो भणइ निवो किं न हु देवमिमं थुणसि ? भणइ पुण सो वि । एस न सहिउं सक्कइ मज्झ थुइं भणइ तयणु निवो ॥४४॥
एयं चिय पेच्छामो कुणसु थुइं कोउयं जओ अम्ह । इह होउ अम्ह दंसणपभावणा इय विचिंतेउं ॥४५॥

सिद्धान्तं सर्वमपि खलु करोमि भाषायां संस्कृतायामहम् । श्रुत्वा तकत् सङ्घोऽप्येवमुल्लपितुमारब्धः ॥ ३२ ॥
दूरे तावद्भणितव्यमेषा चिन्तापि युज्यते न युष्माकम् । यस्माच्चिन्तितमात्रे ऽपि जायते गुरुकप्रायश्चित्तम् ॥ ३३ ॥
ततः सिद्धसेनसूरिः प्रजल्पति मम चरिमप्रायश्चित्तम् । सम्प्रति सम्पन्नमिदं पुन र्न खलु मम वर्तत इदानीम् ॥ ३४ ॥
ततः कृत्वा प्रसादं सङ्घो मम ददतु चरिमप्रायश्चित्तम् । तस्याभ्यासाद्येन मम सञ्जायते शुद्धिः ॥ ३५ ॥
तत्पुन र्द्वादशवर्षप्रमाणमव्यक्तलिङ्गधारिभिः । प्रायश्चितं क्रियते सञ्जात ईदृशे पापे ॥ ३६ ॥
अनुज्ञातः सन् सङ्घेन सिद्धसेनमुनिनाथः । अव्यक्तलिङ्गधारी भूत्वा तं चरितुमारब्धः ॥ ३७ ॥
चिन्तयति च महीपीठे परिभ्रमन् प्रशान्त-स्थिरचित्तः । ते धन्याः मुनिवृषभाः श्लाघनीयास्त्रिभुवने ॥ ३८ ॥
जातं भ्रंशस्खलितं न येषां कदापीदृशस्वरूपम् । अखण्ड-चरण परिणामसुन्दरास्ते जयन्तु जगति ॥ ३९ ॥
इतीदृशशुभभावनाप्रतिहतपापस्य तस्य वर्षाणि । द्वादश यावदतितानि तावत्प्राप्तोऽवन्त्याम् ॥ ४० ॥
स तत्र कुडंगेश्वरदेवस्य मठे संस्थितो मतिमान् । संस्तौति न तं देवमिति ज्ञात्वा नगरिलोकेन ॥ ४१ ॥
विज्ञप्तं नरपते र्देव ! कुडंगेश्वरस्य देवस्य । तिष्ठति मठे अव्यक्तलिङ्गिकः स्तौति न खलु देवम् ॥ ४२ ॥
तत् श्रुत्वा नरनाथः सम्प्राप्तस्तत्र तं प्रजल्पति । कोऽसि त्वं ? सोऽपि खलु भणति धार्मिकोऽहमिह सम्प्राप्तः ॥४३॥
तदा भणति नृपः किं न खलु देवमिमं स्तौषि ? भणति पुनः सोऽपि । एष न सोढुं शक्यते मम स्तुतिं भणति तदनु नृपः ॥४४॥
एवमेव पश्यामः कुरु स्तुतिं कौतूकं यतोऽस्मान् । एवं भवत्वस्मद्दर्शनप्रभावनेति विचिन्त्य ॥ ४५ ॥

तेणुत्तमिमं गोसे कायव्वं तयणु बीयदिवसम्मि । निवपज्जंतो लोगो संपत्तो तम्मि देवउले ॥४६॥
तो सिद्धसेणसूरी सुइभूओ सुमरिऊण जिणनाहं । बत्तीसाहिं बत्तीसियाहिं थोउं समारद्धो ॥४७॥
ओहिन्नाणेण वियाणिऊण जिणपवयणुन्नइनिमित्तं । सासणदेवी जिणसासणस्स भत्ता समणुपत्ता ॥४८॥
एत्थंतरम्मि सिरकमलमज्झभागाओ तस्स देवस्स । पासजिणेसरपडिमा सहसा निस्सरिउमारद्धा ॥४९॥
उवसंत-कंतरूवा अंते वत्तीसियाण सव्वाण । नीहरिया सव्वा वि हु सच्चविया राय-लोएहिं ॥५०॥
दट्ठूण पवयणुन्नइमेरिसमच्छरियभूयमच्चत्थं । पडिवुद्धो पउरजणो तित्थस्स पभावणा जाया ॥५१॥

॥ श्री सिद्धसेनाख्यानक समाप्तम् ॥५७॥

इदानीं मल्लवाद्याख्यानक कथ्यते । यथा-

सरसप्पवालकलिए अमियावासे महाअरन्ने व । रयणायरे व्व भरुयच्छपट्टणे निवसए सूरी ॥१॥
नामेण जिणाणंदो बुद्धाणंदाभिहाणभिक्खू वि । निवपज्जंतो वाओ परोप्परं तेहिं पारद्धो ॥२॥
जो हारइ सो नियमा नयरं परिहरइ विरइया तेहिं । दोहिं वि इमा पइन्ना संजाए तयणु वायम्मि ॥३॥
भवियव्वयावसेणं विणिज्जिओ भिक्खुणा मुणिवरिंदो । नीहरिऊण ससंघो समागओ वलहिनयरीए ॥४॥
पव्वइया सूरिससा दुल्लहएवी समं तिहिं सुएहिं । अजियजस-जक्ख-मल्लाभिहेहिं (सुवि) सुद्धबुद्धीहिं ॥५॥
समहिज्जियसुत्तत्था तिन्नि वि जाया विसेसओ मल्लो । मोत्तूणं पुव्वगयं तह नयचक्कं समग्गं पि ॥६॥

तेनोक्तमिमं प्रत्युषे कर्तव्यं तदनु द्वितीयदिवसे । नृपपर्यन्तो लोकः सम्प्राप्तस्तस्मिन् देवकुले ॥ ४६ ॥
ततः सिद्धसेन सूरिः शूचीभूतः स्मृत्वा जिननाथम् । द्वात्रिंशद्भि र्द्वात्रिंशद्भिः स्तोतुं समारब्धः ॥ ४७ ॥
अवधिज्ञानेन विज्ञाय जिनप्रवचनोन्नतिनिमित्तम् । शासनदेवी जिनशासनस्य भक्ता समनुप्राप्ता ॥ ४८ ॥
अत्रान्तरे शिरकमलमध्यभागात्तस्य देवस्य । पार्श्वजिनेश्वरप्रतिमा सहसा निःसर्तुमारब्धा ॥ ४९ ॥
उपशान्त-कान्तरुपाऽन्ते द्वात्रिंशिकानां सर्वासाम् । निःसृता सर्वाऽपि खलु दृष्टा राज-लोकैः ॥ ५० ॥
दृष्ट्वा प्रवचनोन्नतिमीदृशमाश्चर्यभूतमत्यर्थम् । प्रतिबुद्धः पौरजनस्तीर्थस्य प्रभावना जाता ॥ ५१ ॥

॥ श्री सिद्धसेनाख्यानकं समाप्तम् ॥ ५७ ॥

मल्लवाद्याख्यानकम् ॥ ५८ ॥

सरसप्रवालकलित अमृतावासे महारण्य इव । रत्नाकर इव भृगुकच्छपत्तने निवसति सूरिः ॥ १ ॥
नाम्ना जिनानन्दो बुद्धानन्दाभिधानभिक्षुरपि । नृपपर्यन्तो वादः परस्परं ताभ्यां प्रारब्धः ॥ २ ॥
यः हारयति स नियमा नगरं परिहरति विरचिता ताभ्याम् । द्वाभ्यामपीमा प्रतिज्ञा सञ्जाते तदनु वादे ॥ ३ ॥
भवितव्यतावशेन विनिर्जितो भिक्षुणा मुनिवरेन्द्रः ! । निःसृत्य ससङ्घः समागतो वलभिनगर्याम् ॥ ४ ॥
प्रव्रजिता सूरिस्वसा दुर्लभदेवी समं त्रिभिः सुतैः । अजितयश-यक्ष-मल्लाभिधैः [सुवि] शुद्धबुद्धिभिः ॥ ५ ॥
समधीतसूत्रार्थास्त्रयोऽपि जाता विशेषतो मल्लः । मुक्त्वा पूर्वगतं तथा नयचक्रं समग्रमपि ॥ ६ ॥

बारसअरयपमाणं रइयं पुव्वाओ तं समुद्धरियं । अरयाणं पत्तेयं पारंभे तह य पज्जंते ॥७॥
कीरइ जिणाण पूया महापयत्तेण इयरहा विग्घं । संजायइ वक्खाणे पढणम्मि य सयलसंघस्स ॥८॥
सूरीहिं तीए अज्जाए अप्पिओ पोत्थयाण भंडारो । अह अन्नया य विहरिउकामेहिं पयंपिओ मल्लो ॥९॥
नयचक्कपोत्थयमिणं न वाइयव्वं ति विहरिया गुरुणो । अह निग्गयाए अज्जाए तीए केणावि कज्जेण ॥१०॥
इह पोत्थयम्मि किं चिट्ठइ ? त्ति संजायकोउहल्लेण । मल्लेण तयं घेत्तूण छोडियं तयणु से पत्तं ॥११॥
पढमं कलिऊण करम्मि वाइओ तम्मि आइमसिलोगो । निस्सेससत्थभावस्स साहगो महुरवाणीए ॥१२॥
विधि-नियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत् । जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ॥१३॥
जा सम्मं परिभावइ तस्सऽत्थं ताव देवयाए तयं । अविहि त्ति चिंतिऊणं सपत्तमवि पोत्थयं हरियं ॥१४॥
तमपेच्छंतो संतो जा संजाओ विलक्खवयणो सो । ता आगयाए अज्जाए पुच्छिओ किं विसन्नो सि ? ॥१५॥
तेण वि पोत्थयहरणे कहियं तीए वि सयलसंघस्स । तं सोउं साममुहो संघो सव्वो वि संजाओ ॥१६॥
वसिमम्मि पविसियव्वं न मए नयचक्कपोत्थएण विणा । रुक्खा य भक्खियव्वा केवलया भोयणे वल्ला ॥१७॥
भणिओ संघेणेसो बाहिज्जसि केवलेहिं वल्लेहिं । ता देहरक्खणकए गिण्हसु तं किंपि विगइं पि ॥१८॥
संघाएसं बहुमन्निऊण सो वल्ल-घय-गुडाहारो । गंतूण संठिओ गुरुगुहाए गिरिदुग्गसेलस्स ॥१९॥
तत्थ ठियस्स वि मल्लस्स मुणिवरा दिंति भत्त-पाणाई । तम्मइपरिक्खणत्थं अहऽन्नया देवयाए इमं ॥२०॥

द्वादशारकप्रमाणं रचितं पूर्वात् तं समुद्धरितम् । अरकाणां प्रत्येकं प्रारम्भे तथा च पर्यन्ते ॥ ७ ॥
क्रियते जिनानां पूजा महाप्रयत्नेनेतरथा विघ्नम् । सञ्जायते व्याख्याने पठने च सकलसङ्घस्य ॥ ८ ॥
सूरिभिस्तस्या आर्यायाः समर्पितः पुस्तकानां भण्डागारः । अथान्यदा च विहर्तुकामैः प्रजल्पितो मल्लः ॥ ९ ॥
नयचक्रपुस्तकमिदं न वाचितव्यमिति विहृता गुरवः । अथ निर्गताया आर्याया तस्या केनापि कार्येण ॥ १० ॥
इह पुस्तके किं तिष्ठति ? इति सञ्जातकौतूहलेन । मल्लेन तदृहीत्वा छोटितं तदनु तस्य पत्रम् ॥ ११ ॥
प्रथमं कलयित्वा करे वाचितस्तस्मिन्नादिमश्लोकः । निःशेषशास्त्रभावस्य साधको मधुरवाण्या ॥ १२ ॥
विधि-नियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत् । जैनादन्यशासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ॥ १३ ॥
यावत् सम्यक् परिभावयति तस्यार्थं तावद्देवतया तकत् । अविधिरिति चिन्तयित्वा सपत्रमपि पुस्तकं हृतम् ॥ १४ ॥
तमपश्यन् सन् यावत्सञ्जातो विलक्षवदनः सः । तावदागतया आर्यया पृष्टः किं विषण्णोऽसि ? ॥ १५ ॥
तेनापि पुस्तकहरणं कथितं तयापि सकलसंघस्य । तत्श्रुत्वा श्याममुखः सङ्घः सर्वोऽपि सञ्जातः ॥ १६ ॥
वसतौ प्रविष्टव्यं न मया नयचक्रपुस्तकेन विना । ऋक्षाश्च भक्षितव्याः केवला भोजने वल्लाः ॥ १७ ॥
भणितः सङ्घेनैष बाधेथाः केवलै र्वल्लैः । ततो देहरक्षणकृते गृहाण त्वं किमपि विकृतिमपि ॥ १८ ॥
सङ्घादेशं बहुमन्य स वल्ल-घृत-गुडाहारः । गत्वा संस्थितो गुरुगुहायां गिरिदुर्गशैलस्य ॥ १९ ॥
तत्र स्थितस्यापि मल्लाय मुनिवरा ददति भक्त-पानादयः । तन्मतिपरीक्षणार्थमथान्यदा देवतयेदम् ॥ २० ॥

भणियं रयणीए के मिट्ठा ? वल्ल त्ति जंपियं तेण । पुणरवि पज्जन्ते तीए जंपियं छण्ह मासाणं ॥२१॥
केण ? त्ति घय-गुडेणं(त्ति) जंपिए मल्लचेल्लएण तओ । तस्सेवंमइपगरिसरंजियहिययाए देवीए ॥२२॥
भणियं जं किंपि मणप्पियं तयं मल्ल ! मग्गसु इयाणिं । तुह तुट्ठा हं तो मल्लचेल्लएणं इमं भणिया ॥२३॥
नयचक्कपोत्थयं मे वियरसु ता देवयाए सो भणिओ । पढमसिलोगो च्चिय होही तं तारिसं तुज्झ ॥२४॥
तो देवयाणुभावेण विरइयं तेण तत्थ नयचक्कं । संघेण वि वलहीए पवेसिओ सो विभूईए ॥२५॥
गुरुण वि विहरिउणं समागया नायसयलवुत्तंता । अजियजस-जक्ख-मल्ला गुणगणजुत्त त्ति तेहिं तओ ॥२६॥
संठविया सूरिपए जाया परवाइवारणमइंदा । अह अन्नया य सिरिमल्लसूरिणा सुमरियं एयं ॥२७॥
जह भिक्खुबुद्धदासेण वायमुद्दाए सूरिणो विजिया । भरुयच्छाओ संघेण संगया तयणु नीहरिया ॥२८॥
नियगुरूणऽवमाणं संघस्स पराभवं च नाऊण । मल्लमुणिंदो भरुयच्छपट्टणे झत्ति संपत्तो ॥२९॥
कयतारिसप्पइन्नेण तेण सह भिक्खुणा समारद्धो । निवपज्जंतो वाओ बहुविउससहाए पच्चक्खं ॥३०॥
एयस्स गुरू वि मए विणिज्जिओ विजयवाइविंदो[1] वि । ता एयम्मि दुहा वि हु बाले किर मज्झ का गणणा ? ॥३१॥
इय भणिउमग्गवाओ समप्पिओ भिक्खुणा मुणिंदस्स । सो वि हु सुमरिय सासणदेविमुवन्नसिउमारद्धो ॥३२॥
सियवायसारजिणमयगम-हेऊ-भंग-पवरजुत्तीहिं । काऊणमुवन्नासं धरिओ छद्दिवसपज्जंते ॥३३॥
भणियं च तेणमणुवइ दूसेयव्वं तए इमं गोसे । तो बुद्धदासभिक्खू नियठाणगओ तमिस्साए ॥३४॥

भणितं रजन्यां के मिष्ठाः ? वल्ला इति जल्पितं तेन । पुनरपि पर्यन्ते तया जल्पितं षण्णां मासानाम् ॥ २१ ॥
केनेति ? घृत-गुडेनेति जल्पिते मल्लचेल्लकेन ततः । तस्यैवं मतिप्रकर्षरञ्जितहृदयया देव्या ॥ २२ ॥
भणितं यत्किमपि मनःप्रियं तकन्मल्ल ! मार्गयेदानीम् । तव तुष्टाहं ततो मल्लचेल्लकेनेयं भणिता ॥ २३ ॥
नयचक्रपुस्तकं मे वितर तदा देवतया स भणितः । प्रथमश्लोकाच्चैव भविष्यति तत्तादृशं तव ॥ २४ ॥
तदा देवतानुभावेन विरचितं तेन तत्र नयचक्रम् । सङ्घेनापि वलभ्यां प्रवेशितः स विभूत्या ॥ २५ ॥
गुरवोऽपि विहृत्य समागता ज्ञातसकलवृत्तान्ताः । अजितयश-यक्ष-मल्ला गुणयुक्ता इति तैस्ततः ॥ २६ ॥
संस्थापिताः सूरिपदे जाताः परवादिवारणमृगेन्द्राः । अथान्यदा च श्रीमल्लसूरिणा स्मृतमेतत् ॥ २७ ॥
यथा भिक्षुबुद्धदासेन वादमुद्रया सूरयो विजिताः । भृगुकच्छात् सङ्घेन सङ्गतास्तदनु निःसृताः ॥ २८ ॥
निजकगुरुणामपमानं संघस्य पराभवं च ज्ञात्वा । मल्लमुनीन्द्रो भृगुकच्छपत्तने झटिति सम्प्राप्तः ॥ २९ ॥
कृतताद्दशप्रतिज्ञेन तेन सह भिक्षुणा समारब्धः । नृपपर्यन्तो वादो बहुविद्वत्सभायाः प्रत्यक्षम् ॥ ३० ॥
एतस्य गुरुरपि मया विनिर्जितो विजयवादिवृन्दोऽपि । तत एतस्मिन्द्विधापि हु बाले किल मम का गणना ? ॥ ३१ ॥
इति भणित्वाग्रवादः समर्पितो भिक्षुणा मुनीन्द्रस्य । सोऽपि खलु स्मृत्वा शासनदेवीमुपन्यस्तुमारब्धः ॥ ३२ ॥
सितवादसारजिनमतगम-हेतु-भङ्ग-प्रवरयुक्तिभिः । कृत्वोपन्यासं धृतः षड्दिवसपर्यन्ते ॥ ३३ ॥
भणितं च तेनानुव्रतिन् ! दूषितव्यं त्वयेमं प्रत्यूषे । ततो बुद्धदासभिक्षु र्निजस्थानगतस्तमिस्रायाम् ॥ ३४ ॥

---

१. वायविंदो रं० ।

दीवयमुज्जालेऊण करयलं कलिय सेडियं सुव्वं । जमुवन्नसियं मल्लेण तं लिहेउं समारद्धो ॥३५॥
परिभावणाए मढमज्झिमाए भित्तीए ता न से किंपि । सम्मं संभरइ तओ धसक्किओ हिययमज्झम्मि ॥३६॥
निवपज्जंतसहाए भणियव्वं किह मए पभायम्मि ? । एवभयज्झवसाणेण सो गओ झत्ति पंचत्तं ॥३७॥
मिलियम्मि विउसवग्गे बीयदिणे जा न एइ सो भिक्खू । हक्कारणाय ता तस्स राइणा पेसिया पुरिसा ॥३८॥
ते तत्थ गया भिक्खू नियंति भित्तीसमीवमुवविट्ठं । उत्ताणियनयणजुयं सेडियपाणिं विगयपाणं ॥३९॥
गंतूण तहिं रन्नो साहियमह भणइ नरवई एवं । जह कहियमिमेहिं तहा चिंतंतो सो भएण मओ ॥४०॥
तो तेण हारियं तयणु राइणा मल्लवाइणो दिन्नं । जयपत्तं संजाया संघस्स पभावणा महई ॥४१॥
निस्सारिउमारद्धं रन्ना भिक्खूण दंसणं सयलं । तो मल्लवाइणा सो निवारिओ जायकरुणेण ॥४२॥
सूरी वि जयाणंदो निवेण निस्सेससंघसंजुत्तो । पच्चाणीओ गंतूण सम्मुहं गुरुविभूइए ॥४३॥
विहिया पभूयकालं पभावणा मल्लवाइसूरीहिं । निन्नासिया य सव्वे वि तेण परवाइणो बहुसो ॥४४॥
सवणोयरसुहसद्देसणाए पडिबोहिऊण भवियजणं । सिरिमल्लवाइसूरी मरिऊण गओ अमरलोए ॥४५॥

॥ मल्लाख्यानकं समाप्तम् ॥५८॥

अधुना समिताख्यानकमारभ्यते । तद्यथा-

कन्ना-वेन्नाण नईणमन्तरे तावसासमो एगो । बंभद्दीवियसाहाण तावसाणं समत्थि तओ ॥१॥

दीपकमुज्ज्वाल्य करतले कलितसेटिकं शुभ्रम् । यदुपन्यस्तं मल्लेन तल्लिखितुं समारब्धः ॥ ३५ ॥
परिभावनया मठमध्याया भित्त्यास्तदा न तस्य किमपि । सम्यक् स्मरति तत धसक्कियो हृदयमध्ये ॥ ३६ ॥
नृपपर्यन्तसभायां भणितव्यं कथं मया प्रभाते ? । एवं भयाध्यवसानेन स गतो झटिति पञ्चत्वम् ॥ ३७ ॥
मिलिते विद्वद्वर्गे द्वितीयदिने यावन्नैति स भिक्षुः । आकारणाय तावत्तस्य राज्ञा प्रेषिताः पुरुषाः ॥ ३८ ॥
ते तत्र गता भिक्षुं पश्यन्ति भित्तिसमीपमुपविष्टम् । उत्तानितनयनयुगं सेटिकपाणिं विगतप्राणम् ॥ ३९ ॥
गत्वा तत्र राज्ञः कथितमथ भणति नरपतिरेवम् । यथा कथितमेभिःस्तथा चिन्तयन् स भयेन मृतः ॥ ४० ॥
तदा तेन पराहारितं तदनु राज्ञा मल्लवादिने दत्तम् । जयपत्रं सञ्जाता संघस्य प्रभावना महती ॥ ४१ ॥
निःसारितुमारब्धं राज्ञा भिक्षुणां दर्शनं सकलम् । तदा मल्लवादिना स निवारितो जातकरुणेन ॥ ४२ ॥
सूरिरपि जयानन्दो नृपेण निःशेषसंघसंयुक्तः । प्रत्यानीतो गत्वा सम्मुखं गुरुविभूत्या ॥ ४३ ॥
विहिता प्रभूतकालं प्रभावना मल्लवादिसूरिभिः । निर्णाशिताश्च सर्वेऽपि तेन परवादिनो बहुशः ॥ ४४ ॥
श्रवणोदरसुखसद्देशनया प्रतिबोध्य भविकजनम् । श्री मल्लवादिसूरि र्मृत्वा गतोऽमरलोके ॥ ४५ ॥

॥ मल्लाख्यानकं समाप्तम् ॥ ५८ ॥

समिताख्यानकम् ॥ ५९ ॥

कन्या-बेन्नयो र्नद्योरन्तरे तापसाश्रमः एकः । ब्रह्मद्वीपिकाशाखानां तापसानां समस्ति ततः ॥ १ ॥

कुलवइणा तरुमूलाण मेलणे जाणिओ कहवि जोगो । तं पयतलेसु दाऊण तावसा उत्तरंति नइं ॥२॥
तेसिं पभावणा सावयाणमोहावणा धुवं जाया । दट्ठूणमइसयं तं तेसिं भत्तिं कुणइ लोओ ॥३॥
तम्मि य समए सिरिवइरसामिणो माउला य समियज्जा । विहरंति जोगसिद्धा तो तेसि निवेइए भणियं ॥४॥
पायतललेववसओ एयं न उणो तवाणुभावेणं । तो सावगेण विउणा एगेण निमंतिया गेहे ॥५॥
तेसिमणिच्छंताण वि पाए पक्खालिऊण भोयविया । गच्छंति चडयरेणं बुड्डंति नईए ताव जले ॥६॥
तो तत्थ अज्जसमिएहिं जोगसिद्धेहिं जोगचप्पुडियं । खिविउं वुत्तं विन्ने ! परकूलं गंतुमिच्छामि ॥७॥
ताव य दो तीए तडा मिलिया जोगप्पभावओ जाया । सासणपभावणा तावसा य सव्वे वि पडिबुद्धा ॥८॥
पव्वइया गुरुपासे संजाया बंभदीविया साहा । जम्हा उ बंभदीवियतवोवणाओ इमे जाया ॥९॥

॥ समिताख्यानकं समाप्तम् ॥५९॥

इदानीमार्यखपुटाख्यानक व्याख्यायते । तच्चेदम्-

सिरिअज्जखउडसूरी विज्जासिद्धो सुसाहुपरियरिओ । विहरंतो संपत्तो भरुयच्छपुरम्मि कइया वि ॥१॥
तस्सऽत्थि भाइणएज्जो खुड्डुमुणी कुणइ तस्स सुस्सूसं । सोउं परिवत्तंते गुरुणो विज्जाओ अणूदिवसं ॥२॥
पढियाओ कन्नाहेडएण विज्जाओ पढियसिद्धाओ । ताओ जओ तो तस्स वि चिंतियमेत्ताओ विफुरंति ॥३॥
गुडसत्थाओ अह अन्नया य मुणिजुयलमागयं तत्थ । पणमिय गुरुकमकमलं कयंजली जंपए एवं ॥४॥

कुलपतिना तरुमूलानां मेलनेन ज्ञातः कथमपि योगः । तं पदतलेषु दत्वा तापसा उत्तरन्ति नदीम् ॥ २ ॥
तेषां प्रभावना श्रावकानामुड्डावना ध्रुवं जाता । दृष्ट्वातिशयं तं तेषां भक्तिं करोति लोकः ॥ ३ ॥
तस्मिंश्च समये श्रीवैरस्वामिनो मातुलाश्च समितार्याः । विहरन्ति योगसिद्धास्ततस्तेषां निवेदिते भणितम् ॥ ४ ॥
पादतललेपवशत एतन्न पुनस्तपानुभावेन । ततः श्रावकेण विदुषा एकेन निमन्त्रिता गृहे ॥ ५ ॥
तेषामनिच्छतामपि पादान् प्रक्षाल्य भोजिताः । गच्छन्ति समूहेन ब्रुडन्ति नद्यास्तावज्जले ॥ ६ ॥
तदा तत्रार्यसमितै र्योगसिद्धै र्योगचप्पुटिकाम् । क्षिप्त्वोक्तं बेन्ने ! परकूलं गन्तुमिच्छामि ॥ ७ ॥
तावच्च द्वौ तस्यास्तटौ मिलितौ योगप्रभावाज्जाता । शासनप्रभावना तापसाश्च सर्वेऽपि प्रतिबुद्धाः ॥ ८ ॥
प्रव्रजिता गुरुपार्श्वे सञ्जाता ब्रह्मदीपिका शाखा । यस्मात्तु ब्रह्मदीपिकतपोवनादिमे जाताः ॥ ९ ॥

॥ समिताख्यानकं समाप्तम् ॥ ५९ ॥

आर्यखपूटाख्यानकम् ॥ ६० ॥

श्रीआर्यखपूटसूरि र्विद्यासिद्धः सुसाधुपरिवारितः । विहरन् सम्प्राप्तो भृगुकच्छपुरे कदापि ॥ १ ॥
तस्यास्ति भागिनेयः क्षुल्लकमुनिः करोति तस्य शुश्रूषाम् । श्रुत्वा परिवर्तयतो गुरून् विद्या अनुदिवसम् ॥ २ ॥
पठिताः कर्णदत्वा विद्याः पठितसिद्धाः । ता यतस्तदा तस्यापि चिन्तितमात्रा विस्फुरन्ति ॥ ३ ॥
गुडसार्थादथान्यदा च मुनियुगलमागतं तत्र । प्रणम्य गुरुक्रमकमलं कृताञ्जलि र्जल्पत्येवम् ॥ ४ ॥

भंते ! अकिरियवाई गुडसत्थपुरे समागओ भिक्खु । देवाइधम्मतत्तं नत्थि त्ति पयंपमाणो सो ॥५॥
विजिओ संतो साहूहिं गुरुपओसं गओ मरेऊण । वडुक्कराभिहाणो जाओ तत्थेव सो जक्खो ॥६॥
पुव्वपराभवमवलोइऊण नाणेण आसुरुत्तो सो । उवसग्गइ साहुजणं संपइ तुम्हे पमाणं ति ॥७॥
मोत्तुं सभाइणेज्जं गच्छं तत्थेव अज्जखउडपहू । सद्धिं मुणिजुयलेणं पत्तो गुडसत्थयं गामं ॥८॥
अवलंबिउं उवाणहजुयलं वडुक्करस्स जक्खस्स । कन्नेसुं तप्पुरओ सुत्तो पावरिय सियपडयं ॥९॥
देवच्चएण दिट्ठो सिट्ठो य सपउरनरवरिंदस्स । तं सोऊण सकोवो सपरियणो नरवई पत्तो ॥१०॥
नियजक्खस्स अवन्नं दट्ठुं उट्ठाविओ स नरवइणा । न वि उट्ठइ गरुएहिं वि सद्देहिं पयंपिओ बहुसो ॥११॥
सुहडेहिमेगदेसा कुओ वि पडयम्मि तम्मि अवणीए । तेहिं अहोभागो से दिट्ठो सपउरनरिंदेहिं ॥१२॥
जत्तो जत्तो पडयं अवणेउं ते तयं पलोयंति । तत्थ य तत्थ य मुणिणो पुयप्पएसं निरूवेंति ॥१३॥
दट्ठूण तयं भूवेण पभणियं रे ! बिभीसिया एसा । ता सिग्घं परिताडह कर-कस-दंडप्पहारेहिं ॥१४॥
तहविहिए मुणिवइणा तेसि पहारा निवावरोहम्मि । संकामिया सविज्जाबलेण तत्थेत्थ लग्गंति ॥१५॥
नाउं महल्लएहिं कहियं रन्नो निवो वि तं सोउं । चिंतेइ को वि एसो महप्पभावो महासत्तो ॥१६॥
उच्छलियबहलकोवो जाव न मं हणइ पउरपरिकलियं । खामेमि ताव इय चिंतिऊण पणओ निवो तस्स ॥१७॥
भणइ य महापसायं काउं मह खमह एगमवराहं । जम्हा करुणारसिया भवंति पणएसु सप्पुरिसा ॥१८॥

भन्ते ! अक्रियावादी गुडसार्थपुरे समागतो भिक्षुः । देवादिधर्मतत्त्वं नास्तीति प्रजल्पन् सः ॥ ५ ॥
विजितःसन् साधुभि र्गुरुप्रद्वेषं गतो मृत्वा । वडक्कराभिधानो जातस्तत्रैव स यक्षः ॥ ६ ॥
पूर्वपराभवमवलोक्य ज्ञानेनासुरत्वात् सः । उपसर्गयति साधुजनं सम्प्रति यूयं प्रमाणमिति ॥ ७ ॥
मुक्त्वा स्वभागिनेयं गच्छं तत्रैवार्यखपूटप्रभुः । सार्द्धं मुनियुगलेन प्राप्तो गुडसार्थकं ग्रामम् ॥ ८ ॥
अवलम्ब्योपानद्युगलं वडक्करस्य यक्षस्य । कर्णयोस्तत्पुरतः सुप्तः प्रावृत्य श्वेतपटकम् ॥ ९ ॥
देवार्चकेन दृष्टः शिष्टश्च सपौरनरवरेन्द्रस्य । तत् श्रुत्वा सकोपः सपरिजनो नरपतिः प्राप्तः ॥ १० ॥
निजयक्षस्यावज्ञां दृष्टवोत्थापितः स नरपतिना । नाप्युत्तिष्ठति गुरुकैरपि शब्दैः प्रजल्पितो बहुशः ॥ ११ ॥
सुभटैरेकदेशात्कुतोऽपि पटके तस्मिन्नपनीते । तैरधोभागस्तस्य दृष्टः सपौरनरेन्द्रैः ॥ १२ ॥
यत्र यत्र पटकमपनीय ते तकत्प्रलोकयन्ति । तत्र च तत्र च मुनेः पुतप्रदेशं निरुपयन्ति ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा तकद्भूपेन प्रभणितं रे ! बिभीषिकैषा । ततः शीघ्रं परिताडयत कर-कश-दण्डप्रहारैः ॥ १४ ॥
तथाविहिते मुनिपतिना तेषां प्रहारा नृपान्तःपुरे । संक्रामिताः स्वविद्याबलेन तत्रात्र लगन्ति ॥ १५ ॥
ज्ञात्वा महर्द्धिः कथितं राज्ञो नृपोऽपि तत् श्रुत्वा । चिन्तयति कोऽप्येष महाप्रभावो महासत्त्वः ॥ १६ ॥
उच्छलितबहलकोपो यावन्न मां हन्ति पौरपरिकलितम् । क्षमे तावदिति चिन्तयित्वा प्रणतो नृपस्तस्य ॥ १७ ॥
भणति च महाप्रसादं कृत्वा मम क्षमध्वमेकमपराधम् । यस्मात् करुणारसिका भवन्ति प्रणतेषु सत्पुरुषाः ॥ १८ ॥

तं निसुणिऊण सूरी समुट्ठिउं चल्लिओ तओ झत्ति । वडुक्करजक्खो वि हु संचलिओ तयणुमग्गेण ॥१९॥
अवराणि वि चामुंडाइयाणि सव्वाणि देवरूवाणि । सूरिपहम्मि पयट्टाणि खडहडंताणि समकालं ॥२०॥
जक्खाययणदुवारे बहुपुरिससएहिं चालणिज्जाओ । वाहरियाओ मुणिंदेण दोन्नि पाहाणदोणीओ ॥२१॥
ताओ वि हु चलियाओ एरिसमच्छरियमइसयं दट्ठुं । रायाइनयरलोओ पयपणओ पभणए एवं ॥२२॥
मुंचसु भयवं जक्खं मुक्को य स भयवया सपरिवारो । नियय्ट्ठाणम्मि गओ ताओ पुण दो वि दोणीओ ॥२३॥
धरियाओ हट्टमज्झम्मि थंमिउं पभणियं च सूरीहिं । जो कोइ मज्झ तुल्लो सो नेउ इमाओ नियठाणे ॥२४॥
गुडसत्थपुरे अज्ज वि तहेव चिट्ठंति ताओ तत्थेव । तद्दियहाओ जाओ जक्खो जिणसासणे भत्तो ॥२५॥
पडिवुद्धो पउरजणो महई जिणपवयणुन्नई जाया । साहुक्कारइ सव्वो वि सासणं वीरनाहस्स ॥२६॥
एत्तो चिय भरुयच्छे भोयणगिद्धो स भाइणएजमुणी । जाओ बुद्धो विज्जप्पभावओ तस्स पत्ताणि ॥२७॥
गयणंगणेण गच्छंति अणुदिणं नियउवासयगिहेसु । भोयणभरियाणि पुणो तह चेव य पडिनियत्तंति ॥२८॥
अहिवासिया समाणी टोप्परिया पवरआसणनिविट्ठा । सव्वेसिं पत्ताणं पुरओ सा एइ गच्छइ य ॥२९॥
एयारिसम्च्छरियं पेच्छिय बुद्धाण दंसणे लोगो । आउट्टो संजाया संघस्सोहावणा गरुई ॥३०॥
जाणाविओ समाणो संघेण समागओ मुणिवरिंदो । ताणऽवि उवासगाणं गिहेसु पत्ताणि पत्ताणि ॥३१॥
तेहिं वि पूयापुव्वं भत्तिब्भरनिब्भरेहिं भरियाणि । उप्पइयाणि नहंगणमग्गेणं जाव सव्वाणि ॥३२॥

तन्निश्रुत्य सूरिः समुत्थाय चलितस्ततो झटिति । वडक्करयक्षोऽपि खलु सञ्चलितस्तदनुमार्गेण ॥ १९ ॥
अपराण्यपि चामुण्डादिकानि सर्वाणि देवरुपाणि । सूरिपथि प्रवृत्तानि शिथीलिन्ति समकालम् ॥ २० ॥
यक्षायतनद्वारे बहुपुरुषशतैश्चालनीये । व्याहृते मुनीन्द्रेण द्वे प्रधानद्रोण्यौ ॥ २१ ॥
तेऽपि खलु चलित ईदृशमाश्चर्यमतिशयं दृष्ट्वा । राजादिनरलोकः पदप्रणतः प्रभणत्येवम् ॥ २२ ॥
मुञ्च भगवन् यक्षं मुक्तश्च स भगवता सपरिवारः । निजस्थाने गतस्ते पुन र्द्वेऽपि द्रोण्यौ ॥ २३ ॥
धृते हट्टमध्ये स्तम्भित्वा प्रभणित च सूरिभिः । यः कोऽपि मम तूल्यः स नयतु इमे निजस्थाने ॥ २४ ॥
गुडसार्थपुरे अद्यापि तथैव तिष्ठतस्ते तत्रैव । तद्दिवसाज्जातो यक्षो जिनशासने भक्तः ॥ २५ ॥
प्रतिबुद्धः पौरजनो महती जिनप्रवचनोन्नति र्जाता । साधूकरोति सर्वोऽपि शासनं वीरनाथस्य ॥ २६ ॥
इतश्चैव भृगुकच्छे भोजनगृद्धः स भागिनेयमुनिः। र्जातो बुद्धो विद्याप्रभावात्तस्य पात्राणि ॥ २७ ॥
गगनाङ्गणेन गच्छन्त्यनुदिवसं निजोपासकगृहेषु । भोजनभृतानि पुनस्तथा चैव च प्रतिनिवर्तयन्ति ॥ २८ ॥
अधिवासिता सती कचोलिका प्रवरासननिविष्टा । सर्वेषां पात्राणां पुरतः सैति गच्छति च ॥ २९ ॥
एतादृशमाश्चर्यं दृष्ट्वा बुद्धानां दर्शने लोकः । आकृष्टः सञ्जाता संघस्योड्डाहणा गुर्वी ॥ ३० ॥
ज्ञापितः सन् संघेन समागतो मुनिवरेन्द्रः । तेणमप्युपासकानां गृहेषु प्राप्तानि पात्राणि ॥ ३१ ॥
तैरपि पूजापूर्वं भक्तिभरनिर्भरै र्भृतानि । उत्पतितानि नर्भाऽगणमार्गेन यावत् सर्वाणि ॥ ३२ ॥

ता मुणिवइवेउव्वियसिलाए अब्भिट्टिऊण भग्गाणि । नायं च भाइणेज्जेण मह गुरु आगओ एत्थ ॥३३॥
तो भयभीओ नट्ठो बुद्धविहारम्मि सूरिणो वि गया । भिक्खूहि जंपिया एह नमह बुद्धस्स कमकमलं ॥३४॥
सूरीहिं जंपियं एहि बुद्ध ! वंदाहि मज्झ कमजुयलं । तो बुद्धदेवपडिमा विणिग्गया तेसि पणया य ॥३५॥
चिट्ठइ महरिहथूभो विहारदारे पयंपिओ सो वि । वंदाहि तं पि तो सो वि निवडिओ सूरिचलणेसु ॥३६॥
पुणरवि भणिओ चिट्ठसु अद्धोवणओ तहेव सो थक्को । तत्थ नियंठोणामियणामेण गओ गुरुपसिद्धिं ॥३७॥
दट्ठूण तमच्छरियं विम्हयउप्फुल्ललोयणो लोगो । जिणसासणाणुरत्तो पयंपिउं एवमारद्धो ॥३८॥
तं जयउ वीरसासणमेरिसअइसयसहस्ससंकिन्नं । जत्थ अजंगमदेवा वि सूरिचरणेऽभिवंदंति ॥३९॥
सव्वो वि जणो जिणपवयणम्मि जाओ सुभत्तिथिरचित्तो । जिणसासणस्स जाया समुन्नई भुवणमज्झम्मि ॥४०॥

॥ आर्यखपुटाख्यानकं समाप्तम् ॥६०॥

एएहिं जहा विहिया सत्तीए पवयणुन्नई असमा । कायव्वा अन्नेहिं वि तहेव सप्पुरिसरयणेहिं ॥१॥

सैद्धान्तिकप्रमुखसत्पुरुषप्रभावैरष्टाभिरप्यपरतीर्थमतं निरस्य ।
श्रीसर्ववित्प्रवचनोन्नतिमङ्गिमान्यो धन्यः स कोऽपि कुरुते शिवशर्मबीजम् ॥२॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे प्रवचनोन्नतिवर्णनो नामाष्टादशोऽधिकारः ॥१८॥

ततो मुनिपतिविकुर्वितशिलायामास्फाल्य भग्नानि । ज्ञातं च भागिनेयेनसुतेन मम गुरुरागतोऽत्र ॥ ३३ ॥
तदा भयभीतो नष्टो बुद्धविहारे सूरयोऽपि गताः । भिक्षुभि र्जल्पिता एति नमत बुद्धस्य क्रमकमलम् ॥ ३४ ॥
सूरिभि र्जल्पितमेहि बुद्ध ! वन्दस्व मम क्रमयुगलम् । तदा बुद्धदेवप्रतिमा विनिर्गता तेषां प्रणता च ॥ ३५ ॥
तिष्ठति महार्हस्तूपो विहारद्वारे प्रजल्पितः सोऽपि । वन्दस्व त्वमपि तदा सोऽपि निपतितः सूरिचरणयोः ॥ ३६ ॥
पुनरपि भणितस्तिष्ठार्द्धवनतस्तथैव सः स्थितः । तत्र नियण्ठावनामितनाम्ना गतो गुरुप्रसिद्धिम् ॥ ३७ ॥
दृष्ट्वा तमाश्चर्यं विस्मितोत्फुल्ललोचनो लोकः । जिनशासनानुरक्तः प्रजल्पितुमेवमारब्धः ॥ ३८ ॥
तं जयतु वीरशासनमीदृशातिशयसहस्रसङ्कीर्णम् । यत्राजङ्गमदेवा अपि सूरिचरणेऽभिवन्दन्ते ॥ ३९ ॥
सर्वोऽपि जनो जिनप्रवचने जातः सुभक्तिस्थिरचित्तः । जिनशासनस्य जाता समुन्नति र्भुवनमध्ये ॥ ४० ॥

॥ आर्यखपुटाख्यानकं समाप्तम् ॥ ६० ॥

एतैर्यथा विहिता शक्त्या प्रवचनोन्नतिरसमा । कर्तव्याऽन्यैरपि तथैव सत्पुरुषरत्नैः ॥

• • •

[१९. जिनधर्माराधनोपदेशाधिकारः ।]

उक्तं प्रवचनोन्नतिकारणम् एतच्च परमं धर्मसर्वस्वम् । एतत्करणशक्त्यभावेऽपि स्वजनादिमोहं विहाय धर्म एव विधेय इत्यु-पदेशमभिधातुकाम आह -

सयणे धणे असारे मोहं मोत्तुण कुणइ जिणधम्मं ।
जं परभवाणुगामी सो च्चिय जोहारमित्तो व्व ॥ २४ ॥

व्याख्या-'स्वजने' माता-पित्रादौ 'धने च' गणिमादौ 'असारे' परमार्थसारशून्ये 'मोहं' मूढतां 'मुक्त्वा' त्यक्त्वा [कुरुत] विधत्त 'जिनधर्मं' सर्वविद्भणितमनुष्ठानम् । कारणमाह- 'यद्' यस्मात् कारणात् 'परभवानुगामी' परलोकानुयायी 'स एव' जिनधर्म एव । किंवत् ? 'जोत्कारमित्रवत्' मित्रतृतीयमिव इत्यक्षरार्थः ॥ २४ ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकादवसेयः । तच्चेदम् -

भावार्थस्त्वाख्यानकादवसेयः । तच्चेदम्

निस्सेससुहयवसुहाविलासिणीकुसुमसेहरसमाणं । सप्पुरिसरयणजलही रयणउरं नाम पुरमत्थि ॥१॥
तम्मि पुरं अरिवारणवियारणो रयणसारनरनाहो । परिहरियइयरनरवइकमलाकुलबालियागेहं ॥२॥
उप्पत्तियाइचउविहमइविहवालंकिओ महामंती । तस्सऽत्थि बुद्धिसारो सारेयरनायपरमत्थो ॥३॥
सो अन्नया विचिंतइ राया मित्तो न होइ कइया वि । किंतु मह पुव्वपुन्नप्पभावओ वहइ मित्तत्तं ॥४॥
अह कहवि देव्वपरिणइवसेण रूसिज्ज मझ नरनाहो । तद्दियहवसणतरणाय किंपि विरएमि मित्तमहं ॥५॥

योत्कारमित्राख्यानकम् ॥ ६१ ॥

निःशेषसुभगवसुधाविलासिनिकुसुमशेखरसमानम् । सत्पुरुषरत्नजलधिं रत्नपुरं नाम पुरमस्ति ॥ १ ॥
तस्मिन्पुरे ऽरिवारणविदारणो रत्नसारनरनाथः । परिहृतेतरनरपतिकमलाकुलबालिकागेहम् ॥ २ ॥
उत्पत्तिकादिचतुर्विधमतिविभवालङ्कृतो महामन्त्री । तस्यास्ति बुद्धिसारः सारेतरज्ञातपरमार्थः ॥ ३ ॥
सोऽन्यदा विचिन्तयति राजा मित्रं न भवति कदापि । किन्तु ममपूर्वपूण्यप्रभावाद्वहति मित्रत्वम् ॥ ४ ॥
अथ कथमपि दैवपरिणतिवशेन रुष्येन्मम नरनाथः । तद्दिवसव्यसनतरणाय किमपि विरचयामि मित्रमहम् ॥ ५ ॥

इय चिंतऊण तत्तो महंतसामंतवंससंभयं । विरएइ गरुयनवनेहनिब्भरं किंपि वरमित्तं ॥६॥
आभरण-वत्थ-भोयण-सयणा-ऽऽसण-जाणवाहणाईयं । नियदेहनिव्विसेसस्स तस्स वियरेइ अणुदियहं ॥७॥
अवरो वि तेण वीवाह-विद्धि-बद्धावणाइपव्वेसु । विहिओ मित्तो आभरण-वत्थदाणेहिं सचिवेण ॥८॥
अवरं च रायमग्गे उत्तमवंसुब्भवो महासुहडो । जोहरमेत्तसज्झा संजाया तेण सह मेत्ती ॥९॥
अह अन्नया अयंडे बाढं कुवियं नरेसरं नाउं । चिंतेइ महामंती भयकंपिरमाणसो एवं ॥१०॥
नूणं न एत्थ वासो मह होही राइणा विरुद्धेण । ता वच्चामि विएसं तत्थ कहं जामि असहाओ ? ॥११॥
पर मज्झ परममित्तो विज्जइ नवनेहनिब्भरो पढमो । सन्निज्झेणं तो तस्स जामि रज्जंतरं अन्नं ॥१२॥
इय चिंतिऊण मंती जाइ तओ पढममेत्तगेहम्मि । उट्ठित्तु सो वि समुहं सयणा-ऽऽसणदाण-विणयाइं ॥१३॥
विरइत्तु तो पयंपइ मह गेहमलंकियं तए मित्त ! कज्जेण केण ? भणिए भणइ तओ बुद्धिसारो वि ॥१४॥
मह कम्मपरिणईए विणाऽवराहेण रुट्ठओ राया । ता तुह साहिज्जेणं वच्चामी अन्नदेसम्मि ॥१५॥
इय निसुणिउं पयंपइ जइ रुट्ठो तुज्झ नरवई मित्त ! । एक्कं पि पयं गंतुं ता न खमो सामि ! साहेज्जे ॥१६॥
आयन्निऊण एवं मंती चिंतेइ जायवेरग्गो । एक्कपए च्चिय जाया उवयारा निप्फला किह णुं ? ॥१७॥
विच्छायमुहो गच्छइ मंती बीयम्मि मित्तगेहम्मि । सो वि समुट्ठिय समुहं पयंपए भणसु किं कज्जं ? ॥१८॥
मंती वि कहइ सव्वं पयंपए सो वि मित्त ! न समत्थो । नियपुत्त-कलत्ताइं परिहरिउं तुज्झ कज्जम्मि ॥१९॥
किंतु पुरीए परिसरे तं अब्भडवंचियं नियत्तेमि । देसंतरम्मि गंतुं तुमए सद्धिं न सक्केमि ॥२०॥

इति चिन्तयित्वा ततो महासामन्तवंशसम्भूतम् । विरचयति गुरुकनवस्नेहनिर्भरं किमपि वरमित्रम् ॥ ६ ॥
आभरण-वस्त्र-भोजन-शयनाऽऽसन-यानवाहनादिकम् । निजदेहनिर्विशेषस्य तस्मै वितरत्यनुदिवसम् ॥ ७ ॥
अपरोऽपि तेन विवाह-वृद्धि-वर्धापनादिपर्वेषु । विहितो मित्रमाभरण-वस्त्रदानैः सचिवेन ॥ ८ ॥
अपरं च राजमार्गे उत्तमवंशोद्भवो महासुभटः । जोत्कारमात्रसज्जा सञ्जाता तेन सह मैत्री ॥ ९ ॥
अथान्यदाकाण्डे बाढं कुपितं नरेश्वरं ज्ञात्वा । चिन्तयति महामन्त्री भयकम्पमानमानस एवम् ॥ १० ॥
नूनं नात्र वासो मम भविष्यति राज्ञ विरुद्धेन । ततो व्रजामि विदेशं तत्र कथं याम्यसहायः ? ॥ ११ ॥
परं मम परममित्रं विद्यते नवस्नेहनिर्भरः प्रथमः । सान्निध्येन ततस्तस्य यामि राज्यान्तरमन्यम् ॥ १२ ॥
इति चिन्तयित्वा मन्त्री याति ततः प्रथममित्रगृहे । उत्थाय सोऽपि संमुखं शयनाऽऽसनदान-विनयादिम् ॥ १३ ॥
विरच्य ततः प्रजल्पति मम गृहमलङ्कृतं त्वया मित्र ! । कार्येण केन ? भणिते भणति ततो बुद्धिसारोऽपि ॥ १४ ॥
मम कर्मपरिणत्या विनापराधेन रुष्टो राजा । तदा तव साहाय्येन व्रजाम्यन्यदेशम् ॥ १५ ॥
इति निश्रुत्य प्रजल्पति यदि रुष्टस्तव नरपतिर्मित्रं ! । एकमपि पदं गन्तुं तावन्न क्षमः स्वामिन् ! साहाय्ये ॥ १६ ॥
आकर्ण्यैवं मन्त्री चिन्तयति जातवैराग्यः । एकपदे चैव जाता उपकारा निष्फलाः कथं नु ? ॥ १७ ॥
विच्छायमुखो गच्छति मन्त्री द्वितीये मित्रगृहे । सोऽपि समुत्थाय सम्मुखं प्रजल्पति भण किं कार्यम् ? ॥ १८ ॥
मन्त्र्यपि कथयति सर्वं प्रजल्पति सोऽपि मित्रं ! न समर्थः । निजपुत्र-कलत्राणि परिहर्तुं तव कार्ये ॥ १९ ॥
किन्तु पूर्याः परिसरे त्वमभटवञ्चितं निवर्तयामि । देशान्तरे गन्तुं त्वया सार्धं न शक्नोमि ॥ २० ॥

तो तं पभणइ मंती सच्चयमाहाणयं कयं तुमए । तक्केण मक्खिउं मक्खियाहिं खावेसि तुममेवं ॥२१॥
चिंतेइ इमे सम्माणदाणपरिओसघणसिणेहा वि । जइ न सहाया जाया ता किं जोहारमेत्तेण ? ॥२२॥
तह वि परिपुच्छियव्वो त्ति चिंतिउं जाइ संसइयहियओ । जोहारमेत्तभवणे साहइ सव्वं पि वुत्तंतं ॥२३॥
सो भणइ मइ जियंते निद्दलियासेस दुक्खसंदोहे । वालविणिवायमेत्तं पि मित्त ! न भयं तुह जयम्मि ॥२४॥
ता साहसु नियकज्जं इय भणिए भणइ बुद्धिसारो वि । गिण्हित्तु सारदव्वं वच्चामो अन्नदेसम्मि ॥२५॥
भरिऊण सारदविणस्स रहवरं रयणिपढमपहरम्मि । नीहरिओ नयराओ तं सन्नद्धं पुरो काउं ॥२६॥
पत्तो य अवरदेसंतरम्मि तद्देसनयरनरनाहो । जाणित्तु बुद्धिसारं समागयं सम्मुहो एइ ॥२७॥
नाऊण बुद्धिकलहंसकेलिलीलाविलासकमलसरं । सो वि नियमंतिमंडलसिरोमणित्ते निवेसइ ॥२८॥
इदानीमन्तरङ्गभावना-
मंती संसारिजिओ बुद्धीविन्नाणसंपयावसहो । पयईए वल्लहसुहो दुहभीरू गुणनिवासगिहं ॥२९॥
जमसरिसो पुहइवई सइसुत्थियजणअतक्कियागमणो । सच्छंदचरणसीलो करुणारहिओ य सव्वस्स ॥३०॥
अकयन्नुयानिवासो विन्नेओ पढममंतिमित्तसमो । उवयारगुणअगेज्झो नेओ देहो खलयणो व्व ॥३१॥
भणियं च-
तहलालियस्स तहपालियस्स तहसुरहिगंधमहियस्स । खलदेह ! तुज्झ जुत्तं ? पयं पि नो देसि गंतव्वे ॥३२॥
जह सो पढमो मित्तो सरणं मंतिस्स आवइगयस्स । मणयं पि न संजाओ देहो वि तहेव जीवस्स ॥३३॥

ततस्तं प्रभणति मन्त्री सत्यब्राह्मणकं कृतं त्वया । तक्रेण म्रक्षित्वा मक्षिकाभिः खादयसि त्वमेवम् ॥ २१ ॥
चिन्तयतीमौ सन्मानदानपरितोषघनस्नेहावपि । यदि न सहायौ जातौ तदा किं जोत्कारमित्रेण ? ॥ २२ ॥
तथापि परिपृष्टव्य इति चिन्तयित्वा याति शंसयितहृदयः । जोत्कारमित्रभवने कथयति सर्वमपि वृत्तान्तम् ॥ २३ ॥
स भणति मयि जीवति निर्दलिताशेषदुःखसन्दोहे । वालविनिपातमात्रमपि मित्रं ! न भयं तव जगति ॥ २४ ॥
ततः कथय निजकार्यमिति भणिते भणति बुद्धिसारोऽपि । गृहीत्वा सारद्रव्यं गच्छाम्यन्यदेशम् ॥ २५ ॥
भृत्वा सारद्रविणस्य रथवरं रजनिप्रथमप्रहरे । निःसृतो नगरात्तं सन्नद्धं पुरस्कृत्य ॥ २६ ॥
प्राप्तश्चापरदेशान्तरे तद्देशनगरनरनाथः । ज्ञात्वा बुद्धिसारं समागतं सम्मुखमेति ॥ २७ ॥
ज्ञात्वा बुद्धिकलहंसकेलिलीलाविलासकमलसरः । सोऽपि निजमन्त्रिमण्डलशिरोमणित्वे निविशति ॥ २८ ।
मन्त्री संसारिजीवो बुद्धीविज्ञानसंपदावसथः । प्रकृत्या वल्लभसुखो दुःखभीरु र्गुणनिवासगृहम् ॥ २९ ॥
यमसदृशः पृथिवीपतिः सदासुस्थितजनातर्कितागमनः । स्वच्छन्दचरणशीलः करुणारहितश्च सर्वस्य ॥ ३० ॥
अकृतज्ञतानिवासो विज्ञेयः प्रथम मन्त्रिमित्रसमः । उपकारगुणाग्राह्यो ज्ञेयो देहः खलजन इव ॥ ३१ ॥
भणितं च -
तथालालितस्य तथापालितस्य तथा सुरभिगन्धमहितस्य । खलदेह ! तव युक्तं ? पदमपि न ददासि गन्तव्ये ॥ ३२ ॥
यथा स प्रथमो मित्रः शरणं मन्त्रिण आपद्गतस्य । मनागपि न सञ्जातो देहोऽपि तथैव जीवस्य ॥ ३३ ॥

जह सो बीओ मित्तो नियकज्जपरायणो सुहेक्करसो । मंतिस्स न साहेज्जं दुहियस्स तहाविहमकासी ॥३४॥
तह सयणा विन्नेया कित्तिमनेहा सकज्जतल्लिच्छा । परमत्थेण न किंचि वि जियस्स जंतस्स साहेज्जे ॥३५॥
भणियं च-
बंधवा सुहिणो सव्वे पिय-माइ-पुत्त-भायरा । पिइवणाओ नियत्तंति दाऊण सलिलंजलिं ॥३६॥
अब्भुक्खंति य तं गेहं पियम्मि वि मए जणे । हिट्ठा तेणऽज्जियं दव्वं, तहेव विलसंति य ॥३७॥
अत्थोवज्जणहेऊहिं, पावकम्मेहिं पेरिओ । एक्कओ चेव सो जाइ, दुग्गइं दुहभायणं ॥३८॥
जोहारमित्तमेत्ती मंतिसहाओ जहा तइयमित्तो । तह अप्पपयत्तकओ वि होइ जीवस्स जिणधम्मो ॥३९॥
भणियं च-
थेवं थेवं धम्मं करेह जइ ता बहुं न सक्केह । पेच्छह महानईओ बिंदूहिं समुद्दभूयाओ ॥४०॥
तहा-
इहलोइयम्मि कज्जे सव्वारंभेण जह जणो तणइ । तह जइ लक्खंसेण वि परलोए ता सुही होई ॥४१॥
थेवोवयारविहिओ वि मंतिणा जह इमो तइयमित्तो । सरणं जाओ जीवस्स परभवे तह इमो धम्मो ॥४२॥

॥ योत्कारमित्राख्यानकं समाप्तम् ॥६१॥

सर्वं धनं सनिधनं स्वजनादयोऽपि प्रायो भृशं स्वभरणं प्रतिबद्धकक्षाः ।
मोहं विहाय तदमीषु जिनेन्द्रधर्मं जोत्कारमित्रमिव जन्महितं कुरुध्वम् ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे जोत्कारमित्रनिदर्शनजिनधर्मवर्णन एकोनविंशोऽधिकारः समाप्तः ॥२१॥

यथा स द्वितीयो मित्रो निजकार्यपरायणः सुखेकरसः । मन्त्रिणो न साहाय्यं दुःखितस्य तथाविधमकार्षीत् ॥ ३४ ॥
तथा स्वजना विज्ञेयाः कृत्रिमस्नेहाः स्वकार्यतत्पराः । परमार्थेन न किञ्चिदपि जीवस्य यातः साहाय्ये ॥ ३५ ॥
भणितं - च —
बन्धवः सखायः सर्वे पितृ-मातृ-पुत्र-भ्रातरः । पितृवनान्निवर्तयन्ति दत्त्वा सलिलाञ्जलिम् ॥ ३६ ॥
अभ्युक्षन्ति च तं गेहं प्रियेऽपि मृते जने । हृष्टास्तेनार्जितं द्रव्यं तथैव विलसन्ति च ॥ ३७ ॥
अर्थोपार्जनहेतुभिः पापकर्मभिः प्रेरितः । एककश्चैव स याति दुर्गतिं दुःखभाजनम् ॥ ३८ ॥
जोत्कारमित्रमैत्री मन्त्रिसहायो यथा तृतीयमित्रः । तथात्मायात्तकृतोऽपि भवति जीवस्य जिनधर्मः ॥ ३९ ॥
भणितं च -
स्तोकं स्तोकं धर्मं कुरुत यदि तावद्बहुं न शक्नुन । पश्यथ महानद्यो बिन्दुभिः समुद्रभूताः ॥ ४० ॥
तथा -
इहलोके कार्ये सर्वारम्भेण यथा जनस्तनोति । तथा यदि लक्षांशेनापि परलोके तदा सुखी भवति ॥ ४१ ॥
स्तोकोपकारविहितोऽपि मन्त्रिणा यथायं तृतीयमित्रः । शरणं जातो जीवस्य परभवे तथायं धर्मः ॥ ४२ ॥

॥ योत्कारमित्राख्यानकं समाप्तम् ॥ ६१ ॥

●●●

[२०. नरजन्मरक्षाधिकारः ।]

अनन्तरं जोत्कारमित्रनिदर्शनेन धर्मो व्यावर्णितः । साम्प्रतमेतत्कारणसामग्रीप्रधानतरमूलधनकल्पनरत्व-प्राप्तावपि निजयोग्यतानुरूपेण धर्मफलं, प्राप्यते इत्येतदभिधित्सुराह -

लद्धुं केइ नरत्तं सग्गसुहं नरसुहं व अज्जिंति ।
हारिंति केइ तं पि हु इह नायं वणियपुत्तेहिं ॥ २५ ॥

व्याख्या-'लब्ध्वा' अवाप्य 'केचिद्' जीवाः 'नरत्वं' मनुष्यत्वं 'स्वर्गसुखं' देवलोकशर्म 'नरसुखं' मनुजसुखं वा 'अर्जयन्ति' विढपन्ति 'हारयन्ति' नाशयन्ति 'केऽपि' निर्भाग्याः 'तदपि' नरत्वम् । हुः इति पादपूरणे । 'इह' अस्मिन्नर्थे 'ज्ञातं' द्रष्टान्तः 'वणिक्पुत्रैः ' वाणिजकतनयैरित्यक्षरार्थः ॥ २५ ॥

गर्भार्थस्त्वाख्यानकगम्यः तच्चेदम्-

रमणीयमहावणसंडमंडिए सरवरेहिं संकिन्ने । अंतो बहिं च चच्चर-चउक्क-चउमूह-तिगविभत्ते ॥१॥
नयरम्मि वसंतपुरे नायरयजणाण गोरवट्ठाणं । निवसइ सुइववहरणो नयसारो नाम पुरसेट्ठी ॥२॥
अह अन्नया य को किर कुडंबपयसमुचिओ महं होही ? । इय चिंताए तिण्हं पुत्ताण परिक्खणनिमित्तं ॥३॥
नियसयणबंधुपमुहं नायरयजणं निमंतिउं गेहे । भोयाविऊण विहिणा तस्स समक्खं भणइ सेट्ठी ॥४॥
एएसि मह सुयाणं तिण्हं पि हु को कुडुंबपयजोगो ? । तं चेव विसेसेणं जाणसि जोगो त्ति तेणुत्तं ॥५॥

वाणिजकतनयाख्यानकम् ॥ ६२ ॥

रमणीयमहावनखण्डमण्डिते सरोवरैः सङ्कीर्णे । अन्तर्बहिश्च चत्वर-चतुष्क-चतुर्मुख-त्रिकविभक्ते ॥ १ ॥
नगरे वसन्तपुरे नागरकजनानां गौरवस्थानम् । निवसति शुचिव्यवहारो नयसारो नाम पुरश्रेष्ठी ॥ २ ॥
अथान्यदा च कः किल कुटुम्बपदसमुचितो मम भविष्यति ? । इति चिन्तायां त्रयाणां पुत्राणां परीक्षणनिमित्तम् ॥ ३ ॥
निजस्वजनबन्धुप्रमुखं नागरकजनं निमन्त्र्य गृहे । भोजयित्वा विधिना तस्य समक्षं भणति श्रेष्ठी ॥ ४ ॥
एतेषां मम सुतानां त्रयासृणामपि खलु कः कुटुम्बपदयोग्यः ? । त्वं चैव विशेषेण जानासि योग्य इति तेनोक्तम् ॥ ५ ॥

इय एवं ता तुम्हं समक्खमेए अहं परिक्खेमि । इय भणिउं वाहरिया तिन्नि वि ते पउरपच्चक्खं ॥६॥
पत्तेयं पत्तेयं लक्खं दाऊण दविणजायस्स । ववहारत्थं देसेसु पेसिया तस्समक्खमिमे ॥७॥
तो तेसिं पुत्ताणं चिंतियमेगेणमम्हमेस पिया । पाएण दीहदरिसी धम्मपिओ सुइसमायारो ॥८॥
पाणच्चए वि अम्हाणमुवरि न कया वि चिंतइ विरूवं । केणावि कारणेणं ता नूणं एत्थ भवियव्वं ॥९॥
इय परिभाविय तहियं तह कहवि हु नियमईए ववहरियं । जह विढविऊण कोडी वरिसंते पूरिया तेण ॥१०॥
बीएण चिंतियमिमं मम पिउणो विज्जए पभूयधणं । ता किं किलेसजाले पाडेमि मुहाए अप्पाणं ? ॥११॥
जइ सव्वं पि य विलसामि ता गओ कह मुहं पयंसिस्सं ? । तम्हा मूलं रक्खिय सेसं भक्खेमि किं बहुणा ? ॥१२॥
तइएणमजोगत्ता विगप्पियं नियमणम्मि मह जणओ । वुड्ढत्तणदोसेहिं संपइ कोडीकओ जम्हा ॥१३॥
तिट्ठा लज्जानासो भयबाहुल्लं विरूवभासित्तं । पाएण मणुस्साणं दोसा जायंति वुड्ढत्ते ॥१४॥
अन्नह कहमम्हे पट्ठवेइ देसंतरम्मि सइ विहवे ? । इय परिभाविय सव्वं वरिसंते भक्खियं दव्वं ॥१५॥
संपत्ता सव्वे वि हु नियस(म)ए वन्नियस्सरूवा ते । पुणरवि तहेव विहिऊण सेट्ठिणा भोयणाईयं ॥१६॥
सयणाईण समक्खं पढमो संठाविओ कुडंबपए । बीओ भंडारपए तइओ किसिमाइकज्जेसु ॥१७॥
मज्झत्थेणं जणएण नियसुया जह इमे जणसमक्खं । सकयाणुरूवपयवीए ठाविया बुद्धिमंतेण ॥१८॥
तह चेव धम्मविसए जीवे ठावेइ कम्मपरिणामो । सकयाणुरूवसरिसे पयम्मि भणियं च जेणमिमं ॥१९॥

इत्येवं तावद्युस्माकं समक्षमेतानहं परीक्षे । इति भणित्वा व्याहृतास्त्रयोऽपि ते पौरप्रत्यक्षम् ॥ ६ ॥
प्रत्येकं प्रत्येकं लक्षं दत्वा द्रविणजातस्य । व्यवहारार्थं देशेषु प्रेषितास्तत्समक्षमिमे ॥ ७ ॥
ततस्तेषां पुत्राणां चिन्तितमेकेनास्मदेष पिता । प्रायेण दीर्घदर्शी धर्मप्रियः शुचिसमाचारः ॥ ८ ॥
प्राणात्ययेऽप्यस्माकमुपरि न कदापि चिन्तयति विरुपम् । केनापि कारणेन तावन्नूनमत्र भवितव्यम् ॥ ९ ॥
इति परिभाव्य तत्र तथा कथमपि खलु निजमत्या व्यवहृतम् । यथार्जयित्वा कोटि वर्षान्ते पूरिता तेन ॥ १० ॥
द्वितीयेन चिन्तितनिदं मम पितु र्विद्यते प्रभूतधनम् । ततः किं क्लेशजाले पातयामि मुधात्मानम् ? ॥ ११ ॥
यदि सर्वमपि च विलसामि ततो गतः कथं मुखं प्रदर्शयिष्यामि ? । तस्मान्मूलं रक्षित्वा शेषं भक्षयामि किं बहुना ? ॥ १२ ॥
तृतीयेनायोग्यत्वाद्विकल्पितं निजमनसि मम जनकः । वृद्धत्वदोषैः सम्प्रति क्रोडीकृतस्तस्मात् ॥ १३ ॥
तृष्णा लज्जानाशो भयबाहुल्यं विरुपभाषित्वम् । प्रायेण मनुष्याणां दोषा जायन्ते वृद्धत्वे ॥ १४ ॥
अन्यथा कथमस्मान् प्रस्थापयति देशान्तरे सति विभवे ? । इति परिभाव्य सर्वं वर्षान्ते भक्षितं द्रव्यम् ॥ १५ ॥
सम्प्राप्ताः सर्वेऽपि खलु निजसमये वर्णितस्वरूपास्ते । पुनरपि तथैव विधाय श्रेष्ठिना भोजनादिकम् ॥ १६ ॥
स्वजनादीनां समक्षं प्रथमः संस्थापितः कुटुम्बपदे । द्वितीयो भण्डागारपदे तृतीयः कृषीकर्मादिकार्येषु ॥ १७ ॥
मध्यस्थेन जनकेन निजसुता यथेमे जनसमक्षम् । स्वकृतानुरुपपदव्यां स्थापिता बुद्धिमता ॥ १८ ॥
तथा चैव धर्मविषये जीवान् स्थापयति कर्मपरिणामः । स्वकृतानुरुपसदृशे पदे भणितं च येनेदम् ॥ १९ ॥

जहा य तिन्नि वणिया मूलं घेत्तूण निग्गया । एगो त्थ लभए लाभं एगो मूलेण आगओ ॥२०॥
एगोमूलंपि हारिता आगओ तत्थ वाणिओ । ववहारे उवमा एसा एवं धम्मे वियाणइ ॥२१॥
माणुसत्तं भवे मूलं लाभो देवगई भवे । मूलच्छेएण जीवाणं नरय-तिरिक्खत्तणं भवे ॥२२॥

॥ वणिक्पुत्रत्रयाख्यानकं समाप्तम् ॥६२॥

लब्ध्वा शुभं मनुजजन्म नरोऽर्जयन्ति, स्वःशर्म केचन नरप्रभवं सुखं वा ।
निर्बुद्धयस्तदपि केचन हारयन्ति, ज्ञातं वणिक्तनयसत्रयमाहुरत्र ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे मूलधनकल्पनरजन्मव्यवहारसातादिप्रतिपादको विंशतितमोऽधिकारः समाप्तः ॥२०॥

यथा च त्रयो वणिजो मूलं गृहीत्वा निर्गताः । एकोऽथ लभते लाभमेको मूलेनागतः ॥ २० ॥
एको मूलमपि हारयित्वागतस्तत्र वणिक् । व्यवहारउपमेषैवं धर्मे विजानाति ॥ २१ ॥
मानुष्यत्वं भवेन्मूलं लाभो देवगतिर्भवेत् । मूलच्छेदेन जीवानां नरक-तिर्यक्त्वं भवेत् ॥ २२ ॥

॥ वणिक्पुत्रत्रयाख्यानकं समाप्तम् ॥ ६२ ॥

●●●

[२१. उत्तमजनसंसर्गिगुणवर्णनाधिकारः ।]

लोकव्ययवहारज्ञातेन धर्मव्यवहारलाभादिकमभिहितम् । लाभश्चोत्तमजनसंसर्गाद् भवतीत्युत्तमसंसर्गि-विधेयतामाह -

उत्तमजणसंसग्गी परमगुणाणं निबंधणं होइ ।
एत्थ पहाकर-वरसुय-कंबलसबला उदाहरणं ॥ २६ ॥

व्याख्या - 'उत्तमजनसंसर्गिः' प्रधानजनसम्बन्धः 'परमगुणानां' [सर्वोत्कृष्टगुणानां] 'निबन्धनं' कारणं 'भवति' जायते 'अत्र' अस्मिन्नर्थे प्रभाकरश्च-ब्राह्मणपुत्रः वरशुकौ च- गिरिशुक-पुष्पशुकौ कम्बल-सबलौ च-श्रावकवत्सतरौ ते तथोक्ताः 'उदाहरणं' द्रष्टान्ता इति गाथावयवार्थः ॥ २६ ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकगम्यः। तानि च।मूनि ।

तत्र तावत् प्रभाकराख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

सोवागावाणगमंडले व्व विलसंतमत्तमायंगे । नयरम्मि धरणितिलए दिवायरो वसइ दियपवरो ॥१॥
चउदसविज्जाठाणाण पारओ रायपउरजणपुज्जो । विज्जाजुयाणमहवा जणाण सव्वत्थ कल्लाणं ॥२॥
तस्स य एगो पुत्तो पहाकरो सो य तारिसपिया वि । विज्जावियलोऽजोगाण हंत ! किं कुणउ सामग्गी ? ॥३॥
जूयं रमेइ धाउं धमेइ वेसं समेइ पयईए । न कुणइ सिक्खं खल्ली पयईण जमोसहं नत्थि ॥४॥

प्रभाकराख्यानकम् ॥ ६३ ॥

श्वपाकापणकमण्डल इव विलसन्मत्तमातङ्गे । नगरे धरणितिलके दिवाकरो वसति द्विजप्रवरः ॥ १ ॥
चतुर्दश।वेद्यास्थानानां पारगो राजपौराजनपूज्यः । विद्यायुगानामथवा जनानां सर्वत्र कल्याणम् ॥ २ ॥
तस्य चैक पुत्रः प्रभाकरः स च तादृशपितापि । विद्याविकलोऽयोग्यानां हन्त ! किं करोतु सामग्री ? ॥ ३ ॥
द्यूतं रमते धातुं धमति वेश्यां समैति प्रकृत्या । न करोति शिक्षां दुष्टप्रकृतीनां यदौषधं नास्ति ॥ ४ ॥

तह वि हु सो जणएणं निरंतरं सिक्खविज्जइ हियत्थं । अम्मा-पिऊणमहवा हिययमवच्चे हियं चेव ॥५॥
भणिओ वेयमहिज्जसु इहइं पि हु जेण गोरवट्ठाणं । होहिसि वच्छ ! निरायं विउसाणं सेवणिज्जो सि ॥६॥
एवं भणिओ पभणइ को पढिऊणं दिवं गओ ताय ? । होही जं भवियव्वं विणा वि पाढेणमवरं च ॥७॥
बुभूक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते, पिपासितैः काव्यरसो न पीयते ।
न च्छन्दसा केनचिदुद्धृतं कुलं, हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः ॥८॥
पुणरवि भणिओ जइ वि हु बहुयं न पढसि तहा वि मह वयणा । गिण्हसु सिलोगमेगं बुज्झ तयत्थं च सो य इमो ॥९॥
उत्तमैः सह साङ्गत्यं, पण्डितैः सह सङ्कथा । अलुब्धैः सह मित्रत्वं, कुर्वाणो नावसीदति ॥१०॥
एवं वसणासत्तस्स जणयलच्छिं च विलसमाणस्स । वच्चंति वासरा तस्स वेयकिरियाविउत्तस्स ॥११॥
अह अन्नया य जणओ तिहुयणसाहारणेण रोएण । अच्चंतं अभिभूओ सो य पमत्तो रमइ जूयं ॥१२॥
वाहरिओ वि हु जूएण छोहिओ भणइ एस एमि त्ति । एव पयंपंतस्स वि पंचतं पाविओ जणओ ॥१३॥
उट्ठसु भो ! तुज्झ पिया मउ त्ति ता कुणसु तस्स मयकिच्चं । पभणइ निग्घिणकम्मो संपयमवि सो अजोगत्ता ॥१४॥
भो भो ! तं मह पियरं अणेण मग्गेण नीहरावेह । समगं चिय लोएणं जेणं वच्चामि पेयवणे ॥१५॥
एवमजोगत्तणओऽवहीरिओ सो मयम्मि पियरम्मि । निंदिज्जइ लच्छी वि हु समं गया जणयपुन्नेहिं ॥१६॥
एवमणेणं न कयं पिउवयणं न वि य सिट्ठलोयस्स । जाओ दुहाण भायणमच्चंतमिमो जओ भणियं ॥१७॥
विदुरेष्यमपायमात्मना, परतः श्रद्दधतेऽथवा बुधाः । न परोपहितं न च स्वतः, प्रमिमीतेऽनुभवादृतेऽल्पधीः ॥१८॥

तथापि खलु स जनकेन निरन्तरं शिक्षयते हितार्थम् । अम्मा-पितरोरथवा हृदयमपत्ये हितं चैव ॥ ५ ॥
भणितो वेदमधीष्वेहापि खलु येन गौरवस्थानम् । भविष्यति वत्स ! निरागं विदूषां सेवनीयोऽसि ॥ ६ ॥
एवं भणितः प्रभणति कःपठित्वा दिवं गतस्तात ! । भविष्यति यद्भवितव्यं विनापि पाठेनापरं च ॥ ७ ॥
पुनरपि भणितो यद्यपि खलु बहुकं न पठसि तथापि मम वचनात् । गृहाण श्लोकमेकं बुध्यस्व तदर्थं च स चायम् ॥ ९ ॥
एवं व्यसनासक्तस्य जनकलक्ष्मीं च विलसतः । व्रजन्ति वासरास्तस्य वेदक्रियावियुक्तस्य ॥ ११ ॥
अथान्यदा च जनकस्त्रिभुवनसाधारणेन रोगेण । अत्यन्तमभिभूतः स च प्रमत्तो रमते द्यूतम् ॥ १२ ॥
व्याहृतोऽपि खलु द्यूतेन क्षोभितो भणत्येष एमीति । एवं प्रजल्पतोऽपि पञ्चत्वं प्राप्तो जनकः ॥ १३ ॥
उत्तिष्ठ भो ! तव पिता मृत इति ततः कुरु तस्य मृतकार्यम् । प्रभणति निर्घृणकर्माः साम्प्रतमपि सोऽयोग्यत्वात् ॥ १४ ॥
भो ! भो ! त्वं मम पितरमनेन मार्गेण निस्सारयत । समग्रं चैव लोकेन येन व्रजामि प्रेतवने ॥ १५ ॥
एवमयोग्यत्वादवधीरितः स मृते पितरि । निन्द्यते लक्ष्मीरपि खलु समं गता जनकपुण्यैः ॥ १६ ॥
एवमनेन न कृतं पितृवचनं नापि च शिष्टलोकस्य । जातो दुःखानां भाजनमत्यन्तमयं यतो भणितम् ॥ १७ ॥
.....। .....॥ १८ ॥

तत्तो अनिव्वहंतो नयराओ निग्गओ सरइ पिउणो । तह वि अजोगत्तणओ न कुणइ पिउवयणसद्दहणं ॥१९॥
चिंतइ य सिलोगमहं किं उत्तमसंगयाइकारविओ ? । को किर दोसो ? निएहिं ताव नीयं परिक्खामि ॥२०॥
तो दिट्ठपच्चओ हं गरुएहिं समं तमायरिस्सामि । इय परिभाविय नीयं ठक्कुरमेसो समल्लीणो ॥२१॥
विहिया य चोडदासी भज्जा तेणं तहा वरो मित्तो । तइओ तस्सेव य ठक्कुरस्स खट्टिक्कमायंगो ॥२२॥
अह अन्नया य रन्ना वाहरिओ ठक्कुरो समं तेण । पत्तो पहाकरो वि हु सो उण पंडियपिओ राया ॥२३॥
वत्था-ऽऽसणप्पयाणा पइदियहं भरण-पोसणं वहइ । पंडिच्चरंजियमणो पंचण्हं पंडियसयाणं ॥२४॥
जाए समाणसील-व्वसणेसुं सक्खमिइ विवायम्मि । कहमवि य दइवजोगा कस्स वि न पयट्टए एयं ॥२५॥
कइया वि हु पिउपासे तेणं तं पढियमासि विप्पेण । ता तेण तेसि पुरओ पढियमसेसं पि तं च इमं ॥२६॥
मृगाः मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति, गावश्च गोभिस्तुरगास्तुरङ्गैः ।
मुर्खाश्च मुर्खैः सुधियः सुधीभिः, समानशील-व्यसनेषु सख्यम् ॥२७॥
तो तुट्ठेणं रन्ना दिन्नं गामसयसंजुयं नयरं । तेण वि भणियं मह ठक्कुरस्स जीवणमिमं देहि ॥२८॥
तो तस्स पभावेणं जाओ सो [1]पवरलच्छिविच्छड्डो । तुरय-रह-जाण-वाहणसोहाभवणं जओ भणियं ॥२९॥
सोहेइ सुहावेइ य उवभुंजंतो लवो वि लच्छीए । देवी सरस्सई पुण [2]असमत्ता कं न विनडेइ ? ॥३०॥
ओलग्गिऊण निवइं पत्थावे ते गया पसायपुरं । अह कम्मि वि अवराहे रुट्ठेणं तेण मायंगो ॥३१॥
सो वज्झो आणत्तो मरणाओ मोइओ दियवरेण । एगं खमहऽवराहं सामि ! वरायस्स एयस्स ॥३२॥

ततोऽनिर्वहन्नगरान्निर्गतः स्मरति पितुः । तथाप्ययोग्यत्वान्न करोति पितृवचनश्रद्धानम् ॥ १९ ॥
चिन्तयति च श्लोकमहं किमुत्तमसङ्गतादिकारितः ? । कः किल दोषः ? नीचैस्तावन्नीचं परीक्षे ॥ २० ॥
ततो दृष्टप्रत्यायोऽहं गुरुकैः समं तमाचरिष्यामि । इति परिभाव्य नीचं ठक्कुरमेष समालीनः ॥ २१ ॥
विहिता च चोडदासी भार्या तेन तथापरो मित्रम् । तृतीयस्तस्यैव च ठक्कुरस्य खटिकमातङ्गः ॥ २२ ॥
अथान्यदा च राज्ञा व्याहृतः ठक्कुरः समं तेन । प्राप्तः प्रभाकरोऽपि खलु स पुनः पण्डितप्रियो राजा ॥ २३ ॥
वस्त्राऽऽसनप्रदानात् प्रतिदिवसं भरण-पोषणं वहति । पाण्डित्यरञ्जितमनाः पञ्च पण्डितशतानाम् ॥ २४ ॥
जाते समानशील-व्यसनेषु सख्यमिति विवादे । कथमपि च दैवयोगात्कस्यापि न प्रवर्तत एतद् ॥ २५ ॥
कदापि खलु पितृपार्श्वे तेन तं पठितमासीद्विप्रेण । ततस्तेन तेषां पुरतः पठितमशेषमपि तच्चेदम् ॥ २६ ॥
तदा तुष्टेन राज्ञा दत्तं ग्रामशतसंयुक्तं नगरम् । तेनापि भणितं मम ठक्कुरस्य जीवनमिदं देहि ॥ २७ ॥
ततस्तस्य प्रभावेन जातः स प्रवरलक्ष्मीविभवः । तुरग-रथ-यान-वाहनशोभाभवनं यतो भणितम् ॥ २८ ॥
शोभते सुखायति चोपभुञ्जल्लवोऽपि लक्ष्मयाः । देवी सरस्वती पुनरसमर्था कं न विनाट्यति ? ॥ ३० ॥
अवलग्य नृपतिं प्रस्तावे ते गता प्रसादपुरम् । अथ कस्मिन्नप्यपराधे रुष्टेन तेन मातङ्गः ॥ ३१ ॥
स वध्य आज्ञप्तो मरणान्मोचितो द्विजवरेण । एकं क्षमध्वमपराधं स्वामिन् ! वराकस्यैतस्य ॥ ३२ ॥

---

१. पउर० रं० । २. असमग्गा रं० ।

तीए वि हु दासीए गब्भपभावाओ दोहलो जाओ । सुयसरिसनिद्धदुक्कुरमऊरपोयस्स मंसम्मि ॥३३॥
तेण वि तं रक्खेउं विइन्नमवरस्स मंसमेईए । एवं कयाणि तेणं महोवयाराणि सव्वाणि ॥३४॥
भोयणसमए संभरइ ठक्कुरो तं मयूरमनियंतो । गविसावइ सव्वत्तो जा कत्थ वि सो न उवलद्धो ॥३५॥
दीणाराणं गंठीए संठियं दंसिऊणमट्ठसयं । घोसावइ नियनयरे पडहयमेसो मयूरकए ॥३६॥
जो कहइ मयूरसुइं सो अभयं लहइ तह य दीणारे । पच्छा नाए काही दुसहं सारीरियं दंडं ॥३७॥
इय सोऊणं तीए दासीए चिंतियं कयग्घाए । मह अन्नो वि हु होही भत्ता गिण्हामि ता दव्वं ॥३८॥
इय परिभाविय छित्तो पडहो पावाए जंपियमिमीए । मह सामि ! समुप्पन्नो दोहलओ मंसांवसयम्मि ॥३९॥
एएणमवरमंसं दाउमसत्तेण निद्दयमणेण । वारंतीए वराओ मंसकए मारिओ मोरो ॥४०॥
तेण वि अपरिक्खियकारएण निग्घिणसिरोमणिसमेण । तस्सेव अप्पणो खट्टिगस्स वज्झो समुवणीओ ॥४१॥
तेणुत्तं भद्द ! मए तुमं पि मरणाओ मोइओ आसि । ता मुयसु ममं एत्तो वि जामि, देसंतरं दूरे ॥४२॥
तेणुत्तं जुत्तमिमं परमेसो मित्त ? ठक्कुरो दुट्ठो । तुमए पुण अवरद्धं गरुयं ता कह मुयामि अहं ? ॥४३॥
[१]चिंतियमिमेण दट्ठुं माहप्पमिमाण ताण सव्वाण । उत्तममिन्हिं सेवे धि द्धी ! नीयस्स पयईए ॥४४॥
उवयरियं जं तं पि हु एगपए च्चिय कहं पि हु पलाणं ? । जइ वा नीयस्स कयं छारे हुणियं जओ भणियं ॥४५॥

तस्या अपिखलु दास्या गर्भप्रभावाद्दोहदो जातः । शुकसदृशस्निग्धठक्कुरमयूरपोतस्य मांसे ॥ ३३ ॥
तेनापि तं रक्षित्वा वितीर्णमपरस्य मांसमेतस्याः । एवं कृतानि तेन महोपकाराणि सर्वाणि ॥ ३४ ॥
भोजनसमये स्मरति ठक्कुरस्तं मयूरमपश्यन् । गवेषयति सर्वतो यावत्कुत्रापि स नोपलब्धः ॥ ३५ ॥
दीनाराणां गण्ठयां संस्थितं दर्शयित्वाष्टशतम् । घोषयति निजनगरे पटहमेष मयूरकृते ॥ ३६ ॥
यः कथयति मयूरश्रुतिं सोऽभयं लभते तथा च दीनारान् । पश्चाज्ज्ञाते करिष्यते दुःसहं शारीरिकं दण्डम् ॥ ३७ ॥
इति श्रुत्वा तया दास्या चिन्तितं कृतघ्नया । ममान्योऽपि खलु भविष्यति भर्ता गृहणामि तावद्द्रव्यम् ॥ ३८ ॥
इति परिभाव्य स्पृष्टः पटहः पापया जल्पितमनया । मम स्वामिन् ! समुत्पन्नो दोहदो मांसविषये ॥ ३९ ॥
एतेनापरमांसं दातुमशक्तेन निर्दयमनसा । वारयन्त्या वराको मांसकृते मारितो मोरः [मयूरः] ॥ ४० ॥
तेनाप्यपरीक्षितकारकेण निर्घृणशिरोमणिसमेन । तस्यैवात्मनः शौकरिकस्य वध्यः समुपनीतः ॥ ४१ ॥
तेनोक्तं भद्र ! मया त्वमपि मरणान्मोचित आसीत् । ततो मुञ्च मामितोऽपि यामि देशान्तरं दूरे ॥ ४२ ॥
तेनोक्तं युक्तमिदं परमेष मित्र !? ठक्कुरो दुष्टः । त्वया पुनरपराद्धं गुरुकं ततः कथं मुञ्चाम्यहम् ? ॥ ४३ ॥
चिन्तितमनेन दृष्ट्वा महात्म्यमेतेषां तेषां सर्वेषाम् । उत्तममिदानीं सेवे धिग्धिग् ! नीचस्य प्रकृतिम् ॥ ४४ ॥
उपचरितं यत्तदपि खल्वेकपदे चैव कथमपि खलु पलायनम् ? । यदि वा नीचस्य कृतं क्षारे हुतं यतो भणितम् ॥ ४५ ॥

---

१. ०यमिमिणा दट्ठुं रं० ।

उवयारसहस्सेण वि तिन्नि न घेप्पंति तिहुयणे सयलं । वेसा अविवेयपहू दुज्जणलोओ तह च्चेव ॥४६॥
सो वि हु समप्पिऊणं मऊरमाभासियं नियं सामिं । मणयं सलज्जहियय सत्थि त्ति भणित्तु निक्खंतो ॥४७॥
गच्छंतो संपत्तो रयणउरं तत्थ रयणरहराया । तस्स सुओ कणगरहो तं पासिय भणइ दियपुत्तो ॥४८॥
अहयं माहणपुत्तो तुमं पि गुणगेह ! रायपुत्तो सि । जइ भणसि तुज्झ पासे अच्छामि अहं कुमारो वि ॥४९॥
इमिणा पुरोहियपए पओयणं मह पुरा भवइ तम्हा । सम्माणदाणपुव्वयमहमेयं संगहिस्सामि ॥५०॥
परिभाविऊणमेयं पभणइ तं भद्द ! मज्झ पासम्मि । अच्छसु तं मह मित्तो तुह सव्वमहं भलिस्सामि ॥५१॥
भणियं च-
पाऊण पाणियं सरवराओ पिट्ठं न देइ सिहिडिंभो । होही जाण कलाओ पयइ च्चिय साहए ताण ॥५२॥
इय सो सहरिसमच्छइ पेच्छइ तत्थ य पहाणसेट्ठिसुयं । अणुदिणमेव मणोरहनामं तं कुणइ नियमित्तं ॥५३॥
अवरा वि पिंडवासे गुणगेहं नाम निग्गया वेसा । नामेण रइविलासा संगहिया सा वि घरवासे ॥५४॥
एवं सो तिहि वि समं परोप्परं वड्ढमाणपणयगुणो । चिट्ठइ निव्वुयहियओ सुमरंतो जणयहियवयणं ॥५५॥
अह अन्नया य हेडाउडेहिं देसंतराओ दो तुरया । सव्वंगलक्खणजुया समप्पिया पुहइवालस्स ॥५६॥
आरूढा तेसु कुमार-माहणा जाव वाहिउं लग्गा । कड्ढंताण वि ताणं ते चलिया काणणाभिमुहं ॥५७॥
नायमिमे जह विवरीयसिक्खगा तयणु आंबलीहेट्ठा । गच्छंतेण दिएणं गहियं आंबलगतिगमेयं ॥५८॥

उपकारसहस्रेणापि त्रयः न गृह्यन्ते त्रिभुवने सकले । वेश्याऽविवेकप्रभु र्दुजनलोकस्तथा चैव ॥ ४६ ॥
सोऽपि खलु समर्प्य मयूरमाभाषितं निजं स्वामिनम् । मनाक् सलज्जहृदयं स्वस्तीति भणित्वा निष्क्रान्तः ॥ ४७ ॥
गच्छन् सम्प्राप्तो रत्नपुरं तत्र रत्नरथराजा । तस्य सुतः कनकरथस्तं दृष्ट्वा भणति द्विजपुत्रः ॥ ४८ ॥
अहं ब्राह्मणपुत्रस्त्वमपि गुणगेह ! राजपुत्रोऽसि । यदि भणसि तव पार्श्वे आसेऽहं कुमारोऽपि ॥ ४९ ॥
अनेन पुरोहितपदे प्रयोजनं मम पुरा भवति तस्मात् । सन्मानदानपूर्वकमहमेनं सङ्ग्रहीष्यामि ॥ ५० ॥
परिभाव्यैनं प्रभणति त्वं भद्र ! मम पार्श्वे । आस्स्व त्वं मम मित्रं तव सर्वमहं भालिष्यामि ॥ ५१ ॥
भणितं च -
पीत्वा पानीयं सरोवरात्पृष्टिं न ददाति सिंहडिम्भः । भविष्यति येषां कलाः प्रकृतिश्चैव साधते तेषाम् ॥ ५२ ॥
इतः स सहर्षमासते पश्यति तत्र च प्रधानश्रेष्ठिसुतम् । अनुदिनमेव मनोहरनामानं तं करोति निजमित्रम् ॥ ५३ ॥
अपरापि पिण्डवासे गुणगेहं नाम निर्गता वेश्या । नाम्ना रतिविलासा सङ्गृहीता सापि गृहवासे ॥ ५४ ॥
एवं स त्रिभिरपि समं परस्परं वर्धमानप्रणयगुणः । तिष्ठति निर्वृत्तहृदयः स्मरन् जनकहितवचनम् ॥ ५५ ॥
अथान्यदाच हेडायुक्तै र्देशान्तराद् द्वौ तुरगौ । सर्वाङ्गलक्षणयुतौ समर्पितौ पृथिवीपालस्य ॥ ५६ ॥
आरूढौ तौः कुमार-माहणौ यावद्वाहितुं लग्नौ । कृष्टतोरपि तयोस्तौ चलितौ काननाभिमुखम् ॥ ५७ ॥
ज्ञातमेताभ्यां यथा विपरितशिक्षकौ तदन्वामलकाधः । गच्छता द्विजेन गृहीतमामलकत्रिकमेतद् ॥ ५८ ॥

गुरुणो रुक्खाओ तयं नाणाइतिगं व पुन्नवंतेण । भवतण्हाहरणखमं परिणामसुहं च संपत्तं ॥५९॥
तो खित्ता दुहजणयं भवकंतारं व राग-दोसेहिं । अवसेहिं तेहिं तुरएहऽमाणुसं निज्जलमरन्नं ॥६०॥
तो कणगरहकुमारो बाढं तण्हाए पीडिओ संतो । भणइ कुओ वि हु आणेहि पाणियं जंति मह पाणा ॥६१॥
धीरो होसु त्ति पयंपिऊण जा तम्मि जोयइ जलं सो । ताव न पत्तं कहमवि ता दिन्नं आंबलगमेगं ॥६२॥
आसायइ जाव तयं ता अमयकला वियंभिया कंठे । एवं बीयं तइयं तो पत्तो चेयणं कुमरो ॥६३॥
मणयं वीसत्थमणा तम्मि अरन्नम्मि जाव चिट्ठंति । ता भोयण-पाणजुयं संपत्तं रायसेन्नमवि ॥६४॥
जओ-
आवइगओ वि नित्थरइ आवयं तरइ जलहिपडिओ वि । रणसंकडे वि जीवइ जीवो अणुकूलकम्मवसा ॥६५॥
संपत्ता नियनयरं कमेण नियनियपएसु संठविया । जणयाइएहिं सव्वे संपत्ता सगुणमाहप्पं ॥६६॥
इय सव्वाण वि तेसिं सिणेहसाराणमइवयइ कालो । जम्हा पवड्ढमाणा परिणामसुहा सुयणमेत्ती ॥६७॥
अह कइया वि पुरोहियजायाए तीए रइविलासाए । गब्भाणुभावजणिओ संजाओ दोहलो अहमो ॥६८॥
रायसुयं कीलंतं दट्ठूणं पंचवरिसदेसीयं । जाणइ मणम्मि एसा जइ मंसमिमस्स भक्खेमि ॥६९॥
तं साहिउमचयंती संजाया दुव्वलंगिया अहियं । पुट्ठे अविसिट्ठं पि हु कहियं कह कहवि तं पइणो ॥७०॥
तेणुत्तं किमसंगयमहामयं सुयणु ! पूरयिस्सामि । कीस किसोयरि ! न कहियमेत्तियकालं विणा कज्जं ॥७१॥

गुरो वृक्षात्तकं ज्ञानादित्रिकमिव पुण्यवता । भवतृष्णाहरणक्षमं परिणामसुखं च सम्प्राप्तम् ॥ ५९ ॥
ततः क्षिप्तौ दुःखजनकं भवकान्तारमिव राग-दोषैः । अवशाभ्यां ताभ्यां तुरगाभ्याममानुषं निर्जलमरण्यम् ॥ ६० ॥
तदा कनकरथकुमारोबाढं तृष्णया पीडितः सन् । भणति कुतोऽपि खलु आनय पानीयं यान्ति मम प्राणाः ॥ ६१ ॥
धीरो भवेति प्रजल्प्य यावत्तस्मिन् पश्यति जलं सः । तावन्न प्राप्तं कथमपि तावद्दत्तमामलकमेकम् ॥ ६२ ॥
आस्वादयति यावत्तकं तावदमृतकला विजृम्भिता कण्ठे । एवं द्वितीयं तृतीयं ततः प्राप्तश्चेतनं कुमारः ॥ ६३ ॥
मनाग् विश्वस्तमनास्तस्मिन्नरण्ये यावत्तिष्ठतः । तावद्भोजन-पानयुक्तं सम्प्रातं राजसैन्यमपि ॥ ६४ ॥
यतः -
आपद्गतोऽपि निस्तरत्यापदं तरति जलधिपतितोऽपि । रणसङ्कीर्णमपि जीवति जीवोऽनुकूलकर्मवशात् ॥ ६५ ॥
सम्प्राप्तौ निजनगरे क्रमेण निजनिजपदेषु संस्थापितौ । जनकादिकैः सर्वे सम्प्राप्ताः स्वगुणमाहात्म्यम् ॥ ६६ ॥
इति सर्वेषामपि तेषां स्नेहसाराणामतिव्ययति कालः । यस्मात् प्रवर्धमानाः परिणामसुखा सुजनमैत्री ॥ ६७ ॥
अथ कदापि पुरोहितजायया तया रतिविलासया । गर्भानुभावजनितः सञ्जातो दोहदोऽधमः ॥ ६८ ॥
राजसुतं क्रीडन्तं दृष्ट्वा पञ्चवर्षदेशीकम् । जानाति मनस्येषा यदि मांसमस्य भक्ष्ये ॥ ६९ ॥
तत्कथयितुमपारयन्ती सञ्जाता दुर्बलाङ्गिकाऽधिकम् । पुष्टोऽविशिष्टमपि खलु कथितं कथं कथमपि तत्पत्युः ॥ ७० ॥
तेनोक्तं किमसंगतमहमयं सुतनु ! पूरयिष्यामि । कथं कृषोदरि ! न कथितमेतावत्कालं विना कार्यम् ॥ ७१ ॥

कुमर गोविय दिन्नं मंसमिमीए सुसाउरसमवरं । तो सा पूरियवंछा सुहेण तं गब्भमुव्वहइ ॥७२॥
सारावि‌ओ कुमारो भोयणसमयम्मि जाव नरवइणा । कत्थ वि य तो न लद्धो नयरम्मि गवेसिओ वेसो ॥७३॥
तं वइयरमायन्निय गणिया धणियं धसक्किया हियए । दुहिया दुक्कियकम्मं निंदिउमप्पाणयं लग्गा ॥७४॥
बलि किज्जउ मह जम्मो किं न मया अकहिऊण पावमिमं ? । किं जीविया करिस्सं भक्खिय तं पुत्तनररयणं ॥७५॥
ता पुंच्छिउं[1] मणोरहसेट्ठिमुवायं करेमि किंपि अहं ? । जा नरवइपासाओ मह पइणो न भवइ अणत्थो ॥७६॥
तो गंतूणं गुज्झं निवेइयं सेट्ठिणो अणेणावि । पेच्छ विरूवं केरिसमावडियमिमं ? ति चिंतेउं ॥७७॥
धीरा होसु समग्गं सुत्थमहं काहमिइ पयंपंतो । जाव न वच्चइ ता सिग्घमेव गंतु निवसयासे ॥७८॥
भणियं सुदुक्खमेईए देव ! पावं मए कयं एयं । ता मरिससु पसिऊणं अवराहं मज्झ पावाए ॥७९॥
इय जाव पायवडिया मरिसावइ ताव सेट्ठिणा भणियं । मह गेहम्मि रमंतो दद्दरपडिओ[2] मओ कुमरो ॥८०॥
एव खमावंताणं दुण्ह वि निवइं समागओ विप्पो । पभणइ जइ सच्चमिमं मह दोसा ता मओ कुमरो ॥८१॥
नियगरुययाए सामिय ! मह दोसावणयणत्थमेयाणि । भुल्लाहराणि बोल्लंति देव ! ता कुणसु जं जुत्तं ॥८२॥
ता जायपच्चओ सो सव्वेहिं खमाविओ पयत्तेण । पभणइ जइ एवमिमं तो खमियं तुह मए मित्त ! ॥८३॥
जेणेस मज्झ भवओ लाभो रज्जाइओ निरवसेसो । किं बहुणा ? मम संपइ पविट्ठमामलयमेगमिमं ॥८४॥

कुमारं गोपयित्वा दत्तं मांसमेतस्यै सुस्वादुरसमपरम् । ततः सा पूरितवाञ्छा सुखेन तं गर्भमुद्वहति ॥ ७२ ॥
स्मारितः कुमारो भोजनसमये यावन्न नरपतिना । कुत्रापि च ततो न लब्धो नगरे गवेषितो वैषः ॥ ७३ ॥
तद्वयतीकरमाकर्ण्य गणिकाऽत्यन्तं धसक्किया हृदये । दुःखिता दुष्कृतकर्म निन्दितुमात्मानं लग्ना ॥ ७४ ॥
बलीक्रियतां मम जन्म किं न मृता अकथयच्च पापमिदम् ? । किं जीविता करिष्यामि भक्षित्वा तं पुत्रनररत्नम् ॥७५॥
ततः पृष्ट्वा मनोहरश्रेष्ठिनमुपायं करोमि किमप्यहम् ? । यावन्नरपतिपार्श्वान्मम पत्युर्न भवत्यनर्थः ।
ततो गत्वा गुप्तं निवेदितं श्रेष्ठिनोऽनेनापि । पश्य विरुपं कीदृशमापतितमिममिति चिन्तयित्वा ॥ ७७ ॥
धीरा भव समग्रं स्वस्थमहं करिष्यामिति प्रजल्पन् । यावन्न व्रजति तावत् शीघ्रमेव गत्वा नृपसकाशे ॥ ७८ ॥
भणितं सुदुःखमनया देव ! पापं मया कृतमेतत् । ततो मार्ष्टु प्रसीद्यापराधं मम पापायाः ॥ ७९ ॥
इति यावत्पादपतिता मार्शयति तावत् श्रेष्ठिना भणितम् । मम गृहे रममाणो निःश्रेणीपतितो[2] मृतः कुमारः ॥ ८० ॥
एवं क्षामयतो र्द्वयोरपि नृपतिं समागतो विप्रः । प्रभणति यदि सत्यमिदं मम दोषात्तावन्मृतः कुमारः ॥ ८१ ॥
निजगुरुकयायाः स्वामिन् ! मम दोषापनयनार्थमेतौ । क्षतिहरौ कथयतो देव ! ततः कुरु यद्युक्तम् ॥ ८२ ॥
ततो जातप्रत्ययः स सर्वैः क्षामितः प्रयत्नेन । प्रभणति यद्येवमिदं ततः क्षमितं तव मया मित्र ! ॥ ८३ ॥
येनैष मम भवतो लाभो राज्यादिको निरवशेषः । किं बहुना ? मम सम्प्रति प्रविष्टमामलकमेकमिदम् ॥ ८४ ॥

---

१. पुच्छियं रं० । २. निःश्रेणीपतितः रं० ।

इय वयणं सोऊणं पुरोहिओ नियमणे विचिंतेइ । सव्वेसिं गरुयत्तं विसेसओ राइणो जेण ॥८५॥
सो तारिसगुणभवणं देवकुमारोवमो सुओ पढमो । आमलगमोल्लपरिकप्पणाए गणिओ गुणड्ढेण ॥८६॥
ता सव्वहा वि सुहयं संपइ मह परिणयं जणयवयणं । एवं मणयं सत्थाणि जाव जायाणि सच्चाणि ॥८७॥
तो विन्नतो बीए दिणम्मि विप्पेणमज्ज संपरिजणो[१] । घरभोयणकरणेणं सपसाओ होउ मह देवो ॥८८॥
तहविहिए विहिपुव्वं भोयावेउं सपरियणं रायं । भुत्तुत्तरे य तत्थ वि वीसंताणं सुसत्थाणं ॥८९॥
केऊर-कडय-कुंडल-महरिहहार-ऽद्धहारमाईहिं । आहरिऊण कुमारं रन्नो अंके निवेसेइ ॥९०॥
तं पासिऊण राया लज्जा अहोमुहो ठिओ जाव । ता भणियं पहु ! किमयं हरिसट्ठाणे वि हु विसाओ ॥९१॥
हरिसट्ठाणं मह मित्त ! केरिसं ? जस्स मोल्लमवि नत्थि । तं आमलगं मोहाऽमहियमहम्मेण जेण मए ॥९२॥
तो तेण जणयवयणं संसग्गिगयं पयासियं सव्वं । तं सोउं सव्वो वि हु रायाई रंजिओ लोओ ॥९३॥
भोत्तूणं रज्जसिरिं उत्तमसंसग्गिजायबहुमाणा । संपत्ता सव्वे वि हु गुणबहुमाणेण सुगईए ॥९४॥ ॥छ॥

॥ प्रभाकराख्यानकं समाप्तम् ॥६३॥

इदानीं वरशुकाख्यानकमाख्यायते । तद्यथा-

अस्ति काचिदरण्यानी विस्फूर्जत्खड्गभीषणा । सिंहनादकृतोत्कम्पा दुर्गा सङ्ग्रामभूरिव ॥१॥
सङ्घटितशुद्धवंशा विराजिगुणसङ्गता । फलाढ्यविस्फुरद्बाणा धनुर्यष्टिरिवासमा ॥२॥ युग्मम् ॥
तस्यां समुन्नमच्छाखे साधाविव तरौ क्वचित् । एका शुकी सदाकार समास्ते भर्तुसङ्गता ॥३॥

इति वचनं श्रुत्वा पुरोहितो निजमनसि विचिन्तयति । सर्वेषां गुरुकत्वं विशेषतो राज्ञो येन ॥ ८५ ॥
स तादृशगुणभवनं देवकुमारोपमः सुतः प्रथमः । आमलकमूल्यपरिकल्पनया गणितो गुणाढ्येन ॥ ८६ ॥
ततः सर्वथापि सुभगं सम्प्रति मम परिणतं जनकवचनम् । एवं मनाक् शस्त्राणि यावज्जातानि सत्यानि ॥ ८७ ॥
ततो विज्ञप्तो द्वितीये दिने विप्रेणाद्य सपरिजनः । गृहभोजनकरणेन सप्रसादो भवतु मम देवः ॥ ८८ ॥
तथाविहिते विधिपूर्वं भोजयित्वा सपरिजनं राजानम् । भुक्तोत्तरे च तत्रापि विश्वसतां सुशास्त्राणाम् ॥ ८९ ॥
केयूर-कटक-कुण्डल-महार्हहारार्द्धहारादिभिः । आहृत्य कुमारं राज्ञोऽङ्के निवेशयति ॥ ९० ॥
तं दृष्ट्वा राजा लज्जयाधोमुखः स्थितो यावत् । तावद्भणितं प्रभो ! किमयं हर्षस्थानेऽपि खलु विषादः ॥ ९१ ॥
हर्षस्थानं मम मित्रं ! कीदृशं ? यस्य मूल्यमपि नास्ति । तमालकं मोहादमहितमधमेन येन मया ॥ ९२ ॥
तदा तेन जनकवचनं संसर्गिगतं प्रकाशितं सर्वम् । तत् श्रुत्वा सर्वोऽपि हु राजादयो रञ्जितो लोकः ॥ ९३ ॥
भुक्त्वा राज्यश्रियमुत्तमसंसर्गिजातबहुमानाः । सम्प्राप्ताः सर्वेऽपि खलु गुणबहुमानेन सुगतौ ॥ ९४ ॥

॥ प्रभाकराख्यानकं समाप्तम् ॥ ६३ ॥

---

१. सपउरजणो खं० रं० ।

अन्यदाऽसौ स्वके नीडे सुषुवे कीरयुग्मकम् । सल्लक्षणं लसत्पक्षं सीतेव तनयद्वयम् ॥४॥
जगृहे तापसेनैकस्तयोर्भिल्लेन चापरः । स्वं स्वं समाचारं तौ ताभ्यां शिक्षितौ शुकौ ॥५॥
अथापहृत्य तत्रौच्चैरश्वेनाऽऽनायि भूपतिः । तं दृष्ट्वा लात लातेति न्यगादीद् भिल्लकीरकः ॥६॥
नष्ट्वा राजा ततः स्थानाद् गतो यावत् तपोवनम् । तावत् तत्र शुकोऽवादीदेतैत मुनिपुङ्गवाः ! ॥७॥
खिन्नोऽतिथिः समायातो विधत्तातिथ्यमञ्जसा । ततो राजा तकच्छुत्वा तदन्तिकमशिश्रियत् ॥८॥
अथो राजा शुकः पृष्टस्त्वत्समोऽन्यो मयेक्षितः । परमन्तरं महद् विद्मो न हेतुं सोऽभ्यधाच्छुकः ॥९॥
माताऽप्येका पिताऽप्येको मम तस्य च पक्षिणः । अहं मुनिभिरानीतः स च नीतो गवाशनैः ॥१०॥
गवाशनानां स गिरः श्रृणोति, अहं तु राजन् ! मुनिपुङ्गवानाम् ।
प्रत्यक्षमेतद् भवताऽपि दृष्टं, संसर्गजा दोष-गुणा भवन्ति ॥११॥

॥ वरशुकाख्यानकं समाप्तम् ॥६४॥

अधुना कम्बल-सबलाख्यानक व्याख्यायते । तद्यथा-

अत्थि महुरापुरीए पासजिणेसरपवित्तयधराए । नामेणं जिणदासो जिणदासी साविया तस्स ॥१॥
सो य केरिसो ?-
जीवाइपयत्थविऊ जिणपवयणरागरत्तमिंज-ऽट्ठी । धम्माओ न चालिज्जइ देवेहिं जक्ख-रक्खेहिं ॥२॥
पंचहिं अणुव्वएहिं गुणव्वएहिं च तिहि वि परिसुद्धो । बहुबीय-ऽणंतकाइय-कम्मादाणाण वि नियत्तो ॥३॥
सामइयमुभयसंझं चीवंदण-पूयणं च तिक्कालं । अट्ठमि-चउद्दसीसु य चउव्विहं पोसहं कुणइ ॥४॥
असणं पाणं पत्तं उवस्सयं सयणमासणं वत्थं । ओसहमाई वियरइ अतिहीणं संविभागम्मि ॥५॥
पढइ सुणेइ गुणेइ य एगग्गो झायए नमोक्कारं । तव-नियम-भावणाइसु सावगकिच्चेसु उवउत्तो ॥६॥

कम्बल-शम्बलाख्याकम् ॥ ६५ ॥

अस्ति मथुरापूर्यां पार्श्वजिनेश्वरपवित्रितधरायाम् । नाम्ना जिनदासो जिनदासी श्राविका तस्य ॥ १ ॥
सच कीदृशः ?
जीवादिपदार्थविदु र्जिनप्रवचनरागरक्तमज्जाऽस्थी । धर्मान्न चाल्यते देवै र्यक्ष-राक्षसैः ॥ २ ॥
पञ्चभिरणुव्रतै र्गुणव्रतैश्च त्रिभिरपि परिशुद्धः । बहुबीजानन्तकायिक-कर्मादानेभ्योऽपि निवृत्तः ॥ ३ ॥
सामायिकमुभयसन्ध्यं चैत्यवन्दन-पूजनं च त्रिकालम् । अष्टमी-चतुर्दशीषु च चतुर्विधं पौषधं करोति ॥ ४ ॥
अशनं-पानं पात्रमुपाश्रयं शयनमासनं वस्त्रम् । औषधादीन् वितरत्यतिथीनां संविभागे ॥ ५ ॥
पठति शृणोति गुणति चेकाग्रो ध्यायति नमस्कारम् । तपो नियम-भावनादिषु श्रावककृत्येषूपयुक्तः ॥ ६ ॥

तेहिं पच्चक्खायं जाजीयं चउपयस्स सव्वस्स । गिण्हंति दहियमाइय निच्चं गोउलियहत्थाओ ॥७॥
जाया सिणेहबुद्धी परोप्परं तेसिमिंत-जंताणं । गोउलियविवाहम्मि य कयाइ सोहा कया तेहिं ॥८॥
वत्थाऽऽभरणाईहिं तेहिं य तुट्ठेहिं तस्स सड्ढस्स । उवणीया सियवन्ना गोणजुवाणा दुवे परमा ॥९॥
सो भणइ मज्झ नियमो परिग्गहे चउपयस्स काउं जे । ताणि पुणो तस्स गिहे बंधित्तु गयाणि सड्ढाणं ॥१०॥
सो वि य सड्ढो चिंतइ बाहिं मुक्का इमे उ लोगेहिं । वाहिज्जंति चरंति य अफासुयं हरियमाईयं ॥११॥
तो ते गिहट्ठियाणं फासुयचारीए गलियमुदएणं । खाणेण य सो तेसिं करेइ सव्वं पि अक्खूणं ॥१२॥
अट्ठमि-चउद्दसीसुं उववासं करिय धम्मसत्थाइं । वाएइ तेसि पुरओ ते सन्नी ताणि सोऊणं ॥१३॥
भद्दयचित्ता जाया जद्दिवसं सावगो न जेमेइ । तद्दिवसं सुहभावा आहारं ते वि वज्जंति ॥१४॥
सड्ढस्स तेसु जाओ बहुमाणो समहिओ सिणेहो य । उवसंतप्पा एएभावियचित्त त्ति नाऊणं ॥१५॥
भंडीरवणे जत्ता जाया नीया य ते अपुच्छाए । सावगमित्तेण तहिं जोएत्ता नियफिरिक्काए ॥१६॥
अन्नस्स एरिसो नत्थि एव सिंगारमुव्वहंतेण । अन्नेन्नेहि य सद्धिं धवाडिया ते य वसहेहिं ॥१७॥
ते य बलिद्दा छिन्ना सड्ढगिहे तेण आणिउं बद्धा । न चरंति ते य उदयं पियंति अइविहुरसव्वंगा ॥१८॥
विन्नायवइयरेणं सड्ढेण य खिज्जिउं बहुपयारं । भत्तं पच्चक्खाविय दिन्नो तेसिं नमोक्कारो ॥१९॥

ताभ्यां प्रत्याख्यातं यावज्जीवं चतुष्पदस्य सर्वस्य । गृहणतो दध्नादिकं नित्यं गोकुलिकहस्तात् ॥ ७ ॥
जाता स्नेहबुद्धिः परस्परं तेषामायात-यातानाम् । गोकुलिकविवाहे च कदाचित् शोभा कृता ताभ्याम् ॥ ८ ॥
वस्त्राभरणादिभिस्ताभ्यां च तुष्टाभ्यां तस्य श्राद्धस्य । उपनीतौ श्वेतवर्णौ गोयुवानौ द्वौ परमौ ॥ ९ ॥
स भणति मम नियमः परिग्रहे चतुष्पदस्य कृत्वा ये । तौ पुनस्तस्य गृहे बद्ध्वा गतौ स्वस्थानम् ॥ १० ॥
सोऽपि च श्राद्धश्चिन्तयति बहिर्मुक्ताविमौ तु लोकैः । वाह्याते चरतश्चाप्रासुकं हरितादिकम् ॥ ११ ॥
ततस्तौ गृहस्थितयोः प्रासुकचार्या गलितोदकेन । खानेन च स तयोः करोति सर्वमप्यक्षुण्णम् ॥ १२ ॥
अष्टमी-चतुर्दशीषूपवासं कृत्वा धर्मशास्त्राणि । वाचयति तयोः पुरतस्तौ संज्ञिनौ तानि श्रुत्वा ॥ १३ ॥
भद्रकचित्तौ जातौ यद्दिवसं श्रावको न जेमति । तद्दिवसं शुभभावादाहारं तावपि वर्जयतः ॥ १४ ॥
श्रावकस्य तयोर्जातो बहुमानः समधिकः स्नेहश्च । उपशान्तात्मानावेतौ भावितचित्ताविति ज्ञात्वा ॥ १५ ॥
भण्डीरवने यात्रा जाता नीतौ च तावपृष्टौ । श्रावकमित्रेण तत्र योजयित्वा निजशकटिकायाम् ॥ १६ ॥
अन्यस्येदृशो नास्त्येव शृङ्गारमुद्वहता । अन्यान्यैश्च सार्धं धावितौ तौ च वृषभैः ॥ १७ ॥
तौ च बलीवर्दौ च्छिन्नौ श्राद्धगृहे तेनानीय बद्धौ । न चरतस्तौ चोदकं पिबतोऽतिविधुरसर्वाङ्गौ ॥ १८ ॥
विज्ञातव्यतिकरेण श्राद्धेन च तर्जयित्वा बहुप्रकारम् । भक्तं प्रत्याख्याय दत्तस्ताभ्यां नमस्कारः ॥ १९ ॥

तो मरिउं सुहभावा नागकुमारा महिड्ढिया जाया । उत्तमजणसंसग्गी एवंगुणकारिया होइ ॥२०॥
उत्तमगुणसंसग्गी जह एएसिं गुणावहा जाया । तह अन्नस्स वि जायइ ता एईए कुणह जत्तं ॥२३॥

॥ कम्बल-सबलाख्यानकं समाप्तम् ॥६५॥

कंबल-सबलकहाणयमेयं बीयं तु चंदणज्जाए । कविविरइयमेव मए गुरुबहुमाणाओ लिहियमिमं ॥२४॥

वैदग्ध्यमावहति धर्ममतिं विधत्ते, सद्योगतां प्रथयति प्रशमं करोति ।
कीर्तिं च शुभ्रशरदभ्ररुचिं तनोति, साङ्गत्यमुत्तमजनैस्तदतः कुरुध्वम् ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचिवृत्तावाख्यानकमणिकोशे उत्तमजनसंसर्गिगुणवर्णन एकविंशतितमोऽधिकारः समाप्तः ॥२१॥

ततो मृत्वा शुभभावान्नागकुमारौ महद्धिकौ जातौ । उत्तमजनसंसर्गी एवं गुणकारिका भवति ॥ २० ॥
उत्तमगुणसंसर्गी यथेतैषां गुणावहा जाता । तथान्यस्यापि जायते तत एतस्यां कुरुत यत्नम् ॥ २१ ॥

॥ कम्बल-शम्बलाख्यानकं समाप्तम् ॥ ६५ ॥

कम्बल-शम्बलकथानकमेकं द्वितीयं तु चन्दनार्यायाः ।
कविविरचितमेव मया गुरुबहुमानाल्लिखितमिदम् ॥ १ ॥

● ● ●

---

१. एतदाख्यानकमणिकोशकर्तृश्रीनेमिचन्द्रसूरिविरचिते प्राकृतमहावीरचरित्रे इत्यर्थः ।

[२२. इन्द्रियवशवर्त्तिप्राणिदुःखवर्णनाधिकारः ।]

कुसंसर्गि-सुसंसर्गिवशाद् दोष-गुणावभिहितौ । कुसंसर्गिदोषश्चेन्द्रियवशगानां भवतीत्यतो गुणस्थितैरपि तद्विश्वासो न विधेय इत्यमुमर्थमभिधित्सुराह -

वीससियव्वं न य इंदिएसु तव-नियमसुट्ठिएहिं पि ।
जह उवकोसगिहगओ महातवस्सी वि संखुहिओ ॥ २७ ॥

व्याख्या - 'विश्वसितव्यं' विश्वासः कर्तव्यः 'न च' नैव 'इन्द्रियेषु' इन्द्रिय विषये [षु] तपो-नियमसुस्थितैरपि आस्तामपरैः इत्यपेरर्थः अत्रार्थे । दृष्टान्ताना (न्तमा)ह-'यत' यस्मात् कारणाद् 'उपकोशागृहे' कोशालघुभगिनिवेश्मनि 'गतः' स्थितिः 'महातपस्व्यपि' विकृष्टतपश्चरणशोषितोऽपि 'संक्षुभितः' धर्मात् स्खलित इत्यक्षरार्थः ॥ २७ ॥

भावार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तच्चेदम्-

नंदंतयम्मि नवमम्मि वट्टमाणम्मि नंदनिवइम्मि । कप्पयवंसपभूए सयडाले मंतिणि मयम्मि ॥१॥
तह पव्वइयम्मि पवित्त-थूलभद्दम्मि थूलभद्दम्मि । संभूयविजयपासम्मि तम्मि गच्छम्मि खमगतिगं ॥२॥
एगो सिंहगुहाए सप्पबिले मंडुकासणे तइओ । चउमासियम्मि नियमे एएहिं तिहिं वि पडिवन्ने ॥३॥
चिरपरिचियाए सरसाए गाढपेमाणुरायरत्ताए । सिंगारकोवियाए रूवाइगुणेहिं अहियाए ॥४॥

उपकोशागृहगततपस्व्याख्यानकम् ॥ ६६ ॥

नन्दन्तके नवमे वर्तमाने नन्दनृपतौ । कल्पकवंश प्रभृते शकटाले मन्त्रिणि मृते ॥ १ ॥
तथा प्रव्रजिते पवित्रस्थूलभद्रे स्थूलभद्रे । सम्भूतविजयपार्श्वे तस्मिन् गच्छे क्षमकत्रिकम् ॥ २ ॥
एकः सिंहगुहायां सर्पबिले मण्डुकासने तृतीयः । चातुर्मासिके नियम एतैस्त्रिभिरपि प्रतिपन्ने ॥ ३ ॥
चिरपरिचितायाः सरसाया गाढप्रेमानुरागक्तायाः । शृङ्गारकोविदाया रुपादिगुणैरधिकायाः ॥ ४ ॥

कोसावेसाए गिहे करणजयट्ठाए निच्चभुत्तीए । विहियपइन्ने सिरिथूलभद्दसाहुम्मि पज्जंते ॥५॥
गुरुपडिवत्तिं दट्ठुं समच्छरो बीयवरिसयालम्मि । सीहगुहाइत्तमुणी आगच्छइ वेसभवणम्मि ॥६॥
तीए भइणी भणिया तह खोहसु जह न होइ वयभंगो । तीए कडक्खविक्खेवमाहिओ जाव सो खुहिओ ॥७॥
जओ-
उप्पयउ गयणमग्गे रंजउ कसिणत्तणं पयासेउ । तह वि हु गोब्बरईडो[1] न पावए भमरचरियाइं ॥८॥
तथा-
अहो ! का काकानामहमहमिका हंसविहगैः ?, सहामर्षं सिंहैरिह हि कतमो जम्बुकतुकाम् ? ।
बत ! स्पर्धा कीदृक् कथय कमलैः सैवलततेः ?, सहाऽसूया सद्धिं खलु खलजनस्यापि कतमा ? ॥९॥
तीए जहा पेसविओ कंबलरयणस्स जायणनिमित्तं । पाउसकाले नेपालविसयनरनाहपासम्मि ॥१०॥
तं जह कंबलरयणं समप्पियं तीए जह नियंतस्स । खित्तं असुइट्ठाणे सोयंतो तं च सिक्खविओ ॥११॥
भयवं ! तं सुइदेहो सीलालंकारभूसिओ सययं । मह असुइसरीरवसा तुमं पि एयारिसो होसि ॥१२॥
ता तं एयं सोयसि न उणो गुणरयणरुइरमप्पाणं । ता इयगए वि भयवं संभरसु पवित्तनियपयविं ॥१३॥
किंच-
सीलु सुनिम्मलु दीहकालु तरुणत्तणि पालिउ, झाण-ऽज्झायणिहिं पावपंकु तवचरणिहिं खालिउ ।

कोशावेश्याया गृहे करणजयार्थाय नित्यभुक्त्या । विहितप्रतिज्ञे श्रीस्थूलभद्रसाधौ पर्यन्ते ॥ ५ ॥
गुरुप्रतिपत्तिं दृष्ट्वा समत्सरो द्वितीयवर्षाकाले । सिंहगुहागतमुनिरागच्छति वेश्याभवने ॥ ६ ॥
तस्या भगिनी भणिता क्षोभय यथा न भवति व्रतभङ्गः । तस्याः कटाक्षविक्षेपमोहितो यावत्सः क्षुब्धः ॥ ७ ॥
यतः-
उत्पततु गगनमार्गे रुञ्जतु कृष्णत्वं प्रकाशताम् । तथापि हु गोमयकीटो न प्राप्नोति भ्रमरचरित्राणि ॥ ८ ॥
.....। .....॥ ९ ॥
तथा -
तया यथा प्रेषितः कम्बलरत्नस्य याचननिमित्तम् । प्रावृट्काले नेपालविषयनरनाथपार्श्वे ॥ १० ॥
तद्यथा कम्बलरत्नं समर्पितं तस्या यथा पश्यतः । क्षिप्तमशुचिस्थाने शोचंस्तं च शिक्षयितः ॥ ११ ॥
भगवन् ! त्वं शुचिदेहः शीलालङ्कारभूषितः स्वयम् । ममाशुचिशरीरवशात्त्वमप्येतादृशो भवसि ॥ १२ ॥
ततस्त्वमेतत् शोचसि न पुन र्गुणरत्नरुचिरमात्मानम् । तत एवंगतेऽपि भगवन् ! स्मर पवित्रनिजपदवीम् ॥ १३ ॥
किञ्च-
शीलं निर्मलं दीर्घकालं तरुणत्वे पालितं ध्यानाध्ययनैः पापपङ्कं तपश्चरणैः क्षालितम् ।

---

१. ०रकीडो रं० ।

इय हालाहलविससरच्छ विसयास निवारहिं, उज्जलवन्नु सुवन्नु धम्विउ मं फुक्कइं हारहि ॥१४॥
अब्भसिउवीरपइन्नाण वरु, आवज्जिउमुणिगुणहं गणु। ता संपइ उवसमि धरहि मणु, आवइ तुरिउंजर-मरणउ॥१५॥
ता मुणसु भो महायस ! इंदियवसगस्स अत्तवियलस्स। सिरिथूलभद्दमुणिणा का तुह सह तेण समसीसी ? ॥१६॥
पेच्छसु मह भइणीए सोहग्गखणीए रइवियड्ढाए। पयडियमयणवियाराए पइदिणं दिढपइन्नो सो ॥१७॥
वाओलीए मंदरगिरि व्व निक्कंपझाणथिरचित्तो। तिलतुसमेत्तं पि हु नेय चालिओ अहह ! स महप्पा ॥१८॥
तं पुण मए वि अदिट्ठगुणसरूवाए बोहिओ एवं। ता पुरिसाणं पच्चक्खमंतरं दीसए गरुयं ॥१९॥
अवरं च-
समरे मरंति जलणे विसंति निवडंति गिरिसिरग्गाओ। जे उण करणाणि जिणंति तिहुयणे ते जणा विरला ॥२०॥
जम्हा-
जाण रमणियणभमुहाधणुनिग्गयसियकडक्खभल्लीहिं। सीलकवयं न भिन्नं नमो नमो ताण वीराणं ॥२१॥
ता भद्द ! संपयं पि हु सुगुरुसयासम्मि वच्च दुच्चरियं। आलोइऊण सम्मं संजमभारं समुव्वहसु ॥२२॥
इय तीए सिक्खविओ भट्ठपइन्नो विलक्खवयणो सो। अणुसासिओ सगुरुणा पयडियसल्लो वयं चरइ ॥२३॥
तह सव्वं नेयव्वं आवस्सगविवरणाओ वित्थरओ। इह गंथगोरवभया वित्थरओ नो मए भणियं ॥२४॥

॥ उपकोशागृहगततपस्व्याख्यानकं समाप्तम् ॥६६॥

इति हलाहलविषसदृशी विषयाशा निवारय, उज्ज्वलवर्णं सुवर्णं ध्मात्वा मा फुत्कृत्य हारय ॥ १४ ॥
अभ्यास्य वीरप्रतिज्ञानं वरम्, आवर्ज्य मुनिगुणस्य गणम्। तावत्सम्प्रत्युपशमे धर मनः आपत्ति तर जर-मरणम् ॥ १५ ॥
ततः मुण भो ! महायशः ! इन्द्रियवशगस्यात्मविकलस्य। श्रीस्थूलभद्रमुनिना का तव सह तेन स्पर्धा ॥ १६ ॥
प्रेक्षस्व मम भगिन्या सौभाग्यखान्या रतिविद्ग्धया। प्रकटितमदनविकारया प्रतिदिनं दृढप्रतिज्ञः सः ॥ १७ ॥
वातोल्या मन्दरगिरिरिव निष्कम्पध्यानस्थिरचित्तः। तिलतुषमात्रमपि हु नैव चैलितो ऽहह ! स महात्मा ॥ १८ ॥
त्वं पुनर्मयाप्यदृष्टगुणस्वरुपया बोधित एवम्। ततः पुरुषाणां प्रत्यक्षमन्तरं दृश्यते गुरुकम् ॥ १९ ॥
अपरं च -
समरे म्रियन्ते ज्वलने विशन्ति निपतन्ति गिरिशिरोग्रात्। ये पुनः करणानि जयन्ति त्रिभुवने ते जना विरलाः ॥ २० ॥
यस्मात् -
येषां रमणिजनभ्रमरधनुर्निर्गतसितकटाक्षभल्लिभिः। शीलकवचं न भिन्नं नमो नमस्तेभ्यो वीरेभ्यः ॥ २१ ॥
ततो भद्र ! साम्प्रतमपि खलु सुगुरुसकाशे व्रज दुश्चरितम्। आलोच्य सम्यक् संयमभारं समुद्वह ॥ २२ ॥
इति तया शिक्षयितो भ्रष्टप्रतिज्ञो विलक्षवदनः सः। अनुशासितः स्वगुरुणा प्रकटितशल्यो व्रतं चरति ॥ २३ ॥
तथा सर्वं ज्ञातव्यमावश्यकविवरणाद्विस्तरतः। इह ग्रन्थगौरवभयाद्विस्तरतो नो मया भणितम् ॥ २४ ॥

॥ उपकोशागृहगत तपस्व्याख्यानकं समाप्तम् ॥ ६६ ॥

स्यान्मतिः – इन्द्रियाणां समीहितपूरणेन सुखितस्य पूर्वदोषासम्भव इति एतदपि नास्ति, यत आह–

जो होइ इंदियवसो सुहमप्पं तस्स दुक्खमइबहुयं ।
भद्दा-माहुर-निवसुय-नराय-सुकुमालियाणं व ॥ २८ ॥

आस्या व्याख्या–'यः' मूढः प्राणी 'भवति' जायते 'इन्द्रियवशः' करणपरतन्त्रः 'सुखं' शर्म 'अल्पं' स्तोकं 'तस्य' इन्द्रियवशगस्य 'दुःखं' तद्विपरीतं 'अतिबहुकं' प्रभूतम् । दृष्टान्तानाह-भद्रा च-श्रेष्ठिभार्या माथुरश्च-मथुराभवो वणिक्तनयः नृपसुतश्च राजपुत्रो गन्धप्रियकुमारः नरादश्च-नरमांसभक्षको नृपः सुकुमारिका च-नृपभार्या तास्तथोक्तास्तासामिव इत्यक्षरार्थः ॥२८॥ भावार्थस्त्वाख्यानकेभ्योऽवसेयः । तानि चामूनि ।

तत्रापि तावत् क्रमागतं भद्राख्यानकमभिधीयते । तच्चेदम्-

आसीह वसंतपुरे छंदम्मि व पवरजइसमाइन्ने । नरगणकलिए बहुवित्तसंजुए पयपहाणम्मि ॥१॥
अणुसरियविबुहमग्गो पुव्वाभासी पहाणसत्तिजुओ । धणनाम सत्थवाहो निवसइ अणुहरियदिवसयरो ॥२॥
पयईए बुद्धिजुया सुपच्चया सुस्सरा य गुणकलिया । तस्स य भद्दा भज्जा सुपया वायरणवित्ति व्व ॥३॥
अह अन्नया य धणओ भद्दं मोत्तूण नियगेहम्मि । अत्थोवज्जणकज्जे संचलिओ अवरदेसम्मि ॥४॥
तद्दासीओ अन्नम्मि वासरे हट्टमज्झयारम्मि । कज्जेण गया केणवि उस्सूराओ पडिनियत्ता ॥५॥
अंबाडियाहिं ताहिं भणियं मा कुप्प सामिणि ! तमज्ज । जेण निमित्तेण ठिया इत्तियवेलं तयं सुणसु ॥६॥
नामेण पुप्फचूलो महुरसरो मुणियगीयविन्नाणो । नियगीयपरवसीकयअसेसपुरनारि-नरनियरो ॥७॥
सो गायंतो दिट्ठो कलकंठो विरहिविहियउक्कंठो । तग्गीयपरवसाणं जाया अम्हाण वेल त्ति ॥८॥
तं निसुणिऊण तत्तो पभणइ भद्दा कया वि अम्हं पि । दरिसेयव्वो त्ति पयंपियम्मि तं ताहि पडिवन्नं ॥९॥

भद्राख्यानकम् ॥ ६७ ॥

आसीदिह वसन्तपुरे छन्द इव प्रवरयतिसमाकीर्णे । नरगणकलिते बहुवित्तसंयुक्ते पदप्रधाने ॥ १ ॥
अनुसृतविबुधमार्गः पूर्वाभ्यासी प्रधानशक्तियुक्तः । धननामा सार्थवाहो निवसत्यनुहृतदिवसकरः ॥ २ ॥
प्रकृत्या बुद्धियुता सुप्रत्यया सुस्वरा च गुणकलिता । तस्य च भद्राभार्या सुपदा व्याकरणवृत्तिरिव ॥ ३ ॥
अथान्यदा च धनदो भद्रां मुक्त्वा निजगृहे । अर्थोपार्जनकार्ये सञ्चलितोऽपरदेशे ॥ ४ ॥
तद्दास्योऽन्यस्मिन् वासरे हट्टमध्ये । कार्येण गता केनाप्युत्सूरेण प्रतिनिर्वृत्ताः ॥ ५ ॥
उपालब्धाभिस्ताभि र्भणितं मा कुप्य स्वामिनि ! त्वमद्य ! येन निमित्तेन स्थिता एतावद्वेलं तकं शृणु ॥ ६ ॥
नाम्ना पुष्पचुलो मधुरस्वरो मुणितगीतविज्ञानः । निजगीतपरवशीकृताशेषपुरनारीनरनिकरः ॥ ७ ॥
स गायन् दृष्टः कलकण्ठो विरहिविहितोत्कण्ठः । तद्गीतपरवशानां जातास्माकं वेलेति ॥ ८ ॥
तन्निश्रुत्य ततः प्रभणति भद्रा कदाप्यस्मानपि । दर्शतिव्य इति प्रजल्पिते तत्ताभिः प्रतिपन्नम् ॥ ९ ॥

अह अन्नदिणे कत्थइ पारद्धा देउले महाजत्ता । नियदासीहिं समेया समागया तत्थ भद्दा वि ॥१०॥
एत्तो य पुप्फचूलो सयलं रयणिं पि गाइउं खिन्नो । देवउलपिट्ठिभाए चिट्ठइ जा निब्भरं सुत्तो ॥११॥
कुणमाणाए पयाहिणमेसो भद्दाए दंसिओ ताहिं । सो एस पुप्फचूलो सामिणि ! गंधव्विओ सुयइ ॥१२॥
दट्ठूणं तं विरूवं कसिणं उद्दंतुरं कविलकेसं । पभणइ भद्दा जस्सेरिसाऽऽगिई को गुणो तस्स ? ॥१३॥
इय एवं जंपती उव्विग्गा तम्मि सा विरूवम्मि । निट्ठीविऊण तत्तो तट्ठाणाओ गया सगिहं ॥१४॥
पच्छा तप्पुरिसेहिं निवेइए तीए वइयरे तस्स । तो सो कुविओ विरइय धणचरियं गीयबंधेण ॥१५॥
जह भद्दाए नियगिहं भलाविउं परियणेण सह चलिओ । जह अवरदेसनरवइपसायदाणेण लद्धजसो ॥१६॥
विढवित्तु भूरिदव्वं नियदेसं पि जहा पडिनियत्तो । जह नियगेहे पविसइ तह गायइ महुरमेसा वि ॥१७॥
पियविरहजलणजालाकरालिया हरियहिययवावारा । तग्गीयसवणविवसा जाणइ किर एइ मह भत्ता ॥१८॥
पविसइ गिहम्मि ता जामि सम्मुहा इय विगप्पियं तरसा । उवरिमतलाओ मेल्लइ विवसा सव्वंगमत्ताणं ॥१९॥
ताव सहस त्ति पडिया मुक्का पाणेहिं पुप्फचूलो वि । तज्जीवियं व घेत्तुं नट्ठो अन्नत्थ चोरो व्व ॥२०॥

॥ भद्राख्यानकं समाप्तम् ॥६७॥

अथान्यदिने क्वचित्प्रारब्धा देवकुले महायात्रा । निजदासीभिः समेता समागता तत्र भद्रापि ॥ १० ॥
इतश्च पुष्पचूलः सकलां रजनीमपि गीत्वा खिन्नः । देवकुलपृष्टभागे तिष्ठति यावन्निर्भरं सुप्तः ॥ ११ ॥
क्रीयमाणायाः प्रदक्षिणामेष भद्राया दर्शितस्ताभिः । स एष पुष्पचूलः स्वामिनि ! गान्धर्विकः स्वपिति ॥ १२ ॥
दृष्टवा तं विरुपं कृष्णमुद्दन्तुरं कपिलकेशम् । प्रभणति भद्रा यस्येदृशाऽऽकृतिः को गुणस्तस्य ? ॥ १३ ॥
इत्येवं जल्पन्त्युद्विग्ना तस्मिन्सा विरुपे । निष्ठित्वा ततस्तत्स्थानादृता स्वगृहम् ॥ १४ ॥
पश्चात्तत्पुरुषै र्निवेदिते तस्या व्यतीकरे तस्य । ततः स कुपितो विरच्य धनचरितं गीतबन्धेन ॥ १५ ॥
यथा भद्राया निजगृहं समर्प्य परिजनेन सह चलितः । यथापरदेशनरपति प्रसाददाने लब्धयशाः ॥ १६ ॥
अर्जयित्वा भूरिद्रव्यं निजदेशं प्रति यथा प्रतिनिवृत्तः । यथा निजगृहे प्रविशति तथा गायति मधुरमेषापि ॥ १७ ॥
प्रियविरहज्वलनज्वाला करालिता हृतहृदयव्यापारा । तद्गीतश्रवणविवशा जानाति किलैति मम भर्ता ॥ १८ ॥
प्रविशति गृहे तावद्यामि सम्मुखेति विकल्पितं तरसा । उपरिमतलान्मुञ्चति विवशा सर्वाङ्गमात्मानम् ॥ १९ ॥
तावत्सहसेति पतिता मुक्ता प्राणैः पुष्पचूलोऽपि । तज्जीवितं च गृहीत्वा नष्टोऽन्यत्र चौर इव ॥ २० ॥

॥ भद्राख्यानकं समाप्तम् ॥ ६७ ॥

अधुना माथुराख्यानकस्यावसरः, तच्च भावभट्टिकाख्यानके भणिष्यते । अतः क्रमप्राप्तं नृपसुताख्यानकमारभ्यते ।

यथा-

नयरम्मि वसंतपुरं नवसंतपुरे रणंगणेक्करसो । आसि नरसीहराया रायायवसियजसप्पसरो ॥१॥
तस्साऽऽसि पढमकुमरो जणियं भुवणम्मि जेण अच्छरियं । जणमेगमुहं काउं नियगुणगहणे बहुमुहं पि ॥२॥
सव्वत्थ वत्थुजायं जं जं पेच्छइ स जिग्घए तं पि । इट्ठा-ऽणिट्ठेसु सया राय-विराए कुणइ कमसो ॥३॥
नाऊणऽच्चासत्तिं जिग्घंतो गुरुयणेण सिक्खविओ । एवं अइप्पसंगो न जुज्जए वच्छ ! तुम्हाणं ॥४॥
मा कुणसु दुगुंछमसोहणम्मि मा सोहणम्मि अणुरायं । जम्हा दुन्नि वि जीवाण कारणं कम्मबंधस्स ॥५॥
अवरं च सुगंधं पि हु कप्पूराई सरीरसंसग्गा । जायइ दुगंधरूवं जा जुज्जइ न इह अणुराओ ॥६॥
खरमडयगंधवासियजलाइवरसुरहिवत्थुसंजोगा । जायइ सुरहिसरूवं तं पि न विउसा दुगुंछंति ॥७॥
ता पोग्गलपरिणाम्मि एरिसे वच्छ ! होसु मज्झत्थो । मा होउ (तुह) अणत्थो कइया वि असोहणग्घाए ॥८॥
एवमणुसासिओ वि हु गुरूहिं न हु मुयइ गंधवसणं सो । भमइ य जिग्घंतो परिमलड्ढवत्थूणि सव्वत्थ ॥९॥
तो सव्वत्थ वि जायं नामं गंधप्पिओ त्ति कुमरस्स । कुणइ य आरुहिऊणं बहुसो वि हु गरुयनावाए ॥१०॥
मणहरसलिलंदोलणकेलिं कल्लोलिणीए गंतूणं । समवयवयंसविलसिरविलासिणीवग्गपरियरिओ ॥११॥
अह से सवक्किजणणी तं विलसंतं विलोइउं पावा । चिंतइ रज्जं होही इमस्स न हु मज्झ पुत्तस्स ॥१२॥

नृपसुताख्यानकम् ॥ ६८ ॥

नगरे वसन्तपुरे नवशान्तपुरे रणाङ्गणैकरसः । आसीन्नरसिंहराजा राजातपसितयशः प्रसरः ॥ १ ॥
तस्यासीत् प्रथमकुमारो जनितं भुवने येनाश्चर्यम् । जनमेकमुखं कृत्वा निजगुणग्रहणे बहुमुखमपि ॥ २ ॥
सर्वत्र वस्तुजातं यद्यत्प्रेक्षते स जिघ्रति तदपि । इष्टानिष्टेषु सदा राग-विरागे करोति क्रमशः ॥ ३ ॥
ज्ञात्वा चासक्तिं जिघ्रन् गुरुजनेन शिक्षयितः । एवमतिप्रसंगो न युज्यते वत्स ! युस्माकम् ॥ ४ ॥
मा कुरु दुर्गञ्छमशोभने मा शोभने ऽनुरागम् । यस्माद् द्वयपि जीवानां कर्मबन्धस्य कारणम् ॥ ५ ॥
अपरं च सुगन्धमपि हु कर्पूरादयः शरीरसंसर्गात् । जायते दुर्गन्धरुपं ततो युज्यते नेहानुरागः ॥ ६ ॥
खरमृतकगन्धवासितजलादिं वरसुरभिवस्तुसंयोगात् । जायते सुरभिस्वरूपं तदपि न विद्वांसो जुगुप्सन्ते ॥ ७ ॥
ततः पुद्गलपरिणाम ईदृशे वत्स ! भव मध्यस्थः । मा भवतु (तवा) नर्थः कदाप्यशोभनघ्राते ॥ ८ ॥
एवमनुशासितोऽपि खलु गुरुभि र्न हु मुञ्चति गन्धव्यसनं सः । भ्रमति च जिघ्रन् परिमलाढ्यवस्तुनि सर्वत्र ॥ ९ ॥
ततः सर्वत्रापि जातं नाम गन्धप्रिय इति कुमारस्य । करोति चारुहय बहुशोऽपि हु गुरुकनावम् ॥ १० ॥
मनोहरसलिलान्दोलनकेलिं कल्लोलिन्यां गत्वा । समवयोवयस्कविलसद्विलासिनिवर्गपरिवारितः ॥ ११ ॥
अथ तस्य शोक्यजननी तं विलसन्तं विलोक्य पापा । चिन्तयति राज्यं भविष्यत्येतस्य न हु मम पुत्रस्य ॥ १२ ॥

ता मारिज्जउ एसो त्ति चिंतिउं लहुपुडे विसं बद्धं । उस्सिंघियमेत्तेण वि मरणं संपज्जए जेण ॥१३॥
तो तं समुग्गयम्मि मंजूसासत्तगस्स मज्झम्मि । तं पि हु पक्खिविऊणं पवाहिया उवरिमे तित्थे ॥१४॥
तत्तो तरंगिणीए तरमाणी दिट्ठिगोयरं पत्ता । कुमरस्स तओ तेणं तं विसमुस्सिंघियं घेत्तुं ॥१५॥
गुरुविसमाहप्पेणं खणेण कुमरो परव्वसो जाओ । तत्तो विसभीएहिं व मुक्को पाणेहिं सहस त्ति ॥१६॥

॥ नृपसुताख्यानकं समाप्तम् ॥६८॥

अधुना नरादाख्यानं व्याख्यायते । तद्यथा-

अत्थि सुसीमा नयरी नयरी संकुणइ कावि जीए समं । सययं सुत्थियजणया जणयाइजणाण कयपूया ॥१॥
जो न पडिवन्नराओ गुणेसु पत्तिय स भन्नइ नराओ । पायडअवन्नराओ तं राया रक्खइ नराओ ॥२॥
जम्हा उ सो नरं माणुसं ति अत्तित्ति भक्खइ निसंसो । तेण नरायं तं वज्जरंति अन्ने उ सोदासं ॥३॥
सो पयईए वसणी विसेसओ मंसलोलुयाकलिओ । मंसं च सूययारप्पमायओ केण वि हियं से ॥४॥
तेण वि भयभीएणं माणुसमंसं सुसंभियं काउं । परिवेसियमस्साऽऽसाइयम्मि पुट्ठो कुओ एयं ? ॥५॥
तेण वि निब्बंधेणं निवेइए तम्मि चेव नरमंसे । रसलोलयाए लुद्धो एगेगं माणुसं हणइ ॥६॥
तस्स भएणं सव्वो नायरलोओ पलाइउं लग्गो । संकलियाए निबद्धो माणुसमेगं समप्पेइ ॥७॥
एवं वच्चइ कालो कयाइ पउरेहिं मंतियं एयं । एसो रक्खसपयई ता णेण न कज्जमम्हाणं ॥८॥

ता मार्यतामेष इति चिन्तयित्वा लघुपुटे विषं बद्धम् । उध्द्राणमात्रेणापि मरणं सम्पद्यते येन ॥ १३ ॥
ततस्तं समुद्गके मञ्जूषासप्तकस्य मध्ये । तदपि हु प्रक्षिप्य प्रवाहितोपरिमे तीर्थे ॥ १४ ॥
ततस्तरंगीण्यां तरन्ती दृष्टिगोचरं प्राप्ता । कुमारस्य ततस्तेन तं विषमुद्घ्रातं गृहीत्वा ॥ १५ ॥
गुरुविषमाहात्म्येन क्षणेन कुमारः परवशो जातः । ततो विषभीतैरिव मुक्तः प्राणैः सहसेति ॥ १६ ॥

॥ नृपसुताख्यानकम् समाप्तम् ॥ ६८ ॥

नरादाख्यानकम् ॥ ६९ ॥

अस्ति सुसीमा नगरी नगरी संकरोति कापि यस्याः समम् । स्वयं सुस्थितजनका जनकादिजनानां कृतपूजा ॥ १ ॥
यो न प्रतिपन्नरादो गुणेषु प्रत्ययिता स भण्यते नरादः । प्राकृतावर्णरागस्तं राजा रक्षति नरात् ॥ २ ॥
यस्मात्तु स नरं मानुषमित्यत्तीति भक्षयति निःशंसः । तेन नरादं तं कथयन्त्यन्ये तु सोदासम् ॥ ३ ॥
स प्रकृत्या व्यसनी विशेषतो मांसलोलुपाकलितः । मासं च सूपकारप्रमादतः केनापि हृतं तस्य ॥ ४ ॥
तेनापि भयभीतेन मानुषमांसं सुसंभृतं कृत्वा । परिवेशितमस्यास्वादिते पृष्टः कृत एतत् ? ॥ ५ ॥
तेनापि निर्बन्धेन निवेदिते तस्मिंश्चैव नरमांसे । रसलोलतया लुब्ध एकैकं मानुषं हन्ति ॥ ६ ॥
तस्य भयेन सर्वो नागरलोकः पलायितुं लग्नः । शृङखलायां निबद्धो मानुषमेकं समर्पयति ॥ ७ ॥
एवं व्रजति कालः कदाचित् पौरै र्मन्त्रितमेतत् । एष राक्षसप्रकृतिस्ततोऽनेन न कार्यमस्माकम् ॥ ८ ॥

रज्जे निवेसिऊणं तस्स सुयं सम्मएण सव्वेसि । अडवीए पक्खित्तो सो मत्तो मज्जपाणेणं ॥९॥
तत्थ विसेसाहारेण धम्मरहिओ धिइं अलभमाणो । पंथे माणुसमेगं मारइ परिचत्तमज्जाओ ॥१०॥
अह अन्नया ये तेणं भुक्खिय-तिसिएण साहुणो दिट्ठा । उद्धाइओ य ते वि हु भक्खिउकामो दुरायारो ॥११॥
तो ते घेत्तुं सागारमणसणं ठन्ति काउसग्गम्मि । न तरइ उग्गहभूमिं तेसिमइक्कमिउमहममई ॥१२॥
तत्तो विलक्खवयणो पडिबोहकए मुणीहिमालविओ । भो भो सुणसु महायस ! पंचिंदियजियवहसमुत्थं ॥१३॥
मंसं विसिट्ठलोयाण गरहियं गरुयपावसंजणयं । सामन्नेणं सव्वं माणुसमंसं विसेसणं ॥१४॥
यत-
स्वं मांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति । वृद्धिं न लभते सोऽपि यत्र यत्रोपपद्यते ॥१५॥
आयुःक्षयो भवति तस्य दरिद्रता च, नैवान्यजन्मनि भवेत् कुल-जातिलाभः ।
मांसाशिनो हतमतेर्विफलक्रियस्य, स्यान्नीचकर्मकरणोदरपूरणं च ।१६॥
तथा-
मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् । एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ।.१७॥
तं सोऊण नराओ पडिबुद्धो कुगइगमणजायभओ । सइ मंसभक्खणाओ विणियत्तो जायधम्मरुई ॥१८॥

॥ नरादाख्यानकं समाप्तम् ॥६९॥

इदानीं सुकुमारिकाख्यानकं व्याख्यायते । तद्यथा-
चंपापुरीए राया जियसत्तू सत्तुसमरसंहारो । सरयरयणियरकंता कंता सुकुमालिया तस्स ॥१॥
तो तीए कमलकोमलसरीरफासेण मोहिओ अहियं । अणवरयसुरयवावारहरियहियओ महाराया ॥२॥

राज्ये निवेश्य तस्य सुतं सम्मतेन सर्वेषाम् । अटव्यां प्रक्षिप्त स मत्तो मद्यपानेन॥ ९ ॥
तत्र विशेषाहारेण धर्मरहितौ धृतिमलमानः । पथि मानुषमेकं मारयति परित्यक्तमर्यादः ॥ १० ॥
अन्थान्यदा च तेन बुभुक्षित-तृषितेन साधवो दृष्टाः । उद्धावितश्च तानपि खलु भक्षितुकामो दुराचारः ॥ ११ ॥
तदा ते गृहीत्वा साकारमनशनं तिष्ठन्ति कार्योत्सर्गे । न शक्नोत्युत्सर्गभूमिं तेषामतिक्रमितुमधममतिः ॥ १२ ॥
ततो विलक्षवदनः प्रतिबोधकृते मुनिभिरालपितः । भो भो श्रणु महायशः ! पञ्चेन्दियजीववधसमुत्थम् ॥ १३ ॥
मासं विशिष्टलोकानां गर्हितं गुरुकपापसञ्जनकम् । सामान्येन सर्वं मानुषमांसं विशेषेण ॥ १४ ॥
तत् श्रुत्वा नरादः प्रतिबुद्धः कुगतिगमनजातभयः । सदा मांसभक्षणाद्विनिवृत्तो जातो धर्मरुचिः ॥ १८ ॥

॥ नरादाख्यानकं समाप्तम् ॥ ६९ ॥

सुकुमारिकाख्यानकम् ॥ ७० ॥

चम्पापूर्यां राजा जितशत्रुः शत्रुसमरसंहारः । शरदरजनीकरकान्ता कान्ता सुकमारिका तस्य ॥ १ ॥
ततस्तस्याः कमलकोमलशरीरस्पर्शेन मोहितोऽधिकम् । अनवरतसुरतव्यापारह्रतहृदयो महाराजा ॥ २ ॥

अवमन्निय अवरोहणरमणीनियरो विमुक्ककरिकीलो । परिचित्तवरत्थाणो दूरीकयमंतिपउरजणो ॥३॥
अगणियजणाववाओ परिहरियहिओवएससंघाओ । अवगन्नियगुरुवयणो अवहत्थियसत्थपरमत्थो ॥४॥
अगुणियकलाकलावो अदिन्नबंधुयणदंसणालावो । परिचत्तधम्मकम्मो अवमाणियमित्त-पुत्तगणो ॥५॥
अकलियनियबलमाणो अजणियबंदियणदाणसम्माणो । अन्नायसत्तुमंडलवावारो अकयकायव्वो ॥६॥
किं बहुणा भणिएणं ? तच्चित्तो तम्मओ व्व संजाओ । तप्फासलालसो सो निग्गच्छइ नावरोहाओ ॥७॥
राया मयणमहागहगहिओ त्ति असेससत्तुसंघाओ । चंपेइ चउप्पासं तद्देसं विहियसन्नाहो ॥८॥
खत्ते खणंति चोरो धाडिं पाडिंति चरडचक्काणि । बंदंति वंदियगणा वणियजणं दविणलुद्धमणा ॥९॥
तोडंति जुवइकन्ने जूयारा कणयकुंडलनिमित्तं । गंठिच्छेया गंठिं छिंदित्ता भज्झत्ति नासंति ॥१०॥
सेवंति पारदारियनियरा निस्संकमेव पररमणिं । किं बहुणा ? सव्वा वि हु नयरी असमंजसा जाया ॥११॥
न य कोइ सुहं निद्दं पावइ भुंजइ न कोई सोक्खेण । एगागी न य कोइ वि नयरीमज्झम्मि परिभमइ ॥१२॥
पेयवणं व सुभीमं पुरिं पलोएइ विमलमइमंती । चिंतइ अहो ! विणट्ठं रज्जं ता कीरउ किमेत्थ ? ॥१३॥
परिहरइ विसयवसणं न निवो सुइरं पि पभणिओ वि मया । ता दिज्जउ रायसिरी कुमरस्स विचिंतिउं एवं ॥१४॥
पभणइ तो एगंते कुमरं मंती जहा महाराया । नीइनिवारियविसयासत्तो हारेइ रज्जसिरिं ॥१५॥
तुम्हारिसा वि जइ किर नययकुलक्कमसमागयं लच्छिं । समुविक्खंति तओ सा गिण्हेयव्वा रिऊहिं सुहं ॥१६॥

अवमन्यान्तःपुर रमणिनिकरो विमुक्तकरिक्रीडः । परित्यक्तवरास्थानो दूरीकृतमन्त्रिपौरजनः ॥ ३ ॥
अगणितजनापवादः परिहृतहितोपदेशसंघातः । अवगणितगुरुवचनोऽपहसितशास्त्रपरमार्थः ॥ ४ ॥
अगुणितकलाकलापोऽदत्तबन्धुजनदर्शनालापः । परित्यक्तधर्मकर्मोऽपमानितमित्र-पुत्रगणः ॥ ५॥
अकलितनिजबलमानोऽजनितबन्दिजनदानसन्मानः । अज्ञातशत्रुमण्डलव्यापारोऽकृतकर्तव्यः ॥ ६ ॥
किं बहुना भणितेन ? तच्चित्तस्तन्मय इव सञ्जातः । तत्स्पर्शलालसः निर्गच्छति नान्तःपुरात् ॥ ७ ॥
राजा मदनमहाग्रहगृहीत इत्यशेषुशत्रुसङ्घातः । चम्पति चतुःपार्श्वं तद्देशं विहितसन्नाह : ॥ ८ ॥
खात्रान् खणन्ति चौराः घाटिं पातयन्ति चरटचक्राणि । वन्दन्ति बन्दिकगणा वणिग्जनं द्रविणलुब्धमनसः ॥ ९ ॥
त्रोटयन्ति युवतिकर्णान् द्युतकाराः कनककुण्डलनिमित्तम् । ग्रन्थिछेदा ग्रन्थिं छित्वा शीघ्रं नश्यन्ति ॥ १० ॥
सेवन्ते परदारिकनिकरा निःशङ्कमेव पररमणिम् । किं बहुना ? सर्वाऽपि हु नगरी असमञ्जसा जाता ॥ ११ ॥
न च कोऽपि सुखं निद्रां प्राप्नोति भुञ्जते न कोपि सौख्येन । एकाकी न च कोऽपि नगरीमध्ये परिभ्रमति ॥ १२ ॥
प्रेतवनमिव सुसमां पुरिं प्रलोकते विमलमतिमन्त्री । चिन्तयत्यहो ! विनष्टं राज्यं तदा क्रीयते किमत्र ? ॥ १३ ॥
परिहरति विषयव्यसनं न नृपः सुचिरमपि प्रभणितोऽपि मया । तदा दीयतां राज्यश्रियं कुमाराय विचिन्त्यैवम् ॥ १४ ॥
प्रभणति तत एकान्ते कुमारं मन्त्री यथा महाराजा । नीतिनिवारितविषयासक्तो हारयति राज्यश्रियम् ॥ १५ ॥
युस्मादृशा अपि यदि किल निजककुलक्रमसमागतां लक्ष्मीम् । समुपेक्षन्ते ततः सा गृहीतव्या रिपुभिः सुखम् ॥ १६ ॥

तो निव्वासिय पियरं कुमार ! समलंकरेसु रायसिरिं । जेण तुह पायपायवछायाए सुहं वसइ लोगो ॥१७॥
जं भणइ महामंती करेमि तं पभणिए कुमारेण । मंती पहिट्ठहियओ महापसायं पयंपेइ ॥१८॥
तत्तो अप्पायत्ता कुमरेण कया समग्गसामंता । राया वि तीए जुत्तो जोगजुयं पाइओ मइरं ॥१९॥
तो मयमत्तो सुत्तो उप्पाडित्ता निउत्तपुरिसेहिं । देवीए जुओ मुक्को पल्लंकठिओ महारन्ने ॥२०॥
रुरु-रोज्झ-सीह-सम्बर-सद्दूलविमुक्कघोरवोंकारे । बद्धं च तस्स वत्थे पत्तं एवं लिहेऊण ॥२१॥
वसणासत्तो त्ति तुमं कलिऊणं सयलनयरलोएण । मुक्को देवीए समं एयम्मि महाअरन्नम्मि ॥२२॥
ता एयं नाऊणं न हु वलियव्वं तए इओहुत्तं । ..... य नाउं कुण जहाजुत्तं ॥२३॥
मयरामयपज्जंते पच्चागयजीविओ व्व नरनाहो । उवलद्धचेयणो सो पेच्छइ घोरं महाअडविं ॥२४॥
किं इंदियालमेयं इय चिंतंतेण पत्तयं दिट्ठं । उच्छोडिऊण वायइ अवगयतत्तो तओ राया ॥२५॥
जंपइ य पिए ! चत्तो त्ति अहममच्चेण दुट्ठचित्तेण । ता मज्झ रायलच्छी को गिण्हइ मइ जियंते वि ? ॥२६॥
इय जंपिऊण आबद्धभीमभिउडीए भासुरनिडालो । आयड्ढियकरवालो समुट्ठिओ जाव तो देवी ॥२७॥
जंपइ न जुत्तमेयं नरिंद ! चउरंगबलविहूणेण । तो भणइ पुहइपालो किं कायव्वं पिए ! इण्हिं ? ॥२८॥
सेवेमि न किंपि निवं जम्हा सव्वेहि सेविओ अहयं । न हु उत्तमाण सेवाविडंबणा जुज्जइ कया वि ॥२९॥
ता गच्छामो कत्थइ भणिउं जाव अडविमज्झम्मि । गच्छन्ति तओ देवी सुकुमालत्तेण परिसंता ॥३०॥

ततो निर्वास्य पितरं कुमार ! समलङ्कुरुष्व राज्यश्रियम् । येन तव पादपादपछायायां सुखं वसति लोकः ॥ १७ ॥
यद्भणति महामन्त्री करोमि तत्प्रभणिते कुमारेण । मन्त्री प्रहृष्टहृदयो महाप्रासादं प्रजल्पति ॥ १८ ॥
तत आत्मायत्ताः कुमारेण कृताः समग्रसामन्ताः । राजापि तस्या युक्तो योगयुक्तां पायितो मदिराम् ॥ १९ ॥
ततो मदमत्तः सुप्त उत्पाट्य नियुक्तपुरुषैः । देव्या युक्तो मुक्तः पल्यङ्कस्थितो महारण्ये ॥ २० ॥
रुरु-रोझ-सिंह-शम्बर-शार्दूलविमुक्तघोरबुत्कारे । बद्धं च तस्य वस्त्रे पत्रमेवं लिखित्वा ॥ २९ ॥
व्यसनासक्त इति त्वं कलित्वा सकलनगरलोकेन । मुक्तो देव्या सममेतस्मिन् महारण्ये ॥ २२ ॥
तत एतज्ज्ञात्वा न खलु वलितव्यं त्वयेतोऽभिमुखः । .....ज्ञात्वा कुरु यथोक्तम् ॥ २३ ॥
मदिरामदपर्यन्ते प्रत्यागतजीवित इव नरनाथः । उपलब्धचेतनः स प्रेक्षते घोरां महाटविम् ॥ २४ ॥
किमिन्द्रियजालमेतदिति चिन्तयता पत्रकं दृष्टम् । उच्छोट्य वाचयति अवगततत्त्वस्ततो राजा ॥ २५ ॥
जल्पति च प्रिये ! त्यक्त इत्यहममात्येन दुष्टचित्तेन । ततो मम राजलक्ष्मीः को गृह्णाति मयि जीवत्यपि ? ॥ २६ ॥
इति जल्पित्वाऽऽबद्धभीम भृकुट्या भासुरनिडालः । आकृष्टकरवालः समुत्थितो यावत्तदा देवी ॥ २७ ॥
जल्पति न युक्तमेतन्नरेन्द्र ! चतुरंगबलविहीनेन । तदा भणति पृथिवीपालः किं कर्तव्यं प्रिये ! इदानीम् ? ॥ २८ ॥
सेवे न किमपि नृपं यस्मात् सर्वैः सेवितोऽहम् । न खलुत्तमानां सेवाविडम्बना युज्यते कदापि ॥ २९ ॥
ततो गच्छावः कुत्राचिदिति भणित्वा याटविमध्ये । गच्छत स्ततो देवी सुकुमारत्वेन परिश्रान्ता ॥ ३० ॥

जाया अईव तिसिया तो राया सिसिरतरुतले मोत्तुं । नीरनिरिक्खणकज्जे भमिओ सव्वत्थ न हु लद्धं ॥३१॥
तो नियभुयदंडसिरं छित्तुं छुरियाए तस्स कीलालं । अच्छीकाउं तं मूलियाए पाएइ पुडयगयं ॥३२॥
तत्तो छुहियाए इमाए अवरमाहारमलहमाणो सो । नियऊरुमंसखंडाइं छिंदिउं भुंजिऊण दवे ॥३३॥
संरोहिऊण ऊरूवणंपि संरोहणीए मूलीए । तो ससमंसछ्लेणं नियमंसं देइ देवीए ॥३४॥
पत्ताइं तओ गंगातरंगिणीतीरपवरनयरम्मि । ता देवीआभरणेहिं नरवई कुणइ वाणिज्जं ॥३५॥
अह अन्नदिणे देवी पुहइवइं भणइ अज्जउत्त ! अहं । तइया सहियणकलगीयवेणुवीणाविणोएहिं ॥३६॥
न मुणंती गच्छंतं पि कालमेगागिणी कहं इण्हि । चिट्ठामि ? किंपि ता कुण विणोयणत्थं मह सहायं ॥३७॥
तो तीए विणोयकए ठविओ पंगू निवेण नियभवणे । कागलिगेयं गायइ किन्नरसद्देण सो तत्थ ॥३८॥
कहइ य कामकहाओ बहुप्पयारं तओ इमा तम्मि । गाढममुरायरत्ता भत्तारं मारिउं महइ ॥३९॥
उज्जाणीए राया गंगाए गओ अहऽन्नदिवसम्मि । ता झत्ति तीए खित्तो वीसत्थो वारिमज्झम्मि ॥४०॥
तो भुयदंडेहिं तरंतएण लद्धं तरंडयं तेण । तरिउं तरंगिणीनियडमागओ कस्स वि पुरस्स ॥४१॥
तो परिसंतो सुत्तो महल्लकंकेल्लिरुक्खछायाए । न दुहा वि तस्स छाया ओसरइ खणं पि पुन्नेहिं ॥४२॥
एत्थंतरे अपुत्तो पुहइवई तम्मि पुरवरम्मि मओ । अहिवासिओ तुरंगो मंतीहिं विसिट्ठमंतेहिं ॥४३॥
तो तिय-चउक्क-चच्चर-रच्छामुह-चउमुहे परिब्भमिउं । पत्तो नरिंदपासे उड्डइ पिट्ठिं चडइ राया ॥४४॥

जातातीव तृषिता तदा राजा शिशिरतरुतले मुक्त्वा । नीरनिरीक्षण कार्ये भ्रान्तः सर्वत्र न खलु लब्धम् ॥ ३१ ॥
ततो निजभुजदण्डशिरां छित्वा छूरिकाया तस्य कीलालम् । स्वच्छीकृत्वा तं मूलिकया पाययति पुटकगतम् ॥ ३२ ॥
ततो बुभुक्षितयानया अपरमाहारमलभमानः सः । निजोरुमांसखण्डानि छित्त्वा भुक्त्या देयात् ॥ ३३ ॥
संरोह्योरुव्रणमपि संरोहिण्या मूल्या । तत शशमासंच्छ्लेन निजमांसं ददाति देव्यै ॥ ३४ ॥
प्राप्तौ ततो गङ्गातरङ्गिणीतीरप्रवरनगरे । तदा देव्याभरणै र्नरपतिः करोति वाणिज्यम् ॥ ३५ ॥
अथान्यदिने देवी पृथिवीपतिं भणत्यार्यपुत्र ! अहम् । तदा सखीजनकलगीतवेणुवीणाविनोदैः ॥ ३६ ॥
न मुणन्ती गच्छन्तमपि कालमेकाकिनी कथमिदानीम् । तिष्ठामि ? किमपि ततः कुरु विनोदनार्थं मम सहायम् ॥ ३७॥
ततस्तस्या विनोदकृते स्थापितपङ्गुर्नृपेण निजभवने । कागलिगेयं गायति किन्नरशब्देन स तत्र ॥ ३८ ॥
कथयति च कामकथाः बहुप्रकारं तत इयम् तस्मिन् । गाढमनुरागरक्ता भर्त्तारं मारयितुमिच्छति ॥ ३९ ॥
उज्जैन्या राजा गङ्गायां गतोऽथान्य दिवसे । तदा शीघ्रं तया क्षिप्तो विश्वस्तो वारिमध्ये ॥ ४० ॥
ततो भुजदण्डेन तरता लब्धं तरण्डकं तेन । तीर्त्वा तरङ्गिणिनिकटमागतः कस्यापि पुरः ॥ ४१ ॥
ततःपरिश्रान्तः सुप्तो महत्कङ्केलिवृक्षच्छायायाम् । न द्विधापि तस्य छायापसरति क्षणमपि पुण्यैः ॥ ४२ ॥
अत्रान्तरेऽपुत्रः पृथिवीपतिस्तस्मिन् पुरवरे मृतः । अधिवासितस्तुरंगो मन्त्रिभि र्विशिष्टमन्त्रैः ॥ ४३ ॥
ततस्त्रिक-चतुष्क-चत्वर-रथ्यामुख-चतुर्मुखे परिभ्रम्य । प्राप्तो नरेनद्रपार्श्व उड्डयते पृष्टीमारोहति राजा ॥ ४४ ॥

तो मंतिमंडलेसरसामंतप्पभिइपउरलाएहिं । पणमिज्जंतो पत्तो रायउलं तत्थ अहिसित्तो ॥४५॥
पुव्विल्लरायपट्टे जाओ अइउग्गसासणो राया । सुकुमालिया वि एत्तो भक्खिय निस्सेसनिवदविणं ॥४६॥
तत्तो चोल्लयखित्तं पंगु काऊण नियसीसम्मि । भिक्खं परिब्भमंती जणेण पुच्छिज्जए एवं ॥४७॥
किं तुज्झ पई पंगू ? सा जंपइ देवबंभणाईहिं । मह दिन्नो भत्तारो परिणीओ तो मए एसो ॥४८॥
सीलं परिपालंती सेवेमि इमं पि इय पयंपेइ । एवं परिब्भमंती पत्ता जियसत्तुनयरम्मि ॥४९॥
पडिमंदिरं पि भिक्खं भमेइ गायइ य पंगुणा सद्धिं । रायस्स तओ कहियं केण वि एयारिससरूवं ॥५०॥
तं हक्कारिय पुच्छइ जणीमज्झट्ठिओ महाराया । असरिसरूवजुयाए तुह किं एयारिसो भत्ता ? ॥५१॥
सा जंपइ देव ! अहं पइव्वया तो इमेण दइएण । पालेमि नियसीलं भणियमिणं तो नरिंदेण ॥५२॥
वाह्यो रुधिरमापीतमूरुमांसं च भक्षितम् । गङ्गायां प्लावितो भर्ता साधु साधु पतिव्रते ! ॥५३॥
सोउं नरिंदवयणं नाया हं राइण त्ति लज्जाए । जाया अहोमुही सा तो भणियं मंतिवग्गेण ॥५४॥
सामि ! किमेयं ? अम्हाण कोउयं कहसु भणइ तो राया । अलमेईए कहाए पावाए मंतिणो वि पुणो ॥५५॥
पभणंति अकहणीयं जइ नो ता कहसु देव ! सुपसायं । कहइ तओ नरनाहो वुत्तंतं तीए ताण पुरो ॥५६॥
तं सोऊणममच्चा भणंति पावाए पेच्छ जं विहियं । विवुहजणनिंदणिज्जं उवहसणिज्जं अमित्ताण ॥५७॥
परिहरिय पुरिसरयणं अहिणववरकुसुमबाणअभिरूवं । रायं किं अणुरत्ता पावा पंगुम्मि गुणहीणे ? ॥५८॥

तदा मन्त्रिमण्डलेश्वरसामन्तप्रभूतिपौरलाजै: । प्रणम्यमान: प्राप्तो राजकुलं तत्राभिषिक्त: ॥ ४५ ॥
पूर्वेराजपट्टे जातोऽत्युग्रशासनो राजा । सुकुमालिकापीतो भक्षित्वा नि:शेषनृपद्रविणम् ॥ ४६ ॥
ततश्चोल्लकक्षिप्तं पङ्गुं कृत्वा निजकशीर्षे । भिक्षां परिभ्रमन्ती जनेन पृच्छ्यत एवम् ॥ ४७ ॥
किं तव पति: पङ्गु ? सा जल्पति देवब्राह्मणादिभि: । मह्यं दत्तो भर्ता परिणित स्तदा मयैष: ॥ ४८ ॥
शीलं परिपालयन्ती सेव इममपीति प्रजल्पति । एवं परिभ्रमन्ती प्राप्ता जितशत्रुनगरे ॥ ४९ ॥
प्रतिमन्दिरमपि भिक्षां भ्रमति गायति च पङ्गुना सार्धम् । राज्ञस्तत: कथितं केनाप्येतादृशस्वरूपम् ॥ ५० ॥
तामाकार्य पृच्छति यवनिकामध्यस्थितो महाराजा । असदृशरूपयुतायास्तव किमेतादृशो भर्ता ? ॥ ५१ ॥
सा जल्पति देव ! अहं प्रतिव्रता ततोऽनेन दयितेन । पालयामि निजकशीलं भणितमिदं ततो नरेन्द्रेण ॥ ५२ ॥
श्रुत्वा नरेन्द्रवचनं ज्ञाताहं राज्ञेति लज्जया । जाताधोमुखी सा तदाभणितं मन्त्रि वर्गेण ॥ ५४ ॥
स्वामिन् ! किमेतद् ? अस्माकं कौतुकं कथय भणति ततो राजा । अलमनया कथया पापया मन्त्रिणोऽपि पुन: ॥५५॥
प्रभणन्त्यकथनीयं यदि न तदा कथय देव ! सुप्रसादम् । कथयति ततो नरनाथो वृत्तान्तं तस्यास्तेषां पुर: ॥ ५६ ॥
तत् श्रुत्वामात्या भणन्ति पापाया: पश्य यद्विहितम् । विबुधजननिन्दनीयमुपहसनीयममित्राणाम् ॥ ५७ ॥
परिहर्य पुरुषरत्नमभिनववरकुसुबाणाभिरुपम् । राजानं किमनुरक्ता पापा पङ्गौ गुणहीने ? ॥ ५८ ॥

अहह ! अहो ! अविवेओ अहह ! महापावपरिणई गुरुया । जं गुरुयकुलुप्पन्ना वि कुणइ एयारिसमजुत्तं ॥५९॥
दंडो नारीण विसज्जणं ति मंतीहिं नीइमणुसरिउं । देसस्स समग्गस्स वि पावा निद्धाडिया तेहिं ॥६०॥

॥ सुकुमालिकाख्यानकं समाप्तम् ॥७०॥

जह एएहिमसज्झं इंदियवसगेहिं पावियं दुक्खं । तह अन्नो वि हु पावइ ता तेसिं निग्गहं कुणह ॥१॥
रम्यं यदक्षजसुखं परिकल्पयन्ति, मूढास्तकद् व्यसन-विघ्नशतोपगूढम् ।
कूपोपरूढवटपपादलग्नमर्त्योपलब्धमधुबिन्दुसमानमल्पम् ॥२॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे इन्द्रियवशप्राणिदुःखवर्णनो द्वाविंशतितमोऽधिकारः समाप्तम् ॥२२॥

अहह ! अहो ! अविवेकोऽहह ! महापापपरिणति र्गुरुका । यद्गुरुककुलोत्पन्नापि करोत्येतादृशमयुक्तम् ॥ ५९ ॥
दण्डो नारीणां विसजेनमिति मन्त्रिभि र्नीतिमनुसृत्य । देशात् समग्रादपि पापा निष्कासिता तैः ॥ ६० ॥

॥ सुकुमालिकाख्यानकं समाप्तम् ॥ ७० ॥

यथैतैरसाध्यमिन्द्रयवशगैः प्राप्तं दुःखम् ।
तथान्योऽपि खलु प्राप्नोति ततस्तेषां निग्रहं कुरुत ॥ १ ॥

[२३. व्यसनशतजनकयुवत्यविश्वासवर्णनाधिकारः ।]

इन्द्रियवशगस्य सुखमल्पमित्युक्तम् । तद्वश्यता च प्रायः प्राणिनो युवतिभ्यो भवति, ताश्च दुःखहेतुत्वाद् विश्वासस्थानमेव न भवन्तत्येतदाह –

जुवईसु न वीसासो कायव्वो पयइकुडिलहिययासु ।
नेउरवंडिय-दत्तयदुहिया-भावट्टियासुं व ॥ २६ ॥

अस्या व्याख्या - 'युवतिषु' महेलासु 'न' नैव 'विश्वासः' हृदयसमर्पणं 'कर्तव्यः' विधेय । कीदृशीषु 'प्रकृत्या' स्वभावेन 'कुटिलहृदयासु' वक्रचित्तासु । द्रष्टान्तानाह-नूपुरपण्डिता च -श्रेष्ठिवधूः दत्तकदुहिता च - दत्तकश्रेष्ठिसुता भावट्टिका च श्रेष्ठिसुतैव तास्तथोक्ताः तास्विवेत्यक्षरार्थः ॥२९॥ भावार्थश्चासामप्याख्यानकगम्यः । तानि चामूनि ।

तत्र क्रमाप्राप्तं तावद् नूपुरपण्डिताख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

नामेण वसंतपुरं नयरं सुपसिद्धमत्थि जम्मि सया । लयपरिकलिओ वि हु अलयसंजुओ गाइणीसत्थो ॥१॥
तम्मि य असंखसंखो पउरगओ णेगपवरबलभद्दो । उवहसियपउमनाहो जियसत्तू नाम नरनाहो ॥२॥
परिवसइ देवदत्तो सेट्ठी तम्मि उ विसिट्ठगुणजुत्तो । सोहग्ग-रूय-लायन्नगुणनिही तस्स पवरसुया ॥३॥
अवरो कुमारनंद निवसइ मइविहवलद्धमाहप्पो । रूवेण पंचबाणो तस्स सुओ पंचनंदि त्ति ॥४॥

नुपूरपण्डिताख्यानकम् ॥ ७१ ॥

नाम्ना वसन्तपुरं नगरं सुप्रसिद्धमस्ति यस्मिन् सदा । लयपरिकलितोऽपि खल्वलयसंयुक्तो गायिनीसार्थः ॥ १ ॥
तस्मिश्चासङ्खसङ्ख्यः पौरगणोऽनेकप्रवरबलभद्रः । उपहसितपद्मनाभो जितशत्रु र्नाम नरनाथः ॥ २ ॥
परिवसति देवदत्तः श्रेष्ठी तस्मिंस्तु विशिष्टगुणयुक्तः । सौभाग्य-रूप-लावण्यगुणनिधिस्तस्य प्रवरसुता ॥ ३ ॥
अपरः कुमारनन्दो निवसति मतिविभवलब्धमाहात्म्यः । रूपेण पञ्चबाणस्तस्य सुतः पञ्चनन्दिरिति ॥ ४ ॥

परिणीया सा तेणं महाविभूईए नेहसारेण । तीए सह विसयसोक्खं उवभुंजइ निच्चमणुरत्तो ॥५॥
अह अन्नया कयाई ण्हाणत्थं सा गया नइं कहवि । मज्जंतिं तं दट्ठुं अह एगो चिंतए तरुणो ॥६॥
सो च्चिय जयम्मि धन्नो जो एयाए सपक्खगुणकलिओ । अहरदलवयणकमले छप्पयलीलं समुव्वहइ ॥७॥
सो च्चिय जयम्मि जाओ गुणकलिओ निम्मलो वि सो चेव । तो एयाए विलसइ विउले हारो व्व थणवट्टे ॥८॥
एवं विचिंतयंतो निब्भरअणुरयरंजिओ अहियं । तीसे अणुरायपरिक्खणत्थमेसो इमं पढइ ॥९॥
सुण्हायं ते पुच्छइ एस नई मत्तवारणकरोरु ! । एए य नईरुक्खा अहं च पाएसु ते पडिओ ॥१०॥
तं सोऊणं गाहं वलंतसकडक्खचक्खुबाणेहिं । चिंधंती तं तरुणं वियड्ढयाए इमं पढइ ॥११॥
सुभगा हुंतु नईओ चिरं च जीवंति जे नईरुक्खा । सुण्हायपुच्छगाणं घत्तीहामो पियं काउं ॥१२॥
तब्भावं नाऊणं तग्गेहाईण जाणणनिमित्तं । तीए सह आगयाणं डिंभाण फलाणि सो दाउं ॥१३॥
पुच्छइ गेहाईयं ताणि वि साहंति सुद्धभावा उ । तं सव्वं तप्पुरओ तत्तो सो चिंतए एवं ॥१४॥
तव्विरहजलणजालाकरालकवलिज्जमाणमच्चत्थं । कह निव्ववेमि तीए संगमसलिलेण अत्ताणं ? ॥१५॥
इय संगोवायमिमो चिंतंतो अहियमुवयरेऊणं । पेसइ पुव्वपरिच्चियपव्वाइं तीए गेहम्मि ॥१६॥
सा तत्थ गया दिट्ठा इंती भिसयाइवावडकरग्गा । काऊण तप्पणामं दाऊणं आसणे तत्तो ॥१७॥
पुच्छइ भगवइ ! किं दिट्ठमेत्थमच्छरियमसरिसं किंपि ? । सा भणइ दिट्ठमामं वच्छे ! एत्थेव नयरम्मि ॥१८॥

परिणीता सा तेन महाविभूत्या स्नेहसारेण । तया सह विषयसौख्यमुपभुनक्ति नित्यमनुरक्तः ॥ ५ ॥
अथान्यदा कदाचित् स्नानार्थं सा गता नदीं कथमपि । मज्जतीं तां दृष्ट्वाथैकश्चिन्तयति तरुणः ॥ ६ ॥
सचैव जगति धन्यो य एतस्याः सपक्षगुणकलितः । अधरदलवदनकमले षट्पदलीलां समुद्वहति ॥ ७ ॥
स चैव जगति जातो गुणकलितो निर्मलोऽपि स चैव । य एतस्या विलसति विपुले हार इव स्तनपट्टे ॥ ८ ॥
एवं विचिन्तयन्निर्भरानुरागरञ्जितोऽधिकम् । तस्या अनुरागपरीक्षणार्थमेष इदं पठति ॥ ९ ॥
सुस्नातं ते पृच्छत्येषा नदी मत्तवारणकरोरु ! । एते च नदीवृक्षा अहं च पादयोस्ते पतितः ॥ १० ॥
तत् श्रुत्वा गाथां वलत्सकटाक्षचक्षुबाणैः । चिह्नन्ती तं तरुणं विदग्धतया इमं पठति ॥ ११ ॥
सुभगा भवन्तु नद्यश्चिरं च जीवन्तु ये नदीवृक्षाः । सुस्नातपृच्छकानां ग्रहीष्यामो प्रियं कृत्वा ॥ १२ ॥
तद्भावं ज्ञात्वा तद्गेहादीनां जाननिमित्तम् । तस्याः सहागतेभ्यो डिम्भेभ्यः फलानि स दत्वा ॥ १३ ॥
पृच्छति गृहादिकं तान्यपि कथयन्ति शुद्धभावात्तु । तत् सर्वं तत्पुरतस्ततः स चिन्तयति एवम् ॥ १४ ॥
तद्विरहज्वलनज्वालाकरालकवलियमानमत्यर्थम् । कथं निर्वापयामि तस्याः संगमसलिलेनात्मानम् ? ॥ १५ ॥
इति संगोपायमयं चिन्तयन्नधिकमुपचर्य । प्रेषति पूर्वपरिचितप्रव्राजिकां तस्या गृहे ॥ १६ ॥
सा तत्र गता दृष्टा यान्ती ? बृषिकादिव्यापृतकराग्रा । कृत्वा तत्प्रणामं दत्वाऽऽसनं ततः ॥ १७ ॥
पृच्छति भगवति ! किं दृष्टमत्राश्चर्यमसदृशं किमपि ? । सा भणति दृष्टमामं वत्से ! अत्रैव नगरे ॥ १८ ॥

---

१. आसन विशेषः

वहु आह कहसु भयवइ ! अच्छरियं मज्झ जं तए दिट्ठं । पव्वाइयाए भणियं सुदंसणो नाम सेट्ठिसुओ ॥१९॥
नयजुत्तमहियमसरिसमच्छरियसरू(ग्रन्थाग्रम्७०००)वमइकलाकुसलं।पावेहितयंवच्छे!दुहत्थमणुरत्तभत्तारं।२०।
तप्पट्ठवियं नाउं अहो ! छइल्लो तहा वि छक्कन्नं । मा होउ रहस्समिमं ता पव्वाई पवंचेमि ॥२१॥
इय चिंतेउं थालीतलधोयणवावडाए तो तीए । पंचंगुलीचवेडाए सा हया पिट्ठिदेसम्मि ॥२२॥
पभणइ पावे ! वइणीहोउं एवंविहं पयंपंती । कुलवहुकलंककारिणि ! न लज्जिया नियववेसस्स ॥२३॥
सा वि विलक्खा जाया पट्ठिपहारं इमस्स दरिसंती । पभणइ न पुत्त ! जोग्गा तुह सा सीलेण दुवियड्ढा ॥२४॥
चिंतइ सुदंसणो वि हु अहो ! छइल्लत्तमसरिसं तीसे । जं वंचिया वराई पव्वाई नियपवंचेण ॥२५॥
मह संकेओ दिन्नो कसिणाए पंचमीए रयणीए । ठाणं पुणो न कहियं ता पुणरवि तत्थ पेसेमि ॥२६॥
इय चिंतिऊण पभणइ पव्वाइं ठाणजाणणनिमित्तं । जइ सीलवई तह वि हु गंतूणं भणसु इगवारं ॥२७॥
सा गंतुं तं पभणइ सुमहुरवयणेहिं चिंतए सा वि । किं एसा पट्ठविया पुणो वियड्ढेण इह तेण ? ॥२८॥
हुं नायं संकेयट्ठाणं न मए पयासियं किंपि । इण्हिं पि ता पयासेमि चिंतिउं भणइ सा रुसिउं ॥२९॥
आ पावे ! निल्लज्जे ! तं भग्गमणोरहे ! दुरायारे ! । निब्भच्छिया वि एवं समागया पुणरवि किमत्थं ? ॥३०॥
निब्भच्छिऊण एवं निट्ठुरवयणेहिमद्धचंदेण । गाढं गलत्थिऊणं असोगवणियाए दारेण ॥३१॥
निस्सारिया समाणी साहइ सव्वं पि तस्स सो भणइ । जइ एवं ता अम्मो ! निन्नेहाए न मह कज्जं ॥३२॥

वध्वाह कथय भगवति ! आश्चर्यं मम यत्त्वया दृष्टम् ? प्रव्राजिकया भणितं सुदर्शनो नाम श्रेष्ठिसुतः ॥ १९ ॥
नययुक्तमधिकमसदृशमाश्चर्यस्वरूपमतिकलाकुशलम् । प्राप्स्यसि तकं वत्से ! दुखार्थमनुरक्तभर्तारम् ॥ २० ॥
तत्प्रस्थापितं ज्ञात्वाहो ! छेकवान् तथापि षट्कर्णम् । मा भवतु रहस्यमिदं ततः प्रव्राजीं प्रवञ्चयामि ॥ २१ ॥
इति चिन्तयित्वा स्थालीतलधावनव्यापृतया तदा तया । पञ्चाङ्गुलिचपेट्या सा हता पृष्टिदेशे ॥ २२ ॥
प्रभणति पापे ! व्रतिनी भूत्वैवंविधं प्रजल्पन्ती । कुलवधुकलङ्ककारिणि ! न लज्जिता निजकवेशात् ॥ २३ ॥
सापि विलक्षा जाता पृष्टिप्रहारमेतस्य दर्शयन्ती । प्रभणति न पुत्र ! योग्या तव सा शीलेन दुर्विग्दधा ॥ २४ ॥
चिन्तयति सुदर्शनोऽपि खल्वहो ! छेकत्वमसदृशं तस्याः । यद्वञ्चिता वराकी प्रव्राजी निजप्रपञ्चेन ॥ २५ ॥
मम सङ्केतो दत्तः कृष्णायाः पञ्चम्या रजन्याम् । स्थानं पुन र्न कथितं ततः पुनरपि तत्र प्रेष्यामि ॥ २६ ॥
इति चिन्तयित्वा प्रभणति प्रव्राजीं स्थानजाननिमित्तम् । यदि शीलवती तथापि हु गत्वा भणैकवारम् ॥ २७ ॥
सा गत्वा तां प्रभणति सुमधुरवचनैश्चिन्तयति सापि । किमेषा प्रस्थापिता पुनर्विदग्धेनेह तेन ? २८ ॥
हुं ज्ञातं संकेतस्थानं न मया प्रकाशितं किमपि । इदानीमपि ततः प्रकाशये चिन्तयित्वा भणति सा रुष्ट्वा ॥ २९ ॥
आ पापे ! निर्लज्जे । त्वं भग्नमनोरथे ! दुराचारे ! । निर्भर्त्सिताप्येवं समागता पुनरपि किमर्थम् ? ॥ ३० ॥
निर्भत्स्यैवं निष्ठुरवचनैरर्द्धचन्द्रेण । गाढं गलगृहीत्वाशोकवनिकाया द्वारेण ॥ ३१ ॥
निःसारिता सती कथयति सर्वमपि तस्य स भणति । यद्येवं ततोऽम्बे ! निःस्नेहया न मम कार्यम् ॥ ३२ ॥

अह सो संकेयदिणे पत्तो रयणीए अड्ढरत्तम्मि । भत्तारं रंजेउं सा वि य विविहप्पयारेहिं ॥३३॥
सुत्तं मोत्तुं पत्ता असोगवणियाए विडसमीवम्मि । तेण सह विसयसोक्खं उवभुंजइ विविहभंगेहिं ॥३४॥
अइसुरयगुरुपरिस्समखिन्नाइं दो वि जाव सुत्ताइं । ताव तहिं संपत्तो ससुरो ससरीरचिंताए ॥३५॥
जारेण समं पेच्छइ नियय्वहुं निद्दपरवसं तत्थ । तो सो चिंतइ हियए सुत्ता एसो न मह पुत्तो ॥३६॥
जाए पभायसमए न हु एसा मन्निहि त्ति तो घेत्तुं । साहिन्नाणनिमित्तं चरणाओ नेउरं जाइ ॥३७॥
घेप्पंतं तं दट्ठुं भयभीया उट्ठवित्तु तं पुरिसं । साहेइ तयं सव्वं भणइ जहा जाहि तुममिण्हिं ॥३८॥
समए मह साहेज्जं कायव्वं बुद्धिपगरिसेण तए । तम्मि गए सा सणियं गंतुं भत्तारसेज्जाए ॥३९॥
निसियइ खणंतरेणं उट्ठावेऊण पभणए कंतं । अह पिययम ! [१]मे घम्मो असोगवणियाए ता जामो ॥४०॥
परमत्थमजाणंतो तीए समं सोविओ गओ तत्थ । सुत्तं जाणित्तु तयं उट्ठावित्ता भणइ एवं ॥४१॥
किं एस कुलायारो तुम्हाणं ? तेण नियय्वहुयाए । नियपइणा सह सुत्ताए नेउरं गिण्हए ससुरो ॥४२॥
सो पभणइ वीसत्था सुयसु पिए ! अप्पिही पभायम्मि । सा भणइ संपयं चिय मग्गसु मह नेउरं नाह ! ॥४३॥
ताओ न चेव दूरे न गमिस्सइ तं कहिंपि तेणुत्ते । पभणइ सा वि हु एवं महाकलंको इमो होही ॥४४॥
मइ साहीणम्मि पिए ! वयणिज्जं तुज्झऽबुज्झ को कुणइ ? । सा भणइ पिय ! विवागं पभायसमयम्मि जाणिहिसि ।४५।
एवं जंपंताइं सुत्ताइं जाव तत्थ खणमेगं । ताव पभाया रयणी परिगलिओ तारयानियरो ॥४६॥

अथ स संकेतदिने प्राप्तो रजन्यामर्धरात्रौ । भर्तारं रञ्जित्वा सापि च विविधप्रकारैः ॥ ३३ ॥
सुप्तं मुक्त्वा प्राप्ताऽशोकवनिकायां विटसमीपे । तेन सह विषयसौख्यमुपभुनक्ति विविधभङ्गैः ॥ ३४ ॥
अतिसुरतगुरुपरिश्रमखिन्नौ द्वावपि यावत् सुप्तौ । तावत्तत्र सम्प्राप्तः श्वसुरः स्वशरीरचिन्तया ॥ ३५ ॥
जारेण समं प्रेक्षते निजकवधुं निद्रापरवशां तत्र । तदा स चिन्तयति हृदये सुप्त एष न मम पुत्रः ॥ ३६ ॥
जाते प्रभातसमये न खल्वेषा मंस्यतीति ततो गृहीत्वा । साभिज्ञाननिमित्तं चरणान्नुपूरं याति ॥ ३७ ॥
गृहणन्तं तं दृष्ट्वा भयभीतोत्थाप्य तं पुरुषम् । कथयति तकं सर्वं भणति यथा याहि त्वमिदानीम् ॥ ३८ ॥
समये मम साहाय्यं कर्तव्यं बुद्धिप्रकर्षेण त्वया । तस्मिन् गते सा शनै र्गत्वा भर्तृशय्यायाम् ॥ ३९ ॥
निषीदति क्षणान्तरेणोत्थाप्य प्रभणति कान्तम् । अह प्रियतम ! मे घर्मोऽशोकवनिकायां ततो यावः ॥ ४० ॥
परमार्थमजानंस्तया समं सुप्तो गतस्तत्र । सुप्तं ज्ञात्वा तकमुत्थाप्य भणत्येवम् ॥ ४१ ॥
किमेष कुलाचारो युष्माकं ? येन निजकवध्वाः । निजपतिना सह सुप्ताया नुपूरं गृह्णाति श्वसुरः ॥ ४२ ॥
स प्रभणति विश्वस्ता स्वपिहि प्रिये ! अर्पिष्यति प्रभाते । सा भणति साम्प्रतं चैव मार्गय मम नुपूरं नाथ ! ॥ ४३ ॥
तातो न चैव दूरे न गमिष्यति तं क्वापि तेनोक्ते । प्रभणति सापि खल्वेवं महाकलङ्कोऽयं भविष्यति ॥ ४४ ॥
मयि स्वाधीने प्रिये ! वचनीयं तवाबुधः कः करोति । सा भणति प्रिय ! विपाकं प्रभातसमये ज्ञास्यसि ॥ ४५ ॥
एवं जल्पन्तौ सुप्तौ यावत्तत्र क्षणमेकम् । तावत्प्रभाता रजनी परिगलितस्तारानिकरः ॥ ४६ ॥

---

१. महधम्मो रं० ।

जाए पभायसमए नियपुत्तं संठवित्तु एगंते । सेट्ठी साहइ सव्वं निसाए वुत्तंतमाह सुओ ॥४७॥
ताय ! अहं सो सुत्तो न हु अन्नो पुण वि पभणए सेट्ठी । पुत्त ! तुमं गेहंते नियपल्लंकम्मि पासुत्तो ॥४८॥
तो पंचनंदिणा पुण वि य भणियं ताय ! तुम्ह विद्धता । नयणा नयंति न तहा न हु तेणं लक्खिओ अहयं ॥४९॥
एवं पुणो वि भणिओ जाव न पत्तियइ कहवि तं जणओ । ता भिउडिभंगभासुरवयणो भणिउं समाढत्तो ॥५०॥
भुल्लो सि ताय ! तं नियवहूए सुत्ताए मज्झपासम्मि । अलियमिणं जंपतो न लज्जिओ नियय्यपलियाणं ॥५१॥
एवं जंपंताणं पिय-पुत्ताणं समागया वहुया । जइ एवं ता सुद्धा गिण्हिस्सं अन्न-पाणमहं ॥५२॥
मिलिओ य सयणवग्गो तीए सव्वो वि मलिणमुहछाओ । ससुरकुलेणं सद्धिं समागओ पउरपुरलोगो ॥५३॥
सा भणइ ताय ! साहसु सुज्जवणं मज्फ अइदुसज्झं पि । ससुरो न जाव जंपइ ता भणियं पउरलोएण ॥५४॥
अत्थेत्थ सच्चवाई जक्खो नयरम्मि पसरियपयावो । तज्जंघामज्झेणं निग्गच्छउ जइ इमा सुद्धा ॥५५॥
तत्तो सा सुइभूया जक्खाययणम्मि जाव संचलिया । जाओ अलियगहिल्लो विडपुरिसो जाणिउं ताव ॥५६॥
गायंतो पलवंतो नच्चंतो डिंभपरिवुडो संतो । धूलीधूसरगत्तो आलिगंतो सयललोयं ॥५७॥
तम्मि पएसे पत्तो सा गच्छइ जत्थ पउरपरियरिया । सहसा आलिंगंतो तीए निब्भच्छिओ बाढं ॥५८॥
आ पाप ! कहं छित्ता पुणो वि एहाइत्तु आगया भवणे । जक्खस्स पुरपच्चक्खमेरिसं भणिउमाढत्ता ॥५९॥
भयवं ! नियभत्तारं एयं च गहिल्लयं पमोत्तूणं । अन्नो जइ मह देहे लग्गइ ता धरसु जंघाहिं ॥६०॥

जाते प्रभातसमये निजपुत्रं संस्थाप्यैकान्ते । श्रेष्ठी कथयति सर्वं निशाया वृत्तान्तमाह सुतः ॥ ४७ ॥
तात ! अहं स सुप्तो न खल्वन्यः पुनरपि प्रभणति श्रेष्ठी । पुत्र ! त्वं गेहान्ते निजपल्यङ्के प्रसुप्तः ॥ ४८ ॥
ततः पञ्चनन्दिना पुनरपि च भणितं तात ! तव वृद्धत्ता । नयने नयतो न तथा न हु तेन लक्षितोऽहम् ॥ ४९ ॥
एवं पुनरपि भणितो यावन्न प्रत्यायति कथमपि तं जनकः । तावद् भृकुटिभङ्गभासुरवदनो भणितुं समारब्धः ॥ ५० ॥
विस्मृतोऽसि तात ! त्वं निजवधुकायां सुप्तायां ममपार्श्वे । अलिकमिदं जल्पन्न लज्जितो निजकपलितेभ्यः ॥ ५१ ॥
एवं जल्पतयोः पितृ-पुत्रयोः समागता वधुका । यद्येवं तत शुद्धा ग्रहीष्याम्यन्न-पानमहम् ॥ ५२ ॥
मिलितश्च स्वजनवर्गस्तस्याः सर्वोऽपि मलिनमुखच्छायः । श्वसुरकुलेन सार्द्धं समागतः प्रचुरपुरलोकः ॥ ५३ ॥
सा भणति तात ! कथय शुद्धापनं ममातिदुःसाध्यमपि । श्वसुरो यावन्न जल्पति तावद्भणितं पौरलोकेन ॥ ५४ ॥
अस्त्यत्र सत्यवादी यक्षो नगरे प्रसरितप्रतापः । तज्जङ्घामध्येन निर्गच्छतु यदीमा शुद्धा ॥ ५५ ॥
ततः सा शुचीभूता यक्षायतने यावत्सञ्चलिता । जातोऽलिकग्रथिलो विटपुरूषो ज्ञात्वा तावत् ॥ ५६ ॥
गायन् प्रलपन्नृत्यन् डिम्भपरिवृत्तस्सन् । धूलीधूसरगात्र आलिङ्गन् सकललोकम् ॥ ५७ ॥
तस्मिन् प्रदेशे प्राप्तः सा गच्छति यत्र पौरपरिवरिता । सहसालिङ्गंस्तया निर्भर्त्सितो बाढम् ॥ ५८ ॥
आ पाप ! कथं स्पृष्टा पुनरपि स्नात्वाऽऽगता भवने । यक्षस्य पौरप्रत्यक्षमीदृशं भणितुमारब्धा ॥ ५९ ॥
भगवन् ! निजभर्तारमेनं च ग्रथिलकं प्रमुच्य । अन्यो यदि मम देहे लगति ततो धर जङ्घाभ्याम् ॥ ६० ॥

चिंतेइ जाव जक्खो ईहा-ऽपोहेहिं हरियहियओ सो । ताव सहस त्ति सा वि हु नीहरिया जंघमज्झेण ॥६१॥
जक्खो ठिओ विलक्खो चिंतइ पावाए कहमहं छलिओ । अहव महिलाण चरियं दुव्विन्नेयं सुराणं पि ॥६२॥
ससुरो चिन्तेइ जहा कलंकिओ पेच्छ कहमहमिमीए । अहव महिलाण चरियं दुव्विन्नेयं सुराणं पि ॥६३॥
कहमसईए होउं सइत्तभावाओ रंजिओ सयणो । अहव महिलाण चरियं दुव्विन्नेयं सुराणं पि ॥६४॥
तूररवेणं सद्धिं जाओ तीए महासईसद्दो । ससुरो वि य अयसेणं वसीकओ सह अवक्खाए ॥६५॥
निद्दाए समं नट्ठा धणियं सेट्ठिस्स मणसमाही वि । हरिसेण समं जाओ तीए कंतस्स पणओ वि ॥६६॥
ससूरो वि पउरलोएण निंदिओ साहिऽणंदिया अहियं । संपत्ता ससुरगिहे अहिययरं रंजिओ भत्ता ॥६७॥
सेट्ठिस्स अवक्खाए निद्दा नट्ठ त्ति निसुणिउं रन्ना । वाहरिऊणं विहिओ महल्लओ नियय्अवरोहे ॥६८॥
सुत्तो तत्थ निरिक्खइ सेट्ठी अंतेउरीणमेगयरिं । उट्ठंतिं निसियंतिं तल्लुव्वेल्लिं करेमाणिं ॥६९॥
तो सो चिंतइ सेट्ठी एसा किं कुणइ ? जाणणनिमिन्तं । पावरिऊणं पडयं सुत्तो सो अलियनिद्दाए ॥७०॥
जाव निहुयं निरिक्खइ ता पेच्छइ मत्तवारणतलम्मि । खंभम्मि मत्तवारममागलियं मिंठपरिकलियं ॥७१॥
रयणीए अंधयारे हत्थी मिंठेण चोइओ संतो । उड्ढं काऊण करं उत्तारइ रायवरपत्तीं ॥७२॥
किं तुह महई वेल ? त्ति जंपिउं भारसंकलाए हया । मिंठेण भणइ देवी न मज्झ दोसो परं किंतु ॥७३॥
रन्ना जो पाहरिओ विहिओ सो सामि ! सुयइ न कहिंपि । सुत्तम्मि तम्मि संपइ समागया तुह समीवम्मि ॥७४॥

चिन्तयति यावद्यक्ष ईहाऽपोहै र्हृतहृदयः सः । तावत्सहसेति सापि हु निःसृता जङ्घामध्येन ॥ ६१ ॥
यक्षः स्थितो विलक्षश्चिन्तयति पापया कथमहं छलितः । अथवा महिलानां चरित्रं दुर्विज्ञेयं सुराणामपि ॥ ६२ ॥
श्वसुरश्चिन्तयति यथा कलङ्कितः पश्य कथमहमनया । अथवा महिलानां चरित्रं दुर्विज्ञेयं सुराणामपि ॥ ६३ ॥
कथमसत्या भूत्वा सतीत्वभावाद्रञ्जितः स्वजनः । अथवा महिलानां चरित्रं दुर्विज्ञेयं सुराणामपि ॥ ६४ ॥
तूर्यरवेण सार्द्धं जातस्तस्या महासतीशब्दः । श्वसुरोपि चायशेन वशीकृतः सहदृष्ट्या ॥ ६५ ॥
निद्रायाः समं नष्टात्यन्तं श्रेष्ठिनो मनः समाधिरपि । हर्षेण समं जातस्तस्याः कान्तस्य प्रणयोऽपि ॥ ६६ ॥
श्वसुरोऽपि पौरलोकेन निन्दितः साहि आनन्दिताऽधिकम् । सम्प्राप्ता श्वसुरगृहे ऽधिकतरं रञ्जितो भर्ता ॥ ६७ ॥
श्रेष्ठिनो दृष्टया निद्रा नष्टेति निश्रुत्य राज्ञा । व्याहृत्य विहितो महत्तरको निजकान्तःपुरे ॥ ६८ ॥
सुप्तस्तत्र निरीक्षते श्रेष्ठयन्तःपुरीणामेकतरीम् । उत्तिष्टन्तीं निषीदन्तीं व्याकुलतां कुर्वन्तीं ॥ ६९ ॥
तदा स चिन्तयति श्रेष्ठयेषा किं करोति ? जाननिमित्तम् । प्रावृत्य पटकं सुप्तः सोऽलिकनिद्रया ॥ ७० ॥
यावन्निभृतं निरीक्षते तावत्प्रेक्षते मत्तवारणतले । स्तम्भे मत्तवारणमागलितं हस्तीपकपरिकलितम् ॥ ७१ ॥
रजन्या अन्धकारे हस्ती हस्तिपकेन चोदितस्सन् । उर्ध्वंकृत्वा करमुत्तारयति राजवरपत्नीम् ॥ ७२ ॥
किं तव महती वेला ? इति जल्पित्वा भारशृङखलया हता । हस्तिपकेन भणति देवी न मम दोषः परं किन्तु ॥७३॥
राज्ञा यः प्राहरिको विहितः स स्वामिन् ! स्वपिति न कदापि । सुप्ते तस्मिन् सम्प्रति समागता तव समीपे ॥ ७४ ॥

रमिऊण तं जहिच्छं मेल्लावइ करिकराओ सट्ठाणे । तं सव्वं अवलोइय सवियक्को चिंतए सेट्ठी ॥७५॥
जत्थ नरनाहमहिला विविहपयारेहिं रक्खियाओ वि । एवं कुव्वंति जए का गणणा इयरनारीणं ? ॥७६॥
अज्ज वि वयं कयत्था जाण पुरंधीओ निग्गया बाहिं । नीराईण निमित्तं नियगेहेसुं नियत्तंति ॥७७॥
इय चिंतिउं पसुत्तो विगयअवक्खो तहा कहवि सेट्ठी । सूरुग्गमे वि न जहा पडिवुज्झइ जग्गवंताणं ॥७८॥
पुव्विल्ला पाहरिया तत्तो साहिंति राइणो गंतुं । देव ! नवल्लमहल्लो न य उट्ठइ सूरउदए वि ॥७९॥
रन्ना तो आणत्तं पडिबोहह मा तयं सुयउ कामं । सो वि जह एगदिवसं तह सुत्तो सत्त दिवसाणि ॥८०॥
सत्तमदिणम्मि वुद्धो वाहरिओ राइणा तओ सेट्ठी । किं तुह अणन्नसरिसा समागया एरिसा निद्दा ? ॥८१॥
तो सेट्ठिणा वि भणियं एगंतं कुणह जेण साहेमि । नरवइनयणुक्खेवा एगंते जाइ सव्वसहा ॥८२॥
तो साहइ तं सव्वं सुणिउं रन्ना विसज्जिओ सेट्ठी । तक्कहियजाणणत्थं राया अंतेउरे गंतुं ॥८३॥
सव्वाओ ताओ अंतेउरीओ एगत्थ मेलिउं भणइ । जह अज्ज मए दिट्ठो सुमिणो रयणीविरामम्मि ॥८४॥
गयनिवसणाहिं भवईहिं लंघियव्वो किलिंजमयहत्थी । ता सच्चसुमिणयं तह करेह जह होई मह खेमं ॥८५॥
लंघंति तहेव तयं अवराओ सा य कुडिलहिययत्ता । जंपइ वीहेमि इमाओ दढमहं हत्थिरूवाओ ॥८६॥
तो नरवइणा हसिउं लीलाकमलेण ताडिया संती । पडिया सहस त्ति महीयलम्मि सा अलियमुच्छाए ॥८७॥
पेच्छइ य पट्ठिभायं संकलसलसंजुयं तओ राया । तव्वइयरजाणावणनिमित्तमेसो पढइ गाहं ॥८८॥

रन्त्वा तां यथेच्छं मुञ्चति करिकरात् स्वस्थाने । तत्सर्वमवलोक्य सवितर्कश्चिन्तयति श्रेष्ठी ॥ ७५ ॥
यत्र नरनाथमहिला विविधप्रकारै रक्षिता अपि । एवं कुर्वन्ति जगति का गणनेतरनारीणाम् ? ॥ ७६ ॥
अद्यापि वयं कृतार्था येषां पुरन्ध्र्यो निर्गता बहिः । नीरादीनां निमित्तं निजगृहेषु निवर्तर्यन्ति ॥ ७७ ॥
इति चिन्तयित्वा प्रसुप्तो विगतदृष्टिस्तथा कथमपि श्रेष्ठी । सूर्योद्गमेऽपि न यथा प्रतिबुद्ध्यते जागर्यमाणानाम् ॥७८॥
पूर्वाः प्राहरिकास्ततः कथयन्ति राज्ञो गत्वा । देव ! नवमहत्तरो न चोत्तिष्ठति सूर्योदयेऽपि ॥ ७९ ॥
राज्ञा तत आज्ञप्तं प्रतिबोधयत मा तकं स्वपितु काममम् । सोऽपि यथैकदिवसं तथा सुप्तःसप्त दिवसानि ॥ ८० ॥
सप्तमदिने बुद्धो व्याहृतो राज्ञा ततः श्रेष्ठी । किं तवानन्यसदृशा समागतेदृशा निद्रा ? ॥ ८१ ॥
ततः श्रेष्ठिनापि भणितमेकान्तं कुरूत येन कथयामि । नरपतिनयनोत्क्षेपादेकान्ते याति सर्वसभा ॥ ८२ ॥
ततः कथयति तत्सर्वं श्रुत्वा राज्ञा विसर्जितः श्रेष्ठी । तत्कथितजाननार्थं राजान्तःपुरे गत्वा ॥ ८३ ॥
सर्वास्ता अन्तःपुर्य एकत्र मेलयित्वा भणति । यथाद्य मया दृष्टः स्वप्नो रजनीविरामे ॥ ८४ ॥
गतनिवसनाभि र्भवन्तीभिः लङ्घितव्यः किलिञ्जमदहस्ती । ततः सत्यस्वप्नकं तथा कुरुत यथा भवति मम क्षेमम् ॥८५॥
लङ्घयन्ति तथैव तकदपराः सा च कुटिलहृदयत्वात् । जल्पति बिभेमि अस्माद् दृढमहं हस्तिरुपात् ॥ ८६ ॥
तदा नरपतिना हसित्वा लीलाकमलेन ताडिता सती । पतिता सहसेति महितले साऽलिक मूर्च्छया ॥ ८७ ॥
पश्यति च पृष्टिभागं शृङ्खलाशल्यसंयुक्तं ततो राजा । तद्व्यतीकरज्ञापननिमित्तमेष पठति गाथाम् ॥ ८८ ॥

मत्तगयमारुहन्तिए ! मिंडमयस्स हत्थिस्स बीहंतिए ! । तत्थ न मुच्छिय संकलाहया ! एत्थ य मुच्छिय उप्पलाहया ॥८९॥
तो कोवफुरियअहरो राया वज्झाणि तिन्नि वि इमाणि । आणवइ सावराहे मिंठं देविं करिंदं च ॥९०॥
देविं चडडाविऊणं मिंठं आरोहयं च काऊणं । कारवइ छिन्नटंके तं करिवरमेगपाएण ॥९१॥
तिक्खग्गअंकुसेणं मिंठेणं चोइओ करिवरिंदो । अक्खिवइ एगपायं तह बीयं तह य तइयं च ॥९२॥
जा तिहिं पएहि हत्थी आयासे संठिओ निराहारो । ता हाहारवसद्दो उच्छलिओ पउरलोगम्मि ॥९३॥
हा हा ! न जुत्तमेयं नरवइणो परवसं गहियसिक्खं । एरिसविन्नाणजुयं करिरयणं जं विणासेइ ॥९४॥
तो रन्ना जणवायं सुणिऊणं पभणिओ वरारोहो । ओयारिउं समत्थो विसमाओ गयं समपहम्मि ? ॥९५॥
तेणुत्तं जइ अभयं देवीसहियस्स देसि मह देव ! । ता हं करेमि एयं पडिवन्नं राइणा तं पि ॥९६॥
तत्तो सणियं सणियं ओयरिए करिवरे समाइसइ । मह विसयं मोत्तूणं वच्चसु रे पाव ! अन्नत्थ ॥९७॥
सो सद्धिं देवीए वच्चन्तो अन्नया य संझाए । एगत्थ नयरपरिसरदेवउले जाव पासुत्तो ॥९८॥
ताव सहस त्ति चोरो आरक्खियतासिओ गहियदच्छो । तत्थ पविट्ठो तं वेढिऊण ते वि हु ठिया बाहिं ॥९९॥
चोरो वि अंधयारे पविसंतो तीए कह वि सो छित्तो । तप्फंसरायरंजियहियया देवी पयंपेइ ॥१००॥
को सि तुमं चोरो हं इय भणिया सा वि पभणइ निहुयं । जइ इच्छसि मं भोत्तुं ता तुह जीयं पयच्छेमि ॥१०१॥
नियजीयरक्खणकए पडिवन्नं तेण वयणमह सा वि । मोयावइ तं दच्छं पावा मिंठस्स उस्सीसे ॥१०२॥

मत्तगजमारोहन्ति ! मृन्मयस्य हस्तिनो बिभ्यन्ति ! । तत्र न मूर्च्छिता शृङ्खलाहता ! अत्र च मुर्च्छितोत्पलहता ॥ ८९ ॥
ततः कोपस्फुरिताधरो राजा वध्यानि त्रिणीमानि । आज्ञापयति सापराधे हस्तिकं देवीं करीन्द्रं च ॥ ९० ॥
देवीमारोहित्वा हस्तिपकमारोहकं च कृत्वा । कारयति छिन्नटङ्के तं करिवरमेकपादेन ॥ ९१ ॥
तीक्ष्णाग्राङ्कुशेन हस्तिपकेन चोदितोकरिवरेन्द्रः । उत्क्षिपत्येकपादं तथा द्वितीयं तथा तृतीयं च ॥ ९२ ॥
यावत्त्रिभिः पादै र्हस्त्याकाशे संस्थितो निराहारः । ततो हाहारवशब्द उच्छलितः पौरलोके ॥ ९३ ॥
हा हा ! न युक्तमेतन्नरपते ! परवशं गृहीतशिक्षम् । एतादृशविज्ञानयुतं करिरत्नं यद्विनाशयति ॥ ९४ ॥
ततो राज्ञा जनवादं श्रुत्वा प्रभणितो वरारोहकः । अवतारयितुं समर्थो विसमाद्गजं समपथि ? ॥ ९५ ॥
तेनोक्तं यद्यभयं देविसहितस्य दद्याः मह्यं देव ! । तदाहं करोम्येतत् प्रतिपन्नं राज्ञा तदपि ॥ ९६ ॥
ततः शनैः शनैरवतारिते करिवरे समादिशति । मम विषयं मुक्त्वा व्रज रे पाप ! अन्यत्र ॥ ९७ ॥
स सार्धं देव्या व्रजन्नन्यदा च संध्यायाम् । एकत्र नगरपरिसरदेवकुले यावत्प्रसुप्तः ॥ ६८ ॥
तावत्सहसेति चौर आरक्षितत्रासितो गृहीतलोप्त्रः । तत्र प्रविष्टस्तं वेष्टयित्वा ते ऽपि हु स्थिता बहिः ॥ ९९ ॥
चौरोरऽप्यन्धकारे प्रविशंस्तया कथमपि सस्पृष्टः । तत्स्पर्शरागरञ्जितहृदया देवी प्रजल्पति ॥ १०० ॥
कोऽसि त्वं चौरोऽहमिति भणिता सापि प्रभणति निभृतम् । यदीच्छसि मां भोक्तुं तदा तव जीवितं प्रयच्छामि ॥ १०१ ॥
निजजीवितरक्षणकृते प्रतिपन्नं तेन वचनमथ सापि । मोचयति तद् लोप्त्रं पापा हस्तिपकस्योच्छिर्के ॥ १०२ ॥

अह निहणियदोसो वि हु तीए दोसं व पयडिओ सूरो । नियकरप्फंसेणं उज्जोयंतो भुवणवलयं ॥१०३॥
उदयगिरिं संपत्तो तत्तो आरक्खिया सलोत्तं तं । चोरो त्ति कलिय बंधंति जाव ता जंपए मिंठो ॥१०४॥
पहिओ हं न हु चोरो एसा मह भारिया गुरुसिणेहा । पुच्छंति ते वि जुवइं को भत्ता तुज्झ एयाण ? ॥१०५॥
साहइ सा वि हु तेसिं मह भत्ता देवबंभणेहिं इमो । दिन्नो तो तं सोउं मिंठो हियए विचिंतेइ ॥१०६॥
महिला मरणमयंडे महिला दुग्गेज्झमाणसपयारा । महिला कयंतकत्ती महिला मूलं परिभवाणं ॥१०७॥
महिला दुहसयखाणी सब्भावविवज्जिया सया महिला । महिला नरयदुवारं गुणगिरिवज्जासणी महिला ॥१०८॥
महिला निद्दयचित्ता उब्भडविसवल्लरी जए महिला । संतावजलणजालापरिभवतरुमंजरी महिला ॥१०९॥
इय मिंठो चिंतंतो सूलाए रोविओ निरवराहो । आरक्खिएहि तत्ता खणंतर तिव्ववियणाए ॥११०॥
जाओ तिसाभिभूओ जा वंछइ पाणियं तहिं पाउं । ता गच्छंत पेच्छइ सुदंसणं नाम वरसड्ढं ॥१११॥
तो भणइ भो महासय ! पायसु सलिलं करेवि कारुन्नं । सो पभणइ जइ सुमरसि जिणनवकारं महामंतं ॥११२॥
तेणावि हु पडिवन्ने तिसाभिभूएण सेट्ठिणा दिन्नो । दुहतरुवणदावानलसरिसो परमेट्ठिनवकारो ॥११३॥
सलिलं घेत्तुं सेट्ठिं आगच्छंतं वियाणिउं तत्तो । अहिययरं उग्घोसइ सलिलकए सुद्धकयचित्तो ॥११४॥
एत्थंतरम्मि सहसा भिन्नो सूलाए सो तओ मरिउं । परमेट्ठिपहावेणं संजाओ वंतरो बलिओ ॥११५॥
तयणंतरं च तेणं सन्नेज्झं सावयस्स जह विहियं । जह सा धम्मे ठविया सियालवेसेण बोहेउं ॥११६॥

अथ निहतदोषोऽपि हु तस्या दोषमिव प्रकटितः सूर्यः । निजककरस्पर्शेणोद्योतयन् भुवनवलयम् ॥ १०३ ॥
उदयगिरिं सम्प्राप्तस्तत आरक्षिता सलोप्त्रं तम् । चौर इति कलित्वा बध्नाति यावत्तावज्जल्पति हस्तिपकः ॥ १०४ ॥
पथिकोऽहं न हु चौर एषा मम भार्या गुरुस्नेहा । पृच्छन्ति तेऽपि युवतिं को भर्ता तवानयोः ॥ १०५ ॥
कथयति सापि हु तयो र्मम भर्ता देवब्राह्मणैरयम् । दत्तस्ततस्तत् श्रुत्वा हस्तिपको हृदये विचिन्तयति ॥ १०६ ॥
महिला मरणमकाण्डे महिला दुर्ग्राह्यमानसप्रकारा । महिलाकृतान्तकर्त्री महिला मूलं परिभवानाम् ॥ १०७ ॥
महिला दुःखशतखानी सद्भावविवर्जिता सदा महिला । महिला नरकद्वारं गुणगिरिवज्राशनी महिला ॥ १०८ ॥
महिला निर्दयचित्तोद्भटविषवल्लरी जगति महिला । सन्तापज्वलनज्वालापरिभवतरुमञ्जरी महिला ॥ १०९ ॥
इति हस्तिपकश्चिन्तयन् शूलायां रोपितो निरापराधः । आरक्षितैस्ततः क्षणान्तरं तीव्रवेदनया ॥ ११० ॥
जातस्तृषाभिभूतो यावद्वाञ्छति पानीयं तत्र पातुम् । तावद्गच्छन्तं प्रेक्षते सुदर्शनं नाम वरश्राद्धम् ॥ १११ ॥
तदा भणति भो महायशः ! पायय सलिलं कृत्वा कारुण्यम् । स प्रभणति यदि स्मरसि जिननवकारं महामन्त्रम् ॥ ११२ ॥
तेनापि हु प्रतिपन्ने तृषाभिभूतेन श्रेष्ठिना दत्तः । दुःखतरुवनदावानलसदृशः परमेष्ठिनवकारः ॥ ११३ ॥
सलिलं गृहीत्वा श्रेष्ठिनमागच्छन्तं विज्ञाय ततः । अधिकतरमुद्घोषयति सलिलकृते शुद्धकृतचित्तः ॥ ११४ ॥
अत्रान्तरे सहसा भिन्नः शूलायाः स ततो मृत्वा । परमेष्ठिप्रभावेन सञ्जातो व्यन्तरो बलिकः ॥ ११५ ॥
तदनन्तरं च तेन सान्निध्यं श्रावकस्य यथा विहितम् । यथा सा धर्मेस्थापिता शृगालवेशेन बोधयित्वा ॥ ११६ ॥

जह राया भेसविओ पुव्वुत्तं जह कलंकमवणीयं । वित्थरओ विन्नेयं सव्वं गंथंतराओ तहा ॥११७॥

॥ नूपुरपण्डिताख्यानकं समाप्तम् ॥७१॥

इदानीं दत्तकदुहिताख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

सलिल व्व निम्मलपया जंवुद्दीवो व्व वन्नियसुवासा । अत्थि पुरी उज्जेणी मणोहरा मयणमुत्ति व्व ॥१॥
तीए राया रिउकरडिकरडनिद्दलणकेसरिकिसोरो । विप्फुरियबुद्धिविन्नाणविक्कमो विक्कमाइच्चो ॥२॥
कइया वि हु रयणीए नयरीचरियावियाणणनिमित्तं । पावरियनीलपडओ अदिस्समाणो परिब्भमइ ॥३॥
पेच्छंतो तिग-चच्चर-चउक्क-चउमुह-महापह-पहेसु । जणवइयरे नरिंदो वइससमेगं इमं नियइ ॥४॥
कुलडाए (काए) को वि हु करम्मि घेत्तूण भन्नए सुहय ! किं कइया वि न दीससि ? तेणुत्तं सुयणु ! सममेयं ॥५॥
तीए भणियं चल्लसु गिहम्मि तं संपयं पि सो भणइ । तुह गेहे भत्तारो ता कह मे[1] कज्जसंसिद्धी ? ॥६॥
तीयुत्तं मा भायसु तत्थ गया हं सयं भलिस्सामि । मड्डाए अणिच्छंतो वि चालिओ तीए सो गेहे ॥७॥
राया चिंतइ तावऽज्ज चरियमेयाए चेव पेच्छामि । अच्छसु अवरं काही कहं सकज्जं पइसमीवे ? ॥८॥
तिन्नि वि पत्ताणि गिहं तं मोत्तूणं सयं विसइ गेहे । सव्वं विहियं किच्चं सिसुपुत्तो पाइओ थन्नं ॥९॥
भणिओ तीए भत्ता सहीए मह छट्ठिजागरो होही । ता जइ कहिं पि वेला लग्गइ ता तं भलसु गेहे ॥१०॥
इय भणिऊणं दइयं विणिग्गया सिक्खवित्तु विडपुरिसं । समगं तेण पविट्ठा पणमिय सेट्ठिं विडो भणइ ॥११॥

यथा राजा भेषयितः पूर्वोक्तं यथा कलङ्कमपनीतम् । विस्तरतो विज्ञेयं सर्वं ग्रन्थान्तरात्तथा ॥ ११७ ॥

॥ नुपूरपण्डिताख्यानकं समाप्तम् ॥ ७१ ॥

दत्तकदुहित्राख्यानकम् ॥ ७२ ॥

सलिल एव निर्मलपदा जम्बुद्वीप इव वर्णितसुवासा । अस्ति पुर्युज्जैनी मनोहरा मदनमूर्तिरिव ॥ १ ॥
तस्या राजा रिपुकरटिकरटनिर्दलनकेसरिकिशोरः । विस्फुरितबुद्धिविज्ञानविक्रमो विक्रमादित्यः ॥ २ ॥
कदापि हु रजन्यां नगरीचर्याविजाननिमित्तम् । प्रावृतनीलपटोऽदृश्यमानः परिभ्रमति ॥ ३ ॥
प्रेक्षमाणस्त्रिक-चत्वर चतुष्क-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु । जनव्यतिकरे नरेन्द्रो वैशषमेकमिमं पश्यति ॥ ४ ॥
कुलट्या (कया) कोऽपि हु करे गृहीत्वा भण्यते सुभग ! । किं कदापि न दृश्यसे ? तेनोक्तं सुतनु ! सममेतत् ॥ ५ ॥
तया भणितं चल गृहे त्वं साम्प्रतमपि स भणति । तव गृहे भर्ता ततः कथं मे कार्यसंसिद्धिः ? ॥ ६ ॥
तयोक्तं मा भीस्तत्र गताहं स्वयं भलिस्यामि । बलादनिच्छन्नपि चालितस्तया स गेहे ॥ ७ ॥
राजा चिन्तयति तावदद्य चरित्रमनया चैव पश्यामि । आस्स्वापरं करिष्यति कथं स्वकार्यं पतिसमीपे ? ॥ ८ ॥
त्रिण्यपि प्राप्तानि गृहं तं मुक्त्वा स्वयं विशति गृहे । सर्वं विहितं कार्यं शिशुपुत्रः पायितः स्तन्यम् ॥ १९ ॥
भणितस्तया भर्त्ता सख्या मम षष्ठिजागरो भविष्यति । ततो यदि कुत्रापि वेला लगति तावत् त्वं भालय गृहे ॥ १० ॥
इति भणित्वा दयितं विनिर्गता शिक्षयित्वा विटपुरुषम् । समकं तेन प्रविष्टा प्रणम्य श्रेष्ठिनं विटो भणति ॥ ११ ॥

---

१. ते रं० ॥

जिणदत्तसेट्ठिगेहं होइ इमं ? सेट्ठिणा भणियमामं । ता किं न धणसिरी दीसइ ? त्ति कज्जे कहिं पि गया ॥१२॥
संपयमेवाऽऽगच्छइ तुम्मे कत्तो समागयाणि ? त्ति । पुट्ठे पाहुणगेणं भणियं तुह ससुरगेहाओ ॥१३॥
एवं वुत्तो तेसिं सेज्जा-पावरणपमुहपडिवत्ती । ससुरकुलसिणेहेणं सगउरवं सेट्ठिणा विहिया ॥१४॥
नीसंकं जा सुत्ताणि ताव य छुहाइओ .....बालो । रोवइ रइविग्घकरो तीए आणाविओ पासे ॥१५॥
किं एस रुयइ ? पुट्ठम्मि सेट्ठिणा भणियमेयजणणीए । पडियमणागमणमिमो छुहाइओ किं करेमि अहं ? ॥१६॥
तेणुत्तं मह भज्जा वि बालवच्छा तओ धयावेमि । तहविहिए सो सुत्तो सुहेण ताणि वि असेसनिसं ॥१७॥
पच्छिमपहरे रयणीए णीणिओ सा वलंतिया वुत्ता । रन्ना भद्दे ! तुह सरिसियाओ कइ मज्झ नयरीए ? ॥१८॥
नायं जहेस राया तीयुत्तं देव ! केरिसी अहयं ? । दत्तयदुहिया एत्थेव जणसमक्खं वसइ गेहे ॥१९॥
सा केरिसिया भद्दे ? कहसु जओ मज्झ कोउगं गरुयं । तीए वुत्तं निसुणसु खणमेगं अवहिओ राया ॥२०॥
इह अत्थि देव ! दत्तयसेट्ठी सव्वत्थ सुइसमायारो । तस्स सुया रूयवई सुवियड्ढा बालविहवा य ॥२१॥
तं सीलरक्खणकए सेट्ठी पासायसंठियं धरइ । भोगंगं तु समग्गं पइदियहं देइ नेहेणं ॥२२॥
सा तत्थऽच्छइ पारूढरूयलायन्नजोव्वणारंभा । उज्जंभमाणमयणा वि अमयणा मयणघरिणि व्व ॥२३॥
अह मयणविहुरियंगी अहोवयंतं च सत्थवाहसुयं । जाणावइ नियभावं कयाइ केणइ पयारेण ॥२४॥
सो वि हु तत्थाऽऽगच्छइ निच्चं चिय मंचियापओएण । तीए जणएण समं ववहारं कुणइ पीइं च ॥२५॥

जिनदत्तश्रेष्ठिगृहं भवतीदं ? श्रेष्ठिना भणितमाम् । ततः किं न धनश्री र्दृश्यते ? इति कार्ये क्वापि गता ॥ १२ ॥
साम्प्रतमेवागच्छति युवां कुतः समागताविति ? । पृष्टे प्राघूर्णकेन भणितं तव श्वसुरगृहात् ॥ १३ ॥
एवमुक्तस्तयोः शय्या-प्रावरणप्रमुखप्रतिपत्तीम् । श्वसुरकुलस्नेहेन सगौरवं श्रेष्ठिना विहिता ॥ १४ ॥
निःशङ्कं यावत् सुप्तौ तावच्च बुभुक्षितो बालः । रोदिति रतिविघ्नकरस्तयाऽऽनयितः पार्श्वे ॥ १५ ॥
किमेष रोदिति ? पृष्टे श्रेष्ठिना भणितमेतज्जनन्या । प्रतिगमनागमनमयं बुभुक्षितः किं करोम्यहम् ? ॥ १६ ॥
तेनोक्तं मम भार्यापि बालवत्सा तत धापयामि । तथा विहिते स सुप्तः सुखेन तावप्यशेषनिशाम् ॥ १७ ॥
पश्चिमप्रहरे रजन्या नयितः सा वलन्तीकोक्ता । राज्ञा भद्रे ! तव सदृश्यः कति मम नगर्याम् ? ॥ १८ ॥
ज्ञातं यथैव राजा तयोक्तं देव ? कीदृश्यहम् ? । दत्तकदुहितात्रैव जनसमक्षं वसति गेहे ॥ १९ ॥
सा कीदृशा भद्रे ! कथय यतो मम कौतुकं गुरुकम् । तयोक्तं निशृणु क्षणमेकमवहितो राजन् ! ॥ २० ॥
इहास्ति देव ! दत्तकश्रेष्ठी सर्वत्र शुचिसमाचारः । तस्य सुता रुपवती सुविदग्धा बालविधवा च ॥ २१ ॥
ततः शीलरक्षणकृते श्रेष्ठी प्रासादसंस्थितां धरति । भोगाङ्गं तु समग्रं प्रतिदिवसं ददाति स्नेहेन ॥ २२ ॥
सा तत्रास्ते प्रारुढरुपलावण्ययौवनारम्भा । उज्जृम्भमानमदनापि अमदना मदनगृहिणीव ॥ २३ ॥
अथ मदनविधुरिताङ्ग्यधो व्रजन्तं च सार्थवाहसुतम् । ज्ञापयति निजभावं कदाचित्केनचित्प्रकारेण ॥ २४ ॥
सोऽपि हु तत्रागच्छति नित्यं चैव मञ्चिकाप्रयोगेण । तस्या जनकेन समं व्यवहारं करोति प्रीतिं च ॥ २५ ॥

तीए सिक्खविओ सो अमुगं पव्वाइयं वसीकाउं । तस्सिस्सिणिवेसधरेणाऽऽगंतव्वं मह समीवे ॥२६॥
जणओ विमीए वुतो एगागीए विणोयणनिमित्तं । मह धम्मवंतममुगं पव्वाइं ताय ! आणेसु ॥२७॥
तप्पभिइ तत्थ रायं ! तहा कए जंति तेसि दिवसाणि । न य को वि किं पि जाणइ पेच्छसु तीए वियड्ढत्तं ॥२८॥
अह अन्नया य अन्नं पि काउकामाए तीए नियदइओ । भणिओ को निव्वाहो एयाए कूडचरियाए ? ॥२९॥
जइ भणसि कमवि अन्नं वंचमहमायरामि जेण सुहं । अच्छामो तेणुत्तं जं जाणसि तं पिए ! कुणसु ॥३०॥
कल्लमहमागमिस्सामि जक्खजत्ताए जणसमूहम्मि । एवं करेज्ज पच्छा सव्वं सुत्थं करिस्सामि ॥३१॥
तो तत्थ जणसमक्खं घेत्तुं बाहाए सामरिसवयणं । भणिया किं हिंडसि छड्डिएण नियगेहकिच्चेण ॥३२॥
तप्परियणेण भणियं भुल्लो किं भमसि भद्द ! । तुममेवं ? । तेणुत्तं सच्चमहं भुल्लो सारिक्खयाए दढं ॥३३॥
तप्पमभिई कट्टरकारियाए तं सुणसु जं समारद्धं । परपुरिसेणं छित्त त्ति छोल्लिउं दंतसंपुडयं ॥३४॥
जम्मतरम्मि घेच्छं कूरमहं सा ठिया पइन्नाए । अहन्नो सव्वो वि हु जणयाई परियणो तीसे ॥३५॥
अन्नम्मि दिणे जं तीए कूरकम्माए देव ! पारद्धं । कहिउं पि तं न तीरइ किं पुण काउं सकरुणाण ? ॥३६॥
पव्वाइयाए मज्झट्ठियाए पज्जालिऊण पासायं । तव्वेसं घेत्तूणं नीहरिया पिययमेण समं ॥३७॥
हाहारवो य जाओ महासईए पसाहिओ अप्पा । सीलस्स रक्खणकए जुत्तमिणं सीलवंताणं ॥३८॥

यत उक्तम्-

तया शिक्षयितः सोऽमुकां प्रवाजिकां वशीकृत्य । तच्छिष्यानिवेशधरणेऽऽगन्तव्यं मम समीपे ॥ २६ ॥
जनकोऽप्यनयोक्त एकाकया विनोदननिमित्तम् । मम धर्मवन्तममुकां प्रव्राजीं तात ! आनय ॥ २७ ॥
तत्प्रभृति तत्र राजन् ! तथा कृते यान्ति तयो र्दिवसानि । न च कोऽपि किमपि जानाति पश्य तस्या विदग्धत्वम् ॥ २८ ॥
अथान्यदा चान्यं अपि कर्तुकामया तया निजदयितः । भणितः को निर्वाहोऽनया कुटचर्यया ? ॥ २९ ॥
यदि भणसि कमप्यन्यत्प्रपञ्चमाचरामि येन सुखम् । आस्वहे तेनोक्तं यज्जानासि तत् प्रिये ! कुरु ॥ ३० ॥
कल्येऽहमागमिष्यामि यक्षयात्रायां जनसमूहे । एवं कुर्याः पश्चात्सर्वं सुस्थं करिष्यामि ॥ ३१ ॥
तदा तत्र जनसमक्षं गृहीत्वा बाहुभ्यां सामर्शवचनम् । भणिता किं हिण्डसे त्यक्तेन निजगृहकार्येण ॥ ३२ ॥
तत्परिजनेन भणितं विस्मृतः किं भ्रमसि भद्र ! त्वमेवम् ? । तेनोक्तं सत्यमहं विस्मृत सादृक्ष्यया दृढम् ॥ ३३ ॥
तत्प्रभृति कट्टरकरिकया त्वं शृणु यत्समारब्धम् । परपुरुषेण स्पृष्टेति छोलयित्वा दन्तसंपूटकम् ॥ ३४ ॥
जन्मान्तरे ग्रहिष्ये कूरमहं सा स्थिता प्रतिज्ञया । आकुलः सर्वोऽपि हु जनकादिः परिजनस्तस्याम् ॥ ३५ ॥
अन्यस्मिन् दिने यत्तया क्रुरकर्मया देव ! प्रारब्धम् । कथयितुमपि तन्न शक्यते किं पुनः कर्तुं सकरुणानाम् ? ॥३६॥
प्रव्राजिकाया मध्यस्थितायाः प्रज्वाल्य प्रासादम् । तद्वेशं गृहीत्वा निःसृता प्रियतमेन समम् ॥ ३७ ॥
हाहरवश्च जातो महासत्या प्रसाधित आत्मा । शीलस्य रक्षणकृते युक्तमिदं शीलवताम् ॥ ३८ ॥

वरं प्रवेष्टुं ज्वलितं हुताशनं, न चापि भग्नं चिरसञ्चितं व्रतम् ।
वरं हि मृत्युं सुविशुद्धकर्मणो, न चापि शीलस्खलितस्य जीवितम् ॥३९॥
पच्चाइओ य लोओ धुत्तीए सयं च भुंजए भोए । जणपयडं त पवंचं पेच्छ महाराय ! महिलाणं ॥४०॥
काऊणं मयकिच्चं कालेणं सोयविरहिओ जाओ । जणयाइजणो जम्हा दंसणसाराइं पेम्माइं ॥४१॥
सो उण सत्थाहसुओ तहेव ववहरइ सेट्ठिणा सद्धि । अह अन्नया य वत्थे घेत्तुं पत्तो पियाए कए ॥४२॥
वालेऊणं मुक्काणि ताणि जा दोन्नि तिन्नि वाराओ । राढाला मज्झ पिया ताय ! न रोयंति एयाणि ॥४३॥
केरिसिया तुज्झ पिया ? आगच्छउ वच्छ ताव पेच्छामि । गिण्हउ मणस्स रुच्चंति जाणि वत्थाणि सयमेव ॥४४॥
तो आगंतुं चलणेसु निवडिया एस चेव मह धूया । धरिया नियउच्छंगे गहवरिओ तं निएऊण ॥४५॥
आऊरिय गलसरणी पमुक्कपोक्काखं परुन्नो य । भणियं च जणसमक्खं एस च्चिय होउ मह धूया ॥४६॥
एसो च्चिय जामाऊ वुड्ढो हं एस मज्झ घरसारो । विलसउ देउ जहिच्छं न किंपि केणावि वत्तव्वं ॥४७॥
सत्थाहसुएणुत्तं इमीए भंतीए ताय ! तुज्झ सुया । बाहाए मए गहिया तीसे एईए न विसेसो ॥४८॥
तो राय ! तीए पुरओ केरिसिया हं ? सयं विचिंतेसु । इय सुणिउं पुहइवई विम्हइयमणो विचिंतेइ ॥४९॥
गह-सूर-चंदचरियं ताराचरियं च राहुचरियं च । जाणंति बुद्धिमंता महिलाचरियं न याणंति ॥५०॥
गंगाए वालुया सायरे जलं हिमवओ य परिमाणं । जाणंति बुद्धिमंता महिलाचरियं न याणंति ॥५१॥
भणिया सा नियपइणो तं केरिसमुत्तरं पयच्छिहिसि ? । तीयुत्तं खणमेगं नियसु महाराय ! जइ एवं ॥५२॥

प्रत्यायितश्च लोको धूर्त्या स्वयं च भुनक्ति भोगान् । जनप्रकटं च प्रपञ्चं पश्य महाराज ! महिलानाम् ॥ ४० ॥
कृत्वा मृतकार्यं कालेन शोकविरहितो जातः । जनकादिजनो यस्माद्दर्शनसाराणि प्रेमाणि ॥ ४१ ॥
स पुनः सार्थवाहसुतस्तथैव व्यवहरति श्रेष्ठिना सार्द्धम् । अथान्यदाच वस्त्राणि गृहीत्वा प्राप्तः प्रियायाः कृते ॥ ४२ ॥
वालयित्वा मुक्तानि तानि यावद् द्वित्रिणि वाराः । अतिविभूषाप्रिया मम प्रिया तात ! न रोचयत्येतानि ॥ ४३ ॥
कीदृशा तव प्रिया ? आगच्छतु वत्स ! तावत्पश्यामि । गृह्णातु मनसो रोचयति यानि वस्त्राणि स्वयमेव ॥ ४४ ॥
तत आगत्य चरणयो र्निपतितैषा चैव मम दुहिता । धृता निजोत्सङ्गे ग्रहवरितस्तां दृष्ट्वा ॥ ४५ ॥
आपूर्य गलसरणीं प्रमुक्तपुत्कारवान् प्ररुदितश्च । भणितं च जनसमक्षमेषा चैव भवतु मम दुहिता ॥ ४६ ॥
एष चैव जामाता वृद्धोऽहमेष मम गृहसारः । विलसतां द्वौ यथेच्छं न किमपि केनापि वक्तव्यम् ॥ ४७ ॥
सार्थवाहसुतेनोक्तमनया भ्रान्त्या तात ! तव सुता । बाहुना मया गृहीता तस्यामेतस्यां न विशेषः ॥ ४८ ॥
ततो राजन् ! तस्याः पुरत : कीदृशाहं ? स्वयं विचिन्तय । इति श्रुत्वा पृथिवीपति र्विस्मितमना विचिन्तयति ॥ ४९ ॥
ग्रह-सूर्य-चन्द्र-चरितं ताराचरितं च राहुचरितं च । जानन्ति बुद्धिमन्तो महिलाचरितं न जानन्ति ॥ ५० ॥
गङ्गायां वालुका सागरे जलं हिमवतश्च परिमाणम् । जानन्ति बुद्धिमन्तो महिलाचरितं न जानन्ति ॥ ५१ ॥
भणिता सा निजपत्युस्त्वं कीदृशमुत्तरं प्रदास्यसि ? । तयोक्तं क्षणमेकं पश्य महाराज ! यद्येवम् ॥ ५२ ॥

उट्ठाविऊण सेट्ठी भणिओ तीयुत्थुडुंकियमुहीए । सेज्जा किमेस ? छिद्दं लहिउं कम्माइयं किंपि ? ॥५३॥
मा रूस पिए ! किंपि हु मह सासुरयाओ काणि वि इमाणि । वसिऊण गयाणि तओ सरोसमेईए संलत्तं ॥५४॥
इममेव मए पुट्ठं सुहय ! तए अज्ज किंपि सासुरयं । घडियमउव्वमिमीए कओ विलक्खो वराओ सो ॥५५॥
भणिओ य तीए राया दिट्ठं मम किंपि चेट्ठियं तुमए ? । तुब्भे त्थ वंदणिज्जाओ भवह भणिउ गओ गेहे ॥५६॥

॥ दत्तकदुहिताख्यानकं समाप्तम् ॥७२॥

इदानीं भावभट्टिकाख्यानकमुच्यते । तद्यथा-

रयणविणिम्मियपासाय-भवण-पायार-तोरणाईहिं । रयणपुरं व जहत्थं जं नियनामं समुव्वहइ ॥१॥
सव्वत्तो च्चिय पसरियरयणंसुनिबद्धसक्कचावाए । रयणप्पहाए आयरिसए व्व जं नियइ नियसोहं ॥२॥
तम्मि पुरे ससहरकरसियजसधवलियदियंतराभोगो । भोगोवभोगसुत्थियसमस्सियासेसपणइजणो ॥३॥
जणयाणुरायगुणवसविढत्तसुविसुद्धसंपयाकलिओ । कलिओहामियरिउजणकरिमरिकरचलियचमरजुगो ॥४॥
जुगसमपयंडभुयदंडचंडिमाधरियवसुमईवलओ । बलओहजुओ सिरिरयणसेहरो नाम नरनाहो ॥५॥
तस्स य रन्नो भज्जा सुयणाणं हिययहारिणी अहियं । नामेण रयणमाला विमलगुणा रयणमाल व्व ॥६॥
मइमाहप्पविणिच्छियरज्जत्थो सुमइनामओ मंती । तस्स य पुत्तो गुणरयणसायरो सायरो नाम ॥७॥
गुणदिवसाणं सुहिचक्कवायमिहुणाण बंधुकमलाणं । पुरिसेट्ठी नामेणं भाणू भाणू व्व मणदइओ ॥८॥

उत्थाप्य श्रेष्ठी [१]भणितस्तयाक्रमितमुखया । शय्या किमेषा ? छिद्रं लब्ध्वा कर्मादिकं किमपि ? ॥ ५३ ॥
मारुष्य प्रिये ! किमपि हु मम श्वसुरकात् कावप्यीमौ । उषित्वा गतौ ततः सरोषमनया संलप्तम् ॥ ५४ ॥
इदमेव मया पृष्टं सुभग! त्वयाद्य किमपि श्वसुरकम् । घटितमपूर्वमनया कृतो विलक्षो वराकः सः ॥ ५५ ॥
भणितश्च तया राजा दृष्टं मम किमपि चेष्टितं त्वया ? । यूयमत्र वन्दनीया भवत भणित्वा गतो गृहे ॥ ५६ ॥

॥ दत्तकदुहित्राख्यानकं समाप्तम् ॥ ७२ ॥

भावभट्टिकाख्यानकम् ॥ ७३ ॥

रत्नविनिर्मितप्रसाद-भवन-प्राकार-तोरणादिभिः । रत्नपुरमिव यथार्थं यन्निजनाम समुद्वहति ॥ १ ॥
सर्वतश्चैव प्रसरितरत्नांशुनिबद्धशक्रचापायाः । रत्नप्रभाया आदर्शस्येव यत्पश्यति निजशोभाम् ॥ २ ॥
तस्मिन्पुरे शशधरकरसितयशोधवलितदिगन्तराभोगः । भोगोपभोगसुस्थितसमाश्रिताशेषप्रणतिजनः ॥ ३ ॥
जनकानुरागगुणवशार्जितसुविशुद्धसम्पत्कलितः । कल्यवनामितरिपुजनकरिमरिकरचलितचामरयुग्मः ॥ ४ ॥
युग्मसमप्रचण्डभुजदण्डचण्डिमाधृतवसुमतिवलयः । बलौघयुतः श्रीरत्नशेखरो नाम नरनाथः ॥ ५ ॥
तस्य च राज्ञो भार्या स्वजनानां हृदयहारिणी अधिकम् । नाम्ना रत्नमाला विमलगुणा रत्नमालेव ॥ ६ ॥
मतिमाहात्म्यविनिश्चितराज्यार्थः सुमतिनामको मन्त्री । तस्य च पुत्रो गुणरत्नसागरः सागरो नामा ॥ ७ ॥
गुणदिवसानां सुखीचक्रवाकमिथुनानां बन्धुकमलानाम् । पुरिश्रेष्ठी नाम्ना भानु र्भानुरिव मनदयितः ॥ ८ ॥

---

१. उत्थुडुंकिय - आक्रमितः - લડાઈના ભાવવાળું

नामेणं भाणुसिरी तस्स पिया तप्पह व्व सुपयासा । तेसिं अब्भुयभूया धूया भावट्टिया नाम ॥९॥
बालत्तणे वि पढिया सेट्ठिसुएणं समं सुरिंदेणं । लोइय-वेइयसत्थेसु जा पवीणत्तमुव्वहइ ॥१०॥
इत्थीजणजोग्गाओ सयलाओ कलाओ तीए नायाओ । तेणं चिय सा किल बालवंडिया विस्सुया नयरे ॥११॥
वड्ढंती य कमेणं परूढनवजोव्वणाहियं जाया । लायन्न-रूय-सोहग्ग-ललियसुंदेरगुणभवणं ॥१२॥
तथाहि-
चलणजुयं झस-ससि-संख-मीण-कमलोवसोहियं जीए । लायन्नलहरिलडहं छज्जइ रयणायरसरिच्छं ॥१३॥
ऊरुजुयं रंभाथंभविब्भमं कमपविद्धवित्तजुयं । भवणस्स मयणरन्नो तोरणथंभोवमं सहइ ॥१४॥
रमणं सुरसरियापुलिणसन्निमं सइसुहिल्लिसोहिल्लं । जगजगडणपरिसंतस्स मयणसुहडस्स सयणं व ॥१५॥
जीए सिसुमुट्ठिगेज्झो (कडिभाओ) निम्मिओ पयावइणा । थणभरभंगभएण व वलित्तयसमस्सिओ सहइ ॥१६॥
जीसे थणजुयमच्चंतमुन्नयं वट्टुलं ससाममुहं । रेहइ कामनिवइणो निहिकलसजुयं व्व कयमुद्दं ॥१७॥
बाहुलया वि हु जीसे सहजारुणकरसरोयरमणीया । पज्जंतपरूढाभिणवपल्लवा चंपयलय व्व ॥१८॥
जीसे कंठो रेहातिगेण समलंकिओ कहइ एवं । थीरयणमवरमेरिसरूवं भुवणत्तए नत्थि ॥१९॥
अहरदलिल्लं सियदसणकेसरं नयणभमररेहिल्लं । नासानालं लायन्नसिरिगिहं सहइ मुहकमलं ॥२०॥
रमणीयं सवणजुयं जीसे सरलं सहावसोहिल्लं । रइ-पीईणं मणहरमंदोलयकरणिमुव्वहइ ॥२१॥

नाम्ना भानुश्रीस्तस्य प्रिया तत्प्रभेव सुप्रकाशा । तयोरद्भूतभूता दुहिता भावभट्टिका नामा ॥ ९ ॥
बालत्वेऽपि पठिता श्रेष्ठिसुतेन समं सुरेन्द्रेण । लोकिक-वैदिकशास्त्रेषु या प्रविणत्वमुद्वहति ॥ १० ॥
स्त्रीजनयोग्याः सकलाः कलास्तया ज्ञाताः । तेन चैव स किल बालपण्डिता विश्रुता नगरे ॥ ११ ॥
वर्धमाना च क्रमेण प्ररुढनवयौवनाधिकं जाता । लावण्य-रुप-सौभाग्य-ललितसौन्दर्यगुणभवनम् ॥ १२ ॥
तथाहि -
चरणयुगं झष-शशि-शङ्ख-मीन-कमलोपशोभितं यस्याः । लावण्यलहरिसुन्दरं शोभते रत्नाकरसदृशम् ॥ १३ ॥
ऊरूयुगं रम्भास्तम्भविभ्रमं क्रमप्रवृद्धवृत्तयुगम् । भवनस्य मदनराज्ञस्तोरणस्तम्भोपमं राजते ॥ १४ ॥
रमणं सुरसरितापुलिनसन्निभं सदासुखीवच्छोभमानम् । कदर्थनपरिश्रान्तस्य मदनसुभटस्य शयनमिव ॥ १५ ॥
यस्याः शिशुमुष्टिग्राह्यो (कटिभागो) निर्मितः प्रजापतिना । स्तनभारभङ्गभयेनेव वलित्रयसमाश्रितः राजते ॥ १६ ॥
यस्याः स्तनयुगमत्यन्तमुन्नतं वृत्तं सश्याममुखम् । राजते कामनृपते र्निधिकलशयुग्ममिव कृतमुद्रम् ॥ १७ ॥
बाहुलतापि हु यस्याः सहजारुणकरसरोजरमणीया । पर्यन्तप्ररुढाभिनवपल्लवा चम्पकलतेव ॥ १८ ॥
यस्याः कण्ठो रेखात्रिकेण समलङ्कृतः कथयत्येवम् । स्त्रीरत्नमपरमीदृशरुपं भुवनत्रये नास्ति ॥ १९ ॥
अधरदलवत् सितदशनकेसरं नयनभ्रमरराजमानम् । नासानालं लावण्यश्रीगृहं सहते मुखकमलम् ॥ २० ॥
रमणीयं श्रवणयुग्मं यस्याः सरलं स्वभावशोभमानम् । रति-प्रीत्यो र्मनोहरमान्दोलककरणिमुद्वहति ॥ २१ ॥

सुसिणिद्ध-कसिण-मिउ-कुडिलकेसकबरी मणोहरा जीसे । कामकुलकेलिसिहिणो कलावलीलं विडंबेइ ॥२२॥

अवरं च-

विन्नाणगुणवियड्ढं गरुयगमं जइ निएज्ज पुव्वमिमं । ता जडपयई निन्नयगइं च गिण्हेज्ज कह णु हरो ॥२३॥

गंगं ? कहं व गोरिं पव्वयदुहियं सया सुहियमेयं । लच्छिं व वासुदेवो समुद्दमहणुब्भवं चवलं ॥२४॥

सज्जणजणेण सुहयं थिरस्सहावं व चइय जं दट्ठुं । एवं वियप्पइ जणो को सक्कइ वन्निउं तमिह ? ॥२५॥

अह अन्नया य कम्मि वि पत्थावे तत्थ रायअत्थाणे । महिलागओ वियारो जाओ रायाइपुरिसाणं ॥२६॥

केणावि भणियमित्थी तुच्छा पयईए ऊणहिययया य । कुडिलसहावा दोसाण मंदिरं भणियमवरेण ॥२७॥

सत्यं वच्मि प्रियं वच्मि हितं वच्मि पुनः पुनः । अस्मिन्नसारे संसारे सारं सारङ्गलोचना ॥२८॥

राज्ञोक्तम्-

चवला मइलणसीला सिणेहपरिपूरिया वि तावेइ । दीवयसिह व्व महिला लद्धप्पसरा भयं देइ ॥२९॥

भाणुसेट्ठिणा भणियं-

महिला कुडिलसहावा बंधवकुलभेयकारिणी महिला । महिला निद्दयहियया पच्चक्खा रक्खसी महिला ॥३०॥

महिला आलकुलहरं महिला लोयम्मि दुच्चरियखेत्तं । महिला सकज्जनिट्ठा महिला जोणी अणत्थाणं ॥३१॥

मन्त्रिपुत्रेणावाचि-

मम तावन्मतमेतदिह, किमपि यदस्ति तदस्तु । रमणीभ्यो रमणीयतरमन्यत् किमपि न वस्तु ॥३२॥दोधकः॥

सुस्निग्ध-कृष्ण-मृदु-कुटिलकेशकबरी मनोहरा यस्याः । कामकुलकेलिशिखिनः कलापलीलां विडम्बयति ॥ २२ ॥

विज्ञानगुणविदग्धां गुरुकगमां यदि पश्यति पूर्वमिमाम् । तदा जडप्रकृतिं निम्नगतिं च गृह्ण्यात् कथं तु हरः ॥ २३ ॥

गङ्गां ? कथं वा गौरिं पर्वतदुहितरं सदा सुखितामेनाम् । लक्ष्मीं वा वासुदेवः समुद्रमथनोद्भवां चपलाम् ॥ २४ ॥

सज्जनजनेन सुभगं स्थिरस्वभावं वा त्यक्तं यां दृष्ट्वा । एवं विकल्पति जनः कः शक्यते वर्णयितुं तामिह ? ॥२५॥

अथान्यदा च कस्मिन्नपि प्रस्तावे तत्र राजास्थाने । महिलागतो विचारो जातो राजादिपुरुषाणाम् ॥ २६ ॥

केनापि भणितं स्त्रीस्तुच्छा प्रकृत्योनहृदया च । कुटिलस्वभावा दोषाणां मन्दिरं भणितमपरेण ॥ २७ ॥

.....। .....॥ २८ ॥

चपला मलिनशीला स्नेहपरिपूरितापि तापयति । दीपकशिखेव महिला लब्धप्रसरा भयं ददाति ॥ २९ ॥

भानुश्रेष्ठिना भणितम् —

महिला कुटिलस्वभावा बान्धवकुलभेदकारिणी महिला । महिला निर्दयहृदया प्रत्यक्षा राक्षसी महिला ॥ ३० ॥

महिलाऽऽलकुलगृहं महिला लोके दुश्चरित्रक्षेत्रम् । महिला स्वकार्यनिष्ठा महिला योनिरनर्थानाम् ॥ ३१ ॥

.....। .....॥ ३२ ॥

अपरेणोचे-

अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वाणी वीणा नरश्च नारी च । पुरुषविशेषं प्राप्ता भवन्त्ययोग्याश्च योग्याश्च ॥३३॥
भणियं च भाणुणा जइ वि एवमिह तह वि निच्छओ मज्झ । देवेहिं पि न एसा रक्खिज्जइ मुक्कमज्जाया ॥३४॥
एवं विवयंतो सो मिलिऊण कुओ वि अभिनिवेसाओ । सव्वेहिं पराभूओ विसेसओ मंतिपुत्तेण ॥३५॥
एवं विसन्नचित्तो भणिओ भावट्टियाए गेहगतो । दीससि असमाहिजुओ तेण वि कहियं जहावत्तं ॥३६॥
जणयावमाणमसमं तीए परिभाविउं असज्झमिमं । धणियं माणधणाए भणिओ भावट्टियाए पिया ॥३७॥
वियरसु मं मंतिसुयस्स ताय ! सच्चं करेमि तुह वयणं । मइमाहप्पं पेच्छामि जेणमेएसि सव्वेसिं ॥३८॥
एवमभिमाणवसगाए तीए चित्तप्पवंचनिउणाए । परिणावियमप्पाणं सुरिंदगयमाणसाए वि ॥३९॥
तेण वि नायमिमीए परिभवकामाए विहियमेयं मे । तो तं पासायतले सुगोवियं धरइ मंती वि ॥४०॥
भोगोवभोगजायंतीए सो अप्पणा पणामेइ । मायापवंचनिउणाए रंजिओ ससुरओ भणिओ ॥४१॥
ताय ! मह सुत्थमवरं परमहमेगागिणी वसामि दुहं । ता सहियणमज्झाओ सुपरिक्खियमप्पणा सहियं ॥४२॥
एगं दो वा पेससु जेण नवाणं कलाणमब्भासं । सद्धिं ताहिं करेमी मणयं च सुहेण चिट्ठामी ॥४३॥
जावाऽऽगच्छंति सहीओ तीए पासम्मि मंतिवयणेणं । ता कइया वि सुरिंदो सहिवेसेणं समाहूओ ॥४४॥
तप्पभिई तेण समं सुरयसुहं सरसमणुहवंतीए । वच्चंति दिणाणि अहो ! गूढायारित्तमित्थीणं ॥४५॥

.....। .....॥ ३३ ॥

भणितं च भानुना यद्यपेवमिह तथापि निश्चयो मम । देवैरपि नैषा रक्ष्यते मुक्तमर्यादा ॥ ३४ ॥
एवं विवदन् स मिलित्वा कुतोऽप्यभिनिवेशात् । सर्वैः पराभूतो विशेषतो मन्त्रिपुत्रेण ॥ ३५ ॥
एवं विषण्णचित्तो भणितो भावभट्टिकया गृहगतः । दृश्यसेऽसमाधियुक्तस्तेनापि कथितं यथावृत्तम् ॥ ३६ ॥
जनकापमानसमं तया परिभाव्यासाध्यमिदम् । अत्यन्तं मानधनया भणितो भावभट्टिकया पिता ॥ ३७ ॥
वितर मां मन्त्रिसुतस्य तात ! सत्यं करोमि तव वचनम् । मतिमाहत्म्यं पश्यामि येनैतेषां सर्वेषाम् ॥ ३८ ॥
एवमभिमानवशगया तया चित्तप्रपञ्चनिपुणया । परिणायितमात्मानं सुरेन्द्रगतमानसयापि ॥ ३९ ॥
तेनापि ज्ञातमनया परिभवकामया विहितमेतन्मे । ततस्तां प्रासादतले सुगोपितां धरति मन्त्र्यपि ॥ ४० ॥
भोगोपभोगयाचमानायाः स आत्मना समर्पयति । मायाप्रपञ्चनिपुणया रञ्जितःश्वसुरो भणितः ॥ ४१ ॥
तात ! मम स्वस्थमपरं परमहमेकाकिनी वसामि दुःखम् । ततः सखीजनमध्यात् सुपरीक्षितमात्मना सहितम् ॥ ४२ ॥
एकां द्वे वा प्रेष्य येन नवानां कलानामभ्यासम् । सार्धं ताभिः करोमि मनाक् च सुखेन तिष्ठामि ॥ ४३ ॥
यावदागच्छन्ति सख्यस्तस्याः पार्श्वे मन्त्रिवचनेन । तावत्कदापि सुरेन्द्रः सखिवेशेन समाहूतः ॥ ४४ ॥
तत्प्रभूति तेन समं सुरतसुखं सरसमनुभवन्त्याः । व्रजन्ति दिनान्यहो ! गूढाचारित्वं स्त्रीणाम् ॥ ४५ ॥

तीए वि हु तह कह वि हु विणएण वसीकओ ससुरवग्गो । जह कन्नाओ कन्नं न को वि किं पि हु तयं सुणइ ॥४६॥
तप्पइणा य कया वि हु सरीरमलणाइणा पयारेण । परिजाणियं जमेसा समगं पुरिसेण संवसइ ॥४७॥
छक्कन्नं जाव कयं ता भणिओ तीए सविणयं ससुरो । ताय ! तए सच्चवियं नियसुयविलसियमपुव्वमिमं ? ॥४८॥
तुह चेव निद्धसुयणस्स सेट्ठिणो भाणुओ अहं धूया । परिणेऊण जमेयं सुद्धायारा वि परिहरिया ॥४९॥
न हु एत्तिएण तुट्ठो दूसणमारोवए महऽन्नं पि । ता णेण कयं सच्चं केणावि वुहेण जं भणियं ॥५०॥
न हु एत्तिएण ठाही गयणयलमइलिऊण घणनिवहो । कायव्वा अज्ज वि रायहंससुन्ना सरुच्छंगा ॥५१॥
ता संपइ सुद्धा हं कूरग्गहणं करिस्समलमिमिणा । चाविज्जंति न मिरिया जह चणया ताय ! पयडमिणं ॥५२॥
छड्डसु भलिमवराणं महिलाणं गयनिमीलियं काउं । जा सकलंका जीयंति ताय ! ता कुणसु मह सुद्धिं ॥५३॥
इय सोऊणं सव्वो सराय-पउरो जणो तहिं मिलिओ । जा कोवि किंपि पभणइ पहाणपुरिसेहिं ता वुत्तं ॥५४॥
जा एवं कयनियमा सा कावि हु होउ किं वियप्पेण ? । खिप्पउ सुरपियभवणे किमियरदिव्वेहिं कायव्वं ॥५५॥
न्हाया कयबलिकम्मा धवलविलेवणविलित्तसव्वंगा । धवलाहरणविहूसियसव्वावयवा धवलवसणा ॥५६॥
धवलप्पसूणपरिमलमिलंतभमरउलरुइरगलमाला । धवलकरोरुहसयवत्तकुसुमसिरधरियसेहरया ॥५७॥
इय सव्वंगीणमहग्घवत्थसच्चवियफारसिंगारा । अणुगम्ममाणमग्गा नरवइ-नायरयनिवहेण ॥५८॥
निरवज्जवज्जिराउज्जमणहरारावपूरियदियंता । पढमाणभट्ट-वंदियणवहलहलबोलमुहलहा ॥५९॥

तयापि हु तथा कथमपि हु विनयेन वशीकृतः श्वसुरवर्गः । यथा कर्णात् कर्णं न कोऽपि किमपि खलु तकत् शृणोति ॥ ४६ ॥
तत्पत्या च कदापि खलु शरीरमलनादिना प्रकारेण । परिज्ञातं यदेषा समकं पुरुषेण संवसति ॥ ४७ ॥
षट्कर्णं यावत्कृतं तावद्भणितस्तया सविनयं श्वसुरः । तात ! त्वया दृष्टं निजसुतविलसितमपूर्वमिदम् ॥ ४८ ॥
तव चैव स्निग्धस्वजनस्य श्रेष्ठिनो भानोरहं दुहिता । परिणीय यदेनां शुद्धाचारामपि परिहृता ॥ ४९ ॥
न खलु एतावता तुष्टो दूषणमारोपयति ममान्यदपि । ततोऽनेन कृतं सत्यं केनापि बुधेन यद्भणितम् ॥ ५० ॥
न खल्वेतावता स्थास्यति गगनतलं मलित्वा घननिवहः । कर्तव्या अद्यापि राजहंसशून्याः सरसुत्सङ्गाः ॥ ५१ ॥
ततः सम्प्रति शुद्धाहं कूरग्रहणं करिष्याम्यलमनेन । चर्वयन्ति न मिरिचा यथा चनकास्तात ! प्रकटमिदम् ॥ ५२ ॥
त्यज भलिमापरासां महिलानां गजनिमिलिकां कृत्वा । याः सकलङ्का जीवन्ति तात ! ततः कुरु मम शुद्धिम् ॥ ५३ ॥
इति श्रुत्वा सर्वः सराज-पौरो जनस्तत्र मिलितः । यावत्कोऽपि किमपि प्रभणति प्रधानपुरुषैस्तावदुक्तम् ॥ ५४ ॥
या एवं कृतनियमा सा कापि खलु भवतु किं विकल्पेन ? । क्षिपतु सुरप्रियभवने किमितरदिव्यैः कर्तव्यम् ॥ ५५ ॥
स्नाता कृतबलिकर्मा धवलविलेपनविलिप्तसर्वाङ्गाः । धवलाभरणविभूषितसर्वावयवा धवलवसना ॥ ५६ ॥
धवलप्रसूनपरिमलमिलद्भ्रमरकुलरुचिरगलमाला । धवलसरोरुहशतपत्रकुसुमशिरोधृतशेखरा ॥ ५७ ॥
इति सर्वाङ्गीणमहार्ध्यवस्त्रदृष्टस्फारशृङ्गारा । अनुगम्यमानमार्गा नरपति-नागरकनिवहेन ॥ ५८ ॥
निरवद्यवाद्यदातोद्यमनोहरारावपूरितदिगन्ता । पठयमानभट्ट-बन्दिजनबहलहलबोलमुखरा ॥ ५९ ॥

सवियक्क-सविम्हय-सदय-कोउगक्खित्तनायरजणस्स । गरुययरचडयरेणं पत्ता सुरपियभवणमेसा ॥६०॥
सो पुण जक्खो सन्निहियपाडिहेरो निसाए बलवंतो । पालइ पयत्तओ पाणिनिवहमिह सुइसमायारं ॥६१॥
दुट्ठं रुट्ठो निग्गहइ गहिय जमजीहसच्छहच्छुरिओ । दिवसम्मि अकिंचिकरो पयई एसा जणपसिद्धा ॥६२॥
खिविऊण जक्खभवणे भावट्टियजुवइमुब्भडकवाडे । ढक्किय ढड्ढसमेयं काउं वलिओ नयरिलोओ ॥६३॥
सो तं दट्ठुं दट्ठोट्ठभिउडिभासुरकरालभालयलो । आयड्ढिउमसिधेणुं पाविट्ठे ! सुमरसु तमिट्ठं ॥६४॥
एवं भेसविया वि हु सविणयमवलंबिऊण थिरचित्तं । पभणइ भयवं ! एवं को किर मह उवरि संरंभो ? ॥६५॥
अहमेगघायसज्झा महापभावो तुमं च दयरसियो । ता विन्नत्तिं निसुणसु मह पच्चासन्नमरणाए ॥६६॥
संपइ मह मरणं पि हु सलाहणिज्जं जयम्मि जं दुलहे । एएण निमित्तेणं संजायं दंसणं तुम्ह ॥६७॥
ता संपइ होसु थिरो जाव सुदिट्ठं करेमि जियलोयं । तुह चिंतण-भासण-दंसणेहिं दुलहेहऽपुन्नाणं ॥६८॥
साणुयणं सप्पणयं तह कह वि हु तीए भणिइनिउणाए । सो भणिओ जह जाओ मणयं उवसंतकोवभरो ॥६९॥
भणियं च तेण भद्दे ! जीयं मोत्तूण वरसु किं पि वरं । जं सावराहजीयं कइया वि न दिन्नपुव्व मे ॥७०॥
तो तीउत्तं निसुणसु कहाणयं किंपि तुह कहेमि अहं । तेणुत्तं निस्संका कहसु अहं अवहिओ एस ॥७१॥

(विक्रमादित्यनृपाख्यानकम्)

अत्थि अवंतीजणवयपरमालंकारसन्निभा भयवं ! । परमच्छेरयभूया सव्वेसि गुणाण कुलभवणं ॥७२॥

सवितर्क-सविस्मय-सदय-कौतुकाक्षिप्तनागरजनस्य । गुरुकतरसमुहेन प्राप्ता सुरप्रियभवनमेषा ॥ ६० ॥
स पुनर्यक्षः सन्निहितप्रतिहारो निश्रया बलवान् । पालयति प्रयत्नतः प्राणिनिवहमिह शुचिसमाचारम् ॥ ६१ ॥
दुष्टं रुष्टो निगृह्णाति गृहीत्वा यमजीव्हासदृशच्छूरिकः । दिवसे ऽकिञ्चित्करः प्रकृतिरेषा जनप्रसिद्धा ॥ ६२ ॥
क्षिप्त्वा यक्षभवने भावभट्टिका युवतिमुद्भटकपाटे । पिधायार्गलासमेतं कृत्वा वलितो नगरिलोकः ॥ ६३ ॥
स तां दृष्ट्वा दष्टौष्ठभृकुटिभासुरकरालभालतलः । आकृष्यासिधेनुं पापिष्टे ! स्मर त्वमिष्टम् ॥ ६४ ॥
एवं भेषयिताऽपि खलु सविनयमवलम्ब्य स्थिरचित्तम् । प्रभणति भगवन् ! एवं कः किल ममोपरि संरम्भः? ॥ ६५ ॥
अहमेकघातसाध्या महाप्रभावस्त्वं च दयारसिकः । ततो विज्ञप्तिं निशृणु मम प्रत्यासन्नमरणायाः ॥ ६६ ॥
सम्प्रति मम मरणमपि खलु श्लाघनीयं जगति यद् दुर्लभम् । एतेन निमित्तेन सञ्जातं दर्शनं तव ॥ ६७ ॥
ततः सम्प्रति भव स्थिरो यावत् सुदृष्टं करोमि जीवलोकम् । तव चिन्तन-भाषण-दर्शनै दुर्लभमिहापुण्यानाम् ॥ ६८ ॥
सानुनयं सप्रणयं तथा कथमपि खलु तया भणितिनिपुणया । स भणितो यथा जातो मनागुपशान्त कोपभरः ॥ ६९ ॥
भणितं च तेन भद्रे ! जीवितं मुक्त्वा वर किमपि वरम् । यत्सापराधजीवितं कदापि न दत्तपूर्वं मया ॥ ७० ॥
ततस्तयोक्तं निश्रुणु कथानकं किमपि तव कथयाम्यहम् । तेनोक्तं निःशङ्का कथयाहमवहित एषः ॥ ७१ ॥

(विक्रमादित्यनृपाख्यानकम् ।)

अस्त्यवन्तीजनपदपरमालङ्कारसन्निभा भगवन् । परमाश्चर्यभूता सर्वेषां गुणाणां कुलभवनम् ॥ ७२ ॥

तथा हि-

तं विन्नाणं भुवणे वि नत्थि तं कोउयं जए नत्थि । तं साहसं पि अवरत्थ नत्थि कुहगं पि तं नत्थि ॥७३॥
चाओ नाओ वाओ धाउव्वाओ विसिट्ठसमवाओ । तह य रसायणवाओ जोगिणिवाओ य गहवाओ ॥७४॥
किं बहुणा नयनिउणं जोइज्जंतो विवेयचक्खूहिं । सो कोवि हु नत्थि गुणो पाएणं तीए जो नत्थि ॥७५॥
जम्हा हरिसट्ठाणं परमुज्जयणी जणम्मि नयरी सा । तम्हा तं नयनिउणे परमुज्जयणी वुहा बेंति ॥७६॥
तं नयरिमसमसाहसवसीकयाणहपभावभूयतिगो । पालइ पयडपरक्कमसमुवज्जियकित्तिजसपसरो ॥७७॥
हयविक्कमो वि गयविक्कमो वि रहविक्कमो वि सो तत्थ । तह सव्वविक्कमो वि हु जाओ नयविक्कमो जेण ॥७८॥
महिवलयभासणाओ कमलाण वियासणाओ सव्वत्तो । दुन्नयतमहरणाओ आइच्चो विक्कमाइच्चो ॥७९॥
चाई सूरो पडिवन्नवच्छलो बुद्धिविजियसुरमंती । दक्खिन्ननिही नियय परोवयारेक्कगुणरसिओ ॥८०॥
अह तं कइय वि निवं अणेगभडकोडिसंकडत्थणे । कणयमयदंडहत्थो पडिहरो विन्नवइ एवं ॥८१॥
सियभूइगुंडियतणू लक्खणपडिपुन्ननरकवलकरो । डमडमियडमरुयधरो खंधोवरि धरियखट्टंगो ॥८२॥
वियडजडमउडसिरो एगो कावालिओ दुवारम्मि । अहिलसइ देवदंसणमुड्ढं देवो पमाणं ति ॥८३॥
सिग्घं पवेससु तयं भणिए रन्ना पवेसिओ तेण । ससमयपसिद्धमेसो दाऊणासीसमुवविट्ठो ॥८४॥
भणियं च तेण हिमवंतपव्वए आसि साइसयमंतो । मज्झ गुरू तस्सीसं मं जाणसु भइरवाणंदं ॥८५॥

तथाहि -

तद्विज्ञानं भुवने ऽपि नास्ति तत्कौतुकं जगति नास्ति । तत्साहसमप्यपरत्र नास्ति कुहकमपि तन्नास्ति ॥७३ ॥
त्यागो न्यायो वादो धातुर्वादो विशिष्टसमवायः । तथा च रसायणवादो योगिनिवादश्च ग्रहवादः ॥ ७४ ॥
किं बहुना नयनिपुणं दृश्यमानोन विवेकचक्षुभिः । स कोऽपि खलु नास्ति गुणः प्रायेण तस्या यो नास्ति ॥ ७५ ॥
यस्माद्धर्षस्थानं परमुज्जैनी जने नगरी सा । तस्मात्तां नयनिपुणाः परमुज्जयनी बुधा ब्रुवन्ति ॥ ७६ ॥
तां नगरिमसमसाहसवशीकृतानघप्रभावभूतत्रिकः । पालयति प्रकटपराक्रमसमुपार्जितकीर्तियशःप्रसरः ॥ ७७ ॥
हयविक्रमोऽपि गजविक्रमोऽपि रथविक्रमोऽपि स तत्र । तथा सर्वविक्रमोऽपि खलु जातो नयविक्रमो येन ॥ ७८ ॥
महिवलयभासनात् कमलानां विकासनात् सर्वतः । दुर्नयतमोहरणादित्यो विक्रमादित्यः ॥ ७९ ॥
त्यागी शूरः प्रतिपन्नवात्सल्यो बुद्धिविजितसुरमन्त्री । दाक्षिण्यनिधि र्नित्यं परोपकारेकगुणरसिकः ॥८० ॥
अथ तं कदापि नृपमनेकभटकोटिसंकीर्णस्थाने । कनकमयदण्डहस्तः प्रतिहारो विज्ञपयत्येवम् ॥ ८१ ॥
श्वेतभूतिगुण्डिततनु र्लक्षणप्रतिपूर्ण नरकपालकरः । डमडमितडमरुकधरः स्कन्धोपरि धृतखट्वाङ्गः ॥ ८२ ॥
विकटजटामुकुटशिरा एकः कापालिको द्वारे । अभिलषति देवदर्शनमुर्ध्वं देवः प्रमाणमिति ॥ ८३ ॥
शीघ्रं प्रवेशय तकद्भणिते राज्ञा प्रवेशितस्तेन । स्वसमयप्रसिद्धमेष दत्त्वाशीषमुपविष्टः ॥ ८४ ॥
भणितं च तेन हिमवत्पर्वत आसीत् सातिशयमान् । मम गुरु तस्य शिष्यं मां जानीहि भैरवानन्दम् ॥ ८५ ॥

मह तेण मरंतेणं दिन्नो नरनाह ! साइसयमंतो । सिद्धेण जेण सिज्झ पओयणं तिहुयणऽब्भहियं ॥८६॥
विहिया य जहाविहिणा वारस वरिसाणि पुव्वसेवा मे । इण्हि तु असमसाहससहायसाहेज्जवसगाणं ॥८७॥
सिज्झइ सो तं पुण तुज्झ सयसाओ होहिही नूणं । महिवलए वि जमवरो नेवंविहभारधुरधवलो ॥८८॥
तं पुण साहसविहवो परोवयारेक्ककरणदुल्ललिओ । निव्वडियसूरचरिओ अब्भत्थणभंगभीरू य ॥८९॥
ता तुज्झ सयासमहं पडुच्च कज्जं इमं समणुपत्तो । तो कण्हचउदसिदिणे निसिमेगं कुणसु साहेज्जं ॥९०॥
चिंतियं च राइणा-
गुरु-मित्तत्थे पाणा रूवं तारुन्नयं च दइयाए । विहलुद्धरणम्मि धणं जं उवउज्जइ तयं सफलं ॥९१॥
इय पडिवज्जिय सहरिसमुद्दिट्ठदिणम्मि नरवई पत्तो । एगागी सत्तधणो करालकरवालवग्गकरो ॥९२॥
पुरओ च्चिय संपत्तो पेतवणं तम्मि भेरवाणंदो । सयलीकरणं काऊणाऽऽलिहियं मंतमंडलयं ॥९३॥
रन्ना भणियं भयवं ! आइस तं किंपि जं मए कज्जं । तेणावि भणियमक्खयमडयं तुममेगमाणेसु ॥९४॥
सो वि हु तह त्ति पडिवज्जिऊण भीसावणम्मि पेयवणे । जाव भमइ ता दिट्ठो रुक्खे उल्लंबिओ चोरो ॥९५॥
चडिऊणं छुरियाए जा छिंदिय रज्जुमुत्तरइ तरूणो । ता पेच्छइ उवरि तयं तहेव लंबंतमायासे ॥९६॥
दुइयं वारं छिंदइ ताव तहेव य तयं नियइ रुक्खे । तइयाए वाराए आलिंगिय देइ झंपमहो ॥९७॥
खंधे काऊण तयं जावाऽऽगच्छइ पहम्मि ता तेण । कहिउं किं पि कहाणयमेसो बोल्लाविओ जाव ॥९८॥

मह्यं तेन म्रियमाणेन दत्तो नरनाथ ! सातिशयमन्त्रः । सिद्धेन येन सिध्यति प्रयोजनं त्रिभुवनाभ्यधिकम् ॥ ८६ ॥
विहिता च यथाविधिना द्वादशवर्षाणि पूर्वसेवा मया । इदानीन्तवसमसाहससहायसहाय्यवशगानाम् ॥ ८७ ॥
सिध्यत्येष तं पुनस्तव सकाशाद्भविष्यति नूनम् । महिवलयेऽपि यदपरो नैवंविधभारधुरधवलः ॥ ८८ ॥
त्वं पुनः साहसविभवः परोपकारैककरणदुर्ललितः । निवर्त्तितशूरचरित्रोऽभ्यर्थनाभङ्गभीरुश्च ॥ ८९ ॥
ततस्तव सकाशमहं प्रतीत्य कार्यमिदं समनुप्राप्तः । तत कृष्णचतुर्दशीदिने निश्येकं कुरु साहाय्यम् ॥ ९० ॥
चिन्तितं च राज्ञा —
गुरु-मित्रार्थे प्राणा रुपं तारुण्यं च दयितायै । विफलोद्धरणे धनं यदुपयुज्यते तकत् सफलम् ॥ ९१ ॥
इति प्रतिपद्य सहर्षमुद्दिष्टदिने नरपतिः प्राप्तः । एकाकी सत्त्वधनः करालकरवालव्यग्रकरः ॥ ९२ ॥
पुरतश्चैव सम्प्राप्तः प्रेतवनं तस्मिन् भैरवानन्दः । सकलीकरणं कृत्वाऽऽलिखितं मन्त्रमण्डलकम् ॥ ९३ ॥
राज्ञा भणितं भगवन् ! आदिश तत्किमपि यन्मया कार्यम् । तेनापि भणितमक्षयमृतकं त्वमेकमानय ॥ ९४ ॥
सोऽपि खलु तथेति प्रतिपद्य भीषावने प्रेतवने । यावद्भ्रमति तावद् दृष्टो वृक्षेऽवलम्बितश्चौरः ॥ ९५ ॥
आरुह्य छूरिकया यावच्छित्वा रज्जुमुत्तारयति तरोः । तावत्प्रेक्षते तकत्तथैव लम्बन्तमाकाशे ॥ ९६ ॥
द्वितीयं वारं छिनत्ति तावत्तथैव च तकत्पश्यति वृक्षे । तृतीयया वारयालिङ्ग्य ददाति जम्पामधः ॥ ९७ ॥
स्कन्धे कृत्वा तकद्यावदागच्छति पथि तावत्तेन । कथयितुं किमपि कथानकमेष आकारितो यावत् ॥ ९८ ॥

ता तं तहेव रुक्खे विलग्गिउं ठाइ एव बीयं पि । तइयाए वाराए आयासे सुणइ वयणमिमो ॥९९॥
भो भो नरिंद ! कावालियस्स मा वीससेज्ज एयस्स । एसो हु सुवन्नकए हंतुं तं महइ कूरमई ॥१००॥
राया वि भणइ न जुगंतरे वि मह वयणमन्नहा होइ । पडिवन्नमिमं कज्जं कायव्वं सव्वहा वि मए ॥१०१॥
जओ-
छिज्जउ सीस अह होउ बंधणं वयउ सव्वहा लच्छी । पडिवन्नपालणे सुपुरिसाण जं होइ तं होउ ॥१०२॥
जइ एवं तह वि तुमं कह वि हु अक्खाणयस्स पज्जन्ते । पुच्छंतस्स वि नरवर ! पडिवयणमिमस्स मा देसु ॥१०३॥
अन्नं च मडयभाले पणवमिमं गवलगुलियवन्नाभं । झाएज्जसु थिरचित्तो खेमं एवंकए तुज्झ ॥१०४॥
इय पडिवज्जिय सम्मं मडयं काऊण खंधदेसम्मि । गंतुं जाव पयट्टो ता मडएणं इमं वुत्तं ॥१०५॥
गुरुयंतरालमज्ज वि अज्ज वि तुह मंतवाइओ दूरे । ता पहनिव्वहणकए कहेमि अक्खाणयं सुणसु ॥१०६॥
राया वि मोणमस्सिय पत्तो कावालियं भणइ एवं । एयं अक्खयमडयं अन्नं पि हु भणसु मह किच्चं ॥१०७॥
तेणुत्तं तलहट्टसु वसाए संपयमिमस्स पयजुयलं । सो उण निवकरवालं करम्मि काऊण मडयस्स ॥१०८॥
आढत्तो परिजविउं मंतं राया वि पणवमक्खुहिओ । ताव य मंतपभावा सहस त्ति समुट्ठियमिमो वि ॥१०९॥
गाढयरं जा झायइ पणवं भूमीए ताव तं पडियं । पुणरवि य मंत-पणवं दुन्नि वि सुट्ठुयरमुवउत्ता ॥११०॥
झायंति जाव ताव य भूओ वि हु लग्गमुट्ठिउं मडयं । पणवपभावा पडियं तहेव कावलिओ तत्तो ॥१११॥

तावत्तं तथैव वृक्षे विलग्य तिष्ठत्येवं द्वितीयमपि । तृतीयया वारयाऽऽकाशे शृणोति वचनमयम् ॥ ९९ ॥
भो भो नरेन्द्र ! कापालिकस्य मा विश्वस्यातस्य । एष खलु सुवर्णकृते हन्तुं त्वमिच्छति क्रूरमतिः ॥ १०० ॥
राजापि भणति न युगान्तरे ऽपि मम वचनमन्यथा भवति । प्रतिपन्नमिदं कार्यं कर्तव्यं सर्वथापि मया ॥ १०१ ॥
यतः-
छिनत्तु शीर्षमथ भवतु बन्धनं व्रजतु सर्वथा लक्ष्मीः । प्रतिपन्नपालने सुपुरुषाणां यद्भवति तद्भवतु ॥ १०२ ॥
यद्येवं तथापि त्वं कथमपि खल्वाख्यानकस्य पर्यन्ते । पृच्छतोऽपि नरवर ! प्रतिवचनमेतस्य मा दद्याः ॥ १०३ ॥
अन्यच्च मृतकभावे प्रणवमिदं गवलगुलिकावर्णाभम् । ध्याय स्थिरचित्तः क्षेममेवं कृते तव ॥ १०४ ॥
इति प्रतिपद्य सम्यग्मृतकं कृत्वा स्कन्धदेशे । गन्तुं यावत्प्रवृत्तस्तावन्मृतकेनेदमुक्तम् ॥ १०५ ॥
गुरुकान्तरालमद्याप्यद्यपि तव मन्त्रवादिको दूरे । ततः पथनिर्वाहणकृते कथयाम्याख्यानकं शृणु ॥ १०६ ॥
राजापि मौनमाश्रित्य प्राप्तः कापालिकं भणत्येवम् । एनमक्षयमृतकमन्यदपि हु भण मम कृत्यम् ॥ १०७ ॥
तेनोक्तं सिंचय वसया साम्प्रतमस्य पदयुगलम् । स पुन नृपकरवालं करे कृत्वा मृतकस्य ॥ १०८ ॥
आरब्धः परिजपितुं मन्त्रं राजापि पणवमक्षोभितः । तावच्च मन्त्रप्रभावात्सहसेति समुत्थायायमपि ॥ १०९ ॥
गाढतरं यावद् ध्यायति प्रणवं भूमौ तावत्तं पतितम् । पुनरपि च मन्त्र-प्रणवे द्वे ऽपि सुष्ठुतरमुपयुक्ते ॥ ११० ॥
ध्यायतो यावत्तावच्च भूयोऽपि खलु लग्न उत्थातुं मृतकम् । प्रणवप्रभावात् पतितं तथैव कापालिकस्ततः ॥ १११ ॥

आवेसेणं जा जवइ मंतमेएणमुट्ठिउं ताव । तइयाए वाराए पहओ खग्गेण कावाली ॥११२॥
जाओ सुवन्नखोडी तं पूण किच्चा सुवन्नयं भणियं । पुरिसो छिन्नावयवो वि जायए पुणरवि य पुन्नो ॥११३॥
इय सो सुवन्नपुरिसो पइदियहं पि हु वइज्जमाणो वि । देवाणुभावओ खलु न निट्ठए तत्तिओ चेव ॥११४॥
तो तस्स पभावेणं सव्वं पि वसुंधरं रिणविहीणं । विहिउं विहिओ तेणं नियओ संवच्छरो रन्ना ॥११५॥
इय विक्कमनरवइणो कहाणयं तुह मए समक्खायं । तुह संगमरसियाए न उणो नियपाणभीयाए ॥११६॥
उक्खणिऊणं जक्खो जमजीहासन्निहं छुरियमेसो । जा मारिउं पवत्तो ता भणिओ तीए मिउवयणं ॥११७॥
भयवं ! पढमो पहरोऽइक्कंतो जामिणीए पहरतिगं । पडिपुन्नमेव चिट्ठइ ता कुणसु थिरत्तमवरं च ॥११८॥
मह उवरि सियालीए उब्भडदाढाविडंबियमुहस्स । पंचाणणस्स भण तुज्झ केरिसो एस संरंभो ? ॥११९॥
ता कप्पपायवसमं जम्मन्तरपुन्नपावणिज्जमिमं । माणेमि तुज्झ दंसणमओ कहाणयमिमं सुणसु ॥१२०॥
तो तीए सजीहाए सो जक्खो मारणुज्जुओ वइरी । बंधुसमो संजणिओ अहो ! हु जीहाए माहप्पं ॥१२१॥
जइ एवं तो भद्दे ! कहायणं कहसु जमभिरुइयं ते । एसो हं तस्सवणे पउणो तं जंपियमिमीए ॥१२२॥

(वणिक्पुत्र-जिनदत्तयोराख्यानकम्)

जंबुद्दीवब्भंतरभारहवासस्स मज्झखंडम्मि । महुराभिहाणनयरी आसि महीवीढविक्खाया ॥१२३॥
तत्थऽत्थि महीनाहो जियसत्तु धारिणी पिया तस्स । कइया वि हु भंडीरवणचेइए ऊसवे जाए ॥१२४॥

आवेशेन यावज्जपति मन्त्रमेतेनोत्थाय तावत् । तृतीयया वारया प्रहतः खड्गेन कापाली ॥ ११२ ॥
जातः सुवर्णखोडी तं पुनः कृत्वा सुवर्णकं भणितम् । पुरुषश्चिच्छन्नावयवोऽपि जायते पुनरपि च पूर्णः ॥ ११३ ॥
इति स सुवर्णपुरुषः प्रतिदिवसमपि खलु व्ययमानोऽपि । देवानुभावात् खलु न तिष्ठति तावांश्चैव ॥ ११४ ॥
ततस्तस्य प्रभावेन सर्वामपि वसुंधरामृणविहीनाम् । विधाय विहितस्तेन निजकः संवत्सरो राज्ञा ॥ ११५ ॥
इति विक्रमनरपतेः कथानकं तव मया समाख्यातम् । तव संगमरसिकया न पुन र्निर्जप्राणभीतया ॥ ११६ ॥
उत्खन्य यक्षो यमजीव्हासन्निभां छूरिकामेषः । यावन्मारियतुं प्रवृत्तस्तावद्भणितस्तया मृदुवचनम् ॥ ११७ ॥
भगवन् ! प्रथमः प्रहरोऽतिक्रान्तो यामिन्याः प्रहरत्रिकम् । प्रतिपूर्णमेव तिष्ठति ततः कुरु स्थिरत्वमपरं च ॥ ११८ ॥
ममोपरि शृगाल्याः उद्भटदंष्ट्राविडम्बितमुखस्य । पञ्चाननस्य भण तव कीदृश एष संरम्भ ? ॥ ११९ ॥
ततः कल्पपादपसमं जन्मान्तरपुण्यप्रापणीयमिदम् । मानयामि तव दर्शनमतः कथानकमिदं शृणु ॥ १२० ॥
तदा तयास्वजीव्हया स यक्षो मारणोद्यतो वैरी । बन्धुसमः सञ्जनितोऽहो ! खलु जीव्हाया माहात्म्यम् ॥ १२१ ॥
यद्येवं ततो भद्रे ! कथानकं कथय यदभिरुचितं तव । एषोऽहं तच्छ्रवणे प्रगुणस्तज्जल्पितमनया ॥ १२२ ॥
जम्बूद्वीपाभ्यन्तरभारतवर्षस्य मध्यखण्डे । मथुराभिधाननगर्यासीन्महीपीठविख्याता ॥ १२३ ॥
तत्रास्ति महीनाथो जितशत्रु र्धारिणी प्रिया तस्य । कदापि खलु भण्डीरवनचैत्य उत्सवे जाते ॥ १२४ ॥

संपत्तो नरनाहो सपरियणो सावरोहणो तत्थ । केणावि वणियपुत्तेण जवणियंतरियदेवीए ॥१२५॥
आलत्तयरसरंजियनहमणिकिरणावलीहि विच्छुरिओ । रयणाभरणविसिट्ठो दिट्ठो अंगुट्ठगो तेण ॥१२६॥
अंगुट्ठओ वि जीसे असरिससुंदेरमंदिरं तीसे । अमरीण वि अब्भहिया सरीरसोहा धुवं होही ॥१२७॥
जइ न इमाए सव्वंगसुंदरावयवमणहरंगीए । पावेमि संगमसुहं ता नियमा होइ मरणं मे ॥१२८॥
इय चिंतिऊण नाया य धारिणी सा तओ वणिसुएण । तव्विरहविहुरियंगेण रायमंदिरदुवारम्मि ॥१२९॥
गहियं गंधियहट्टं देइ समग्घं स सुन्दरं वत्थुं । अंतेउरदासीओ वि तस्स हट्टे ववहरंति ॥१३०॥
आवज्जियाओ सव्वाओ तेण अन्तेउरीण दासीओ । धारिणिदेवीचेडी पियंकरा पुण विसेसेण ॥१३१॥
कइया वि वणियपुत्तेण चेडिया धारिणीए देवीए । पारूढगरुयपुलएण पुच्छिया कहसु मह भद्दे ॥१३२॥
को उव्वेढइ पढमं पुडए ? चेडीए जंपियं देवी । तो लेहगब्भपुडओ समप्पिओ तेण दासीए ॥१३३॥
तीए वि धारिणीए देवी उव्वेढए तयं जाव । ता तत्थ लेहलिहियं पवाइयं एरिसं तीए ॥१३४॥
काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य, मेघान्धकारासु च शर्वरीषु । मिथ्या न भाषामि विशालनेत्रे ! ते प्रत्यया ये प्रथमाक्षरेषु ।१३५।
'कामेमि ते' इमाइं पढमाणि पयक्खराणि नाऊण । सा अवगयलेहत्था य चिंतिउं एवमारद्धा ॥१३६॥
तेसिं धिरत्थु विसयाण पाणिणो जेहिं मोहिया संता । रागंधनयणजुयला कज्जा-ऽकज्जाइं न नियंति ॥१३७॥
तं किंपि नत्थि भुवणोयरम्मि पावं न जं अहिलसंति । पुरिसा विसयपिवासापरव्वसा मुक्कमज्जाया ॥१३८॥

सम्प्राप्तो नरनाथः सपरिजनः सान्तःपुरस्तत्र । केनापि वणिक्पुत्रेण यवनिकान्तरितदेव्याः ॥ १२५ ॥
आलक्तकरसरञ्जितनखमणिकिरणावलिभि र्विच्छूरितः । रत्नाभरणविशिष्टो दृष्टोऽङ्गुष्ठकस्तेन ॥ १२६ ॥
अङ्गुष्ठकोऽपि यस्या असदृशसौन्दर्यमन्दिरं तस्याः । अमरीणामप्यधिका शरीरशोभा ध्रुवं भविष्यति ॥ १२७ ॥
यदि नैतस्याः सर्वाङ्गसुन्दरावयवमनोहराङ्ग्याः । प्राप्नोमि संगमसुखं तदा नियमा भवति मरणं मे ॥ १२८ ॥
इति चिन्तयित्वा ज्ञाता च धारिणी सा ततो वणिक्सुतेन । तद्विरहविधूरिताङ्गेन राजमन्दिरद्वारे ॥ १२९ ॥
गृहीतं गन्धिकहट्टं ददाति समर्घ्यं च सुन्दरं वस्तु । अन्तःपुरदास्योऽपि तस्य हट्टे व्यवहरन्ति ॥ १३० ॥
आवर्जिताः सर्वास्तेनान्तःपुरीणां दास्यः । धारिणीदेवीचेटी प्रियङ्करा पुन र्विशेषेण ॥ १३१ ॥
कदापि वणिक्पुत्रेण चेटिका धारिण्या देव्याः । प्रारुढगुरुकपुलकेन पृष्टा कथय मम भद्रे ! ॥ १३२ ॥
क उद्वेष्टयति प्रथमं पुटकान् चेट्या जल्पितं देवी । तदा लेखगर्भपुटकः समर्पितस्तेन दास्याः ॥ १३३ ॥
तयापि धारिण्या देव्युद्वेष्टते तकद् यावत् । तावत्तत्र लेखलिखितं प्रवाचितमीदृशं तया ॥ १३४ ॥
'कामये ते' इमानि प्रथमानि पदाक्षराणि ज्ञात्वा । साऽवगतलेखहस्ता च चिन्तयितुमेवमारब्धा ॥ १३६ ॥
तेषां धिगस्तु विषयाणां प्राणिनो यै र्मोहितास्सन्तः । रागान्धनयनयुगलाः कार्या-कार्याणि न पश्यन्ति ॥ १३७ ॥
तत्किमपि नास्ति भुवनोदरे पापं न यदभिलषन्ति । पुरुषा विषयपिपासापरवशा मुक्तमर्यादाः ॥ १३८ ॥

भुवणब्भंतरवित्थरियजसहरा ते जियंतुं जियलोए । जे परकलत्तविसए विरत्तचित्ता महासत्ता ॥१३९॥
तो एस विसयवंछविमोहिओ मा विणस्सउ वराओ । इय चिंतिय पुडयकओ लेहो तीए वि पेसविओ ॥१४०॥
जायं मज्झ समीहियमिइ चिंतिय तेण हिट्ठहियएण । उव्वेढिऊण पुडयं पवाइयं एरिसं तत्थ ॥१४१॥
नेहलोके सुखं किञ्चिच्छादितस्यांहसा भृशम् । मितं च जीवंति नृणां तेन धर्मे मतिं कुरु ॥१४२॥
पढमक्खराणि पायाण तेण 'नेच्छामि ते' त्ति नायाणि । तो विमणदुम्मणो सो विगयासो चिंतिउं लग्गो ॥१४३॥
नेच्छइ परपुरिसमिमा संजायमहासइत्तगुरुगव्वा । ता चिट्ठिउं न सक्को तीए विओगे इह खणं पि ॥१४४॥
अमराउरीसमाणं पेयवणं पुरिवरं पि पियविरहं । पडिहासइ सग्गसमं वल्लहजणजुयमरन्नं पि ॥१४५॥
ता किमिह संठिएणं तव्विरहे ? इय विचिंतिउं चलिओ । गच्छंतो संपत्तो कम्मि वि रज्जंतरे स वणी ॥१४६॥
दिट्ठो य सिद्धउत्तो उज्झाओ तेण नियय्छत्ताण । नीइं वक्खाणंतेण तेण एयारिसं पढियं ॥१४७॥
अत्थो कामो धम्मो सत्तुविणासो अतूरमाणस्स । जिणदत्तसावयस्स व जहिच्छिओ होइ पुरिसस्स ॥१४८॥
को एसो जिणदत्तो ? त्ति पुच्छिए ताण कहइ उज्जाओ । आसि वसन्तउरपुरे जिणदत्तो इब्भसेट्ठिसुओ ॥१४९॥
अहिगयजीवा-ऽजीवो परियाणियपुन्न-पावपरिणामो । अह अन्नया य दविणज्जणाय चंपाए सो पत्तो ॥१५०॥
तत्थ धणसत्थवाहो महेसरो तस्स दुन्नि रयणाणि । चउजलहिसारहारो अवरा हारप्पहा धुया ॥१५१॥
जाए संववहारे जिणदत्तो तयणु तस्स भवणम्मि । पत्तो कीलंतिं तत्थ नियइ हारप्पहं कन्नं ॥१५२।

भुवनभ्यन्तरविस्तृतयशोधरास्ते जीवन्तु जीवलोके । ये परकलत्रविषये विरक्तचित्ता महासत्त्वाः ॥ १३९ ॥
तत एष विषयवाञ्छाविमोहितो मा विनश्यतु वराकः । इति चिन्तयित्वा पुटककृतो लेखस्तयापि प्रेषितः ॥ १४० ॥
जातं मम समीहितमिति चिन्तयित्वा तेन हृष्टहृदयेन । उद्वेष्ट्य पुटकं प्रवाचितमीदृशं तत्र ॥ १४१ ॥
प्रथमाक्षराणि पदानां तेन 'नेच्छामि ते ' इति ज्ञातानि । ततो विमनदुर्मनाः स विगताशश्चिन्तयितुं लग्नः ॥ १४३ ॥
नेच्छति परपुरुषमिमा सञ्जातमहासतीत्वगुरुगर्वा । ततस्तिष्ठतु न शक्तस्तस्या वियोग इह क्षणमपि ॥ १४४ ॥
अमरापुरीसमानं प्रेतवनं पुरिवरमपि प्रियविरहम् । प्रतिभासतेस्वर्गसमं वल्लभजनयुक्तमरण्यमपि ॥ १४५ ॥
ततः किमिह संस्थितेन तद्विरहे ? इति विचिन्त्य चलितः । गच्छन् सम्प्राप्तः कस्मिन्नपि राज्यान्तरे स वणिक् ॥१४६॥
दृष्टः सिद्धपुत्र उपाध्यायस्तेन निजकछात्राणाम् । नीतिं व्याख्यायता तेनेतादृशं पठितम् ॥ १४७ ॥
अर्थः कामो धर्मः शत्रुविनाशोऽत्वरमाणस्य । जिनदत्तश्रावकस्येव यथेच्छितो भवति पुरुषस्य ॥ १४८ ॥
क एष जिनदत्तः ? इति पृष्टे तेषां कथयत्युपाध्यायः । आसीद्वसन्तपुरे जिनदत्त इभ्यश्रेष्ठिसुतः ॥ १४९ ॥
अधिगतजीवा-ऽजीवः परिज्ञातपुण्य-पापपरिणामः । अथान्यदा च द्रविणार्जनाय चम्पायां स प्राप्तः ॥ १५० ॥
तत्र धनसार्थवाहो महेश्वरस्तस्य द्वे रत्ने । चतुर्जलधिसारहारोऽपरा हारप्रभा दुहिता ॥ १५१ ॥
जाते संव्यवहारे जिनदत्तस्तदनु तस्य भवने । प्राप्तः क्रीडन्तीं तत्र पश्यति हारप्रभां कन्याम् ॥ १५२ ॥

उब्भिज्जमाणजोव्वणरमणीयं अमररमणियमरूवं । अणुरायरंजिओ सो नियया वासम्मि संपत्तो ॥१५३॥
मग्गाविओ धणो तं कन्नं हारप्पहं न से दिन्ना । तो विक्किणियकयाणो जिणदत्तो नियपुरिं पत्तो ॥१५४॥
हारप्पहानिमित्तं काऊणं छत्तवेसमणुपत्तो । चंपाए किंचि उज्झायमुत्तमं सो समल्लीणो ॥१५५॥
मह वक्खाणसु किंपि हु तेणुत्तं जंपए उवज्झ्फाओ । भोयणरहियं विज्जं गिण्हसु जं किं पि पडिहाइ ॥१५६॥
मग्गसु धणस्स पासम्मि भोयणं भद्द ! दाणवसणी सो । पंचसए ससरक्खाण जेण भुंजंति तस्स गिहे ॥१५७॥
तो तेण धणो भोयणनिमित्तमब्भत्थिओ भणइ कन्नं । वच्छे ! जं वा तं वा एसो भोयावियव्वो त्ति ॥१५८॥
हारप्पहाऽणुदिवसं पि भोयणं तस्स वियरए सो वि । तं पुप्फ-फलाईहिं उवयरइ न मन्नए सा वि ॥१५९॥
छंदाणुवत्तणेणं मिउभासंतेण तेण अणुदिवसं । आयारिंगियकुसलेण रंजिया सा तहा कहवि ॥१६०॥
तीए जहा भणिओ सो मग्गसु इट्ठं पयंपए सो य । जइ एवं ता सुहयसु ममंगसंगेण तीयुत्तं ॥१६१॥
पायाइगहियवन्नं सललियपयगामिणिं मम सरिच्छं । मुणिऊणं गाहमिमं जं कायव्वं तयं कुणसु ॥१६२॥
हसियं तुह हरइ मणं रमियं पि विसेसओ न संदोहो । मयरद्धओ व्व विनडइ मंनू वि तुमाओ वित्थरिओ ॥१६३॥
भावत्थो एयाए गाहाए 'हर ममं' ति पढमेहिं । पयअक्खरेहिं सिट्ठो हरामि किं ? अहव नो जुत्तं ॥१६४॥
इह-परलोगविरुद्धं हरणं इय चिंतिऊण भणिया सा । ससिवयणि ! सुपुरिसाणं न जुज्जए कहवि अवहरणं ॥१६५॥
ता अलियगहग्गहिया होसु तुमं जेण मन्तवाइत्तं । काउं निरुयं जायं गुरुयणदिन्नं विवाहेमि ॥१६६॥

उद्भिद्यमानयौवनरमणीयाममररमणिसमरुपाम् । अनुरागरञ्जितः स निजकावासे सम्प्राप्तः ॥ १५३ ॥
मार्गयितो धनस्तां कन्यां हारप्रभां न तस्मै दत्ता । ततो विक्रीतक्रयाणो जिनदत्तो निजपुरिं प्राप्तः ॥ १५४ ॥
हारप्रभानिमित्तं कृत्वा छात्रवेशमनुप्राप्तः । चम्पायां किञ्चिदुपाध्यायमुत्तमं स समालीनः ॥ १५५ ॥
मम व्याख्यानय किमपि खलु तेनोक्तं जल्पत्युपाध्यायः । भोजनरहितां विद्यां गृहाण यत्किमपि प्रतिभाति ॥ १५६ ॥
मार्गय धनस्य पार्श्वे भोजनं भद्र ! दानव्यसनी सः । पञ्चशता सरजस्कानां येन भुञ्जन्ते तस्य गृहे ॥ १५७ ॥
ततस्तेन धनो भोजननिमित्तमभ्यर्थितो भणति कन्याम् । वत्से ! यद्वा तद्वैष भोजितव्य इति ॥ १५८ ॥
हारप्रभाऽनुदिवसमपि भोजनं तस्य वितरति सोऽपि । तां पुष्प-फलादिभिरुपचरति न मन्यते सापि ॥ १५९ ॥
छन्दानुवर्त्तनेन मृदुभाषणेन तेनानुदिवसम् । आकारेङ्गितकुशलेन रञ्जिता सा तथा कथमपि ॥ १६० ॥
तया यथा भणितः स मार्गयेष्टं प्रजल्पति स च । यद्येवं तदा सुखय ममाङ्गसङ्गेन तयोक्तम् ॥ १६१ ॥
पादादिगृहीतवर्णां सललितपदगामिनीं मम सदृशीम् । मुणित्वा गाथामिमां यत्कर्तव्यं तकत् कुरु ॥ १६२ ॥
हसितं तव हरति मनो रन्तमपि विशेषतो न सन्देह : । मकरध्वज इव विनटति मन्युरपि त्वतो विस्तृतः ॥१६३॥
भावार्थःएतस्या गाथाया 'हरममं' इति प्रथमैः । पदाक्षरैः शिष्टो हरामि किमथवा न युक्तम् ॥ १६४ ॥
इह-परलोकविरुद्धं हरणमिति चिन्तयित्वा भणिता सा । शशिवदने ! सुपुरुषाणां न युज्यते कथमव्यवहरणम् ॥१६५॥
ततोऽलिकग्रहगृहीता भव त्वं येन मन्त्रवादित्वम् । कृत्वा निरुक् जातां गुरुजनदत्तां विवाहयामि ॥ १६६ ॥

मह वल्लहेण विहिओ चारुपवंचो त्ति चितिउं लग्गा । हारप्पहा पयंपिउमुवहासपरं असंबद्धं ॥१६७॥
एमेव हसइ गायइ पलवइ नच्चइ पुरे परिब्भमइ । तो सत्थवाहपमुहो लोगो अच्चाउलो जाओ ॥१६८॥
वाहरिया सव्वे वि हु पयंडवरमंतवाइणो तत्थ । तेहिं वरमंतवाए कए गहो वद्धिओ अहियं ॥१६९॥
किं बहुणा ? जह जह विज्जवाइणो से कुणंति उवयारे । तह तह महागहो सो बाहइ तं पिसुणलोगो व्व ॥१७०॥
तो पुच्छिओ स छत्तो धणेण जिणदत्त ! जाणसे किंपि ? । तेणुत्तं मज्झ कुलक्कमागया संति विज्जाओ ॥१७१॥
पेच्छामि परमिमीए सरूवमिय जंपिऊण जिणदत्तो । पत्तो तीए सयासे रहम्मि सा जंपिया तेण ॥१७२॥
सुयणु ! करिस्समहं ते मंतपओगं परं तह कए वि । तइयाए वाराए पउणा तं होसु इय भणिउं ॥१७३॥
गंतूण धणो भणिओ महागहो ताय ! एस दुस्सज्झो । मंतो वि भूयतासो समत्थि ता कुणसु सामग्गिं ॥१७४॥
आबालकालपालियविसुद्धवंभव्वया नरा अट्ठा । ताय ! निहालसु मज्झं जे उत्तरसाहया होंति ॥१७५॥
भणइ धणो भयवंतो ससरक्खा सन्ति सीलबलकलिया । ता सो किण्हचउद्दसिनिसाए चलिओ धणाइजुओ ॥१७६॥
संपत्तो पेयवणे पिसायअट्टट्टहासभीमम्मि । डज्झंतमडयवसविस्सगंधपरिपूरियदियंते ॥१७७॥
एयारिसभीसावणमसाणमज्झम्मि मंडलं काउं । ससरक्खा खग्गकरा विहिया एवं च उल्लविया ॥१७८॥
सोउं सहाससद्दं तुब्भेहिं सिवारवा विहेयव्वा । इय सिक्खिविउं मुक्का ते अट्ठ वि अट्ठसु दिसासु ॥१७९॥
पुव्वं चिय सिक्खविया ताण पुरो सद्दवेहिणो अट्ठ । विंधयव्वं लक्खं तुब्भेहिं सिवारवे जाए ॥१८०॥

मम वल्लभेन विहितश्चारुप्रपञ्च इति चिन्तयितुं लग्ना । हारप्रभा प्रजल्पितुमुपहासपरमसम्बन्धम् ॥ १६७ ॥
एवमेव हसति गायति प्रलपति नृत्यति पुरे परिभ्रमति । ततः सार्थवाहप्रमुखो लोकोऽत्याकूलो जातः ॥ १६८ ॥
व्याहृताः सर्वेऽपि हु प्रचण्डवरमन्त्रवादिनस्तत्र । तै वरमन्त्रवादे कृते ग्रहो वर्धितोऽधिकम् ॥ १६९ ॥
किं बहुना ? यथा यथा विद्यावादिनस्तस्याः कुर्वन्त्युपचारान् । तथा तथा महाग्रहः स बाधते तां पिशुनलोक इव ॥ १७० ॥
ततः पृष्टः स छात्रो धनेन जिनदत्त ! जानासि किमपि ? तेनोक्तं मम कुलक्रमागताः सन्ति विद्याः ॥ १७१ ॥
पश्यामि परमेतस्याः स्वरुपमिति जल्पित्वा जिनदत्तः । प्राप्तस्तस्याः सकाशे रहसि सा जल्पिता तेन ॥ १७२ ॥
सुतनु ! करिष्याम्यहं ते मन्त्रप्रयोगं परं तथा कृतेऽपि । तृतीयाया वारायाः प्रगुणा त्वं भवेति भणित्वा ॥ १७३ ॥
गत्वा धनो भणितो महाग्रहस्तात ! एष दुस्साध्यः । मन्त्रोऽपि भूतत्रासः समस्ति ततः कुरु सामग्रीम् ॥ १७४ ॥
आबालकालपालितविशुद्धब्रह्मव्रता नरा अष्टौ । तात ! निभालय मम ये उत्तरसाधका भवन्ति ॥ १७५ ॥
भणति धनो भगवन्तः सरजस्काः सन्ति शीलबलकलिताः । तदा सः कृष्णचतुर्दशीनिशायां चलितो धनादियुक्तः ॥ १७६ ॥
सम्प्राप्तः प्रेतवने पिशाचाट्टाट्टहासभीमे । दह्यमानमृतकवशविश्रगन्धपरिपूरितदिगन्ते ॥ १७७ ॥
एतादृशभयानकश्मशानमध्ये मण्डलं कृत्वा । सरजस्काः खड्गकरा विहिता एवं चोल्लपिताः ॥ १७८ ॥
श्रुत्वा सहास्यशब्दं युष्माभिः शिवारवा विधातव्याः । इति शिक्षयित्वा मुक्तास्ते ऽष्टावप्यष्टासु दिक्षु ॥ १७९ ॥
पूर्वं चैव शिक्षयितास्तेषां पुरः शब्दवेधिनोऽष्टै । भेत्तव्यं लक्ष्यं युस्माभिः शिवारवे जाते ॥ १८० ॥

तो मंडलए उववेसिऊण हारप्पहं समुवविट्ठो । पज्जलिऊण जलणं 'हुंफडुसाह' त्ति तेणुत्ते ॥१८१॥
सइवेहिं सिवाफेक्कारवो कओ तयणु सद्दवेहीहिं । विद्धा बाणेहिं तओ नट्ठा भयकंपिरा ते वि ॥१८२॥
पीडीयमहियं पत्तं मंडलए मन्तवाइओ पडिओ । उवलद्धचेयणो पुण खणेण भणिउं समाढत्तो ॥१८३॥
ताय ! मए पुव्वं पि हु पयंपियं बंभचारिणो दुलहा । इय जंपिऊण सव्वाणि ताणि पत्ताणि नियठाणं ॥१८४॥
गहनिग्गहं कहं तं कुणसि ? त्ति धणेण पुच्छिओ छत्तो । जइ किर अज्ज वि इह बंभयारिणो हुंति तेणुत्ते ॥१८५॥
नियगुरुणो सत्थाहेण पभणिया बंभयारिणो परमा । पेसह तह विहिए तं पि विहडियं झत्ति पुव्वं व ॥१८६॥
निद्धाडिया धणएणं कुविएण तओ असेससरक्खा । पुट्ठं च कहं पुण बंभयारिणो वच्छ ! नायव्वा ? ॥१८७॥
वसहि-कह-निसिज्जिदिय-कुड्डुंतर-पुव्वकीलिय-पणीए । अइमायाहार विभूसणा य नव बंग्गुत्तीओ ॥१८८॥
बुज्झंति अणुट्ठंति य गाहत्थं जे इमं विसुद्धा ते । वरबंभयारिणो तो धणेण सा दंसिया गाहा ॥१८९॥
ससरक्ख-अक्खपायाइयाण नाओ न तेहिं परमत्थो । एत्थंतरम्मि सिरिधम्मघोससूरी समोसरिओ ॥१९०॥
उवविट्ठे पउरजणे जिणदत्तो सह धणेण संपत्तो । पणमिय गुरूण चरणे उवविट्ठो उचियठाणम्मि ॥१९१॥
सूरीहिं समारद्धा सनीरनीरयसरेण धम्मकहा । भो भव्वा ! सव्वाणि वि सुहाणि धम्मेण जायंति ॥१९२॥
जओ-
धम्मेणं चिय अत्था धम्मेणं चेव उत्तमा भोगा । धम्मेण सग्ग-मोक्खा सुहाइं सव्वाणि धम्मेण ॥१९३॥

ततो मण्डले उपवेश्य हारप्रभां समुपविष्टः । प्रज्वाल्य ज्वलनं 'हुंफडुस्वाहेति' तेनोक्ते ॥ १८१ ॥
शैवैः शिवाफुत्कारवः कृतस्तदनु शब्दवेधिभिः । विद्धा बाणैस्ततो नष्टा भयकम्पमानास्तेऽपि ॥ १८२ ॥
पीडितमधिकं प्राप्तं मण्डले मन्त्रवादिकः पतितः । उपलब्धचेतनः पुनः क्षणेन भणितुं समारब्धः ॥ १८३ ॥
तात ! मया पूर्वमपि हु प्रजल्पितं ब्रह्मचारिणो दुर्लभाः । इति जल्पित्वा सर्वे ते प्राप्ता निजस्थानम् ॥ १८४ ॥
ग्रहनिग्रहं कथं त्वं करोषि ? इति धनेन पृष्टश्चछात्रः । यदि किलाद्यापीह ब्रह्मचारिणो भवन्ति तेनोक्ते ॥ १८५ ॥
निजगुरवः सार्थवाहेन प्रभणिता ब्रह्मचारिणः परमाः । प्रेष्यत तथा विहिते तमपि विघटितं झटिति पूर्वमिव ॥१८६॥
निष्काषिता धनेन कुपितेन ततोऽशेषसरजस्काः । पृष्टं च कथं पुन र्ब्रह्मचारिणो वत्स ! ज्ञातव्याः ? ॥ १८७ ॥
वसति-कथा-निषेधेन्द्रिय-कुड्यान्तर-पूर्वक्रीडितप्रणिताः । अतिमात्राहार-विभूषणाश्च नवब्रह्मचर्यगुप्तयः ॥ १८८ ॥
बुध्यन्त्यन्वर्थयन्ति च गाथार्थं ये इमं विशुद्धास्ते । वरब्रह्मचारिणस्ततो धनेन सा दर्शिता गाथा ॥ १८९ ॥
सरजस्काऽक्षपादादीकानां ज्ञातो न तैः परमार्थः । अत्रान्तरे श्रीधर्मघोषसूरिः समवसृतः ॥ १९० ॥
उपविष्टे पौरजने जिनदत्तः सह धनेन सम्प्राप्तः । प्रणम्य गुरुणां चरणानुपविष्ट उचितस्थाने ॥ १९१ ॥
सूरिभिः समारब्धा सनीरनीरदस्वरेण धर्मकथा । भो भव्या ! सर्वाण्यपि सुखानि धर्मेण जायन्ते ॥ १९२ ॥
यतः-
धर्मेण चैवार्था धर्मेण चौवोत्तमा भोगाः । धर्मेण स्वर्ग-मौक्षो सुखानि सर्वाणि धर्मेण ॥ १९३ ॥

नारय-तिरियगईओ सत्ता पावंति पुण अहम्मेण । ता परिहरिय अहम्मं धम्मम्मि रइं सया कुणह ॥१९४॥
इय निसुणिऊण सूरीण देसणं फुरियगुरुयसंवेगो । पडिबुद्धो पाणिगणो धणो वि सावयसमो जाओ ॥१९४॥
ते सकयत्था सूरुग्गमम्मि सूरीण जे नमंति कमे । इय भावेंतेण धणेण पभणिओ तयणु जिणदत्तो ॥१९६॥
जारिसया वच्छ ! तए संलत्ता बंभयारिणो नूणं । तारिसया जइ एए वक्खाणावेसु ता गाहं ॥१९७॥
वक्खाणिया मुणिंदेण पभणियं तत्थ सत्थवाहेण । भयवं ! मंडलकम्मे पट्ठावसु साहुणो नियए ॥१९८॥
न हु एसो मुणिमग्गो वच्चंति जमेरिसेसु कज्जेसु । मुणिणो इय गुरुभणिए सविणयमुल्लवइ जिणदत्तो ॥१९९॥
परिचत्तगिहावासा ताय ! इमे सत्तु-मित्तसमचित्ता । समतिण-मणिणो वरबंभयारिणो तिव्वतवनिरया ॥२००॥
मुणिणो कुणंति न कया वि ताव गिहिसमुचियाइं कज्जाइं । किंतु इमेसिं नामं पि नासणं कुणइ भूयाणं ।२०१॥
लिहिउं मूणीण नामाणि तेण अट्ठसु दिसासु पेयवणे । ठविऊण मंतवाओ कओ पयत्तेण छत्तेण ॥२०२॥
हारप्पहा महीए पडिया सहसा विमुक्कअक्कंदा । उवलद्धचेयणा पुण खणेण सा जंपिउं लग्गा ॥२०३॥
किं ताय ! जणो मिलिओ पेयवणं तयणु तीए वुत्तंतो । कहिओ तं सोउं सा लज्जाए अहोमुही जाया ॥२०४॥
तो सव्वाणि वि नियमंदिरम्मि पत्ताणि ताणि हिट्ठाणि । जाए पभायसमए विचिंतियं सत्थवाहेण ॥२०५॥
निक्कित्तिमोवयारी जिणदत्तो ता इमस्स मह जुत्तं । काउं पच्चुवयारं सो य सुयादाणओ होइ ॥२०६॥
भणिओ य तओ सो वच्छ ! गिन्ह हारप्पहं विवाहेउं । तेणुत्तं ताओ च्चिय जुत्ता-ऽजुत्तं वियाणेइ ॥२०७॥

नारक-तिर्यगतीन् सत्त्वाः प्राप्नुवन्ति पुनरधर्मेण । तत परिहृत्याधर्मं धर्मे रतिं सदा कुरुत ॥ १९४ ॥
इति निश्रुत्य सूरीणां देशनां स्फुरितगुरुकसंवेगः । प्रतिबुद्धः प्राणिगणो धनोऽपि श्रावकसमो जातः ॥ १९५ ॥
ते सकृतार्थाः सूर्योद्गमे सूरीणां ये नमन्ति क्रमान् । इति भावयता धनेन प्रभणितस्तदनु जिनदत्तः ॥ १९६ ॥
यादृशा वत्स ! त्वया संलप्ता ब्रह्मचारिणो नूनम् । तादृशा यदि एते व्याख्यानय तदा गाथाम् ॥ १९७ ॥
व्याख्याता मुनीन्द्रेण प्रभणितं तत्र सार्थवाहेन । भगवन् ! मण्डलकर्मे प्रस्थापय साधवो निजकाः ॥ १९८ ॥
न खल्वेष मुनिमार्गो व्रजन्ति यदीदृशेषु कार्येषु । मुनय इति गुरुभणितो सविनयमुल्लपति जिनदत्तः ॥ १९९ ॥
परित्यक्तगृहवासास्तात ! इमे शत्रु-मित्रसमचित्ताः । समतृण-मणयो वरब्रह्मचारिणस्तीव्रतपोनिरताः ॥ २०० ॥
मुनयः कुर्वन्ति न कदापि तावदृहसमुचित्तानि कार्याणि । किन्त्वेषां नामापि नाशनं करोति भूतानाम् ॥ २०१ ॥
लिखित्वा मुनीनां नामानि तेनाष्टासु दिक्षु प्रेतवने । स्थापयित्वा मन्त्रवादः कृतः प्रयत्नेन छात्रेण ॥ २०२ ॥
हारप्रभा मह्यां पतिता सहसा विमुक्ताक्रन्दा । उपलब्धचेतना पुनःक्षणेन सा जल्पितुं लग्ना ॥ २०३ ॥
किं तात ! जनो मिलितः प्रेतवने तदनु तस्या वृत्तान्तः । कथितस्तत् श्रुत्वा सा लज्जयाधोमुखी जाता ॥ २०४ ॥
ततः सर्वेऽपि निजमन्दिरे प्राप्तास्ते हृष्टाः । जाते प्रभातसमये विचिन्तितं सार्थवाहेन ॥ २०५ ॥
निष्कृत्रिमोपकारी जिनदत्तस्तत एतस्य मम युक्तम् । कर्तुं प्रत्युपकारं स च सुतादानतो भवति ॥ २०६ ॥
भणितश्च ततः स वत्स ! गृहाण हारप्रभां विवाह्य । तेनोक्तं तातश्चैव युक्ताऽयुक्तं विजानाति ॥ २०७ ॥

सुपसत्थदिणे परिणाविओ य हारप्पहं धणेण तओ । करमेल्लावणदाणं दिन्नं हारेण संजुत्तं ॥२०८॥
तो जिणदत्तो कइय वि दिणाणि तत्थेव भूंजिउं भोए । हारप्पहाए जुत्तो संपत्तो नियनयरीए ॥२०९॥
हारपहा जह लद्धा तेणं थिरयाए तह य बुद्धीए । तह अन्नो वि हु थिरबुद्धिभावओ लहइ सव्वं पि ॥२१०॥
सोऊण नीइसत्थं माहुरवणिणा वि चिंतियं एयं । जह संजाया एयस्स इट्ठसिद्धी सबुद्धीए ॥२११॥
अहमवि तह नियनयरिं गंतुं पेसेमि दूइकज्जेण । अक्खलियप्पसराओ तीए परिव्वाइयाओ दुयं ॥२१२॥
सिक्खिेमि वसीकरणाय मंत-तंताइयाणि सव्वाणि । तह विज्जासिद्धाणं नराण काहामि ओलग्गं ॥२१३॥
इय चिंतिऊण पत्तो नियनयरिं तह अणुट्ठियं सव्वं । अवलग्गिएहिं विज्जासिद्धेहिं पयंपियं एयं ॥२१४॥
तुट्ठा वयमब्भत्थसु इट्ठं तो मग्गिया इमं तेण । जह होइ धारिणी मे भज्जा तुब्भे तहा जयह ॥२१५॥
इय पडिवज्जिय मारी विउव्विया तेहिं डिंभरूवाण । नीरोगाणि वि डिंभाणि तत्थ एमेव य मरंति ॥२१६॥
आइट्ठा नरनाहेण नियह मारीए कारणं सिद्धा । देव ! महादेवी ते मारी इय जंपियं तेहिं ॥२१७॥
देवीए सेज्जाए मयडिंभकराइयाणि खंडाणि । खित्ताणि तओ वयणं विलिंपियं तीए रुहिरेण ॥२१८॥
जाव निवो तीए निरिक्खणाय पत्तो तमस्सिणीविरमे । तो तं दट्ठुं रुट्ठो तीए असुहोदयवसेणं ॥२१९॥
अह सिद्धाणं हणणत्थमप्पिया धारिणी तओ तेहिं । भेसविया पेयवणे नेऊण निसाए सा बाढं ॥२२०॥
कयसंकेओ पत्तो वणियसुओ भणइ भो ! किमारद्धं ? । तेहुत्तमिमं मारिं दुम्मरणेणं विणासेमो ॥२२१॥

सुप्रशस्तदिने परिणायितश्च हारप्रभां धनेन ततः । करमोचनदानं दत्तं हारेण संयुक्तम् ॥ २०८ ॥
तदा जिनदत्तः कत्यपि दिनानि तत्रैव भुक्त्वा भोगान् । हारप्रभया युक्तः सम्प्राप्तो निजकनगर्याम् ॥२०९ ॥
हांरप्रभा यथा लब्धा तेन स्थिरतया तथा च बुद्धया । तथान्योऽपि खलु स्थिरबुद्धिभावाल्लभते सर्वमपि ॥ २१० ॥
श्रुत्वा नीतिशास्त्रं माथुरवणिजापि चिन्तितमेतत् । यथा सञ्जातैतस्येष्टसिद्धिः स्वबुद्ध्या ॥ २११ ॥
अहमपि तथा निजनगरीं गत्वा प्रेषयामि दूती कार्येण । अस्खलितप्रसरास्तया परिव्राजिका द्रुतम् ॥ २१२ ॥
शिक्षे वशीकरणाय मन्त्र-तन्त्रादिकानि सर्वाणि । तथा विद्यासिद्धानां नराणां करिष्याम्यवलग्नम् ॥ २१३ ॥
इति चिन्तयित्वा प्राप्तो निजनगरीं तथानुष्ठितं सर्वम् । अवलगितै र्विद्यासिद्धैः प्रजल्पितमेतत् ॥ २१४ ॥
तुष्टा वयमभ्यर्थयेष्टं ततो मार्गिता इदं तेन । यथा भवति धारिणी मे भार्या यूयं तथा यतध्वम् ॥ २१५ ॥
इति प्रतिपद्य मारी विकुर्विता तै र्डिम्भरुपाणाम् । नीरोगाण्यपि डिम्भानि तत्रैवमेव च म्रियन्ते ॥ २१६ ॥
आदिष्टा नरनाथेन पश्यत मार्याः कारणं सिद्धाः । देव ! महादेवी ते मारीति जल्पितं तैः ॥ २१७ ॥
देव्याः शय्यायां मृतडिम्भकरादिकानि खण्डानि । क्षिप्तानि ततो वदनं विलिम्प्य तस्या रुधिरेण ॥ २१८ ॥
यावन्नृपस्तस्या निरीक्षणाय प्राप्तस्तमस्विनिविरामे । तदा तां दृष्ट्वा रुष्टस्तस्या अशुभोदयवशेन ॥ २१९ ॥
अथ सिद्धानां हननार्थमर्पिता धारिणी ततस्तैः । भेषयिता प्रेतवने नीत्वा निशायां साऽत्यन्तम् ॥ २२० ॥
कृतसंकेतः प्राप्तो वणिक्सुतो भणति भो ! किमारब्धम् ? । तैरुक्तमिमां मारिं दुर्मरणेन विनाशयामः ॥ २२१ ॥

मारी न सोमयाए एयारिसयाए होइ ता मुयह । मरणं विणा न मोक्खो तेहुत्ते भणइ वणियसुओ ॥२२२॥
दविणेण मुयह न मुयंति जाव ता जंपिया इमं तेण । मारह मं एयं पुण मुयह न मेल्लंति ते तह वि ॥२२३॥
तो तेण भणियमेईए मारणे इह मए वि मरियव्वं । अम्हाण तुमं विग्घं संजाओ जंपियं तेहिं ॥२२४॥
तो दाउं दीणाराण कोडिमम्हाण तं पुणो दूरं । वच्चसु गिन्हेवि इमं न जहा नज्जइ इमा एत्थ ॥२२५॥
दिन्नम्मि ताण दविणे देवी चिंतइ अहो ! महासत्तो । कोइ इमो मह कज्जे जो नियजीयं पि परिहरइ ॥२२६॥
जइ एस महासत्तो निक्कारिमवच्छलो न इह हुंतो । ता केणावि कुमरणेण मारिया नियमओ हुंती ॥२२७॥
पच्चुवयारं काउं न तरामि इमस्स नरसिरोमणिणो । नियतणुदाणेण वि इय विचिंतिउं तेण संजुत्ता ॥२२८॥
गंतूण दूरदेसे मणप्पिया तस्स भारिया जाया । दोण्ह वि नवनेहवसंगयाण कालो अइक्कमइ ॥२२९॥
पंचप्पयारविसए दोन्नि भुंजंति पमुइयमणाणि । विविहप्पयारकीलाविणोयवक्खित्तचित्ताणि ॥२३०॥
अह अन्नया य रयणीए देवजत्ताए गच्छमाणो सो । तव्विरहमसहमाणाए तीए वत्थंचले धरिओ ॥२३१॥
तं तारिसं इमं पुण एयारिसमिइ पयंपिए तेण । देवीए पुच्छिओ सो गरुयनिबंधेण कहसु त्ति ॥२३२॥
तेण वि लेहाईओ वत्थंचलधरणकहणपज्जंतो । कहिओ से वुत्तंतो विसन्नवयणा ठिया सा वि ॥२३३॥
भणियं च तयं तुमए विहियं ? वणिएण भणियमामं ति । सा भणइ पाव ! विहिया विडंबणा किं तए मज्झ ? ॥२३४॥
ता तिविहं तिविहेणं नियमो मह होउ सयलपुरिसाण । इय जंपिऊण काण वि अज्जाण सयासमल्लीणा ॥२३५॥

मारी न सौम्यताया एतादृश्या भवति ततो मुञ्चत । मरणं विना न मोक्षस्तैरुक्ते भणति वणिक्सुतः ॥ २२२ ॥
द्रविणेन मुञ्चत न मुञ्चन्ति यावत्तावज्जल्पितो इमं तेन । मारयत मामेनां पुन र्मुञ्चत न मुञ्चन्ति ते तथा पि ॥ २२३ ॥
तदा तेन भणितमेतस्या मारण इह मयापि मर्त्तव्यम् । अस्माकं त्वं विघ्नं सञ्जातो जल्पितं तैः ॥ २२४ ॥
ततो दत्वा दीनाराणां कोटिमस्मद्भयस्त्वं पुन र्दूरम् । गच्छ गृहीत्वेमां न यथा ज्ञायत इमात्र ॥ २२५ ॥
दत्ते तेभ्यो द्रविणे देवी चिन्तयत्यहो ! महासत्त्वः ॥ कोऽप्ययं मम कार्ये यो निजजीवमपि परिहरति ॥ २२६ ॥
यद्येष महासत्त्वो निष्कारणवत्सलो नेहाभवत् । तदा केनापि कुमरणेन मारिता नियमतोऽभवम् ॥ २२७ ॥
प्रत्युपकारं कर्तुं न शक्नोम्येतस्य नरशिरोमणेः । निजतनुदानेनापीति विचिन्त्य तेन संयुक्ता ॥ २२८ ॥
गत्वा दूरदेशे मनःप्रिया तस्या भार्या जाता । द्वयोरपि नवस्नेहवशगयोः कालोऽतिक्रामति ॥ २२९ ॥
पञ्चप्रकारविषयान् द्वावपि भुञ्जतः प्रमुदितमनसौ । विविधप्राकरक्रीडाविनोदव्याक्षिप्तचेतसौ ॥ २३० ॥
अथान्यदा च रजन्यां देवयात्रायां गच्छन् सः । तद्विरहमसहमानया तया वस्त्राञ्चले धृतः ॥ २३१ ॥
त्वं तादृशमिमं पुनरेतादृशमिति प्रजल्पिते तेन । देव्या पृष्टःस गुरुकनिबन्धेन कथयेति ॥ २३२ ॥
तेनापि लेखादिको वस्त्राञ्चलधरणकथनपर्यन्तः । कथितः स वृत्तान्तो विसण्णवदना स्थिता सापि ॥ २३३ ॥
भणितं च तकत्त्वया विहितं ? वणिजा भणितमामिति । सा भणति पाप ! वि हिता विडम्बना किं त्वया मम ? ॥ २३४ ॥
ततस्त्रिविधं त्रिविधेन नियमो मम भवतु सकलपुरुषाणाम् । इति जल्पित्वा कासामप्यार्याणां सकाशमालीना ॥ २३५ ॥

भणियाओ ताओ भयवइ ! पव्वज्जं देहि जोग्गया जइ मे । जोग्ग त्ति दिक्खिया ताहिं तयणु तिव्वं तवं काउं ॥२३६॥
समउत्तविहाणेणं पत्ता सा मरिउममरलोयम्मि । सो पुण अट्टज्झाणेण किन्हलेसाए नरयम्मि ॥२३७॥
तो तेण वणियपुत्तेण थेज्जवसओ समीहियं पत्तं । तुम्हारिसा विसेसेण हुन्ति सव्वत्थ थिरचित्ता ॥२३८॥
पुणरवि तइज्जपहरे जा सो उद्धाइओ हणिउकामो । ता कीए वि भणिइए कहं सुणावेइ सा य इमा ॥२३९॥

(अमरदत्त-मित्रानन्दाख्यानकम्)

आसि विसालवसुन्धरविलासिणीवरविलासभवणं व । भुवणयलतिलयतुल्लं तिलयपुरं नाम नयरं ति ॥२४०॥
सिंधुरसमिद्धिरिद्धो राया मयरद्धउ त्ति तत्थाऽऽसि । उद्दामसत्तुवारणवियारणो जस्स करवालो ॥१४१॥
रइरमणिकेलिभवणं सिंगारगिहं व कुसुमबाणस्स । तस्साऽऽसि मयणसेण व्व पणइणी मयणसेण त्ति ॥२४२॥
पुव्वभवपुन्नपगरिसपरिचयपरिणामपावियपयावो । तीए सह विसयसोक्खं उवभुंजंतो गमइ कालं ॥२४३॥
अह अन्नया य देवी निरूवयंती निवस्स चिहुरचयं । नियभवणमत्तवारणपरिट्ठिया पेच्छिउं पलियं ॥२४४॥
परिहासेण पयंपइ पिययम ! दूओ समागओ एत्थ । तो नरवई निरिक्खइ संभंतो तरलनयणेहिं ॥२४५॥
चिंतेइ कह णु दूओ समागओ वंचिऊण वाव(?र)सिए ? । सा विम्हइयं दइयं दट्ठूणं भणइ परमत्थं ॥२४६॥
देव ! तुह सवणमूले पलियछ्लेणं समागओ दूओ । विन्नवइ खमं जइऊण नियमणं धरसु धम्मम्मि ॥२४७॥
इय निसुणिऊण वयणं पियाए परिहासपेसलरसं पि । वेरग्गगओ चिंतेइ नियमणे तयणु नरनाहो ॥२४८॥

भणितास्ता भगवति ! प्रव्रज्यां देहि योग्यता यदि मे । योग्येति दिक्षिता ताभिस्तदनु तीव्रं तपः कृत्वा ॥ २३६ ॥
समयोक्तविधानेन प्राप्ता सा मृत्वामरलोके । स पुनरार्तध्यानेन कृष्णलेश्यया नरके ॥ २३७ ॥
ततस्तेन वणिक्पुत्रेण स्थैर्यवशतः समीहितं प्राप्तम् । युस्माद्दशा विशेषेण भवन्ति सर्वत्रस्थिरचित्ताः ॥ २३८ ॥
पुनरपि तृतीये प्रहरे यावत्स उद्धावितो हन्तुकामः । तावत्कस्यामपि भणित्यां कथां श्रावयति सा चेमा ॥ २३९ ॥

(अमरदत्त-मित्रानन्दाख्यानकम्)

आसीद्विशालवसुन्धराविलासिनीवरविलासभवनमिव । भुवनतलतिलकतुल्यं तिलकपुरं नाम नगरमिति ॥ २४० ॥
सिन्धुरसमृद्धिर्द्धो राजा मकरध्वज इति तत्रासीत् । उद्दामशत्रुवारणविदारणो यस्य करवालः ॥ २४१ ॥
रतिरमणिकेलिभवनं शृङ्गारगृहमिव कुसुमबाणस्य । तस्या आसीन्मदनसेनेव प्रणयिनी मदनसेनेति ॥ २४२ ॥
पूर्वभवपुण्यप्रकर्षपरिचयपरिणामप्राप्तप्रतापः । तया सह विषयसौख्यमुपभुञ्जन् गमयति कालम् ॥ २४३ ॥
अथान्यदा च देवी निरुपयन्ती नृपस्य चिकुरचयम् । निजभवनमत्तवारणपरिस्थिता दृष्ट्वा पलितम् ॥ २४४ ॥
उपहासेन प्रजल्पति प्रियतम ! दूतः समागतोऽत्र । तदा नरपति र्निरीक्षते सम्भ्रान्तस्तरलनयनाभ्याम् ॥ २४५ ॥
चिन्तयति कथं नु दूतः समागतो वञ्चित्वा द्वारिकान् ? । सा विस्मयितं दयितं दृष्ट्वा भणति परमार्थम् ॥ २४६ ॥
देव ! तव श्रवणमूले पलितच्छ्लेन समागतो दूतः । विज्ञापयतीदं क्षमां यतित्वा निजमनो धर धर्मे ॥ २४७ ॥
इति निश्रुत्य वचनं प्रियायाः उपहासपेशलरसमपि । वैराग्यगतश्चिन्तयति निजमनसि तदनु नरनाथः ॥ २४८ ॥

पुव्वपुरिसाणुसरिओ परिहरिओ नियमओ मए मग्गो । जम्हा अदिट्ठपलिया करिंसु ते घोरतवचरणं ॥२४९॥
ता इण्हिं चिय रज्जे ठविऊणं पउमकेसरकुमारं । गंतूण तावसवणं तावसवयमणुचरिस्सामि ॥२५०॥
इय चिंतिऊण सुपसत्थवासरे कणयकलससलिलेण । आपुच्छिय मंतियणं करेइ कुमरस्स अहिसेयं ॥२५१॥
चइऊण रायलच्छिं सकलत्तो सत्तु-मित्तसमचित्तो । गंतूण तावसवणे पडिवज्जइ सो तवच्चरणं ॥२५२॥
वच्चंतेसु दिणेसुं सुगूढगब्भो पवड्ढिओ तीए । सुयणजणस्स व नेहो तं पेच्छिय पुच्छिए रिसिणा ॥२५३॥
सामि ! तुह च्चिय गब्भो एसो साहेइ सा वि निवरिसिणो । वयगहणभंगभीयाए साहिओ नो मए तइया ॥२५४॥
तो पच्छन्नं तीए सुहेण गब्भं समुव्वहंताए । नवमासऽद्धट्ठमवासरेहिं पुत्तो समुप्पन्नो ॥२५५॥
अणुचियआहारेहिं सुकुमारत्ताओ तह सरीरस्स । सह घोरवेयणाए सूयारोगो समुप्पन्नो ॥२५६॥
नवबालपालणकए आदन्नो जाव तावससमूहो । देवसिरिभारियाए समन्निओ बालधूयाए ॥२५७॥
तावुज्जेणिनिवासी देवाणंदाभिहाणवरसेट्ठी । हरिसउराओ नियत्तो संपत्तो तावसवणम्मि ॥२५८॥
पणमित्तु तावसजणं विमणं संपेच्छिऊण पुच्छेइ । साहेइ मयणसेणाए वइयरं सो वि तप्पुरओ ॥२५९॥
अम्हाण पुव्वपुन्नाणुभावओ तं समागओ एत्थ । इय भणिऊण समप्पेइ तस्स कुमरं मयणसेणा ॥२६०॥
तणुकिरणनियरणिज्जियनवतरणिं तं गहित्तु सेट्ठी वि । देवसिरिभारियाए पमुइयहिययाए अप्पेइ ॥२६१॥
अच्चंतवेयणगया दिवंगया तयणु मयणसेणा वि । तद्दुक्खभरियहियए पडिबोहइ तावसे सेट्ठी ॥२६२॥

पूर्वपुरुषानुसृतः परिहृतो नियमतो मया मार्गः । यस्माददृष्टपलिताऽकुर्वन्त ते घोरतपश्चरणम् ॥ २४९ ॥
तत इदानीं चैव राज्ये स्थापयित्वा पद्मकेसरकुमारम् । गत्वा तापसवनं तापसव्रतमनुचरिष्यामि ॥ २५० ॥
इति चिन्तयित्वा सुप्रशस्तवासरे कनककलशसलिलेन । आपृच्छ्य मंत्रिजनं करोति कुमारस्याभिषेकम् ॥ २५० ॥
त्यक्त्वा राजलक्ष्मीं सकलत्रः शत्रु-मित्रसमचित्तः । गत्वा तापसवने प्रतिपद्यते स तपश्चरणम् ॥ २५२ ॥
व्रजत्सु दिनेषु सुगूढगर्भः प्रवर्धितस्तस्याः । स्वजनजनस्येव स्नेहस्तं दृष्ट्वा पृष्टे ऋषिणा ॥ २५३ ॥
स्वामिंस्तव चैव गर्भ एष कथयति सापि नृपर्षेः । व्रतग्रहणभङ्गभीतया कथितो न मया तदा ॥ २५४ ॥
ततः प्रच्छन्नं तस्याः सुखेन गर्भं समुद्वहन्त्याः । नवमासाद्धर्धाष्टमवासरैः पुत्रः समुत्पन्नः ॥ २५५ ॥
अनुचिताहारैः सुकुमारत्त्वात्तथा शरीरस्य । सह घोरवेदनया सूतारोगः समुत्पन्नः ॥ २५६ ॥
नवबालकपालनकृते आकुलो यावत्तापससमूहः । देवीश्रीभार्यायाः समन्वितो बालदूहित्रा ॥ २५७ ॥
तावदुज्जैनीनिवासी देवानन्दाभिधानवरश्रेष्ठी । हर्षपूरान्निवृत्तः सम्प्राप्तस्तापसवने ॥ २५८ ॥
प्रणम्य तापसजनं विमनसं सम्प्रेक्ष्य पृच्छति । कथयति मदनसेनाया व्यतीकरं सोऽपि तत्पुरतः ॥ २५९ ॥
अस्माकं पूर्वपुण्यानुभावात्त्वं समागतोऽत्र । इति भणित्वा समर्पयति तस्य कुमारं मदनसेना ॥ २६० ॥
तनुकिरणनिकरनिर्जितनवतरणिं तं गृहीत्वा श्रेष्ठ्यपि । देवश्रीभार्याया प्रमुदितहृदयाया अर्पयति ॥ २६१ ॥
अत्यन्तवेदनगता दिवंगता तदनु मदनसेनापि । तद् दुःखभृतहृदयान् प्रतिबोधयति तापसान् श्रेष्ठी ॥ २६२ ॥

तरुणीकडक्खचवलम्मि जोव्वणे जीवियम्मि तडितरले । सोगो जईण जुत्तो न होइ ता तं परिच्चयह ॥२६३॥
इय अवसोए काऊण तावसे ताण पणयपयपउमो । संचलिओ सकुमारो संपत्तो नयरिमुज्जेणिं ॥२६४॥
सुपसत्थतिहिमुहुत्ते करेइ कुमरस्स अमरदत्तो त्ति । नामं सम्माणंतो सेट्ठी नियनयरजणनियरं ॥२६५॥
परिवड्ढमाणदेहेण तेण बाहत्तरी वि य कलाओ । ..... ॥२६६॥
अवरं च तत्थ वेसमणसेट्ठिपुत्तो कलाकुसलचित्तो । मित्ताणंदो नामेण तस्स जाओ परममित्तो ॥२६७॥
तेण सह विविहकेलिप्पसंगवक्खित्तमाणसो कुमरो । गच्छंतमवि न याणइ कालं सग्गे सुरवरो व्व ॥२६८॥
एत्थंतरम्मि गंभीरगज्जिजयतूरपूरियदियंतो । थुव्वंतो बरहिणमागहेहिं केक्कारवथुईहिं ॥२६९॥
वीइज्जंतो दिसिसुंदरीहि पवसंतहंसचमरेहिं । हयसूररायपावियबलायमालाजयपडाओ ॥२७०॥
अक्खंडाखंडलचावदंडमणिकणयपट्टकयसोहो । उद्दंडगुरुसमीरणजयवारण खंधमारूढो ॥२७१॥
अवलोयंतो उब्भडतडिच्छडाडोयरत्तनेत्तेहिं । भुवणयलं संताविय विणिग्गयं गिम्हपडिवक्खं ॥२७२॥
धाराहारविराइयविप्फारियमेहडंबरो भुवणं । निव्वावितो पत्तो नहंगणे नवघणनरिंदो ॥२७३॥
एत्थंतरम्मि दोन्नि वि गंतूणं मत्तकोइलुज्जाणे । सिप्पसरिपरिसरम्मी कुव्वंति अणोलियाखेडुं ॥२७४॥
अह अमरदत्तकणियासमाहयाऽणोलिया समुच्छलिया । जा गयणे सेट्ठिसुओ उड्ढकरो झत्ति ताव ॥२७५॥
वडविडविविडवलंबियमडयमुहे निवडियं तयं नियइ । विम्हइयमणो हसिउं पयंपए ऽहह ! महच्छरियं ॥२७६॥

तरुणीकटाक्षचपले यौवने जीविते तडित्तरले । शोको यतीनां युक्तो न भवति ततस्तं परित्यजत ॥ २६३ ॥
इत्यपशोकान् कृत्वा तापसांस्तेषां प्रणतपदपद्मः । सञ्चलितः सकुमारः सम्प्राप्तो नगरिमुज्जैनीम् ॥ २६४ ॥
सुप्रशस्ततिथिमुहूर्ते करोति कुमारस्यामरदत्त इति । नाम सन्मानयन् श्रेष्ठी निजनगरजननिकरम् ॥ २६५ ॥
परिवर्धमानदेहेन तेन द्वासप्तति अपि च कलाः । .....॥ २६६ ॥
अपरं च तत्र वैश्रमण श्रेष्ठिपुत्रः कलाकुशलचित्तः । मित्रानन्दो नाम्ना तस्य जातः परममित्रम् ॥ २६७ ॥
तेन सह विविधकेलिप्रसंगव्याक्षिप्तमानसः कुमारः । गच्छन्तमपि न जानाति कालं स्वर्गे सुरवर इव ॥ २६८ ॥
अत्रान्तरे गम्भीरगर्जिततूर्यपूरितदिगन्तः । स्तुवन् बर्हिणमागधैः केकारवस्तुतिभिः ॥ २६९ ॥
वीज्यमानो दिक्सुन्दरिभिः प्रवसद्धंसचामरैः। हतसूरराजप्राप्तबलाकामालाजयपताकः ॥ २७० ॥
अखण्डाखण्डलचापदण्डमणिकनकपट्टकृतशोभः । उद्दण्डगुरुसमीरणजयवारणस्कन्धमारुढः ॥ २७१ ॥
अवलोकयन्नुद्भटतडिच्छटाटोपरक्तनेत्रैः । भुवनतलं संताप्य विनिर्गतं ग्रीष्मप्रतिपक्षम् ॥ २७२ ॥
धाराधारविराजितविस्फारितमेघडम्बरो भुवनम् । निर्वापयन्प्राप्तो नभोङ्गणे नवघननरेन्द्रः ॥ २७३ ॥
अत्रान्तरे द्वावपि गत्वा मत्तकोकिलोद्याने । शिप्रासरित्परिसरे कुर्वतोऽणोलिका[1] खेलम् ॥ २७४ ॥
अथामरदत्तकणिया[2]समाहताऽणोलिका समुच्छलिता । यावद्गगने श्रेष्ठीसुत उर्ध्वकरो गृह्णाति तावत् ॥ २७५ ॥
वटविटपिबिडविलम्बितमृतकमुखे निपतितं तकत् पश्यति । विस्मितमना हसित्वा प्रजल्पत्यहह ! महाश्चर्यम् ॥ २७६ ॥

---

१. गील्ली । २. दंड

तो मडएण वि हसिउं भणियं तुह थेवकालओ एत्थ । अवलंबियस्स एयं होही ता किं महच्छरियं ? ॥२७७॥
तव्वयणायन्नणजायगरुयभयकंपमाणमण-गत्तो । सो अमरदत्तमित्तेण सह गओ नियभवणम्मि ॥२७८॥
परिहरियालंकारो अवहत्थियविविहवत्थसिंगारो । न हसइ न रमइ न भमइ न सुयइ न चवइ न जेमेइ ॥२७९॥
करकलियकवोलो सो केवलमविचलसरीरवावारो । अत्थंभिओ व्व उक्कीरिओ व्व लिहिओ व्व सुत्तो व्व ॥२८०॥
उव्विग्गमाणसं तं दट्ठूणं भणियममरदत्तेण । मित्त ! अणिमित्तमेयं किं तुह हिययं पणट्ठमिणं ? ॥२८१॥
किं मित्त ! पराभूओ केण वि ? अहवावमाणिओ पिउणा ? । उत्तसिरहरिणनयणी अहरमणी कावि तुह हियए ? ॥२८२॥
अच्चंतमकहणिज्जं न होइ जइ ता कहेसु मह एयं । इय अमरदत्तभणिए मित्ताणंदो पयंपेइ ॥२८३॥
नियजणणि-जणय-बंधव-भइणी-भज्जाइ-भिच्चवग्गस्स । अवि होज्ज अकहणीयं मित्तस्स न नेहसारस्स ॥२८४॥
इय भणिऊणं तेणं कहिओ सव्वो वि मडयवुत्तन्तो । तं निसुणिउं कुमारो पभणइ मा मित्त ! बीहेसु ॥२८५॥
जेण न नज्जइ एयं सच्चं होही उआहु पुण अलियं । जम्हा मडयमुहिट्ठिय भणंति भूयाणि केलीए ॥२८६॥
किंतु तह पुरिसयारो कीरउ गुरुदुरियनासणनिमित्तं । नियगोत्तरक्खणकए जह विहिओ नाणगब्भेण ॥२८७॥
तहा हि-
नयरम्मि वसंतपुरे उब्भडभडकोडिसंकडत्थाणे । जियसत्तुपुहइपाले उवविट्ठे मंतिजणकलिए ॥२८८॥
पडिहारकयपवेसो एगो नेमित्तिओ नरिंदेण । संपुच्छिओ पयासइ सुह-दुहमत्थाणलोयस्स ॥२८९॥

तदा मृतकेनापि हसित्वा भणितं तव स्तोककालतोऽत्र । अवलम्बितस्यैतद्भविष्यति ततः किं महाश्चर्यम् ? ॥ २७७ ॥
तद्वचनाकर्णनजातगुरुकभयकम्पमानमनोगात्रः । सोऽमरदत्तमित्रेण सह गतो निजकभवने ॥ २७८ ॥
परिहृतालङ्कारोऽपहिस्ततविविधवस्त्रशृङ्गारः । न हसति न रमते न भ्रमति न स्वपिति न चर्वति न जेमति ॥ २७९ ॥
कलकलितकपोलः स केवलमविचलशरीरव्यापारः । उत्स्तम्भित इव उत्कीलित इव लिखित इव सुप्त इव ॥ २८० ॥
उद्विग्नमानसं तं दृष्ट्वा भणितममरदत्तेन । मित्र ! अनिमित्तमेतत् किं तव हृदयं प्रनष्टमिदम् ? ॥ २८१ ॥
किं मित्र ! पराभूतः केनापि ? अथवापमानितः पित्रा ? । उत्त्रसिद्धरिणनयन्यथ रमणी कापि तव हृदये ? ॥ २८२ ॥
अत्यन्तमकथनीयं न भवति यदि तदा कथय ममैतद् । इत्यमरदत्तभणिते मित्रानन्दः प्रजल्पति ॥ २८३ ॥
निजजननी-जनक-बान्धव-भगिनि-भार्यादि-भृत्यवर्गस्य । अपि भवेदकथनीयं मित्रस्य न स्नेहसारस्य ॥२८४ ॥
इति भणित्वा तेन कथितः सर्वोऽपि मृतकवृतान्तः । तन्निश्रुत्य कुमारः प्रभणति मा मित्र ! बिभेः ॥ २८५ ॥
येन न ज्ञायत एतत्सत्यं भविष्यत्युत पुनरलिकम् । यस्मान्मृतकेऽधिष्ठाय भणन्ति भूतानि केल्या ॥ २८६ ॥
किन्तु तव पुरुषकारः क्रियतां गुरुदुरितनाशननिमित्तम् । निजगोत्ररक्षणकृते यथा विहितो ज्ञानगर्भेण ॥ २८७ ॥
तथाहि -
नगरे वसन्तपुरे उद्भटभटकोटिसंकीर्णास्थाने । जितशत्रुपृथिवीपाल उपविष्टे मन्त्रिजनकलिते ॥ २८८ ॥
प्रतिहारकृतप्रवेश एक नैमित्तिको नरेन्द्रेण । सम्पृष्टः प्रकाशते सुख-दुःखमास्थान लोकस्य ॥ २८९ ॥

खणमेगं कयमोणो ही ही ! दिव्वस्स विलसियं पिच्छ । जं पुरिसरयण ! एयस्स आवया अहह ! निवडेही ॥२९०॥
होही मारी तेरसमवासरे नाणगब्भमंतिस्स । तं निसुणिऊण मंती नेमित्तयमाणिउं भवणं ॥२९१॥
सम्माणिऊण विणएण पुच्छए कहसु कारणमिमीए । सो भणइ जेट्ठपुत्ताओ पभणिए मंतिणाऽभिहिओ ॥२९२॥
एयं न भासियव्वं कस्सऽवि पुरओ त्ति तं विसज्जेइ । साहेइ जेट्ठपुत्तस्स सो वि तव्वइयरं सव्वं ॥२९३॥
भणइ य जइ वच्छ ! तुमं मह वयणं कुणसि तो सबुद्धीए । रक्खेमि जममुहाओ वि घोरमारीए नियगोत्तं ॥२९४॥
इय निसुणिऊण पुत्तो भणेइ जं ताय ! भणसि तं काहं । मंजूसाए तो खिवइ पाण-भोयणजुयं तं से ॥२९५॥
तालित्तु चउप्पासं मंजूसं राइणो समप्पेउं । पभणेइ देव ! मह गिहसारं रक्खेह कइवि दिणे ॥२९६॥
तं वयणं पडिवज्जिय राया रक्खइ निउत्तपुरिसेहिं । मंती गंतूण गिहे चिट्ठइ सद्धम्मझाणपरो ॥२९७॥
अह तेरसम्मि दिवसे उच्छलिओ कलयलोऽवरोहम्मि । कुमरीए मंतिपुत्तेण कड्ढिओ वेणिदंडो त्ति ॥२९८॥
तं निसुणिउं नरिंदो उब्भडभिउडीभयंकरो भणइ । रे रे मारह मारह मंतिं गंतूण सकुडुंबं ॥२९९॥
रायाएसाणंतरमुद्धाया घोरपहरणा पुरिसा । पावित्तु मंतिभवणं भणंति एवं कहिं मंती ? ॥३००॥
लल्लक्कहक्करक्कसवयणं सोउं भणावए मंती । अवराहदूसियस्स वि देवो मह दंसणं देउ ॥३०१॥
जह मंजूसादव्वं उवणेमि निवस्स पायपउमपुरो । पच्छा जह पडिहासइ तह मज्झ विणिग्गहं कुणउ ॥३०२॥
रायाएसेण तओ तेहिं वि मंती निवस्स उवणीओ । उग्घाडइ मंजूसं निवपुरओ जाव ता तत्थ ॥३०३॥

क्षणमेकं कृतमौनो ही ही ! दिव्यस्य विलसितं प्रेक्षस्व । यत्पुरुषरत्न ! एतस्यापदहह ! निपतिष्यति ॥ २९० ॥
भविष्यति मारी त्रयोदशमे वासरे ज्ञानगर्भमन्त्रिणः । तन्निश्रुत्य मन्त्री नैमित्तिकमानीय भवने ॥ २९१ ॥
सन्मान्य विनयेन पृच्छति कथय कारणमेतस्याः । स भणति ज्येष्टपुत्रात् प्रभणिते मन्त्रिणाभिहितः ॥ २९२ ॥
एतन्न भाषितव्यं कस्यापि पुरत इति तं विसर्जयति । कथयति ज्येष्टपुत्रस्य सोऽपि तद्व्यतीकरं सर्वम् ॥ २९३ ॥
भणति च यदि वत्स ! त्वं मम वचनं कुरुषे तदा स्वबुद्ध्या । रक्षयामि यममुखादपि घोरमार्या निजगोत्रम् ॥ २९४ ॥
इति निश्रुत्य पुत्रो भणति यत्तात ! भणसि तत्करिष्यामि । मञ्जूषायां ततः क्षिपति पान-भोजनयुक्तं तम् ॥ २९५ ॥
तालयित्वा चतुष्पार्श्वं मञ्जूषां राज्ञः समर्प्य । प्रभणति देव ! मम गृहसारं रक्षत कत्यपि दिनान् ॥ २९६ ॥
तं वचनं प्रतिपद्य राजा रक्षति नियुक्तपुरुषैः । मन्त्री गत्वा गृहे तिष्ठति सद्धर्मध्यानपरः ॥ २९७ ॥
अथ त्रयोदशमे दिवसे उच्छलितः कलकलोऽन्तःपुरे । कुमार्याः मन्त्रिपुत्रेण कृष्टो वेणिदण्ड इति ॥ २९८ ॥
तन्निश्रुत्य नरेन्द्र उद्भटभृकुटिभयंकरो भणति । रे रे मारयत मारयत मन्त्रिं गत्वा सुकुटम्बम् ॥ २९९ ॥
राजादेशानन्तरमुद्धाविताः घोरप्रहरणाः पुरुषाः । प्राप्य मन्त्रिभवनं भणन्त्येवं कुत्र मन्त्री ? ॥ ३०० ॥
भयंकरपुत्कारकर्कशवचनं श्रुत्वा भाणयति मन्त्री । अपराधदुषितस्यापि देवो मम दर्शनं ददातु ॥ ३०१ ॥
यथा मञ्जूषाद्रव्यमुपनयामि नृपस्य पादपद्मपुरः । पश्चाद्यथा प्रतिभासते तथा मम विनिग्रहं करोतु ॥ ३०२ ॥
राजादेशेन ततस्तैरपि मन्त्री नृपस्योपनीतः । उद्घाट्यति मञ्जूषां नृपपुरतो यावत्तावत्तत्र ॥ ३०३ ॥

वामकरगहियवेर्णिं दाहिणकरगहियतिक्खअसिधेणुं । पासित्तु मंतिपुत्तं तयवत्थं विम्हिओ राया ॥३०४॥
पुच्छइ अतुच्छउच्छलियकोउओ पत्थिवो महामंतिं । साहेइ सो वि सव्वं नेमित्तियवइयरं तस्स ॥३०५॥
तो भणइ निवो तुह गोत्तकुवियवंतरकया वि अइघोरा । नियबुद्धिपगरिसेणं तुमए अवहत्थिया मारी ॥३०६॥
इय भणिऊणं पुहईसरेण मइविहवहरियहियएण । मुक्को पसायपुव्वं मंती सिरिनाणगब्भो त्ति ॥३०७॥
नियबुद्धिपगरिसेणं [१]तेणं जह रक्खियं नियकुडुंबं । अम्हे वि तह विहेमो रक्खमुवाएण केणावि ॥३०८॥
मित्ताणंदो पभणइ स उवाओ मित्त ! केरिसो ? कहसु । तो भणइ अमरदत्तो गम्मइ देसंतरं दूरं ॥३०९॥
तो पभणइ सेट्ठिसुओ सुट्ठु उवाओ निरिक्खिओ तुमए । किंतु सुकुमारतणुणो तुह गमणं कह विएसम्मि ? ॥३१०॥
अह एक्को च्चिय देसंतरम्मि गच्छामि तह वि तुह विरहं । जं मह काले होही तं जायइ संपयं चेव ॥३११॥
इय निसुणिऊण पभणइ कुमरो बहुनेहनिब्भरं वयणं । मित्त ! तए सह अहमवि विएसवासं अणुसरिस्सं ॥३१२॥
इय एक्कमणा गमणेक्कबुद्धिणो नियजणणि-जणयाणं । अन्नोन्नभवणसयणं कहिऊण निसाए नीहरिया ॥३१३॥
जत्थ पएसे भुंजंति तत्थ न कुणंति कहवि सयणीयं । इय गच्छंता पत्ता पाडलिपुत्तम्मि नयरम्मि ॥३१४॥
तत्थुज्जाणब्भंतरवावीजलधोयपायपउमजुया । दट्ठूण देवहरयं हरिसेण पलोइउं लग्गा ॥३१५॥
पेच्छंताणं अह अमरदत्तकुमरस्स पवरपुत्तलिया । अद्धुट्ठभंगघडिया पडिया पसरम्मि नयणाण ॥३१६॥
तं पेच्छंतो पीवरपओहरिं हरिणनयणरमणीयं । कुमरो हिययम्मि तओ विद्धो मयरद्धयसरेहिं ॥३१७॥

वामकरगृहीतवेणीं दक्षिणकरगृहीततीक्ष्णासिधेनुम् । दृष्ट्वा मन्त्रिपुत्रं तदवस्थं विस्मितो राजा॥ ३०४ ॥
पृच्छत्यतुच्छोत्छलितकौतुकः पार्थिवो महामन्त्रिम् । कथयति सोऽपि सर्वं नैमित्तिकव्यतीकरं तस्य ॥ ३०५ ॥
तदा भणति नृपस्तव गोत्रकुपितव्यन्तरकृताप्यतिघोरा । निजबुद्धिप्रकर्षेण त्वयाऽपहस्तिता मारी ॥ ३०६ ॥
इति भणित्वा पृथिवीश्वरेण मतिविभवहृतहृदयेन । मुक्तः प्रसादपूर्वं मन्त्री श्रीज्ञानगर्भ इति ॥ ३०७ ॥
निजबुद्धिप्रकर्षेण तेन यथा रक्षितं निजकुटुम्बम् । वयमपि तथा विदधामो रक्षणमुपायेन केनापि ॥ ३०८ ॥
मित्रानन्दः प्रभणति स उपायो मित्र ! कीदृशः ? कथय । तदा भणति अमरदत्तो गम्यते देशान्तरं दूरम् ॥ ३०९ ॥
ततः प्रभणति श्रेष्ठिसुतः सुष्ठूपायो निरीक्षितस्त्वया । किन्तु सुकुमारतनोस्तव गमनं कथं विदेशे ॥ ३१० ॥
अथैक एव देशान्तरे गच्छामि तथापि तव विरहे । यन्मम काले भविष्यति तज्जायते साम्प्रतमेव ॥ ३११ ॥
इति निश्रुत्य प्रभणति कुमारो बहुस्नेहनिर्भरं वचनम् । मित्र ! त्वया सहाहमपि विदेशवासमनुसरिष्यामि ॥ ३१२ ॥
इत्येकमनसौ गमनैकबुद्धी निजजननी-जनकानाम् । अन्योन्यभवनशयनं कथयित्वा निशि निःसृतौ ॥ ३१३ ॥
यत्र प्रदेशे भुञ्जेते तत्र न कुरुतः कथमपि शयनीयम् । इति गच्छन्तौ प्राप्तौ पाटलिपुत्रे नगरे ॥ ३१४ ॥
तत्रोद्यानाभ्यन्तरवापीजलधौतपादपद्मयुगौ । दृष्ट्वा देवगृहं हर्षेण प्रलोकितुं लग्नौ ॥ ३१५ ॥
पश्यन्तावथामरदत्तकुमारस्य प्रवरपुत्तलिका । अर्धचतुष्टभङ्गघटिता पतिता प्रसरे नयनयोः ॥ ३१६ ॥
तो पश्यन्पीवरपयोधरिं हरिणनयनरमणीयाम् । कुमारो हृदये ततो विद्धो मकरध्वजशरैः ॥ ३१७ ॥

---

१. तेण जहा - रं० ।

तं हयहियय दट्ठुं मित्ताणंदेण पभणियं कुमर ! । नयरम्मि भोयणकए पविसामो जेण उस्सूरं ॥३१८॥
तो भणइ अमरदत्तो सव्वंगं पुत्तलिं पलोएमि । ताव तुमं खणमेक्कं एत्थेव विलंबसु वयंस ! ॥३१९॥
पुणरवि खणेण भणिओ पभणइ साहेमि तुज्झ परमत्थं । मित्त ! न सक्केमि अहं परिहरिउमिमं मणागं पि ॥३२०॥
तो सेट्ठिसुओ जंपइ निच्चेट्ठाए किमेत्थ तुह नेहो ? । परिहासवयणलीलाकडक्खविक्खेवरहियाए ॥३२१॥
सो जंपइ किं बहुणा ? एयाए विणा न मित्त ! मह पाणा । अह मेल्लावेसि ममं ता मज्झं देहि कट्ठाइं ॥३२२॥
तं सोउं सेट्ठिसुओ मन्नुभरुप्पन्नबाहसलिलोहो । जा विलविउं पयत्तो विलवइ ता अमरदत्तो वि ॥३२३॥
ते दो वि जाव विलवंति ताव नियदेवपूयणनिमित्तं । नामेण रयणसारो समागओ तत्थ पुरसेट्ठी ॥३२४॥
पविसंतो संपेच्छइ रोवंते दो वि तत्थ वरकुमरे । आभासिउं पयंपइ नारीण व चेट्ठियं कमिमं ? ॥३२५॥
भणियं मित्ताणंदेण ताय ! तुह जणयनिव्विसेसस्स । किं न कहिज्जई ? भणिऊण अक्खिओ पुव्ववुत्तंतो ॥३२६॥
जह उज्जेणिपुरीए समागया एत्थ पाडलीपुत्तं । पुत्तलियदंसणाओ परव्वसो जह इमो जाओ ॥३२७॥
जा ताय ! मए भणिओ वच्चामो ताव मग्गए कट्ठे । इय सोउं मज्झ मणं मन्नुभरुम्मंथरं जायं ॥३२८॥
तं निसुणिउण सेट्ठी कोमलवयणेहिं पभणइ कुमारं । वच्छ ! न जुत्तं उत्तमपुरिसाणमठाणपडिबंधो ॥३२९॥
बालो वि जओ जाणइ नत्थि निचेट्ठाए रइरससुहाइं । ता विबुहहासठाणे वच्छ ! तुमं किह णु रत्तो सि ? ॥३३०॥
जंपइ सोऊण तयं कुमरो वि हु ताय ! मोहिओ अहियं । जइ मेल्लावेसि इमं मह अग्गी होज्ज ता सरणं ॥३३१॥

तं हतहृदयं दृष्ट्वा मित्रानन्देन प्रभणितं कुमार ! । नगरे भोजनकृते प्रविशावो येनोत्सूरम् ॥ ३१८ ॥
तदा भणत्यमरदत्तः सर्वाङ्गं पुत्तलिं प्रलोकयामि । तावत्त्वं क्षणमेकमत्रैव विलम्बस्व वयस्य ! ॥ ३१९ ॥
पुनरपि क्षणेन भणितः प्रभणति कथयामि तव परमार्थम् । मित्र ! न शक्नोम्यहं परिहर्तुमिमां मनागपि ॥ ३२० ॥
ततः श्रेष्ठिसुतो जल्पति निश्चेष्टायां किमत्र तव स्नेहः ? । परिहासवचनलीलाकटाक्षविक्षेपरहितायाम् ॥ ३२१ ॥
स जल्पति किं बहुना ? एतस्या विना न मित्र ! मम प्राणाः । अथ मोचयसि मां ततो मह्यं देहि काष्ठानि ॥ ३२२ ॥
तत् श्रुत्वा श्रेष्ठिसुतो मन्युभरोत्पन्नबाष्पसलिलौघः । यावद्विलपितुं प्रवृत्तो विलपति तावदमरदत्तोऽपि ॥ ३२३ ॥
तौ द्वावपि यावद्विलपतस्तावन्निजदेवपूजननिमित्तम् । नाम्ना रत्नसारः समागतस्तत्र पुरश्रेष्ठी ॥ ३२४ ॥
प्रविशन् संप्रेक्षते रुदन्तौ द्वावपि तत्र वरकुमारौ । आभाष्य प्रजल्पति नारीणामिव चेष्टितं किमिदम् ?॥ ३२५ ॥
भणितं मित्रानन्देन तात ! तव जनकनिर्विशेषस्य । किं न कथ्यते ? भणित्वाऽऽख्यातः पूर्ववृत्तान्तः ॥ ३२६ ॥
यथोज्जैनीपूर्याः समागतावत्र पाटलिपुत्रे । पुत्तलिकादर्शनात् परवशो यथायं जातः ॥ ३२७ ॥
यावत्तात ! मया भणितो गच्छावस्तावन्मार्गयति काष्ठानि । इति श्रुत्वा मम मनो मन्युभरोन्मन्थरं जातम् ॥ ३२८ ॥
तन्निश्रुत्य श्रेष्ठी कोमलवचनैः प्रभणति कुमारम् । वत्स ! न युक्तमुत्तमपुरुषणामस्थान- प्रतिबन्धः ॥ ३२९ ॥
बालोऽपि यतो जानाति नास्ति निश्चेष्टायां रतिरससुखानि । ततो विबुधहास्यस्थाने वत्स ! त्वं कथं नु रक्तोऽसि ? ॥ ३३० ॥
जल्पति श्रुत्वा तकत् कुमारोऽपि हु तात ! मोहितोडधिकम् । यदि मोचयसीमां ममाग्नि र्भवेत् ततः शरणम् ॥ ३३१ ॥

चिंतेइ तओ सेट्ठी चित्ते तद्दुक्खसल्लियसरीरो । सच्चमिणं तं नूणं जं भणियं विउसवग्गेण ॥३३२॥
गह-विस-भूयपणासण अत्थि अणेगनर, अत्थि जि वाहि विणासहिं तक्खणि वेज्जवर ।
जाणमि वेज्जु सु सच्चउ सत्थागमु वहइ, नेहगहिल्लह चित्तह जो ओसहु कहइ ॥३३३॥
किंतु परिहासपेसलरसाए रमणीए होउ अणुराओ । जं पुण पाहाणविणिम्मियाए जायइ तमच्छरियं ॥३३४॥
इय चिंतंतो सेट्ठी मित्ताणंदेण पभणिओ ताय ! मह मित्तजीवियकए किं पि उवायं विचिंतेहि ॥३३५॥
वज्जरइ रयणसारो मज्झ उवाओ न को वि विप्फुरइ । जई कोइ तुज्झ चित्ते ता झत्ति तयं पयासेसु ॥३३६॥
तो भणइ सेट्ठिपुत्तो अत्थि उवाओ अईवदुन्नेओ । जइ जाणिज्जइ एयं पुत्तलिया केण घडिय त्ति ॥३३७॥
तो आह रयणसारो भवणं कारावियं मए वच्छ ! । जाणेमि सुत्तहारं पि निम्मिया जेण पुत्तलिया ॥३३८॥
कुंकणविसयविहूसणसोपारयपुरवरम्मि सो वसइ । साहसु जं कायव्वं इय भणिए भणइ सेट्ठिसुओ ॥३३९॥
पुच्छामो किं पडिछंदएण घडिया ? उयाहु एमेव ? । पंडिछंदएण घडिया जइ ता आणेमि तं नियमा ॥३४०॥
ता होज्ज कज्जसिद्धी वच्चामि ताय ! ता अहं तत्थ । पडियरियव्वो तुमए पइदियहं एत्थ मह मित्तो ॥३४१॥
सेट्ठी वि तयं मन्नइ भणइ तओ अमरदत्तकुमरो वि । किं मित्त ! असरिसेणं मंतेण किलेसवहुलेण ? ॥३४२॥
जओ-
पुत्तलियविरहहुयवहजालोलिपलीवियस्स मह मरणं । अवरं च सुहय ! तुह मुहविओगकरवत्तकप्परणं ॥३४३॥

चिन्तयति ततः श्रेष्ठी चित्ते तद्दुःखशल्यितशरीरः । सत्यमिदं तन्नूनं यद्भणितं विद्वद्वर्गेण ॥ ३३२ ॥
ग्रह-विष-भूतप्रणाशनायास्त्यनेकनरः, अस्ति यद्व्याधि विनाशयति तत्क्षणं वैद्यवरः ।
जानामि वैद्यः सः सत्यं शास्त्रागमं वहति, स्नेहग्रथिलस्य चिन्तयत य औषधं कथयति ॥ ३३३ ॥
किन्तु परिहासपेशलरसायां रमण्यां भवत्वनुरागः । यत्पुनः पाषाणविनिर्मितायां जायते तदाश्चर्यम् ॥ ३३४ ॥
इति चिन्तयन् श्रेष्ठी मित्रानन्देन प्रभणितः तात ! । मम मित्रजीवितकृते किमप्युपायं विचिन्तय ॥ ३३५ ॥
कथयति रत्नसारो ममोपायो न कोऽपि विस्फुरति । यदि कोपि तव चित्ते तावत् शीघ्रं तकत् प्रकाशय ॥ ३३६ ॥
तदा भणति श्रेष्ठिपुत्रोऽस्त्युपायोऽतीवदुर्ज्ञेयः । यदि ज्ञायत एतत्पुत्तलिका केन घटितेति ॥ ३३७ ॥
तदाह रत्नसारो भवनं कारितं मया वत्स ! । जानामि सूत्रधारमपि निर्मिता येन पुतलिका ॥ ३३८ ॥
कोङ्कणविषयविभूषणसोपारकपुरवरे स वसति । कथय यत्कर्तव्यमिति भणिते भणति श्रेष्ठिसुतः ॥ ३३९ ॥
पृच्छामः किं प्रतिच्छन्देन घटिता ? उताहो एवमेव ? । प्रतिच्छन्दकेन घटिता यदि तदानयामि तां नियमात् ॥ ३४० ॥
तदा भवेत् कार्यसिद्धि व्रजामि तात ! ततोऽहं तत्र । प्रतिचरितव्यस्त्वया प्रतिदिवसमत्र मम मित्रम् ॥ ३४१ ॥
श्रेष्ठ्यपि तकन्मन्यते भणति ततोऽमरदत्तकुमारोऽपि । किं मित्र ! असदृशेन मन्त्रेण क्लेशबहुलेन ? ॥ ३४२ ॥
यतः -
पुत्तलिकाविरहहुतवहज्वालालिप्रदीपितस्य मम मरणम् । अपरं च सुभग ! तव मुखवियोगकरपत्रकल्पनम् ॥ ३४३ ॥

इयरो पयंपइ इमं कुमार ! जइ नो दुमासमज्झम्मि । आगच्छामि तओ तं मुणिज्ज जीवइ न मह मित्तो ॥३४४॥
इय गरुयनिबंधेणं कुमरं संठविय सेट्ठिणाऽणुमओ । पत्तो अक्खंडपयाणएहिं सोपारयम्मि पुरे ॥३४५॥
मुद्दारयणं विणिजोइऊण परिविहियवत्थ-सिंगारो । करयलकयतंबोलो जाइ गिहं सुत्तहारस्स ॥३४६॥
तं पविसंतं पासित्तु सुत्तहारो वि कुणइ पडिवत्तिं । परितुट्ठमणा पुच्छंति दो वि अपरोप्परं कुसलं ॥३४७॥
कज्जेण केण मह गिहमलंकियं ? सूरदेवभणियम्मि । तंबोलदाणपुव्वं मित्ताणंदो पयंपेइ ॥३४८॥
इच्छामि कारिउमहं देवउलं तुह सयासओ किंतु । पाडलिपुत्तविणिम्मियपकिट्ठपासायसारिच्छं ॥३४९॥
तो भणइ सूरदेवो देवउलं निम्मियं मए तं पि । इयरो वि भणइ अमुगा पुत्तलिया सालभंजी य ॥३५०॥
पडिछंदएण घडिया ? उयाहु नियबुद्धिनिम्मिया तुमए ? । तो भणइ सूरदेवो तरुणाणं मणवसीकरणं ॥३५१॥
उज्जणिनयरिनायगमहसेणनरेसरस्स कन्नाए । सिरिरयणमंजरीए घडिया पडिछंदएण इमा ॥३५२॥
इय निसुणिऊण अहिलसियकज्जसिद्धी स बंधुरं भणइ । पुणरवि पसत्थदियहे तुज्झ सरूवं निवेइस्सं ॥३५३॥
तयणंतरं समुट्ठिय वत्थे विणिवट्टिऊण नीहरिओ । अणवरयं वच्चंतो संपत्तो नयरिमुज्जेणिं ॥३५४॥
अब्भिंतरे पविट्ठस्स तस्स पिहिएसु नयरदारेसुं । अल्लियह वारवासिणिभवणं सयणाय सो जाव ॥३५५॥
एत्थंतरम्मि निसुणइ पडहयसद्देण पोक्करिज्जंतं । मडयमिणं जो रक्खइ पहरं चत्तारि रयणीए ॥३५६॥
दीणाराण सहस्सं वियरइ तस्सेह ईसरो सेट्ठी । तं निसुणिउं पओलीपाहरिओ पुच्छिओ तेणं ॥३५७॥

इतरः प्रजल्पतीमं कुमार ! यदि नो द्विमासमध्ये । आगच्छामि ततस्त्वं मुणे र्जीवति न मम मित्रः ॥ ३४४ ॥
इति गुरुकनिबन्धेन कुमारं संस्थाप्य श्रेष्ठिनानुमतः । प्राप्तोऽखण्डप्रयाणकैः सोपारके पुरे ॥ ३४५ ॥
मुद्दारत्नं विनियोज्य परिविहितवस्त्रशृङ्गारः । करतलकृतताम्बुलो याति गृहं सूत्रधारस्य ॥ ३४६ ॥
तं प्रविशन्तं दृष्ट्वा सूत्रधारोऽपि करोति प्रतिपत्तीम् । परितुष्टमनसौ पृच्छतो द्वावपि परस्परं कुशलम् ॥ ३४७ ॥
कार्येण केन मम गृहमलङ्कृतं ? सूरदेवभणिते । ताम्बुलदानपूर्वं मित्रानन्दः प्रजल्पति ॥ ३४८ ॥
इच्छामि कारयितुमहं देवकुलं तव सकाशात् किन्तु ! पाटलिपुत्रविनिर्मितप्रकृष्टप्रासादसदृशम् ॥ ३४९ ॥
तदा भणति सूरदेवो देवकुलं निर्मितं मया तदपि । इतरोऽपि भणति अमुका पुत्तलिका शालभञ्जी च ॥ ३५० ॥
प्रतिच्छन्देन घटिता ? उताहो निजबुद्धिनिर्मिता त्वया ? । तदा भणति सूरदेवस्तरुणानां मनोवशीकरणम् ॥ ३५१ ॥
उज्जैनीनगरिनायकमहसेननरेश्वरस्य कन्यायाः । श्रीरत्नमञ्जर्याः घटिता प्रतिच्छन्दकेनेमा ॥ ३५२ ॥
इति निश्रुत्याभिलषितकार्यसिद्धिं स बन्धुरं भणति । पुनरपि प्रशस्तदिवसे तव स्वरुपं निवेदयिष्यामि ॥ ३५३ ॥
तदनन्तरं समुत्थाय वस्त्राणि विनिवर्त्य निःसृतः । अनवरतं व्रजन् संप्राप्तो नगरीमुज्जैनीम् ॥ ३५४ ॥
अभ्यन्तरे प्रविष्टस्य तस्य पिहितेषु नगरद्वारेषु । आलिनाति वारवासिनिभवनं शयनाय स यावत् ॥ ३५५ ॥
अत्रान्तरे निश्रुणोति पटहतशब्देन पूत्क्रियमाणम् । मृतकमिमं यो रक्षति प्रहरांश्चत्वार रजन्याम् ॥ ३५६ ॥
दीनाराणां सहस्रं वितरति तस्येहेश्वरः श्रेष्ठी । तन्निश्रुत्य प्रतोलीप्राहरिकः पृष्टस्तेन ॥ ३५७ ॥

किं एत्तियम्मि कज्जे वियरिज्जइ एत्तियं दविणजायं ? । सो भणइ एस नयरी उवहुया घोरमारीए ॥३५८॥
तं मारिनिहयमडयं निक्कालइ जाव ईसरो सेट्ठी । अत्थमिओ ताव रवी पुरीपओलीओ पिहियाओ ॥३५९॥
मारिपकंपिरगत्तो रक्खइ मडयं न कोवि भयभीओ । इय निसुणिऊण नियमाणसम्मि चिंतेइ सेट्ठिसुओ ॥३६०॥
न हु का वि कज्जसिद्धी निद्धणपुरिसाण जायइ जयम्मि । ता मडयरक्खणऽज्जियधणेण साहेमि नियकज्जं ॥३६१॥
परिभाविऊण एवं छित्तो मडयस्स पडहओ तेण । तो ईसरेण दिन्ना दीणाराणं सया पंच ॥३६२॥
सेसं पहायसमए दायव्वं पभणिउं गओ सेट्ठी । सो वि अपमत्तचित्तो मुणि व्व मडयं निरिक्खेइ ॥३६३॥
अह उग्गयम्मि सूरे धाहावंतो सपरियणो सेट्ठी । जावुप्पाडइ मडयं तो मग्गइ सो वि सेसधणं ॥३६४॥
पंच सयाइं दिन्नाइं तुज्झ किं मग्गसे ? त्ति भणिऊणं । तो तं गलत्थिऊणं मडयं उप्पाडियं तेणं ॥३६५॥
तो भणइ सेट्ठिपुत्तो जह होही इह पुरे पुहइपालो । ता सविसेसं दव्वं गिण्हिस्सं तुह सयासाओ ॥३६६॥
तो दीणारसएणं दोसियहट्टे किणित्तु वत्थाइं । कयउव्भडसिंगारो गणियागेहं गओ रम्मं ॥३६७॥
तं पविसंतं दट्ठुं वसंततिलया समुट्ठिया समुहं । उव्वूढजोव्वणा चमरधारिणी जा नरिंदस्स ॥३६८॥
तीए समप्पइ चउसयपमाणदीणारनउलयं सा वि । नियकुट्टणीए अप्पइ संभालइ सा तमेगंते ॥३६९॥
पुन्नाणि तत्थ पेच्छइ दीणाराणं सयाणि चत्तारि । तो विम्हइया चिंतइ अहह ! उदारो न से कोई ॥३७०॥
सा जंपइ नियधूयं पडिवत्तिमिमस्स कुण सयं वच्छे ! । सा वि तहा निव्वत्तइ न्हाणा-ऽऽसण-भोयणाईयं ॥३७१॥

किमेतावंति कार्ये वितीर्यत एतावद् द्रविणजातम् ? । स भणत्येषा नगर्युपद्रुता घोरमार्या ॥ ३५८ ॥
तं मारिनिहतमृतकं निष्काशति यावदीश्वरः श्रेष्ठी । अस्तमितस्तावद्रविः पुरीप्रतोल्यः पिहिताः ॥ ३५९ ॥
मारिकम्पमानगात्रो रक्षति मृतकं न कोऽपि भयभीतः । इति निश्रुत्य निजमानसे विचिन्तयति श्रेष्ठिसुतः ॥ ३६० ॥
न हु कापि कार्यसिद्धि र्निर्धनपुरुषाणाम् जायते जगति । ततो मृतकरक्षणार्जितधनेन साधयामि निजकार्यम् ॥ ३६१ ॥
परिभाव्यैवं स्पृष्टो मृतकस्य पटहस्तेन । तदेश्वरेण दत्ता दीनाराणां शताः पञ्च ॥ ३६२ ॥
शेषं प्रभातसमये दातव्यं प्रभण्य गतः श्रेष्ठी । सोऽप्यप्रमत्तचित्तो मुनिरिव मृतकं निरीक्षते ॥ ३६३ ॥
अथोद्गते सूर्ये धावन् सपरिजनः श्रेष्ठी । यावदुत्पातयति मृतकं तदा मार्गयति सोऽपि शेषधनम् ॥३६४ ॥
पञ्चशतानि दत्तानि तव किं मार्गयसे ? इति भणित्वा । तदा तं गलहस्तित्वा मृतकमुत्पातितं तेन ॥ ३६५ ॥
तदा भणति श्रेष्ठिपुत्रो यथा भविष्यतीह पुरे पृथिवीपालः । तदा सविशेषं द्रव्यं ग्रहीष्यामि तव सकाशात् ॥ ३६६ ॥
ततो दीनारशतेन दौष्यिकहट्टे क्रीणित्वा वस्त्राणि । कृतोद्भटशृङ्गारो गणिकागृहं गतो रम्यम् ॥ ३६७ ॥
तं प्रविशन्तं दृष्ट्वा वसन्ततिलका समुत्थिता संमुखम् । उद्वोढयौवना चामरधारिणी या नरेन्द्रस्य ॥ ३६८ ॥
तस्यै समर्पयति चतुश्शतप्रमाणदीनारनकुलकं सापि । निजकुट्टिन्या अर्पयति सम्भालयति सा तमेकान्ते ॥ ३६९ ॥
पूर्णानि तत्र पश्यति दीनाराणां शतानि चत्वारि । तो विस्मिता चिन्तयत्यहह ! उदारो न तस्मात् कोपि ॥ ३७० ॥
सा जल्पति निजदुहितरं प्रतिपत्तिरेतस्य कुरु स्वयं वत्से ! सापि तथा निर्वर्तयति स्नानाऽऽसन-भोजनादिकम् ॥ ३७१॥

अह पत्तम्मि पओसे पविसइ सो वरविलासभवणम्मि । कयउब्भडसिंगारा समागया सा वि पल्लंके ॥३७२॥
तं दट्ठूण विचिंतइ मित्ताणंदो विलासवसगाण । सिज्झंति न कज्जाइं ति चिन्तिउं तं समाइसइ ॥३७३॥
आणेहि पट्टमेगं जत्थुवविसिउं करेमि झाणमहं । तो उवणीओ तीए तवणीयमओ मसिणपट्टो ॥३७४॥
तत्थ पउमासणत्थो पिहिऊणं सियवडेणमत्ताणं । जा चिट्ठइ ता पहओ रयणीए पढमओ पहरो ॥३७५॥
पभणइ वसंततिलया सामि ! पसायं विहेसु मह इण्हिं । अवगन्निउं ठिओ सो ता पहओ वीयपहरो वि ॥३७६॥
एवं तइय-तुरीया अइकंता तस्स जामिणीजामा । पहए पहायपडहे उट्ठित्तु गओ तडागम्मि ॥३७७॥
ता कुट्टणी पयंपइ अमलियगत्ता किमज्ज तं वच्छे ! । सा वि हु साहइ तीसे निसाए निस्सेसवुत्तंतं ॥३७८॥
निसुणित्तु कसिणवयणा अक्का उल्लवइ नो थिरं दव्वं । ता अज्ज रंजियव्वो विविहविलासेहिं सो वच्छे ॥३७९॥
एवं बीया तइया वि जामिणी जा तहेवऽइक्कमइ । तो तुरियदिणे उग्गयदिणेसरे भणइ तं अक्का ॥३८०॥
अणुरायरसियहिययं मह दुहियं किं विडंबसे सुहय ? । जा अणुवज्जियपुन्नाण दुल्लहा सुरवराणं पि ॥३८१॥
ता अमरदत्तमित्तो जंपइ जं भणसि अंब ! तं काहं । किंतु परिपुच्छियव्वं अत्थि तओ आह सा कहसु ॥३८२॥
सो भणइ रायकुमरी परियाणसि रयणमंजरीमंब ! । सा भणइ मह सुयाए वयंसिया चमरधारीए ॥३८३॥
जइ एवं ता अम्मो ! गंतूणं कहसु तीए मह वयणं । जह बंदियगिज्जंतं गुणनियरं अमरदत्तस्स ॥३८४॥
आयन्निऊण संजायगरुयअणुरायरंजियमणाए । नियकरकमलेण लिहित्तु पेसियं जइ इमं तुमए ॥३८५॥

अथ प्राप्ते प्रदोषे प्रविशति स वरविलासभवने । कृतोद्भटशृङ्गारा समागता सापि पल्यङ्के ॥ ३७२ ॥
तां दृष्ट्वा विचिन्तयति मित्रानन्दो विलासवशगानाम् । सिध्यन्ति न कार्याणीति चिन्तयित्वा तां समादिशति ॥ ३७३ ॥
आनय पट्टमेकं यत्रोपविश्य करोमि ध्यानमहम् । तत उपनीतस्तया तपनीयमय मसृणपट्टः ॥ ३७४ ॥
तत्र पद्मासनस्थः पिधाय श्वेतपटेनात्मानम् । यावत्तिष्ठति तावत्प्रहतो रजन्याः प्रथमः प्रहरः ॥ ३७५ ॥
प्रभणति वसन्ततिलका स्वामिन् ! प्रसादं विधेहि ममेदानीम् । अवगण्य स्थितः स तावत्प्रहतो द्वितीयप्रहरोऽपि ॥ ३७६ ॥
एवं तृतीय-तूर्यावतिक्रान्तौ तस्य यामिनियामौ । प्रहते प्रभातपटहे उत्थाय गतस्तडागे ॥ ३७७ ॥
तावत्कुट्टिनी प्रजल्पत्यमलितगात्रा किमद्य त्वं वत्से ! । सापि हु कथयति तस्य निशाया निःशेषवृत्तान्तम् ॥ ३७८ ॥
निश्रुत्य कृष्णवर्णाऽक्कोल्पति न स्थिरं द्रव्यम् । ततोऽद्य रञ्जितव्यो विविधविलासैः स वत्से ! ॥ ३७९ ॥
एवं द्वितीया तृतीयापि यामिनि यावत्तथैवातिक्रामति । ततस्तूर्यदिने उद्गतदिनेश्वरे भणति तमक्का ॥ ३८० ॥
अनुरागरसितहृदयां मम दुहितरं किं विडम्बयसि सुभग ! ? याऽनुपार्जितपुण्यानां दुर्लभा सुरवराणामपि ॥ ३८१ ॥
ततोऽमरदत्तमित्रो जल्पति यद्भणस्यम्ब ! तत्करिष्ये । किन्तु परिपृष्टव्यमस्ति ततः आह सा कथय ॥ ३८२ ॥
स भणति राजकुमारीं परिजानासि रत्नमञ्जरीमम्ब ! । सा भणति मम सुताया वयस्या चामरधारिण्याः ॥ ३८३ ॥
यद्येवं ततोऽम्बे ! गत्वा कथय तस्या मम वचनम् । यथा बन्दिकगीयमाणं गुणनिकरममरदत्तस्य ॥ ३८४ ॥
आकर्ण्य सञ्जातगुरुकानुरागरञ्जितमनसा । निजकरकमलेन लिखित्वा प्रेषितं यदीदं त्वया ॥ ३८५ ॥

सामि ! तुह बंदिविंदप्पयासियं गुणगणं निसामंती । मयणानलजलियंगी संगमसलिलेण निव्ववसु ॥३८६॥
तो अमरदत्तकुमरेण पेसिओ पडिसरीरसरिसो हं । नियलिहियलेहजुत्तो त्ति जंपिए कुट्टणी भणइ ॥३८७॥
वच्छ ! करेमि समग्गं ति जंपिउं जाइ कुमरिभवणम्मि । तो रयणमंजरीए दट्ठुं बोल्लाविया अक्का ॥३८८॥
अम्मो ! अईवहरिसियहियया किं ? कहसु कारणं अज्ज । सा आह तुज्झ वल्लहलेहेण तओ भणइ कुमरी ॥३८९॥
को मज्झ वल्लहो ? कहसु अम्ब ! सा वि हु पवंचिउं अक्का । मित्ताणंदेण जहा तह साहइ तीए पुरओ वि ॥३९०॥
किं एयमघडमाणं विचिंतए रयणमंजरी जम्हा । न य को वि रायकुमरो मज्झ मणे वल्लहो वसइ ॥३९१॥
न य गुणनियरो कस्सइ निसामिओ नेय पेसिओ लेहो । ता धुत्तविलसियमिणं ममाणुरत्तस्स कस्सावि ॥३९२॥
जाणामि ताव कज्जं सो वा उण केरिसो महाधुत्तो ? । परिभाविऊण एयं पयंपिया कुट्टणी तीए ॥३९३॥
मह वल्लहलेहकरो पुरिसो इह दंतवलभियाए तए । आणेयव्वो त्ति तओ सुणित्तु अक्का गया सगिहं ॥३९४॥
परितुट्ठमणा पभणइ तुह कज्जं साहियं मए वच्छ ! । जंपइ मित्ताणंदो कहं ? तओ कहइ सा सव्वं ॥३९५॥
गंतव्वं जाव तए तीए सयासे स आह आमं ति । सह तीए निसाए गओ संपत्तो रायदारम्मि ॥३९६॥
सा भणइ पुत्त ! एत्तियमेत्तं मग्गं सुहेण पत्ताणि । पायार-पओलीथाणगाणि पिहु पिहु पुरो सत्त ॥३९७॥
ता दुप्पवेसमेयं सोउं भणइ कत्थ सा कुमरी ? । तो अक्का दंक्खालइ[1] वासगिहं तीए तप्पुरओ ॥३९८॥
मित्ताणंदेण तओ पयंपियं अवं ! वच्च नियभवणे । ता सा वि निवत्तेउं पच्छन्नं हेरिउं लग्गा ॥३९९॥

स्वामिन् ! तव बन्दिवृन्दप्रकाशितं गुणगणं निशाम्यन्ती । मदनानलज्वलिताङ्गी सङ्गमसलिलेन निर्वापय ॥ ३८६ ॥
ततोऽमरकुमारेण प्रेषितः प्रतिशरीरसदृशोऽहम् । निजलिखितलेखयुक्त इति जल्पिते कुट्टिनी भणति ॥ ३८७ ॥
वत्स ! करोमि समग्रमिति जल्पित्वा याति कुमारिभवने । ततो रत्नमञ्जर्या दृष्ट्वाऽऽकारिताऽक्काः ॥ ३८८ ॥
अम्बे ! अतीवहर्षितहृदया किं ? कथय कारणमद्य । साऽऽह तव वल्लभलेखेन ततो भणति कुमारी ॥ ३८९ ॥
को मम वल्लभः ? कथयाम्बे ! सापिहु प्रपञ्च्याक्का । मित्रानन्देन यथा तथा कथयति तस्याः पुरतोऽपि ॥ ३९० ॥
किमेतदघटमानं विचिन्तयति रत्नमञ्जरी यस्मात् । न च कोऽपि राजकुमारो मम मनसि वल्लभो वसति ॥ ३९१ ॥
न च गुणनिकरःकस्यचिन्निशामितो नैव प्रेषितो लेखः । ततो धूर्तविलसितमिदं ममानुरक्तस्य कस्यापि ॥ ३९२ ॥
जानामि तावत्कार्यं स वा पुनः कीदृशो महाधूर्तः ? । परिभाव्येतत्प्रजल्पिता कुट्टिनी तया ॥ ३९३ ॥
मम वल्लभलेखकरः पुरुष इह दन्तवलभिकायां त्वया । आनेतव्येति ततः श्रुत्वाऽक्का गता स्वगृहम् ॥ ३९४ ॥
परितुष्टमना प्रभणति तव कार्यं साधितं मया वत्स ! । जल्पति मित्रानन्दः कथं ? ततः कथयति सा सर्वम् ॥ ३९५ ॥
गन्तव्यं यावत्त्वया तस्याः सकाशे स आहामिति । सह तया निशि गतः सम्प्राप्तो राजद्वारे ॥ ३९६ ॥
सा भणति पुत्र ! एतावन्मात्रं मार्गं सुखेन प्राप्तौ । प्राकार-प्रतोलीस्थानकानि पृथु पृथु पुरः सप्त ॥ ३९७ ॥
ततो दुष्प्रवेशमेतत् श्रुत्वा स भणति कुत्र सा कुमारी ? । ततोऽक्का दर्शयति वासगृहं तस्यास्तत्पुरतः ॥ ३९८ ॥
मित्रानन्देन ततः प्रजल्पितमम्बेः व्रज निजभवने । तदा सापि निवर्त्य प्रच्छन्नं निरीक्षितुं लग्ना ॥ ३९९ ॥

---

१. दर्शयति ।

आबद्धपरियरो सो विज्जुक्खित्तेहिं पवरकरणेहिं । सव्वे वि हु पायारेऽइक्कमई जाव ता अक्का ॥४००॥
नूणं वीरवरिट्ठो गरिट्ठवंसुब्भवो इमो को वि । तो होज्ज कज्जसिद्धि त्ति चिंतउं पडिनियत्ता सा ॥४०१॥
इयरो वि दंतवलभिं गवक्खमग्गेण आरुहइ तीए । एत्थंतरम्मि कुमरी तं दट्ठुं चिंतए एवं ॥४०२॥
किं वा करेइ एसो ? किं वा जंपेइ ? चिंतिऊण तओ । पावरणपिहियगत्ता सुत्ता सा अलियनिद्दाए ॥४०३॥
तो अमरदत्तमित्तो तारिसरूवं तयं निएऊण । गिण्हइ वामकराओ कडयं नरनाहनामंकं ॥४०४॥
कड्ढित्तु तओ छुरियं लंछिता तीए दाहिणं ऊरुं । तो पुव्वुत्तकमेणं नीहरिओ झत्ति झंपाहिं ॥४०५॥
तो देवकुले गंतुं सुत्तो नियबुद्धिविहवपरितुट्ठो । परिचिंतइ कुमरी वि हु अहो ! इमो को वि अइदक्खो ॥४०६॥
धेत्तूण रयणकडयं ऊरू लंछित्तु एस नीहरिओ । तं सुट्ठु कयं न मए जं न कया तस्स पडिवत्ती ॥४०७॥
इय चिंतिऊण कुमरी सुत्ता रयणीविरामसमयम्मि । इयरो वि साहुलकरो समागओ रायदारम्मि ॥४०८॥
पोक्कारंतो अन्नायमेस हक्कारिओ पुहइवइणा । पभणइ संभंतमणो विन्नंत्ति देव ! निसुणेसु ॥४०९॥
धरणियललुलियसीसो पणमित्ता जाव संठिओ ताव । रन्ना नयणुक्खेवेण पभणिओ विन्नवेहि त्ति ॥४१०॥
विन्नवइ तओ तुब्भेहिं नाह ! पुहईवईहिं महमेवं । देसंतरिओ काउं परिभविओ ईसरेण दढं ॥४११॥
जम्हा पओससमए सामि ! अहं आगओ विदेसाओ । इच्चाइवइयरं निसुणिऊण सव्वं पि तेणुत्तं ॥४१२॥
कोवभरभिउडिभासुरभालयलो भणइ भूवई रे रे ! । आणेह मज्झ पुरओ बंधित्तु तयं दुरायारं ॥४१३॥

आबद्धपरिकरः स विद्युदुत्क्षिप्तैः प्रवरकरणैः । सर्वानपि हु प्राकारानतिक्रामति यावत्तावदक्का ॥ ४०० ॥
नूनं वीरवरिष्ठो गरिष्ठवंशोद्भवोऽयं कोऽपि ॥ ततो भवेत् कार्यसिद्धिरिति चिन्तयित्वा प्रतिनिर्वृता सा ॥ ४०१ ॥
इतरोऽपि दन्तवलभिं गवाक्षमार्गेणारोहति तस्याः । अत्रान्तरे कुमारी तं दृष्ट्वा चिन्तयत्येवम् ॥ ४०२ ॥
किं वा करोत्येष ? किं वा जल्पति ? चिन्तयित्वा ततः । प्रावरणपिहितगात्रा सुप्ता साऽलिक निद्रया ॥ ४०३ ॥
ततोऽमरदत्तमित्रस्तादृशरुपां तकांद् दृष्ट्वा । गृहणाति वामकरात् कटकं नरनाथनामाङ्कम् ॥ ४०४ ॥
कृष्ट्वा ततश्चछूरिकां लाञ्छित्वा तस्या दक्षिणमुरु । ततः पूर्वोक्तक्रमेण निःसृतः झटिति जम्पाभिः ॥ ४०५ ॥
ततो देवकुले गत्वा सुप्तो निजबुद्धिविभवपरितुष्टः । परिचिन्तयति कुमार्यपि खल्वहो ! अयं कोऽप्यतिदक्षः ॥ ४०६ ॥
गृहीत्वा रत्नकटकमुरू लञ्छित्वैष निःसृतः । तत्सुष्ठु कृतं न मया यन्न कृता तस्य प्रतिपत्तिः ॥ ४०७ ॥
इति चिन्तयित्वा कुमारी सुप्ता रजनीविरामसमये । इतरोऽपि साहुलकरः समागतो राजद्वारे ॥ ४०८ ॥
पुत्कुर्वन्नन्यायमेषः आकारितः पृथिवीपतिना । प्रभणति सम्भ्रान्तमना विज्ञप्तिं देव ! निशृणु ॥ ४०९ ॥
धरणितललुलितशीर्षः प्रणम्य यावत्संस्थितस्तावत् । राज्ञा नयनोत्क्षेपेण प्रभणितो विज्ञापयेति ॥ ४१० ॥
विज्ञापयति ततो युष्मद्धि र्नाथ ! पृथिवीपतिभि र्ममैवम् । देशान्तरिकः कृत्वा परिभवित ईश्वरेण दृढम् ॥ ४११ ॥
यस्मात् प्रदोषसमये स्वामिन् ! अहमागतो विदेशात् । इत्यादिव्यतीकरं निःश्रुत्य सर्वमपि तेनोक्तम् ॥ ४१२ ॥
कोपभ्रभृकुटिभासुरभालतलो भणति भूपति रे रे ! आनयत मम पुरतो बद्ध्वा तकम् दुराचारम् ॥ ४१३ ॥

आएसो त्ति भणित्ता संचलिओ जाव भडयणो ताव । तं नाउं सिग्घं चिय दविणकरो ईसरो पत्तो ॥४१४॥
विन्नवइ देव ! एयस्स दिन्नमद्धं धणस्स सेसं तु । संपइ देमि जमज्ज वि नो दिन्नं तं निसामेहि ॥४१५॥
तम्मि समयम्मि सामिय ! किं मडयं नेमि ? अहव एयस्स । दीणारे देमि ? सयं जुत्ता-ऽजुत्तं विचारेसु ॥४१६॥
अवरं च वासरतिगं लोयायारेण संठिओ सामि ! । एसो इह उवणीयं संपइ गिण्हेउ नियदविणं ॥४१७॥
मित्ताणंदो राएण पभणिओ भद्द ! गिण्हसु सदव्वं । कारणवसेण जम्हा ठिओ इमो ता अदोसो त्ति ॥४१८॥
एएण धुत्तिओ नरवई वि धुत्तेणमिइ विचिंतेउं । मित्ताणंदो घेत्तुं नियदविणं तं विसज्जेइ ॥४१९॥
उच्छलियकोउहल्लेण राइणा पुच्छिओ कहं तुमए ? । जोइणिवीढे मारीउवहुयं रक्खियं मडयं ॥४२०॥
अवहियहियओ होऊण नाह ! निसुणेहि भणइ इयरो वि । साहेमि तयमसेसं जं वित्तं मज्झ रयणीए ॥४२१॥
चिंतेमि मडयमारीभयमेयं कह णु नित्थरिस्सामि ? । हुं नायमप्पमत्तस्स किल भयं पभवइ न किं पि ॥४२२॥
इय चिंतिऊण आबद्धपरियरो कड्ढिऊणमसिधेणुं । जा चिट्ठामि दसदिसं पेच्छंतो ता गए पहरे ॥४२३॥
फेक्कारुग्गिन्नजलंतजलणजालाकरालमुहकुहरा । परिपिक्ककलमपिंगलनयणपहाछुरियदिसिविवरा ॥४२४॥
घोरसिवारिंछोली समागया हक्किया मए जाव । सहस त्ति ता पणट्ठा सीहस्स करेणुमाल व्व ॥४२५॥
एत्थंतरे नरेसर ! बीए पहरम्मि धूसरसरीरो । कयमुंडमालवेसो पिंगलकेसो चिबिडनासो ॥४२६॥
नियमुहकुहरविणिग्गयहुयवहजालावलीहिं भुंजित्ता । उक्कत्तिऊण नियखंधमडयमंसाइं भक्खंतो ॥४२७॥

आदेश इति भणित्वा सञ्चलितो यावद्भटजनस्तावत् । तन्नीत्वा शीघ्रं चैव द्रविणकर ईश्वरः प्राप्तः ॥ ४१४ ॥
विज्ञापयति देव ! एतस्य दत्तमर्धं धनस्य शेषं तु । सम्प्रति ददामि यदद्यापि न दत्तं तन्निशामय ॥ ४१५ ॥
तस्मिन् समये स्वामिन् ! किं मृतकं नयामि ? अथवैतस्य । दीनारान् दद्मि ? स्वयं युक्ता-युक्तं विचारय ॥ ४१६ ॥
अपरं च वासरत्रिकं लोकाचारेण संस्थितः स्वामिन् ! । एष इहोपनीतं सम्प्रति गृह्णातु निजद्रविणम् ॥ ४१७ ॥
मित्रानन्दो राज्ञा प्रभणितो भद्र ! गृहाण स्वद्रव्यम् । कारणवशेन यस्मात् स्थितोऽयं ततोऽदोष इति ॥ ४१८ ॥
एतेन धूर्ततो नरपतिरपि धूर्तेनेति विचिन्त्य । मित्रानन्दो गृहीत्वा निजद्रविणं तं विसर्जयति ॥ ४१९ ॥
उच्छलितकौतूहलेन राज्ञा पृष्टः कथं त्वया ? । योगिनिपीठे मार्युपद्रुतं रक्षितं मृतकम् ॥ ४२० ॥
अवहितहृदयो भूत्वा नाथ ! निश्रुणु भणतीतरोऽपि । कथयामि तकदशेषं यद्वृत्तं मम रजन्याम् ॥ ४२१ ॥
चिन्तयामि मृतकमारीभयमेतत् कथं नु निस्तरिष्यामि ? । हुं ज्ञातमप्रमत्तस्य किल भयं प्रभवति न किमपि ॥ ४२२ ॥
इति चिन्तयित्वाऽऽबद्धपरिकरः कृष्ट्वासिधेनुम् । यावत्तिष्ठामि दशदिशं प्रेक्षमाणस्तावद्गते प्रहरे ॥ ४२३ ॥
फेत्कारोद्गीर्णज्वलज्जवलनज्वालाकरालमुखकुहरा । परिपक्वकलमपिङ्गलनयनप्रभाछूरितदिग्विवरा ॥ ४२४ ॥
घोरशिवापङ्क्तिः समागता प्रेरिता मया यावत् । सहसेति तावत्प्रणष्टा सिंहात् करेणुमालेव ॥ ४२५ ॥
अत्रान्तरे नरेश्वर ! द्वितीये प्रहरे धूसरशरीरः । कृतमुण्डमालवेशः पिङ्गलकेशश्चिपिटनासः ॥ ४२६ ॥
निजमुखकुहरविनिर्गत हुतवहज्वालावलिभि र्भृष्ट्वा । उत्कर्त्य निजस्कन्धमृतकमांसानि भक्ष्यमाणः ॥ ४२७ ॥

पप्फोडंतो बंभंडखंडयं पायद्दुररवेण । अट्टट्टहासभीसणपिसायविसरो समुब्भूओ ॥४२८॥
करकलियतरलछुरिएण भेसिओ निब्भएण जाव मए । सहस त्ति ता पणट्ठो दिणमणिणो तिमिरनियरो व्व ॥४२९॥
तो देव ! तइयपहरे समागया डाइणीउ उड्डमरा । फेक्कारनियरपूरियदियंतरा हक्कियाउ मए ॥४३०॥
नट्ठाउ जहा उप्पन्ननाणिणो घाइकम्मपगडीओ । ता पहु ! तुरिए पहरे जं जायं तं निसामेहिं ॥४३१॥
वररयणघडियआहरणकिरणपब्भारहरियतमपसरा । उत्तत्तकणयभासुरतणुप्पहा कामधरिणि व्व ॥४३२॥
उव्वूढपढमजोव्वणमणोहरा तसिरहरिणसमनयणी । कंदप्पभिल्लभल्लि व्व मोहवल्लि व्व तरुणाण ॥४३३॥
रोलंव-गवल-कज्जलसामलओमुक्ककुंतलकलावा । तडितरलकत्तियकरा करालफेक्कारवरउद्दा ॥४३४॥
पभणंती रे ! अज्ज वि चिट्ठसि पाविट्ठ ! निट्ठुर निकिट्ठ ! । तो पुहइपाल ! पत्ता घोरा मारी मह सयासे ॥४३५॥
जा पच्चासन्नठिया ता गहिया वामकरयलम्मि मए । उम्मोडिऊण हत्थं पलायमाणा तओ झत्ति ॥४३६॥
दाहिणकरयलछुरियाए लंछिया दाहिणम्मि ऊरम्मि । तीए करकमलकडयं मज्झ करे च्चिय ठियं सामि ! ॥४३७॥
अद्दंसणी गया सा सहसा रविमंडलस्स रयणि व्व । एत्थंतरम्मि तरणी समुग्गओ तं निएउं व ॥४३८॥
एत्तो य परमसेसं पि साहियं तुम्ह तो भणइ राया । अहह ! अहो ! अच्छरियं अच्छरियमिमस्स पुरिसस्स ॥४३९॥
कोऊहलेण राया जंपइ दंसेसु मज्झ कडयं । तो उट्टियाए कड्ढित्तु अप्पए पुहइपालस्स ॥४४०॥
पेच्छेइ नरवरिंदो कडए उक्कीरियं नियं नाम । दट्ठूण तं विचिंतइ अहो ! किमेयं अघडमाणं ? ॥४४१॥

प्रस्फोटयन् ब्रह्माण्डखण्डं पाददर्दुररवेण । अट्टाट्टहास्यभीषणपिशाचविसरः समुद्भूतः ॥ ४२८ ॥
करकलिततरलछूरिकया भेषितो निर्भयेन यावन्मया । सहसेति तावत्प्रणष्टो दिनमणेस्तिमिरनिकर इव ॥ ४२९ ॥
ततो देव ! तृतीयप्रहरे समागता डाकीन्यः प्रबलाः । फेत्कारनिकरपूरितदिगन्तराः आकारिता मया ॥ ४३० ॥
नष्टा यथोत्पन्नज्ञानिनः घातिकर्मप्रकृतयः । ततः प्रभो ! तूर्ये प्रहरे यज्जातं तन्निशामय ॥ ४३१ ॥
वररत्नघटिताभरणकिरणप्राग्भारहततमःप्रसरा । उत्तप्तकनकभासुरतनुप्रभा कामगृहिणीव ॥ ४३२ ॥
उद्वोढप्रथमयौवनमनोहरा तरलहरिणसमनयनी । कन्दर्पभीलभल्लीव मोहवल्लीव तरुणानाम् ॥ ४३३ ॥
रोलम्ब-गवल-कज्जलश्यामलावमुक्तकुन्तलकलापा । तडित्तरलकर्तितकरा करालफेत्कारवरौद्रा ॥ ४३४ ॥
प्रभणन्ती रे ! अद्यापि तिष्ठसि पापिष्ठ ! निष्ठुर निकृष्ट ! । तदा पृथिवीपाल ! प्राप्ता घोरा मारी मम सकाशे ॥ ४३५ ॥
यावत्प्रत्यासन्नस्थिता तावद्गृहीता वामकरतले मया । उन्मोट्य हस्तं पलायमाना ततो झटिति ॥ ४३६ ॥
दक्षिणकरतलछूरकिया लञ्छिता दक्षिणऊरौ । तस्याः करकमलकटकं मम करे चैव स्थितं स्वामिन् ! ॥ ४३७ ॥
अदर्शनी गता सा सहसा रविमण्डलाद्रजनीव । अत्रान्तरे तरणी समुद्गतस्तां दृष्टुमिव ॥ ४३८ ॥
इतश्च परमशेषमपि कथितं तव तदा भणति राजा । अहह ! अहो ! आश्चर्यमाश्चर्यमस्य पुरुषस्य ॥ ४३९ ॥
कौतूहलेन राजा जल्पति दर्शय मम तं कटकम् । तत उष्ट्रिकायाः कृष्ट्वार्पयति पृथिवीपालस्य ॥ ४४० ॥
प्रेक्षते नरवरेन्द्रः कटक उत्कीरितं निजं नाम । दृष्ट्वा तं विचिन्तयत्यहो ! किमेतदघटमानम् ? ॥ ४४१ ॥

जम्हा कुमरीए करे पुरा पिणद्धं इमं मए आसि । ता किं नारीहत्थे चडियं अहवा वि सा मारी ॥४४२॥
जइ एरिसाए मारीए कारिया रयणमंजरी कुमरी । ता नूण मयंकमणी जलणफुलिंगे समुग्गिरइ ॥४४३॥
इय चिंतिऊण राया सरीरचिंताछलेण तं दट्ठुं । जा जाइ रयणमंजरिपासे ता नियइ तं सुत्तं ॥४४४॥
अवरं च वामपाणी सुन्नं कडएण दाहिणोरुं च । बद्धं पट्टेण निरिक्खिऊण वज्जेण पहओ व्व ॥४४५॥
चिंतेइ निवो पावाए मज्झ वंसो कलंकिओ चेव । तो निग्गहेमि एयं नयरिजणं भक्खइ न जाव ॥४४६॥
इय चिंतिउं वलित्ता पुणरवि सीहासणे समुवविट्ठो । मित्ताणंदं पुच्छइ किं केवलमेव तुह सत्तं ? ॥४४७॥
विप्फुरइ अहव तुह कावि मंतसत्ती वि ? तयणु सो भणइ । नरनाह ! मज्झ नियकुलकमागओ अत्थि मंतो वि ॥४४८॥
तो एगंते काऊण भूवई भणइ भद्द ! मह कुमरी । नियमेण घोरमारी ता तीए विणिग्गहं कुणसु ॥४४९॥
विन्नवइ सो वि सामिय ! सज्झमसज्झं ति तं परिक्खेमि । नरवइणाऽणुन्नाओ तओ गओ तीए गेहम्मि ॥४५०॥
किं रयणिवीरपुरिसो समेई ? अह तायपेसिओ कोइ ? । इय चिंतिऊण कुमरी अब्भुट्ठिय आसणं देइ ॥४५१॥
जंपइ मित्ताणंदो कुमारि ! संभरसि रयणिवुत्तंतं ? । अवरं च घोरमारीरूवो जाओ तुह कलंको ॥४५२॥
नरवइणा वि हु तं मज्झ अप्पिया गरुयनिग्गहनिमित्तं । एयं पुण सव्वं पि हु तुज्झ निमित्तं मए विहियं ॥४५३॥
ता जइ करेसि करुणं आसाबंधं च नेसि सहलत्तं । ता एहि जेण इमिणा ववएसेणं तुमं नेमि ॥४५४॥
अह नाऽऽगच्छसि तो तुह रउद्दमारीकलंकमवणेमि । तं पि मह जीवियव्वे संपइ सलिलंजलिं देहि ॥४५५॥

यस्मात् कुमार्याः करे पुरा पिनद्धमिदं मयासीत् । ततः किं नारीहस्तमारुढमथवापि सा मारी ॥ ४४२ ॥
यदीदृश्या मार्या कारिता रत्नमञ्जरी कुमारी । ततो नूनं मृगाङ्कमणी ज्वलनस्फुर्लिगान् समुद्गीरति ॥ ४४३ ॥
इति चिन्तयित्वा राजा शरीरचिन्ताच्छलेन तां द्रष्टुम् । यावद्याति रत्नमञ्जरिपार्श्वे तावत्पश्यति तां सुप्ताम् ॥ ४४४ ॥
अपरं च वामपार्णिं शून्यं कटकेन दक्षिणोरुं च । बद्धं पट्टेन निरीक्ष्य वज्रेण प्रहत इव ॥ ४४५ ॥
चिन्तयति नृपः पापया मम वंशः कलङ्कितश्चैव । ततो निगृहणाम्येनां नगरिजनं भक्षते न यावत् ॥ ४४६ ॥
इति चिन्तयित्वा वलित्वा पुनरपि सिंहासने समुपविष्टः । मित्रानन्दं पृच्छति किं केवलमेव तव सत्त्वम् ? ॥ ४४७ ॥
विस्फुरत्यथवा तव कापि मन्त्रशक्तिरपि ? तदनु स भणति । नरनाथ ! मम निजकुलक्रमागतोऽस्ति मन्त्रोऽपि ॥ ४४८ ॥
तत एकान्ते कृत्वा भूपति र्भणति भद्र ! मम कुमारी । नियमेन घोरमारी ततस्तस्या विनिग्रहं कुरु ॥ ४४९ ॥
विज्ञापयति सोऽपि स्वामिन् ! साध्यमसाध्यमिति तां परीक्षे । नरपतिनाऽनुज्ञातस्ततो गतस्तस्या गृहे ॥ ४५० ॥
किं रजनीवीरपुरुषः समेति ? अथ तातप्रेषितः कोऽपि ? । इति चिन्तयित्वा कुमार्यभ्युत्थायाऽऽसनं ददाति ॥ ४५१ ॥
जल्पति मित्रानन्दः कुमारि ! स्मरसि रजनिवृत्तान्तम् ? । अपरं च घोरमारिरुपो जातस्तव कलङ्कः ॥ ४५२ ॥
नरपतिनापि हु त्वं ममार्पिता गुरुकनिग्रहनिमित्तम् । एतत्पुनः सर्वमपि हु तव निमित्तं मया विहितम् ॥ ४५३ ॥
ततो यदि करोषि करुणामाशाबन्धं च नयसि सफलत्वम् । तत एहि येनानेन व्यपदेशेन त्वां नयामि ॥ ४५४ ॥
अथ नागच्छसि तदा तव रौद्रमारीकलङ्कमपनयामि । तदपि मम जीवितव्ये सम्प्रति सलिलाञ्जलिं देहि ॥ ४५५ ॥

चिंतेइ तओ कुमरी सप्पुरिसो एस मं पयंपेइ । ता जामि अहं अहवा न व त्ति दोलायए हिययं ॥४५६॥
अहवा रक्खेमि इमं इण्हिं गुणरयणरोहणगिरिंदं । इय चिंतिऊण पभणइ तुह जीयं वल्लहं मज्झ ॥४५७॥
ता भण जं कायव्वं फेक्कारसु तुमं ति तेण सा भणिया । मह हुंफुडु त्ति भणिए सरिसवनिक्खेवसमयसम्मि ॥४५८॥
इय संकेयं काउं समागओ भणइ देव ! मह सज्झा । किंतु समप्पसु जाणं जेण निसाए मुयइ देसं ॥४५९॥
अह कह वि देसमज्जे गच्छंतीए समुग्गई सूरो । ता अवलोइयमेत्ता मारी एसा तह च्चेय ॥४६०॥
भीएण पुहइपालेण अप्पिया पवणवेगवडवा से । अत्थमिए दिवसयरे वित्थरिए तिमिरपब्भारे ॥४६१॥
काऊण सिहाबंधं अभिमंतिय सरसवेहिं ताडित्ता । सा फेक्कारकराला वडवाए चडाविया तेण ॥४६२॥
हरिस-विसाय-महाभयविवसेण नरेसरेण सह चलिओ । उग्घाडाविय पुरवरपओलिदारेण नीहरिओ ॥४६३॥
अक्कंतनयरिपरिसरधरवीढो पभणिओ कुमारीए । आरुहसु वडवपिट्ठं सो जंपइ जामि पाएहिं ॥४६४॥
थोवंतरे पुणो वि हु भणिओ नाऽऽरुहइ कहइ परमत्थं । आणीया जह न तुमं नियकज्जे किंतु मह मित्तो ॥४६५॥
नामेण अमरदत्तो तुह पडिरूवेण मोहिओ अहियं । मह हिययवल्लहो सो तस्स निमित्तं तमाणीया ॥४६६॥
ता मित्तकलत्तेणं सह निवसिज्जइ न एगठाणम्मि । इय निसुणिऊण कुमरी हरिसियहियया विचिंतेइ ॥४६७॥
एयस्स अहो ! मित्ते वच्छल्लं अहह ! नीइकुसलत्तं । अहह ! महापुरिसत्तं परोवयारित्तणं अहह ! ॥४६८॥
अवरं च अमरदत्तस्स नाममेत्तेण पुलइयसरीरा । सा चिंतइ सुहहेऊ मज्झ कलंको वि संजाओ ॥४६९॥

चिन्तयति ततः कुमारी सत्पुरुष एष मां प्रजल्पति । ततो याम्यहमथवा नवेति दोलायते हृदयम् ॥ ४५६ ॥
अथवा रक्षामीममिदानीं गुणरत्नरोहणगिरीन्द्रम् । इति चिन्तयित्वा प्रभणति तव जीवितं वल्लभं मम ॥ ४५७ ॥
ततो भण यत्कर्तव्यं फुत्कुरू त्वमिति तेन सा भणिता । मम हुंकुडु इति भणिते सर्षपनिक्षेपसमये ॥ ४५८ ॥
इति संकेतं कृत्वा समागतो भणति देव ! मम साध्या । किन्तु समर्पय यानं येन निशि मुञ्चति देशम् ॥ ४५९ ॥
अथ कथमपि देशमध्ये गच्छन्त्याः समुद्गति सूर्यः । तदावलोकितमात्रा मार्येषा तथा चैव ॥ ४६० ॥
भीतेन पृथिवीपालेनार्पिता पवनवेगवडवा तस्य । अस्तमिते दिवाकरे विस्तरिते तिमिरप्राग्भारे ॥ ४६१ ॥
कृत्वा शिखाबन्धमभिमन्त्रितसर्षपैस्ताडयित्वा । सा फेत्कारकराला वडवामारोहिता तेन ॥ ४६२ ॥
हर्ष-विषाद-महाभयविवशेन नरेश्वरेण सह चलितः । उद्घाटय्य पुरवरप्रतोलिद्वारेण निःसृतः ॥ ४६३ ॥
आक्रान्तनगरिपरिसरधरापीठः प्रभणितः कुमार्या । आरोह वडवापृष्ठं स जल्पति यामि पादैः ॥ ४६४ ॥
स्तोकान्तरे पुनरपि भणितो नारोहति कथयति परमार्थम् । आनीता यथा न त्वं निजकार्ये किन्तु मम मित्रम् ॥ ४६५ ॥
नाम्नामरदत्तस्तव प्रतिरुपेण मोहितोऽधिकम् । मम हृदयवल्लभः स तस्य निमित्तं त्वमानीता ॥ ४६६ ॥
ततो मित्रकलत्रेण सह निवस्यते नैकस्थाने । इति निश्रुत्य कुमारी हर्षितहृदया विचिन्तयति ॥ ४६७ ॥
एतस्याहो ! मित्रे वात्सल्यमहह ! नीतिकुशलत्वम् । अहह ! महापुरुषत्वं परोपकारित्वमहह ! ४६८ ॥
अपरं चामरदत्तस्य नाममात्रेण पुलकितशरीरा । सा चिन्तयति सुखहेतु र्मम कलङ्कोऽपि सञ्जातः ॥ ४६९ ॥

अणवरयपयाणेहिं पाडलिपुत्तस्स परिसरे पत्ता । एत्तो य अमरदत्तो मित्ताणंदे गए देसे ॥४७०॥
चिंतेइ अहो ! अत्थाणरागिया अहह ! बुद्धिहीणत्तं । अणवेक्खियकारित्तं अहह ! महामोहमूढत्तं ॥४७१॥
जओ-
पाहाणघडियपडिमाणुरायरत्तेण किह मए मित्तो । विहिओ विएसअतिही अहह ! महामोहमूढेण ? ॥४७२॥
ससिविमलनियकुलक्कमपहपब्भट्ठेण किह मए मित्तो । विहिओ विएसअतिही अहह ! महामोहमूढेण ? ॥४७३॥
जणयसमसेट्ठिसिक्खं परिहरमाणेण किह मए मित्तो । विहिओ विएसअतिही अहह ! महामोहमूढेण ? ॥४७४॥
कंदप्पभिल्लभल्लीसल्लियहियएण किह मए मित्तो । विहिओ विएसअतिही अहह ! महामोहमूढेण ? ॥४७५॥
कह कह वि सरीरठिइं करेइ सो सेट्ठिणोवरोहेण । निहुयनिहुयं रुयंतो मुत्ताहलथूलअंसूहिं ॥४७६॥
अह कहमवि संपत्ते दुमासपज्जंतअवहिदिवसम्मि । आबद्धपंजलिउडो जंपइ सेट्ठिं अमरदत्तो ॥४७७॥
ताय ! खमेज्जसु सव्वं अवरद्धं तुज्झ जं मए किं पि । नियजणयनिव्विसेसो संजाओ मज्झ तं जम्हा ॥४७८॥
जेण न विज्जइ मित्तो मित्ताणंदो जयममि जीवंतो । जा अमणुन्नं न सुणेमि तस्स ता देहि मे कट्ठे ॥४७९॥
तं निसुणिऊण सेट्ठी कुमरमहादुक्खसल्लियसरीरो । सो पउरजणसमेओ विलवंतो रयइ कट्ठाइं ॥४८०॥
तो पउरजणो सव्वो कयंजली पणमिरो कुणइ लल्लिं । अत्थमइ जाव तरणी ता कुमर ! तुमं विलंबेसु ॥४८१॥
अवरो वि जणो मंदिर-देवउल-पयार-तरुबरारूढो । मित्ताणंदागमणं अणिमिसनयणो पलोएइ ॥४८२॥

अनवरतप्रयाणैः पाटलिपुत्रस्य परिसरे प्राप्तौ । इतश्चामरदत्तो मित्रानन्दे गते देशे ॥ ४७० ॥
चिन्तयत्यहो ! अस्थानरागिताहह ! बुद्धिहीनत्वम् । अनपेक्षितकारित्वमहह ! महामूढत्वम् ॥ ४७१ ॥
यतः -
पाषाणघटितप्रतिमानुरागरक्तेन कथं मया मित्रः । विहितो विदेशातिथिरहह ! महामोहमूढेन ? ॥ ४७२ ॥
शशिविमलनिजकुलक्रमपथप्रभ्रष्टेन कथं मया मित्रम् । विहितो विदेशातिथिरहह ! महामोहमूढेन ? ॥ ४७३ ॥
जनकसमश्रेष्ठिशिक्षां परिहरता कथं मया मित्रम् । विहितो विदेशातिथिरहह ! महामोहमूढेन ? ॥ ४७४ ॥
कन्दर्पभिलभल्लीशल्यितहृदयेन कथं मया मित्रम् । विहितो विदेशातिथिरहह ! महामोहमूढेन ? ॥ ४७५ ॥
कथं कथमपि शरीरस्थितिं करोति स श्रेष्ठिन उपरोधेन । निर्भृतनिभृतं रुदन् मुक्ताफलस्थूलाश्रुभिः ॥ ४७६ ॥
अथ कथमपि सम्प्राप्ते द्विमासपर्यन्तावधिदिवसे । आबद्धप्राञ्जलिपूटो जल्पति श्रेष्ठिनममरदत्तः ॥ ४७७ ॥
तात ! क्षमस्व सर्वमपराधं तव यन्मया किमपि । निजजनकनिर्विशेषः सञ्जातो मम त्वं यस्मात् ॥ ४७८ ॥
येन न विद्यते मित्रं मित्रानन्दो जगति जीवन् । यावदमनोज्ञं न शृणोमि तस्य तावद्देहि मे काष्ठानि ॥ ४७९ ॥
तन्निश्रुत्य श्रेष्ठी कुमारमहादुःखशल्यितशरीरः । स पौरजनसमेतो विलपन् रचयति काष्ठानि ॥ ४८० ॥
तदा पौरजनः सर्वः कृताञ्जलिं प्रणमन् करोति प्रशंसाम् । अस्तमेति यावत्तरणी तावत्कुमार ! त्वं विलम्बय ॥ ४८१ ॥
अपरोऽपि जनो मन्दिर-देवकुल-प्राकार-तरुवरारुढः । मित्रानन्दागमनमनिमिषनयनो प्रलोकते ॥ ४८२ ॥

---

१. करइ रं ।

अह दिवससेससमए समागओ सो न जाव ता कुमरो । पज्जालाविय कट्ठे ण्हाइत्तु तओ सचेलो वि ॥४८३॥
जा देइ तत्थ झंपं जलंतजालाकरालजलणम्मि । ता हाहारवपुव्वं वारेइ जणो भणइ एवं ॥४८४॥
एगोऽह आसवारो एगो पुरिसो समेइ सिग्घगई । इय जंपंताण तओ मित्ताणंदो तहिं पत्तो ॥४८५॥
भणइ य एसा तुह चित्तचोरिया कुणसु निग्गहमिमीए । नियपाणिपीडणेणं ति तयणु आलिंगए मित्तं ॥४८६॥
तो अमरदत्तकुमरो उच्छलियातुच्छहरिसपब्भारो । आभासिऊण पुच्छइ समग्गमवि तीए वुत्तंतं ॥४८७॥
कन्नंतपत्तनयणिं छणरयणीयरसमाणवरवयणिं । उब्भिज्जमाणसिहिणिं मणहरकलहंसगइगमणिं ॥४८८॥
अवलोयंतो चिट्ठइ सव्वंगं रयणमंजरिं जाव । सेट्ठी वि तुट्ठहियओ सविम्हयं चिंतए ताव ॥४८९॥
किं पुत्तलिया घडिया दट्ठूणं रयणमंजरिं कुमरिं ? । पुत्तलियदंसणाओ अहव इमा निम्मिया विहिणा ? ॥४९०॥
अह सेट्ठी उट्ठित्ता कट्ठे फेडित्तु अमरदत्तस्स । कारेइ पाणिगहणं सुमुहुत्ते तम्मि समयम्मि ॥४९१॥
इओ य-
तत्थ अपुत्तो राया पंचत्तं पाविओ गयदिणम्मि । रायनिमित्तं दिव्वाइं पंच अहियासए लोओ ॥४९२॥
ताणि तओ तिय-चच्चर-चउक्क-रच्छासु परिभमंताणि । आगंतुं नवपरिणीयकुमरपासम्मि पत्ताणि ॥४९३॥
गलगज्जित्ता अहिसिंचिऊण वरकणयकलससलिलेण । तं सुंडादंडेणं हत्थी संठवइ नियखंधे ॥४९४॥
छत्तेण अलंकरिओ ढलिए सयमेव चामरे तस्स । हयहेसारवपुव्वं जयतूररवो समुच्छलिओ ॥४९५॥

अथ दिवसशेषसमये समागतः स न यावत्तावत् कुमारः । प्रज्वालय काष्ठानि स्नात्वा ततः सचेलोऽपि ॥ ४८३ ॥
यावद् ददाति तत्र झम्पां ज्वलज्ज्वालाकरालज्वलने । तावद् हाहारवपूर्वं वारयति जनो भणत्येवम् ॥ ४८४ ॥
एकोऽथाश्ववार एकः पुरुषः समेति शीघ्रगतिः । इति जल्पतां ततो मित्रानन्दस्तत्र प्राप्तः ॥ ४८५ ॥
भणति चैषा तव चित्तचोरिका कुरु निग्रहमेतस्याः । निजपाणिपीडनेनेति तदन्वालिङ्गति मित्रम् ॥ ४८६ ॥
ततोऽमरदत्तकुमार उच्छलितातुच्छहर्षप्राग्भारः । आभाष्य पृच्छति समग्रमपि तस्या वृत्तान्तम् ॥ ४८७ ॥
कर्णान्तप्राप्तनयनीं क्षणरजनीकरसमानवरवदनीम् । उद्भिद्यमानशिखिनींमनोहरकलहंसगतिगमनीम् ॥ ४८८ ॥
अवलोकयंस्तिष्ठति सर्वाङ्गं रत्नमञ्जरिं यावत् । श्रेष्ठयपि तुष्टहृदयः सविस्मयं चिन्तयति तावत् ॥ ४८९ ॥
किं पुत्तलिका घटिता दृष्ट्वा रत्नमञ्जरिं कुमारिम् ? । पुत्तलिकादर्शनादथवेमा निर्मिता विधिना ? ॥ ४९० ॥
अथ श्रेष्ठयुत्थाय काष्ठानि स्फेटित्वाऽमरदत्तस्य । कारयति पाणिग्रहणं सुमुर्हूते तस्मिन् समये ॥ ४९१ ॥
इतश्च -
तत्रापुत्रो राजा पञ्चत्वं प्राप्तो गतदिने । राजानिमित्तं दिव्यानि पञ्चाधिवासते लोकः ॥ ४९२ ॥
तानि ततस्त्रिक-चत्वर-चतुष्क-रथ्यासु परिभ्रमन्ति । आगत्य नवपरिणीतकुमारपार्श्वे प्राप्तानि ॥ ४९३ ॥
गलगर्जित्वाभिषिञ्च्य वरकनककलशसलिलेन । तं सुण्डादण्डेन हस्ती संस्थापयति निजस्कन्धे ॥ ४९४ ॥
छत्रेणालङ्कृतो धरितेन स्वयमेव चामरेण तस्य । हयहेषारवपूर्वं जयतूर्यरवः समुच्छलितः ॥ ४९५ ॥

पणमिज्जन्तो मंडलिय -मंति-सामंत-सुहडविंदेहिं । बंदियणुग्घुट्ठजओ तओ पयट्टो पुरपहम्मि ॥४९६॥
एत्थंतरम्मि अहिणवनरनाहपवेसहरियहिययाओ । पभणंति पहिट्ठाओ परोप्परं पुरपुरंधीओ ॥४९७॥
अह ताण आह एक्का सकयत्था रयणमंजरी देवी । जीए रईए व दइओ संपत्तो कुसुमबाणो व्व ॥४९८॥
अह अवरा हरिणच्छी पभणइ सिरिरयणसारसेट्ठी वि । सकयत्थो जेण हले ! जणएण व रक्खिओ कुमरो ॥४९९॥
मित्ताणंदं वन्नह हले ! किमन्नेण ? जंपए कावि ? । नियमित्तजीवियकए परिभमिओ जो विदेसेसु ॥५००॥
इच्चाइ हरिणनयणीपभणियवयणाइं सो निसामेंतो । पविसिय नरिंदभवणं पवरे सीहासणे विसइ ॥५०१॥
तो मंति-मंडलेसर-सामंतिहिं सुवन्नकलसेहिं । अहिसिंचिओ कुमारो वज्जिरवरतूरसद्देहिं ॥५०२॥
मित्ताणंदो मंतीपयम्मि संठाविओ तह य सेट्ठी । नियजणयपए सिरिरयणमंजरी अग्गमहिसि त्ति ॥५०३॥
अह विसयसुहपरव्वसचित्ताणं ताण जाइ जा कालो । मित्ताणंदेण तओ विन्नत्तो नरवई एवं ॥५०४॥
तं देव ! मडयवयणं अज्ज वि हियए खुडुक्कए मज्झ । तो गंतूणं दूरे किं पि हु कालं विलंवेमि ॥५०५॥
तो भणइ निवो मह बाहुवज्जपंजरगयस्स तुह न भयं । ता मित्त ! असरिसेणं किं देसंतरकिलेसेणं ? ॥५०६॥
इय रयणमंजरीए वुत्तो वि हु जाव नो धिइं लहइ । तो तेण पेसिओ सो भडयणजूत्तो वसंतपुरे ॥५०७॥
अणुगंतूणं कइ वि हु पयाणए भणइ भडयणं राया । रे रे ! मह कहियव्वा सुद्धी पत्तस्स मित्तस्स ॥५०८॥
आलिंगिऊण मित्तं पुहइवई दुम्मणो पडिनियत्तो । मित्ताणंदविरहिओ गमेइ कालं निराणंदो ॥५०९॥

प्रणम्यमानो मण्डलिक - मन्त्रि - सामन्त - सुभटवृन्दैः । वन्दिजनोद्घुष्टजयस्ततः प्रवृत्तः पुरपथि ॥ ४९६ ॥
अत्रान्तरे ऽभिनवनरनाथप्रवेशहृतहृदयाः । प्रभणन्ति प्रहृष्टाः परस्परं पुरपुरन्ध्यः ॥ ४९७ ॥
अथ तेषामाहेका सकृतार्था रत्नमञ्जारिर्देवी । यया रत्येव दयितः सम्प्राप्तः कुसुमबाण इव ॥ ४९८ ॥
अथापरा हरिणाक्षी प्रभणति श्रीरत्नसारश्रेष्ठयपि । सकृतार्थो येन हले ! जनकेनेव रक्षितः कुमारः ॥ ४९९ ॥
मित्रानन्दं वर्णयत हले ! किमन्येन ? जल्पति कापि ? । निजमित्रजीवितकृते परिभ्रान्तो यो विदेशेषु ॥ ५०० ॥
इत्यादि हरिणनयनीप्रभणितवचनानि स निशमयन् । प्रविश्य नरेन्द्र भवनं प्रवरे सिंहासने विशति ॥ ५०१ ॥
ततो मन्त्रि - मण्डलेश्वर - सामन्तैः सुवर्णकलशैः । अभिषिक्तः कुमारो वाद्यद्वरतूर्यशब्दैः ॥ ५०२ ॥
मित्रानन्दो मन्त्रिपदे संस्थापितस्तथा च श्रेष्ठी । निजजनकपदे श्रीरत्नमञ्जर्यग्रमहिषीति ॥ ५०३ ॥
अथ विषयसुखपरवशचित्तानां तेषां याति यावत्कालः । मित्रानन्देन ततो विज्ञप्तो नरपतिरेवम् ॥ ५०४ ॥
तं देव ! मृतकवचनमद्यापि हृदये शल्यते मम । ततो गत्वा दूरे किमपि हु कालं विलम्बयामि ॥ ५०५ ॥
ततो भणति नृपो मम बाहुवज्रपञ्जरगतस्य तव न भयम् । ततो मित्र ! असदृशेन किं देशान्तरक्लेशेन ? ॥ ५०६ ॥
इति रत्नमञ्जर्योक्तोऽपि हु यावन्न धृतिं लभते । तदा तेन प्रेषितः स भटजनयुक्तो वसन्तपुरे ॥ ५०७ ॥
अनुगत्य कत्यपि हु प्रयाणके भणति भटजनं राजा । रे रे ! मम कथयितव्या शुद्धिः प्राप्तस्य मित्रस्य ॥ ५०८ ॥
आलिङ्ग्य मित्रं पृथिवीपति दुर्मनाः प्रतिनिवृत्तः । मित्रानन्दविरहितो गमयति कालं निरानन्दः ॥ ५०९ ॥

जाव न कोवि हु मित्तस्स कहइ वत्तं पि पडिनियत्तेउं । पेसित्तु तओ पुरिसे संभालइ तो तहिं नत्थि ॥५१०॥
अह अन्नया नरिंदो उज्जाणगयं मुणित्तु मुणिनाहं । सिरिधम्मघोससूरिं पणमइ अवरोहसंजुत्तो ॥५११॥
उवविट्ठे नरनाहे धम्मकहं कहइ मुणिगणाहिवई । नरनाह ! इह असारे संसारे सारया नत्थि ॥५१२॥
तथा हि-
खरपवणपहयपोइणिदलग्गजलबिंदुंचंचलं जीयं । लोललवलीदलावलिचवलतरा पेम्मपरिणामा ॥५१३॥
नवजलहरसिहरावलिविलसिरतडिलेहचंचला लच्छी । करिकन्नतालतरला नराण नवजोव्वणारंभा ॥५१४॥
अणिवारिज्जप्पसरा सुहा-ऽसुहा कम्मपरिणई जेण । ता जिणधम्मं मोत्तुं सरणं न हु किं पि संसारे ॥५१५॥
एत्थंतरे नरिंदेण पुच्छिओ पणमिऊण मुणिनाहो । पत्तो मित्ताणंदो किमवत्थं संपयं सामि ! ॥५१६॥
तो भणइ मुणिवरिंदो निसुणसु नरनाह ! मित्तवुत्तंतं । लंघित्तु दूरदेसं वणम्मि आवासिओ जाव ॥५१७॥
भोयणसमए भीमा भिल्लाणं ताव निवडिया धाडी । मोत्तुं मित्ताणंदं भएण नट्ठा भडा सव्वे ॥५१८॥
सो वि हु पलायमाणो तिसिओ पत्तो सरम्मि सिसिरजले । विहियसलिलावगाहो सुत्तो नग्गोहतरुमूले ॥५१९॥
तत्ते अकालदारुणकसिणभुयंगेण तत्थ सो डक्को । दिट्ठो य घोरगरलेण घारिओ तावसेण तओ ॥५२०॥
नह-नयण-दसणनीलत्तणेण नाऊण नागदट्ठो त्ति । अहिसित्तो अभिमंतियसलिलेण समुट्ठिओ सहसा ॥५२१॥
साहेइ तस्स तावसमुणीसरो विसहरस्स वुत्तंतं । पुच्छइ य वच्छ ! तं कत्थ पत्थिओ कहसु एगागी ? ॥५२२॥

यावन्न कोऽपि हु मित्रस्य कथयति वार्तामपि प्रतिनिवर्त्य । प्रेष्य ततः पुरुषान् सम्भालयति तदा तत्र नास्ति ॥ ५१० ॥
यथान्यदा नरेन्द्र उद्यानगतं मुणित्वा मुनिनाथम् । श्रीधर्मघोषसूरिं प्रणमत्यन्तःपुरसंयुक्तः ॥ ५११ ॥
उपविष्टे नरनाथे धर्मकथां कथयति मुनिगणाधिपतिः । नरनाथ ! इहासारे संसारे सारता नास्ति ॥ ५१२ ॥
तथा हि -
खरपवनप्रहतपोमिनीदलाग्रजलबिन्दुचञ्चलं जीवितम् । लोललवलिदलावलिचपलतराः प्रेमपरिणामाः ॥ ५१३ ॥
नवजलधरशिखरावलिविलसित्तडिल्लेखाचञ्चला लक्ष्मीः । करिकर्णतालतरला नराणां नवयौवनारम्भा ॥ ५१४ ॥
अनिवार्यप्रसराशुभाशुभा कर्मपरिणतिर्येन । ततो जिनधर्मं मुक्त्वा शरणं न हु किमपि संसारे ॥ ५१५ ॥
अत्रान्तरे नरेन्द्रेण पृष्टः प्रणम्य मुनिनाथः । प्राप्तो मित्रानन्दः किमवस्थं सम्प्रति स्वामिन् ॥ ५१६ ॥
तदा भणति मुनिवरेन्द्रो निशृणु नरनाथ ! मित्रवृत्तान्तम् । लङ्घित्वा दूरदेशं वन आवासितो यावत् ॥ ५१७ ॥
भोजनसमये भीमा भिल्लानां तावन्निपतिता घाटी । मुक्त्वा मित्रानन्दं भयेन नष्टा भटाः सर्वे ॥ ५१८ ॥
सोऽपि हु पलायमानस्तृषितः प्राप्तः सरसि शिशिरजले । विहितसलिलावगाहः सुप्तो न्यग्रोधतरुमूले ॥ ५१९ ॥
ततोऽकालदारुणकृष्णभुजङ्गेन तत्र स दष्टः । दष्टश्च घोरगरलेण घारितस्तापसेन ततः ॥ ५२० ॥
नख-नयन-दशननीलत्वेन ज्ञात्वा नागदष्ट इति । अभिषिक्तोऽभिमन्त्रितसलिलेन समुत्थितः सहसा ॥ ५२१ ॥
कथयति तस्य तापसमुनीश्वरो विषधरस्य वृत्तान्तम् । पृच्छति च वत्स ! त्वं कुत्र प्रस्थितः कथयेकाकी ? ॥ ५२२ ॥

तो तेण तस्स पणमित्तु साहिओ पुव्ववइयरो सव्वो । आसीसं दाऊणं नियासमं तावसम्मि गए ॥५२३॥
चिंतेइ सुधीरेहिं वि विहिपरिणामो खलिज्जइ न जम्हा । मह मरणनासिरस्स वि समागयं दारुणं मरणं ॥५२४॥
जीवाविओ म्हि नवरं निक्कारिमपरमबंधुणा[1] रिसिणा । ता किं परिभमिएणं ? मित्तसयासम्मि वच्चमि ॥५२५॥
इय चिंतिउं पयट्ठो पाडलिपुत्तम्मि पच्छिमाहुत्तो । एत्थंतरम्मि निद्दयमाणसचोरेहिं सो गहिओ ॥५२६॥
नाइत्तयाण पासे विक्किणिओ तयणु ते वि नाइत्ता । नियदेसं वच्चन्ता संपत्ता नयरिमुज्जेणिं ॥५२७॥
आवासिया य बाहिं निसाओ छिद्दं लहित्तु सो नट्ठो । तो मडयवडं दट्ठुं धसक्किओ झत्ति हिययम्मि ॥५२८॥
उच्छलियमहाभयकंपमाणगत्तो पणट्ठधारिट्ठो[2] । किंकायव्वविमूढो पविसइ पायारखालेणं ॥५२९॥
तम्मि समयम्मि नयरी निरंतरं चोरहरियसव्वस्सं । जाणित्तु पुहइपालेण ताडिओ उब्भडतलारो ॥५३०॥
उवउत्तमणो सो तत्थ जाव जोएइ तक्करपवेसं । मित्ताणंदो खालेण पविसरो तेहिं ता दिट्ठो ॥५३१॥
धरिऊण तओ वालेहिं कड्ढिओ बंधिऊण पिट्टंति । निट्ठुरमुसुंढि-मोग्गर-कत्तरि-पन्हिप्पहारेहिं ॥५३२॥
रे रे पाविट्ठ ! निकिट्ठ ! दुट्ठ मुसिऊण नयरिमुज्जेणिं । किह छुट्टिसि ? त्ति भणिऊण नियभडे सो समाइसइ ॥५३३॥
उव्बंधह वडपायवसाहाए सिप्पसरियतीरम्मि । आएसाणंतरमेव तेहिं उप्पाडिओ सहसा ॥५३४॥
एत्थंतरम्मि चिंतइ मित्ताणंदो मणम्मि मह तइया । जं आसि मडयभणियं समागओ अवसरो तस्स ॥५३५॥
अवि कुवियवज्जपाणिप्पमुक्ककुलिसं पि रक्खिउं सक्का । न हु पुव्वभवसमज्जियसुहा-ऽसुहो कम्मपरिणामो ॥५३६॥

ततस्तेन तस्य प्रणम्य कथितः पूर्वव्यतीकरः सर्वः । आशीषं दत्त्वा निजाश्रमं तापसे गते ॥ ५२३ ॥
चिन्तयति सुधीरैरपि विधिपरिणामः स्खल्यते न यस्मात् । मम मरणनाशयतोऽपि समागतं दारुणं मरणम् ॥ ५२४ ॥
जीवितोऽस्मि नवरं निष्कारणपरमबन्धुना ऋषिणा । ततः किं परिभ्रान्तेन ? मित्रसकाशे व्रजामि ॥ ५२५ ॥
इति चिन्तयित्वा प्रवृत्तः पाटलिपुत्रे पश्चिमाभिमुखः । अत्रान्तरे निर्दयमानसचौरैः स गृहीतः ॥ ५२६ ॥
सांयत्रिकाणां पार्श्वे विक्रीतस्तदनु तेऽपि सांयत्रिकाः । निजदेशं व्रजन्तः सम्प्राप्ता नगरिमुज्जैनीम् ॥ ५२७ ॥
आवासिताश्च बहि र्निशायां छिद्रं लब्ध्वा स नष्टः । ततो मृतकवटं दृष्ट्वा धसक्कियो झटिति हृदये ॥ ५२८ ॥
उच्छलितमहाभयकम्पमानगात्रः प्रणष्टधार्ष्टयः । किंकर्तव्यव्यामूढः प्रविशति प्राकारखालेन ॥ ५२९ ॥
तस्मिन् समये नगरीं निरन्तरां चौराहृतसर्वस्वाम् । ज्ञात्वा पृथिवीपालेन ताडित उद्भटतालारक्षः ॥ ५३० ॥
उपयुक्तमनाः स तत्र यावत्पश्यति तस्करप्रवेशम् । मित्रानन्दः खालेन प्रविशंस्तैस्तावद् दृष्टः ॥ ५३१ ॥
धृत्वा ततो बालैः कृष्टो बद्ध्वा पिट्टयन्ति । निष्ठुरमुसुण्ढि-मुद्गर-कर्तरि-पार्ष्णिप्रहारैः ॥ ५३२ ॥
रे रे पापिष्ठ ! निकृष्ठ ! दुष्ट ! मुषित्वा नगरिमुज्जैनीम् । कथं छुटसि ? इति भणित्वा निजभटान् स समादिशति ॥ ५३३ ॥
उद्बध्नीत वटपादपशाखायां सिप्रासरित्तीरे । आदेशानन्तरमेव तैरुत्पातितः सहसा ॥ ५३४ ॥
अत्रान्तरे चिन्तयति मित्रानन्दो मनसि मम तदा । यदासीन्मृतकभणितं समागतोऽवसरस्तस्य ॥ ५३५ ॥
अपि कुपितवज्रपाणिप्रमुक्तकुलिशमपि रक्षितुं शक्याः । न हु पूर्वभवसमर्जितशुभाशुभः कर्मपरिणामः ॥ ५३६ ॥

---

१. निवकारणपरम० रं० । २. प्रनष्टधार्ष्ट्यः ।

अवि उब्भडमयरहरो निय भुयदंडेहि तीरए तरिउं । न हु पुव्वभवसमज्जियसुहा-ऽसुहो कम्मपरिणामो ॥५३७॥
अवि ससुरा-ऽसुरभुवणं जिप्पइ समरम्मि वीरसत्तेहिं । न हु पुव्वभवसमज्जियसुहा-ऽसुहो कम्मपरिणामो ॥५३८॥
पुरिसक्कारपरेहिं वि विहिपरिणामो खलिज्जइ न जम्हा । ता एरिससंसारं मा तम्मसु जीव ! मणयं पि ॥५३९॥
इय चिंतंतो वडपायवम्मि उव्बंधिओ तलारेहिं । तह कीलिरगोयालाणुन्नइया वि हु मुहे पडिया ॥५४०॥
इय मित्तमरणनिट्ठुरवज्जपहारेण ताडिओ व्व निवो । सह रयणमंजरीए धस त्ति धरणीयले पडिओ ॥५४१॥
नियपरियणेण सित्तो जलेण उवलद्धचेयणो राया । लल्लक्कमुक्कपोक्को अक्कंदइ गुरुयसद्देण ॥५४२॥
हा मित्त ! मित्तरहियं व नहयलं मज्झ सोहइ न रज्जं । मणवल्लह ! तुह विरहे भुवणमरन्नं व पडिहाइ ॥५४३॥
हा बंधव ! तइय च्चिय निवारिओ तं मए विदेसम्मि । गच्छंतो तह वि तुमं न ठिओ कम्माणुभावेण ॥५४४॥
हा ! तइया मज्झ कए आणीया रयणमंजरी देवी । अकयन्नुणा मए पुण तुह साहेज्जं पि न य विहियं ॥५४५॥
विलवइ देवी वि तओ सल्लंती मुणिजणस्स हिययाइं । हा हा देवर ! गुणनिहि ! निक्कारणपरमकारुणिय ! ॥५४६॥
हा मित्तकज्जवच्छल ! परोवयारेक्ककरणतल्लिच्छ ! । हा सच्छासय ! सुंदर ! ता इण्हिं कत्थ दीसिहसि ? ॥५४७॥
हा ! तइया मज्झ कए विहियाओ तए अणेगबुद्धीओ । नियमरणवसणसमए हा ! भुल्लो कह तुमं वच्छ !? ॥५४८॥
हा हा ! सुपुरिसरयणं अवहरिऊणं कयंत ! किं पत्तं ? । हा हा हयविहि ! निग्घिण ! पुज्जंतु मणोरहा तुज्झ ॥५४९॥
एत्थंतरम्मि सूरी करुणारसरसियमाणसो भणइ । नरनाह ! एरिसो च्चिय संसारो किं विसाएण ? ॥५५०॥

अपि उद्भटमकराकरो निजभुजदण्डैस्तशक्यते तरितुम् । न हु पूर्वभवसमर्जितशुभाशुभःकर्मपरिणामः ॥ ५३७ ॥
अपि ससुरा-ऽसुरभुवनं जीयते समरे वीरसत्त्वैः । न हु पूर्वभवसमर्जितशुभाशुभः कर्मपरिणामः ॥ ५३८ ॥
पुरुषकारपरैरपि विधिपरिणामः स्खल्यते न यस्मात् । तत ईदृशसंसारे मा ताम्य जीवः मनागपि ॥ ५३९ ॥
इति चिन्तयन् वटपादप उद्बद्धितस्तलारक्षैः । तथा क्रीडद्गोपालानामुन्नतिकापि खलु मुखे पतिता ॥ ५४० ॥
इति मित्रमरणनिष्ठुरवज्रप्रहारेण ताडित इव नृपः । सह रत्नमञ्जर्या धसेति धरणितले पतितः ॥ ५४१ ॥
निजपरिजनेन सिक्तो जलेनोपलब्ध चेतनो राजा । भयानकमुक्तपुत्कार आक्रन्दति गुरुकशब्देन ॥ ५४२ ॥
हा मित्र ! मित्ररहितमिव नभस्तलं मम शोभते न राज्यम् । मनोवल्लभ ! तव विरहे भुवनमरण्यमिव प्रतिभाति ॥ ५४३ ॥
हा बान्धव ! तदा चैव निवारितस्त्वं मया विदेशे । गच्छन् तथापि त्वं न स्थितः कर्माणुभावेन ॥ ५४४ ॥
हा ! तदा मम कृत आनीता रत्नमञ्जरी देवी । अकृतज्ञेन मया पुनस्तव साहाय्यमपि न च विहितम् ॥ ५४५ ॥
विलपति देव्यपि ततः शल्यन्ती मुनिजनस्य हृदयानि । हा हा देवर ! गुणनिधे ! निष्कारणपरमकारुणिक ! ॥ ५४६ ॥
हा मित्रकार्यवत्सल ! परोपकारैककरणतत्पर ! । हा स्वच्छाशय ! सुन्दर ! तावदिदानीं क्व दृक्ष्यसे ? ॥ ५४७ ॥
हा तदा मम कृते विहितास्त्वयानेकबुद्धयः । निजमरणव्यसनसमये हा ! विस्मृतः कथं त्वं वत्स ! ॥ ५४८ ॥
हा हा ! सुपुरुषरत्नमपहृत्य कृतान्त ! किं प्राप्तम् ? । हा हा ! हतविधे ! निर्धृण ! पूर्यन्तु मनोरथांस्तव ॥ ५४९ ॥
अत्रान्तरे सूरिः करुणारसरसितमानसो भणति । नरनाथ ! ईदृशश्चैव संसारः किं विषादेन ? ॥ ५५० ॥

जम्हा संसारवियाणएहिं जिणवयणभावियमईहिं । न हु सोगो कायव्वो नट्ठविणट्ठम्मि कज्जम्मि ॥५५१॥
किर कस्स थिरा लच्छी ? कस्स जए सासयं पिए पेम्मं ? ।
कस्स व निच्चं जीयं ? भण को व न खंडिओ विहिणा ? ॥ ५५२ ॥
अन्नं च हयकयंतो न नियइ दढपेम्मपरवसाण दुहं । न गणइ कुडुंबभंगं न य चिंतइ मित्तविच्छोहं ॥५५३॥
न य परिभावइ पिय-माइपभिइवुड्ढत्तणं नवरमेसो । सच्छंदसुहं वियरइ भंजंतो मत्तहत्थि व्व ॥५५४॥
इय एवभावणाए संसारासारयं वियाणित्ता । परिहरसु राय ! सोयं कुगइकरं सुगइपडिवक्खं ॥५५५॥
इय निसुणिऊण सोयं परिहरिऊणं पयंपइ नरिंदो । मुणिनाह ! मज्झ मित्तो मरिऊणं कत्थ उववन्नो ? ॥५५६॥
तो भणइ मुणिवरिंदो मरिऊणं रयणमंजरीगब्भे । जो चिट्ठइ सो होही तुह पुत्तो कमलगुत्तो त्ति ॥५५७॥
तो निययमित्तपुत्तत्तणेण परितुट्ठमाणसो राया । जंपइ पुव्वभवम्मि भयवं ! अम्हेहिं किं विहियं ? ॥५५८॥
मित्तस्स जेण मरणं मारिकलंकं च अग्गमहिसीए । बंधूहिं मह विओगो कहइ तओ मुणिवरिंदो वि ॥५५९॥
इह तइयभवं खेमंकरो त्ति कोडुंबिओ तुमं आसि । सच्चसिरी तुह दइया कम्मयरो चंडरुद्दो य ॥५६०॥
अह अन्नया कयाई कम्मयरो खेत्तरक्खणनिमित्तं । गच्छंतो संपेच्छइ कप्पडियं वाडिअंतरियं ॥५६१॥
नवचवलयसिंगाओ गिण्हंतं हक्किउं भणइ एवं । रे रे ! एयं पावं उव्बंधह रुक्खसाहाए ॥५६२॥
तो कप्पडिओ तं निसुणिऊण अइदूमिओ नियमणम्मि । कम्मयरो वि हु खेत्ताओ आगओ ताव गेहम्मि ॥५६३॥

यस्मात् संसारविजानकैर्जिनवचनभावितमतिभिः । न हु शोकः कर्तव्यो नष्टविनष्टे कार्ये ॥ ५५१ ॥
किल कस्य स्थिरा लक्ष्मीः ? कस्य जगति शाश्वतं प्रिये प्रेम ? ।
कस्य वा नित्यं जीवितम् ? भण को वा न खण्डितो विधिना ? ॥ ५५२ ॥
अन्यच्च हतकृतान्तो न पश्यति दृढप्रेमपरवशानां दुःखम् । न गणयति कुटुम्बभङ्गं न च चिन्तयति मित्रविक्षोभम् ॥५५३॥
न च परिभावयति पितृ-मातृप्रभूतिवृद्धत्वं नवरमेषः । स्वच्छन्दसुखं विहरति भञ्जन् मदहस्तीव ॥ ५५४ ॥
इत्येवभावनया संसारासारतां विज्ञाय । परिहृत्य राजन् ! शोकं कुगतिकरं सुगतिप्रतिपक्षम् ॥ ५५५ ॥
इति निश्रुत्य शोकं परिहृत्य प्रजल्पति नरेन्द्रः । मुनिनाथ ! मम मित्रो मृत्वा कुत्रोत्पन्नः ? ॥ ५५६ ॥
ततो भणति मुनिवरेन्द्रो मृत्वा रत्नमञ्जरीगर्भे । यस्तिष्ठति स भविष्यति तव पुत्रः कमलगुप्त इति ॥ ५५७ ॥
ततो निजकमित्रपुत्रत्वेन परितुष्टमानसो राजा । जल्पति पूर्वभवे भगवन् ! अस्माभिः किं विहितम् ? ॥ ५५८ ॥
मित्रस्य येन मरणं मारिकलङ्कं चाग्रमहिष्याः । बन्धुभि र्मम वियोगः कथयति ततो मुनिवरेन्द्रोऽपि ॥ ५५९ ॥
इतस्तृतीयभवे क्षेमंकर इति कौटुम्बिकस्त्वमासीत् । सत्यश्रीस्तव दयिता कर्मकरश्चण्डरुद्रश्च ॥ ५६० ॥
अथान्यदा कदाचित्कर्मकरः क्षेत्ररक्षणनिमित्तम् । गच्छन्संप्रेक्षते कार्पटिकं वर्तिकान्तरितम् ॥ ५६१ ॥
नवचवलकसिम्बाः गृहणन्तमाकार्य भणत्येवम् । रे रे ! एनं पापमुद्बध्नुत वृक्षशाखायाम् ॥ ५६२ ॥
तदा कार्पटिकस्तन्निश्रुत्यातिदवितो निजमनसि । कर्मकरोऽपि हु क्षेत्रादागतस्तावद्दृहे ॥ ५६३ ॥

ता राय ! तुज्झ वहुयाए भुंजमाणीए लग्गियं गलए । भणियं सच्चसिरिए किं रक्खसि ? भक्खसे न थिरा ? ॥५६४॥
अह अन्नया नरेसर ! कम्मयरो जंपिओ तए एवं । भद्द ! तुमं मह कज्जे गच्छसु अमुगम्मि गाममि ॥५६५॥
सामि ! अहं अक्खणिओ पभणइ कज्जेण नियसयणाण । अह सो तुमए भणिओ मिलंतु मा तुज्झ्झ ते सयणा ॥५६६॥
तुब्भेहिं तओ दुब्भासिएण समुवज्जियं असुहकम्मं । एत्थंतरम्मि पत्तं मुणिजुयलं तत्थ भिक्खट्ठा ॥५६७॥
दट्ठूण तयं तुमए पयंपिया पणइणी मुणिंदाण । भत्तं पाणं वियरसु उत्तमपत्तं जओ एए ॥५६८॥
तव्वयणसवणसमयुच्छलंतरोमंचकंचुयंगीए । महुराहारेण तओ मुणिणो पडिलाभिया तीए ॥५६९॥
चिंतेइ चंडरुद्दो नियमणे पुन्नभायणमिमाणि । जेणिरिसाए भत्तीए एत्थ पडिलाभिया एए ॥५७०॥
तो दाणफलेण तए सकलत्तेणं समज्जियं राय ! । अणुमोयणेण तेण वि समज्जियं भोगकम्मं ति ॥५७१॥
एत्थंतरम्मि तुम्हाण उवरि आउक्खए नहयलाओ । तडयडिऊणं पडियं तड त्ति तडिमंडलं तत्थ ॥५७२॥
मरिऊण तओ सुहभावलद्धसोहम्मदेवलोगम्मि । उप्पज्जिऊण नेहेण तत्थ भुंजित्तु सोक्खाइं ॥५७३॥
तत्तो चइत्तु नरनाह ! अमरदत्तत्तणेण तं जाओ । सच्चसिरी वि य सिरिरयणमंजरित्तेण उववन्ना ॥५७४॥
जाओ कम्मयरो वि हु मित्ताणंदत्तणेण नरनाह ! । जं तइया दुव्वयणं भणियं तेणेह तुह राय ! ॥५७५॥
बालत्तणाओ जाओ तस्स विवागेण बंधवविओगो । जाओ य तुज्झ दइयाए वहुयदुब्भासिएण इमो ॥५७६॥
रक्खसिवाओ दुसहो मित्ताणंदेण जं पुरा भणियं । कप्पडियवइयरम्मि तेणं सो पाविओ मरणं ॥५७७॥

ततो राजन् ! तव वधूकाया भुञ्जमान्या लगितं गलके । भणितं सत्यश्रिया किं राक्षसि ! ? भक्षसे न स्थिरा ? ॥ ५६४ ॥
अथान्यदा नरेश्वर ! कर्मकरो जल्पितस्त्वयैवम् । भद्र ! त्वं मम कार्ये गच्छामुके ग्रामे ॥ ५६५ ॥
स्वामिन् ! अहमाख्यानीयः प्रभणति कार्येण निजकस्वजनानाम् । अथ स त्वया भणितो मिलन्तु मा तव ते स्वजनाः ॥५६६॥
युवाभ्यां ततो दुर्भाषितेन समुपार्जितमशुभकर्म । अत्रान्तरे प्राप्तं मुनियुगलं तत्र भिक्षार्थाय ॥ ५६७ ॥
दृष्ट्वा तकत्त्वया प्रजल्पिता प्रणयिनी मूनीन्द्राभ्याम् । भक्तं-पानं वितरोत्तमपात्रं यत एतौ ॥ ५६८ ॥
तद्वचनश्रवणसमयुच्छलद्रोमाञ्चकञ्चुकाङ्ग्या । मधुराहारेण ततो मुनी प्रतिलाभितौ तया ॥ ५६९ ॥
चिन्तयति चण्डरुद्रो निजमनसि पुण्यभाजनमिमौ । येनेदृश्या भक्त्यात्र प्रतिलाभितौ एतौ ॥ ५७० ॥
तदा दानफलेन त्वया सकलत्रेण समर्जितं राजन् ! । अनुमोदनेन तेनापि समर्जितं भोगकर्मेति ॥ ५७१ ॥
अत्रान्तरे युष्माकमुपर्यायुःक्षयेन नभस्तलात् । तडतडित्वा पतितं तडेति तडिन्मण्डलं तत्र ॥ ५७२ ॥
मृत्वा ततः शुभभावलब्धसौधर्मदेवलोके । उत्पद्य स्नेहेन तत्र भुक्त्वा सौख्यानि ॥ ५७३ ॥
ततश्च्युत्वा नरनाथ ! अमरदत्तत्वेन त्वं जातः । सत्यश्रीरपि च श्रीरत्नमञ्जरित्वेनोत्पन्ना ॥ ५७४ ॥
जातः कर्मकरोऽपि हु मित्रानन्दत्वेन नरनाथ ! । यत्तदा दुर्वचनं भणितं तेनेह तव राजन् ! ॥ ५७५ ॥
बालत्वाज्जातस्तस्य विपाकेन बान्धवियोगः । जातश्च तव दयिताया बहुकदुर्भाषितेनायम् ॥ ५७६ ॥
राक्षसिवादो दुःसहो मित्रानन्देन यत्पुरा भणितम् । कार्पटिकव्यतीकरे तेन स प्राप्तो मरणम् ॥ ५७७ ॥

एत्तयमेत्तस्स वि भासियस्स नरनाह ! एरिसविवागो । जो पुण कसायवसयाण होइ तं मुणइ सव्वन्नु ॥५७८॥
परिहरिऊणं ता पुहइपाल ! दुव्वयणगोयरं पावं । जिणनाह भणियधम्मे समुज्जुओ होसु सुगइपहे ॥५७९॥
इय निसुणिउं नरिंदो देवीए समन्निओ गओ मुच्छं । चंदणजलेण सित्तो सचेयणो कहइ सूरीण ॥५८०॥
तुब्भेहिं सामि ! जं मज्झ साहियं नाणचक्खुणा चरियं । तं पच्चक्खं जायं जाईसरणेण सयलं पि ॥५८१॥
किंतु मडएण तइया जं भणियं तत्थ मज्झ संदेहो । ता साहसु मह भयवं ! जम्हा न चवंति मडयाइं ॥५८२॥
साहेइ तस्स सूरी सिंगग्गाही मरित्तु कप्पडिओ । भवियंव्वयावसेणं तत्थ वडे वंतरो जाओ ॥५८३॥
दट्ठुं मित्ताणंदं पुव्वकयं वइरमणुसरंतेण । समहिट्ठिऊण मडयं पयंपियं तेण तो तइया ॥५८४॥
तव्वयणसवणसंजायगरुयवेरग्गसंगओ राया । आबद्धपाणिपउमो पणामपुव्वं पयंपेइ ॥५८५॥
भयवं ! भीमभवाडविपरिभमणुब्भूयभयपकंपंतो । परिवालिऊण कुमरं पव्वज्ज धुरं धरिस्सामि ॥५८६॥
इय पभणिउं नरिंदो मुणिविंदं वंदिउं गओ नयरं । सह रयणमंजरीए उवभुंजइ विसयसोक्खाइं ॥५८७॥
कालेण कमलगुत्तं पुत्तं रज्जे ठवित्तु सकलत्तो । निक्खंतो सुद्धचित्तो पासे सिरिधम्मघोसस्स ॥५८८॥
छट्ठ-ऽट्ठम-दसम-दुवालसाइं काऊण तिव्वतवचरणं । कयभत्तपरिच्चाओ सव्वट्ठे सुरवरो जाओ ॥५८९॥छ॥
इय तेण मित्तसंतियमणन्नसज्झं पओयणं विहियं । अहमवि कइपयपयभासणेण तुह मित्तमसमं ति ॥५९०॥
ता मम वि मित्त ! कज्जं तुममेत्तियमज्ज कुणसु पसिऊणं । जह तुज्ज पए पेच्छामि जाव जंपति एयाणि ॥५९१॥

एतावन्मात्रस्यापि भाषितस्य नरनाथ ! इदृशविपाकः । यः पुनः कषायवशगानां भवति तं मुणति सर्वज्ञः ॥ ५७८ ॥
परिहृत्य ततः पृथिवीपाल ! दुर्वचनगोचरं पापम् । जिननाथभणितधर्मे समुद्युत्को भव सुगतिपथि ॥ ५७९ ॥
इति निश्रुत्य नरेन्द्रो देव्या समन्वितो गतो मूर्च्छाम् । चन्दनजलेन सिक्तः सचेतनः कथयति सूरीणाम् ॥ ५८० ॥
युष्माभिः स्वामिन् ! यन्मम कथितं ज्ञानचक्षुषा चरित्रम् । तत्प्रत्यक्षं जातं जातिस्मरणेन सकलमपि ॥ ५८१ ॥
किन्तु मृतकेन तदा यद्भणितं तत्र मम सन्देहः । ततः कथय मम भगवन् ! यस्मान्न चर्वन्ति मृतकानि ॥ ५८२ ॥
कथयति तस्य सूरिः शिम्बाग्राही मृत्वा कार्पटिकः । भवितव्यतावशेन तत्र वटे व्यन्तरो जातः ॥ ५८३ ॥
दृष्ट्वा मित्रानन्दं पूर्वकृतं वैरमनुस्मरता । समधिष्ठाय मृतकं प्रजल्पितं तेन ततस्तदा ॥ ५८४ ॥
तद्वचनश्रवणसञ्जातगुरुकवैराग्यसंगतो राजा । आबद्धपाणिपद्मः प्रणामपूर्वं प्रजल्पति ॥ ५८५ ॥
भगवन् ! भीमभवाटविपरिभ्रमणोद्भूतभयप्रकम्पमानः । परिपाल्य कुमारं प्रव्रज्याधुरं धरिष्यामि ॥ ५८६ ॥
इति प्रभण्य नरेन्द्रो मुनिवृन्दं वन्दित्वा गतो नगरे । सह रत्नमञ्जर्या उपभुनक्ति विषयसौख्यानि ॥ ५८७ ॥
कालेन कमलगुप्तं पुत्रं राज्ये स्थापयित्वा सकलत्रः । निष्क्रान्तः शुद्धचित्तः पार्श्वे श्रीधर्मघोषस्य ॥ ५८८ ॥
षष्ठाष्टम-दशम-द्वादशादीन् कृत्वा तीव्रतपश्चरणम् । कृतभक्तपरित्यागः सर्वार्थे सुरवरो जातः ॥ ५८९ ॥
इति तेन मित्रसत्कमनन्यसाध्यं प्रयोजनं विहितम् । अहमपि कतिपयपदभाषणेन तव मित्रमसममिति ॥ ५९० ॥
ततो ममापि मित्र! कार्यं त्वमेतावदद्य कुरु प्रसीद्य । यथा तव पदे पश्यामि यावज्जल्पन्त्येतानि ॥ ५९१ ॥

ताव य घडियाहरण रयणीए वज्जिओ तइयपहरो । ता सो चिंतइ धुत्तीए वंचिओ कहमहमिमीए ? ॥५९२॥
जा किर मारिउ लग्गो तं जक्खो तिक्खधारछुरियाए । ताव य दीणमुहाए पयंपियं पायवडियाए ॥५९३॥
अहमित्थिया अणाहाऽणुकंपणिज्जा सहायवियला य । पयईए अप्पसत्ता मज्झ वहे तुज्झ गरुयस्स ॥५९४॥
लोयम्मि जसो कित्ती वन्नो सद्दो य केरिसो होही ? । इय परिभावसु कज्जे भवंति गरुया थिरारंभा ॥५९५॥
परमेरिससिक्खाए किं मह दिन्नाए तुज्झ विसयम्मि ? । तं चेव बुद्धिमंतो सुंदरमियरं व जं मुणसि ॥५९६॥
परमहमईव तुह दंसणस्स तित्तिं न देव ! पावेमि । ता सामि ! संपयं पि हु कहाणयं सुणसु तुममेयं ॥५९७॥
इय सो विलक्खवयणो वट्टइ दोलायमाणसो जाव । तो तीए मलयविसयाए महुरराएण पारद्धं ॥५९८॥
कहिउं संरंभेणं चरियमिमं चारुदत्त(सेट्ठि)स्स । अप्पुव्वसंधिबंधेण विरइयं विउसहिययहरं ॥५९९॥

(चारुदत्तचरिउ)

इह भरहि अत्थि पुरि नामि[1] चंप, पररायचक्कभयनिप्पकंप ।
धणुकुडिलवंकपायारवलय, सुमहंतहिमालयसरिसनिलय ।
पयपणयपुरंदररइयपुज्जु, जहिं मोक्खि पत्तु जिणु वासुपुज्जु ।
जियसत्तु नामु[2] जियसत्तु राउ, तहिं अत्थि अखंडियसुहडवाउ ।
अवरो वि अत्थि तहिं सेट्ठि भाणु, सुहि-सयणकमलवणसंडभाणु ।

तावच्च घटिकागृहे रजन्या वादितस्तृतीयप्रहरः । ततः स चिन्तयति धूर्त्या वञ्चितः कथमहंमनया ? ॥ ५९२ ॥
यावत् किल मारयितुं लग्नस्तां यक्षस्तीक्ष्णधारछूरिकया । तावच्च दीनमुखया प्रजल्पितं पादपतितया ॥ ५९३ ॥
अहं स्त्रीरनाथानुकम्पनीया सहायविकला च । प्रकृत्याल्पसत्त्वा मम वधे तव गुरुकस्य ॥ ५९४ ॥
लोके यशः कीर्ति वर्णः शब्दश्च कीदृशो भविष्यति ? । इति परिभावय कार्ये भवन्ति गुरुकाः स्थिरारम्भाः ॥ ५९५ ॥
परमिदृशशिक्षया किं मम दत्तया तव विषये ? । त्वं चैव बुद्धिमान् सुन्दरमितरं वा यन्मुणसि ॥ ५९६ ॥
परमहमतीव तव दर्शनस्य तृप्तिं न देव ! प्राप्नोमि । ततः स्वामिन् ! साम्प्रतमपि हु कथानकं शृणु त्वमेतत् ॥ ५९७ ॥
इति स विलक्षवदनो वर्तते दोलायमानसो यावत् । तदा तया मलयविषयायां मधुरराज्ञा प्रारब्धम् ॥ ५९८ ॥
कथयित्वा संरम्भेण चरित्रमिदं चारुदत्तश्रेष्ठिनः । अपूर्वसन्धिबन्धेन विरचितं विद्वद्हृदयहरम् ॥ ५९९ ॥

(चारुदत्त चरित्रम्)

इह भरते ऽस्ति पुरि नाम चम्पा, परराजचक्रभयनिष्कम्पा ।
धनुकुटिलवक्रप्राकारवलया, सुमहद्धिमालयसदृशनिलया ।
पदप्रणतपुरन्दररचितपूजा, यत्र मोक्षं प्राप्तो जिनो वासुपूज्यः ।
जितशत्रु र्नाम जितशत्रू राजा, तत्रास्त्यखण्डितसुभटवादः ।
अपरोऽप्यस्ति तत्र श्रेष्ठी भानुः, सखा-स्वजनकमलवनखण्डभानुः ।

१-२. नाम रं० ।

जणवन्नणिज्ज अकलंकदेह, उन्नय जिव बीयाचंदरेह ।
नामिं सुभद्द तसु भज्ज हुयइ, अणुरत्तिय जइ पर देहि जुजुइय ।
सहु तीए सुहउ सुव गेहवासु, जमऽपुत्तु एक्कु परदोसु तासु ॥
कुलवंसुद्धारणि, पुत्तह कारणि, सेट्ठि सभज्जु वि दुक्खियउ ।
संसारि महालइ, एवदुहालइ, माइ कवणु किर सुत्थियउ ॥१॥६००॥
इय जा जिर्णिदपूयणरयाइं, चिट्ठंति निसामियजिणमयाइं ।
ता तत्थ नाण-चारित्तपुत्तु, चारणमुणि जिणहरि कोवि पत्तु ।
पुच्छियउ सुभद्दइ पुत्तजम्मि, मुणिराउं[1] वियाणियसमणधम्मु ।
जाणिवि गुणु नाणिण तीए कोवि, होहीइ भणेविणु गयउ सो वि ।
आहूयउ तक्खणि तीए[2] गब्भु, जो अन्नह महिलह पुन्नलब्भु ।
नवमासिहिं अद्धट्ठमदिणेहिं उप्पन्नु पुत्तु तहिं सहुं गुणेहिं ।
सुहलक्खणलक्खियचारुगत्तु, तसु नामु पइट्ठिउ चारुदत्तु ।
वड्ढंतु अइच्छियबालभावु, अब्भसियसमत्थकलाकलावु ॥
हरिसीहपमुक्खिहिं, अइसयदक्खिहि मित्तिहिं सहियउ निउणमइ ।

जनवर्णनीयाकलङ्कदेहः, उन्नत इव द्वितीयाचन्द्ररेखः ।
नाम्ना सुभद्रा तस्य भार्या भवति, अनुरक्ता यदि पर देहे भिन्ना ।
सह तया सुखं स गृहवासम्, यदपुत्र एकः परदोषस्तस्मिन् ।
कुलवंशोद्धरणं पुत्रस्य कारणम् श्रेष्ठी सभार्योऽपि दुःखितः ।
संसारे महन्ति एवं दुःखानि, माति कवनः किल सुस्थिकः ॥ १ ॥ ६०० ॥
इति यावज्जिनेन्द्रपूजनरतौ, तिष्ठतो निशमितजिनमतौ ।
तावत्तत्र ज्ञान-चारित्रपात्रं, चारणमुनिर्जिनगृहे कोऽपि प्राप्तः ॥
पृच्छति सुभद्रं पुत्रजन्म, मुनिराजं विजानीतश्रमणधर्मम् ।
ज्ञात्वा गुणं ज्ञानिना तस्याः कोऽपि, भविष्यति भणित्वा गतः सोऽपि ।
आभूतस्तत्क्षणे तस्यां गर्भः, योऽन्यस्या महिलायाः पुण्यलभ्यः ।
नवमासैरर्द्धाष्टमदिनैरुत्पन्नः पुत्र तत्र सह गुणैः ।
शुभलक्षणलक्षितचारुगात्रः तस्य नाम प्रतिष्ठितं चारुदत्तः ।
वर्धमानोऽतिच्छितबालभावः, अभ्यसितसमस्तकलाकलापः ।
हरिसिंहप्रमुखैरतिशयदक्षैः, मित्रैः सहितो निपुणमतिः ।

---

१. राय रं० । २. तीइ रं० ।

अगमंदिरपव्वइ, कीलणभव्वइ, गयउ जेत्थु गिरिनइ वहइ ॥२॥६०१॥
तहिं नइहि पुलिणि तिणि जंति जंति, थी-पुरिसहं दिट्ठिय पयह पंति ।
अणुमग्गि तीए विप्फुरियथामु, कयलीहरु गउ सुंदेरधामु ।
तहिं खग्गु दिट्ठु सेज्जासणाहु, नररयणु अन्नु दुक्खिउ अणाहु ।
अयकीलिहि कीलिउ रुक्खि सहिउ, तसु दुक्खि निरारिउ हियइ वहिउ ।
जा जोइउ तावऽज्ज वि सजीउ, परितम्मइ सरसदयापरीउ ।
अवलोयइ जावहि तासु खग्गु, ता पेच्छइ ओसहितिगु विलग्गु ।
अक्कीलिय तावुक्कीलिणीए, संरोहिय वणसंरोहणीए ।
चेयन्नु कयउ संजीवणीए, पडुपन्नु हुयउ ओसहिमणीए ।
चिंतियइ न जं मणि, न य दीसइ जणि, जुत्ति वियारि न जं घडइ ।
तं पि हु सो पाविउ, तिणि जीवाविउ, सव्वु सपुन्नहं संपडइ ॥३॥६०२॥
तउ अग्गइ दिट्ठउ चारुदत्तु, तिं भणिउं मज्झ तुहुं बंधु मित्तु ।
जिम्व कीलिउ हउं इह अकयपाउ, अक्खणह लग्गु जिह एत्थु आउ ।
[1]वेयड्ढु नामु भारहि गिरिंदु, सुरयणिहि समन्निउ नं सुरिंदु ।

अगमन्दिरपर्वते, क्रीडनभव्ये, गतो यत्र गिरिनदी वहति ॥ २ ॥ ६०१ ॥
तत्र नद्याः पुलिने तस्मिन् यान्तं यान्तम्, स्त्री-पुरुषस्य दृष्टा पदस्यपङ्क्तः ।
अनुमार्गे तस्या विस्फुरितस्थाम, कलदीगृहं गतः सौन्दर्यधाम ।
तत्र खड्गं दृष्टं शय्यासनाथम्, नररत्नमन्यं दुःखितमनाथम् ।
अयःकीलकैः कीलितः वृक्षेण सहितम्, तद्दुःखमतिशयं हृदये वहितम् ।
यावत्पश्यति तावदद्यापि सजीवम्, परिताम्यति सरसदयापरीतम् ।
अवलोकयति यावत्तस्य खड्गम्, तावत्प्रेक्षते औषधित्रिकं विलग्नम् ।
उत्कील्य तावदुत्कीलीन्या, संरोध्य वनसंरोहण्या ।
चैतन्यं कृत्वा संजीवन्या, प्रत्युत्पन्नं भूतमौषधिमणिना ।
चिन्तयति न यद् मनसि, न च दृश्यते जनम्, युक्ति-विचारं न यद् घटति ।
तमपि हु स प्रापितं, तेन जीवितम्, सर्वं सपुण्यस्य सम्पद्यते ॥ ३ ॥ ६०२ ॥
तावदग्रे दृष्टं चारुदत्तम्, तं भणति मम त्वं बन्धु र्मित्रम् ।
यथा कीलितोऽहमिहाकृतपापः, अक्षणं लग्नं यथात्रायुः ।
वैताढ्यो नाम भारते गिरीन्द्रः, सुरत्नैः समन्वितमिव सुरेन्द्रः ।

---

१. वेयड्ढ रं० ।

सिवमंदिरु दाहिणि तासु नयरु, तहिं राउ महिंदविक्कमु सखयरु ।
अमियगइनामु[1] हउं तासु पुत्तु, चिट्ठामि जाव सुहसंपउत्तु ।
धूमसिह-गउरमुडाभिहाण[2], दुइ मज्झ मित्त ! हुय गुणपहाण ।
हरिमंतु नामु नगु कलियवोमु, तावसु माउलउ हिरन्नरोमु ।
तहिं निवसइ मज्झु सिणेहवंतु, हउं तहिं समित्तु गउ जंतु जंतु ॥
तसु धूय मणोहर, पुन्नपओहर, विहिवाहिं परिकम्मविय ।
तावणि अन्नाणहं, हरणि जुवाणहं, कामभल्लि नं निम्मविय ॥४॥६०३॥
सुकुमालिय नामिं मज्झ कज्जि, सा ताइं मग्गिय नेहसज्जि ।
सा मइं वीवाहिय सुहइ लग्गि, सहु तीए वसउ जिम्व[3] सक्कु सग्गि ।
सा तारिसकुव्वलसंभव विसिट्ठ, कइया वि धूमसिहिं सहुं विणट्ठ ।
अहभवि भमामि रिउभावजुत्तु, न यणामि किंपि परमत्थु तत्तु ।
कीलानिमित्तु आइयउ एत्थु, सहुं भज्जइं सेज्जहिं रमउ सत्थु ।
पाविट्ठि आवि ओवद्धु अज्जु, एयारिसमित्तहं पडउ वज्जु ।
गउ दुक्खु लेवि सहु तीए पावु, धूमसिहु अहव दहणस्सभावु ।

शिवमन्दिरं दक्षिणे तस्य नगरम्, तत्र राजा महेन्द्रविक्रमः सखचरः ।
अमितगतिनामोऽहंतस्य पुत्रः, तिष्ठामि यावत्सुखसंप्रयुक्तः ।
धूमशिख-गौरमुडाभिधानौ, द्वौ मम मित्रे भवतो गुणप्रधानौ ।
ह्रीमान् नाम नगः कलितव्योमः, तापसो मातुलो हिरण्यरोमः ।
तत्र निवसति मम स्नेहवान्, अहं तत्र समित्रो गतो यान्तं यान्तम् ।
तस्य दुहिता मनोहरा पूर्णपयोधरा, विधिवादैः परिकर्मिता ।
तापनी अज्ञानस्य, हरणि युनः कामभल्लिमिव निर्मापिता ॥ ४ ॥ ६०३ ॥
सुकुमालिका नामा मम कार्ये, सा ताभ्यां मार्गिता स्नेहसज्जा ।
सा मया विवाहिता शुभे लग्ने, सह तया वसामि यथा शक्रः स्वर्गे ।
सा तादृशकुलसम्भवा विशिष्टा, कदापि धूमशिखी सह विनष्टा ।
अहमपि भ्रमामि रिपुभावयुक्तः, न जानामि किमपि परमार्थतत्त्वम् ।
क्रीडानिमित्तमागतोऽत्र, सह भार्यायाः शय्यायां रमे स्वस्थः ।
पापिष्ठेनागत्योद्बध्धोऽद्य, एतादृशमात्रस्य पतितं वज्रम् ।
गतो दुःखं लात्वा सह तया पापः, धुमशिखोऽथवा दहनस्वभावः ।

---

१. नाम रं० । २. गउरसुंडा रं० । ३. जिम रं० ।

धिसि ! धिसि ! धिरत्थु जगि महिलियाहं, मित्तह वि विसयविसकवलियाहं ! ॥
नामाइ मुणेविणु, सुकिउ सरेविणु, [1]पुण दंसणु भणि सुद्धमइ ।
वेरग्गपवन्नउ, चित्ति विसन्नउ, कर जोडिवि गउ अमियगइ ॥५॥६०४॥
तसु ठावह सो वि हु चारुदत्तु, गउ गेहि निद्धसुहिसंपउत्तु ।
विन्नायसमग्गकलाकलावु, जोव्वणि संपत्तु विसुद्धभावु ।
सव्वत्थु नामि माउलउ तासु, धण-कणसमिद्धु[2] वड्ढियविलासु ।
तसु अत्थि पढमजोव्वणरवन्न, रन्नावि जेव[3] मित्तवइ कन्न ।
सह तीए तासु वीवाहु जाउ, संपन्नसयणगरुयाणुराउ ।
मित्तवइसमउं पर चारुदत्तु, कलरसिउ न भोगहं देइ चित्तु ।
दुल्ललियवयंसह मज्झि छुद्धु, नं बद्धु बिरालउ जेत्थु दुद्धु ।
सामग्गिवसिण भोलियउ नेहिं, पाडियउ वसणि पावेहि तेहिं ॥
अप्पणइं कुवासिं, भवअब्भासिं, एक्कु जि जीवह पावरइ ।
तारिसववएसिं, गुरुउवएसिं, केंव न पसरइ विसयमइ ॥६॥६०५॥
जहिं कुट्टणि गरुय कलिंगसेण, तसु धूय सुरूव वसंतसेण ।

धिग्धिग्धिगस्तु जगति महिलानाम्, मित्रस्यपि विषयविषकवलितानाम् ।
नामादि मुणित्वा, सुकृतं स्मृत्वा, पुन दर्शनं भणित्वा शुद्धमतिः ।
वैराग्यप्रपन्नश्चित्ते विषण्णः, करं योजित्वा गतोऽमितगतिः ॥ ५ ॥ ६०४ ॥
तं स्थापयित्वा सोऽपि हु चारुदत्तः, गतो गृहे स्निग्धसखसम्प्रयुक्तः ।
विज्ञातसमग्रकलाकलापः, यौवनं सम्प्राप्तो विशुद्धभावः ।
सर्वार्थो नाम मातुलस्तस्य, धन-कणसमृद्धो वर्धितविलासः ।
तस्यास्ति प्रथमयौवनरम्या, रम्यापि यथा मित्रवती कन्या ।
सह तया तस्य विवाहोजातः, सम्पन्नस्वजनगुरुकानुरागः ।
मित्रवतीसमकं परं चारुदत्तः, कलारसिको न भोगस्य ददाति चित्तम् ।
दुर्ललितवयस्यस्य मध्ये क्षिप्तः, न बद्धं बिलाडकं यत्र दुग्धम् ।
सामग्रीवशेन भोलयित्वा स्नेहेन, पातितो व्यसने पापैस्तैः ।
आत्मनः कुवासेन भवाभ्यासेन, एको यो जीवस्य प्रावृणोति ।
तादृशव्यपदेशेन, गुरूपदेशेन, कस्य वा न प्रसरति विषयमतिः ॥ ६ ॥ ६०५ ॥
यत्र कुट्टिनी गुरुका कलिङ्गसेना, तस्या दुहिता सुरुपा वसन्तसेना ।

---

१. पुणु रं० । २. समिद्ध रं० । ३. जेय रं० ।

तहिं वेसावाडइ तेहिं छुद्धु, वेसह सरूवु अमुणंतु मुद्धु ।
अहु वेस विसिट्ठिय हुंति केंव, उच्चिट्ठिय निग्घिणि सुणहि जेम्व ।
धणलुद्धिय किम्व कोढिउ रमंति, निद्धणु गरुओ वि परिच्चयंति ।
मणिदुट्ठिय चाडुसयइं करेंति, पररंजणत्थु कवडिं मरंति ।
जउं पोसगु पुज्जइ महुर ताव, अवरत्थ निंबवल्कलिय पाव ।
रूयडउ सो ज्जि सोहगिउ सो जि, धणवंतु जु रंजहिं किंव अभोज्जि ।
निप्फलिं सहुं सेज्जहिं न उ सुयंति, झंझोलवि[1] तरुवरु जिम्व मुयंति ॥
सहु तीए विलासिहिं, पसरियहासिहिं, सोलह कोडि सुवन्नह ।
वड्ढियउक्करिसिहिं, बारह वरिसिहिं, निहणह नीय रवन्नह ॥७॥६०६॥
निग्घिणइ निरूविवि बहुपयारु, मोसारिय जाणिवि लुत्तसारु ।
पाविट्ठइ पाइवि मज्जपाणु, बाहिरि छड्डाविउ सावमाणु ।
उट्ठिवि गउ गेहि विसन्नचित्तु, तं दिट्ठु कुमुणि जिम्व नट्ठवित्तु ।
नरवइहि गेहु जिम्व विगयसोहु, मुणिमाणसु जिम्व परिगलियमोहु ।
काउरिसिं सरिसु विणट्ठदारु, भग्गालउ जेम्व जुवाणिवारु ।

तत्र वेश्यावाटके तैः क्षिप्तः, वेश्यायाः स्वरुपममुणन्मुग्धः ।
अथ वेश्या विशिष्ठिता भवन्ति कस्य, उच्छिटा निर्धृणा शुनकी यथा ।
धनलुब्धाः कथं कृष्टिनं रमन्ते, निर्धनं गुरुकमपि परित्यजन्ति ।
मनोदुष्टाश्चाटूशतानि कुर्वन्ति, पररञ्जनार्थं कपटं म्रियन्ते ।
यावत्पोषकः पूज्यते मधुरास्तावत् अपरत्र निम्बवल्कलियाः पापाः ।
रुपवान् स यः सौभागी स यः धन्वान्तं यं रञ्जयन्ती किंवाभोग्याः ।
निष्फलेन सह शय्यायां न तु शेरते, [2]विधूय तरुवरं यथा मुञ्चन्ति ।
सह तया विलासिभिः प्रसरितहास्यैः, षोडश कोटिं सुवर्णस्य ।
वर्धितोत्कर्षैर्द्वादशवर्षैः, निधानस्य नीत्वा रम्यस्य ॥ ७ ॥ ६०६ ॥
निर्धृणा निरुपयति बहुप्रकारं, मोषयितुं जानाति लुप्तसारम् ।
पापिष्ठा पायति मद्यपानम्, बर्हिर्मोचयति सापमानम् ।
उत्थाय गतो गृहे विषण्णचितः, तं दृष्ट्वा कुमुनिरिव नष्टव्रतम् ।
नरपते गृहमिव विगतशोभम्, मुनिमानसमिव परिगलितमोहम् ।
कापुरुषैः सदृशं विनष्टद्वारम्, भग्नालयमिव युवतिवारम् ।

---

१. जिम रं० । २. झंझोलवि - 'ખંખેરીને' (ગુજ.)

मित्तवइ निएविण कंतु पत्तु, उक्खिवि अब्भुक्खणनीरं[१] पत्तु ।
आसणदाणाइसु कियपयत्त, आपुच्छिय जणयहं तणिय वत्त ।
सोएविणु माया-वित्तबे वि, नीवियहिं कलत्ताहरणु लेवि ॥
वित्तासइ पत्थिउ, मग्गि सुसत्थिउ, अत्थोवज्जणि दिन्न उरु ।
माउलइं समग्गउ, सोहण लग्गउ, पत्तु उसीरावत्तपुरु ॥८॥६०७॥
कप्पासु तेत्थु लइयउ महत्थु, आवंतह दवि दड्ढउ समत्थु ।
माउलइ विउत्तउ अत्थकामु, वेलाउलु पत्तु पियंगुनामु ।
पिउमित्ति पेरिउं तहिं अकीव, गउ जाणवत्ति लहु जवणदीवि ।
तत्थ वि य मुक्कवाणिज्जि खोडि, तिणि अट्ठ विढत्त सुवन्नकोडि ।
आवंतह फुट्टउं जाणवत्तु, थीगज्झु जेव हारवियवित्तु ।
दिणसत्तगि फलहिं तरेवि नीरु, आसमपउ पाविउ कहवि तीरु ।
दिणयरपहु तहिं परिवाउ दिट्ठु, गिरिविवरि गहिरि तिणि सहु पविट्ठु ।
चउपुरिसमाणि लसकूवि खित्तु रज्जूपओगि भयविहुरचित्तु ॥
अग्गेरइ पडियइं, नरि धणनडियइं, रसह सरूवु निवेइयउं ।

मित्रवती दृष्ट्वा कान्तं प्राप्तम्, उत्क्षिप्यांभ्युक्षणनीरपात्रम्[२] ।
आसनदानादिना कृतप्रयत्ना, आपृच्छय जनकस्य सत्कां वार्ताम् ।
शोचयित्वा माता-पितरौ द्वावपि, नीवीभ्यः कलत्राभरणं लात्वा ।
वित्रासयति प्रार्थिकः मार्गयति सुसार्थः, अर्थोपार्जने दत्तोरुः ।
मातुलेन समग्रः, शोभनलग्ने, प्राप्त उशीरावर्तपुरम् ॥ ८ ॥ ६०७ ॥
कर्पासं तत्र लात्वा महार्थम्, आगच्छतो दवे दग्धं समस्तम् ।
मातुलेन वियुक्तऽर्थकामः वेलाकुलं प्राप्तः प्रियङ्गुनाम ।
पितृमित्रं प्रेर्य तत्राकरोत्, गतो यानपात्रेण लघु यवनद्वीपे ।
तत्रापि च मुक्तवाणिज्ये खोडिः, त्रिण्यष्टावर्जिताः सुवर्णकोट्यः ।
आगच्छतः स्फुटितं यानपात्रम्, स्त्रीगृह्य इव हारितवित्तम् ।
दिनसप्तके फलकेन तीर्त्वा नीरम्, आश्रमपदे प्राप्तः कथमपि तीरम् ।
दिनकरप्रभं तत्र परिव्राजं दृष्ट्वा, गिरिविवरे गभीरे तेन सह प्रविष्टः ।
चतुष्पुरुषमाना रसकुपे क्षिप्त्वा, रज्जूप्रयोगेन भयविधुरचित्तः ।
अग्रे पतिते नरे धननर्तिते रसस्यस्वरुपं निवेदिते ।

---

१. नीरु रं० । २. अब्भुख्णनीरं - (सिंचन जलम्)

सो वि हु तहिं खित्तउ, दुहसंतत्तउ, वसणु सुणेविणु वेवियउ ॥९॥६०८॥
सुमरेविणु सावगकुल पहाणु, सुमरेविणु जिणवरु गुणनिहाणु ।
सुमरेविणु गुरु वेरग्गपडिउ, भावेइ भवन्नव दुक्खनडिउं ।
ते धन्न सउन्न कयत्थ नरा, जे चत्तसंग वय-नियमधरा ।
महु एव जिणेसरपयसरणू, नवकारु निवारियजरमरणू ।
कहिं तारिसु पाविवि धम्मु सुइं ? कह एत्थ मरेवउं एव मइं ? ।
तं निसुणिवि तलि बोल्लियइ नरिं, मा भद्द ! विसाउ महंतु करी ।
जेणऽज्ज वि अत्थि उवाउ तऊ, महु पुणु रसि खद्धउं अद्धसऊ ।
इह आवइ गोह महंततणू, रसु जाइ पिएविणु एक्कु खणुं ॥
जइ जग्गहि पुच्छिहि विलग्गहि (लग्गहि) गोहहि, ता आवइ तरहि ।
अह उज्जमि मुक्कउ, आयहं चुक्कउ, ता एत्थ वि मइं जिम्व मरइ ॥१०॥६०९॥
जावऽच्छइ अवहिउ एक्क मणी, तावंतहिं गोहहि सुणइ झुणी ।
जा वलइ पिएविणु कूवरसू, ता लग्गाउ गाढउ पुच्छि तसू ।
नरगाउ तेव[1] सुहपरिणईए, काराउ व कुवि सुहनिववईए ।

सोऽपि हु तत्र क्षिप्तो दुःखसंतप्तः व्यसनं श्रुत्वा वेपितः ॥ ९ ॥ ६०८ ॥
स्मृत्वा श्रावककुलं प्रधानम् स्मृत्वा जिनवरं गुणनिधानम् ।
स्मृत्वा गुरुं वैराग्यपतितम्, भावयति भवार्णवदुःखनटितम् ।
ते धन्याः सपुण्याः कृतार्था नराः, ये त्यक्तसङ्गा व्रतनियमधराः ।
मध्वेव जिनेश्वरपदशरणम्, नमस्कारं निवारितजरमरणम् ।
क्व तादृशः प्राप्यते धर्मः शुचिः ? कथमत्र म्रियत एव मया ? ।
तन्निशृत्य तले ब्रविति नरे, मा भद्र ! विषादं महत् कुरु ।
येनाद्याप्यस्त्युपायस्तव, मम पुना रसे खद्धमर्द्धांशम् ।
इहागच्छति गोधा महत्तनू रसं याति पीत्वैकं क्षणम् ।
यदि यद्ग्रहे पृच्छे विलगिष्यति गोधायाः, तदापदं तरिष्यसि ।
अथोद्यमेन मुक्तः, आयातो भ्रष्टः, तदात्रापि ममेव म्रियते ॥ १० ॥ ६०९ ॥
यावदासतेऽवहित एकमनाः तावदेन्त्या गोधायाः श्रुणोति ध्वनिम् ।
यावद्वलति पीत्वा कूपरसम्, तावल्लग्नोगाढं पृच्छे तस्याः ।
नरकादिव शुभपरिणत्या, कारादिव कूपात्शुभनृपपतिना ।

---

१. जेम रं० ।

नावाए व जलहिनिमज्जणाओ, विरईए व पावपवत्तणाओ ।
जणणीए व दुहगब्भालयाओ, नीसारिउ तीए वि गिरितलाओ ।
केत्तिउ वि जाइ जा भूमिभाउ, तिस-भुक्खहिं पीडिउ सो वराउ ।
जममहिसु व मुक्कउ बंधणाउ, वणमहिसु द्धाइउ ता वणाउ ।
तसु भएण सिलहि सिरि विचडिउ, अजगरह महिसु ता पह पडिउ ॥
ते जाव परोप्परु, भिडहिं समच्छरु, ताव पलाणउ उत्तरवि ।
धिसि धिसि ! तसु पावह, दावियतावह, वलि वलि जो जीवइ मरिवि ॥११॥६१०॥
लंधिवि अरन्नु जा गामि पत्तु, तावेगु मिलिउ माउलह मित्तु ।
भमडंतु रुद्दत्ताभिहाणु, पयईए पावु दोसहं निहाणु ।
तिणि सहुं सुवन्नभूमिहिं पयट्टु, अपमाणवित्तवंछावसट्टु ।
नइ नियहिं जंत वेगवइ नाम, सिंधुवइ पासि तं बहुसकाम ।
दुइतडकुलउभय विसुद्धं जासु, रत्तुप्पलचलणसजंघ तासु ।
सुकुमालपुलिण वित्थयनियंब, कोमलमुणाल भुयलयपलंब ।
आवत्त नाहि तिवली तरंग, वर कंवु गीव घण थण रहंग ।

नावेव जलधिनिमज्जनात्, विरत्येव पापप्रवर्तनात् ।
जनन्येव दुःख गर्भालयात्, निःसारितस्तयापि गिरितलात् ।
कियन्तमपि यति यावद्भूमिभागम्, तृषा-बुभुक्षाभ्यां पीडितः स वराकः ।
यममहिष इव मुक्तो बन्धनाद्, वनमहिषो धावितस्तावद्वनात् ।
तस्य भयेन शिलायाः शिरसि व्यारुह्य, अजगरस्य महिषस्तावत्पथि पतितः ।
तौ यावत्परस्परं, युध्येते समत्सरम्, तावत्पलायनमुत्तीर्य ।
धिग्धिक् ! तस्य पापस्य दापिततापस्य, वारं वारं ये जीवयति मारयति ॥ ११ ॥ ६१० ॥
लङ्घयित्वाऽरण्यं यावद्ग्रामं प्राप्तः, तावदेको मिलितो मातुलस्य मित्रम् ।
भ्रमन् रुद्रदत्ताभिधानः, प्रकृत्या पापो दोषस्य निधानः ।
तेन सह सुवर्णभूमौ प्रवृत्तः, अप्रमाणवित्तवाञ्छावसार्तः ।
नदीं पश्यति यान्तीं वेगवतीं नाम, सिन्धुपतेः पार्श्वे तां बहुसकामाम् ।
द्वितटकुलोभयविशुद्धां यस्य रक्तोत्पलचरणसजङ्घां तस्य ।
सुकुमारपुलिनविस्तृतनितम्बाम्, कोमलमृणालभुजलताप्रलम्बाम् ।
आवर्तनाभित्रिवलितरङ्गाम्, वरकम्बुग्रीवघनस्तनरथाङ्गाम् ।

सयवत्त वयण सुइ सिप्पि भाल, चल सफरि नयण सेवाल वाल ॥
जलवट्ट सुवसणिय, मोत्तियदसणि य, धाउरायतंबोलजुय ।
नं जलनिहिवरहरि, केणइ महिहरि, सिंगारिवि पेसिय वहुय ॥१२॥६११॥
अग्गेरइ गंतु पवन्नु जाव, वित्तवणु गहणु संपत्त ताव ।
अजमग्गु परेरइ अत्थि तासु, गुरुकिच्छि पारि जाइयइ तासु ।
अयपिट्ठारूढहं तेत्थु गमणु, अयमग्गु पवुच्चइ तेण पवणु ।
अय दुन्नि लइय तहिं रुद्दत्ति, आरुहिवि तेसु पत्थिय पयत्ति ।
पुणु तेहिं वि जंतह मग्गु भग्गु, तो रुद्दत्तु बोल्लणह लग्गु ।
भो भत्थ एइ मारेवि करहुं-पइसेवि तेत्थु ओ वसणु तरहुं ।
भारुंडपक्खि आयहि भमंति, मंसबुद्धि अम्हे नयंति ।
तेणुत्तु जेहि आरूढ आय, उवगारी एइ अम्हह वराय ॥
उवयारिहि मारणु, पावह कारणु, एरिसु करहिं जि नरयगइ ।
जसु मणि जिणु निवसइ, सो किं ववसइ, अइसउं निग्घिणु सुद्धमइं ? ॥१३॥६१२॥
तिणि भणिउ एइ मइ कीय दो वि, जं भावइ तं हउं करिसु लेवि ।

शतपत्रवदनशुचिशिल्पीभालाम्, चलत्सकरिनयनशेवालवालाम् ।
जलावर्तसुवसनीं मौक्तकदशनीं च, धातुरागताम्बुलयुताम् ।
इव जलनिधिवरहरिं, केनचिन्महिधरिं, शृङ्गारित्वा प्रेषितां वधुकाम् ॥ १२ ॥ ६११ ॥
अग्रे गन्तुं प्रपन्नो यावत्, वित्तवनं गहनं सम्प्राप्तं तावत् ।
अजामार्गं परतो अस्ति तस्य, गुरुकृच्छ्रं पारं जायते तस्य ।
अजपृष्टारुढं तत्र गमनम्, अजामार्गं प्रोच्यते तेन प्रवणम् ।
अजौ द्वौ लात्वा तत्र रुद्रदत्तः, आरूह्य तं प्रस्थितः प्रयत्नः ।
पुनस्ताभ्यामपि यातो मार्गोभग्नः, तदा रुद्रदत्तः कथयितुं लग्नः ।
भो भ्रत्रा एनं मारयित्वा कुर्वः, प्रविश्य तत्र ओ व्यसनं तरावः ।
भारण्डपक्ष्यायाति भ्रमन्, मांसबुद्ध्यावां नयति ।
तेनोक्तं यावारुढावायावः, उपकारिणावेतावावां वराकौ ।
उपकारिणो मारणम्, पापस्य कारणम्, इदशं करोति यो नरकगतिः ।
यस्य मनसि जिनो निवसति, स किं व्यवसति, अतिशयं निर्धृणः शुद्धमतिम् ? ॥ १३ ॥ ६१२ ॥
तेन भणितमेतौ मया क्रीतौ द्वावपि, यद्भावति तदहं करिष्यामि लात्वा ।

तो नियपसु पाडिउ खडहडंतु, पेक्खंतह मारिउ तडफडंतु ।
वीयइं भइं जोइउ तासु मुहू, मइ आयह रक्खहि भद्द ! तुंहू ।
तुह वाहणु हउं उवयारु सरि, मइ रक्खिवि पडिउवयारु करि ।
जोयंतु तरलतारयनयणू, वित्थरियमरणभयवुन्नमणू ।
पसु पेक्खवि कोडीकिउ मरणी, किरि का सु न पूरिय गलसरणी ? ।
तो पभणिउं तं पि चारुदत्तु , जो भद्द ! भवन्नवजाणवत्तु ।
सुसमत्थउ रक्खणि तुज्झ रम्मु, जिणभासिउ संपइ देवधम्मु ॥
उवसमि मणु दावहि, मणि परिभावहि, पुव्वक्किउ परिणमिउ तुय ।
इय पंचाणुव्वय, कियकम्मव्वय, एव सरणु सम्मत्तजुय ॥१४॥६१३॥
सो वि हु सुहभावण भावयंतु, निन्तिंसि विणासिउ उत्तसंतु ।
तहिं तेहइ कुहियइ ते अमोज्झि, एक्केक्कहि भत्थहि पइट्ठ मज्झि ।
भूमिहिं भमंत भारुंड पत्त, उप्पाडहिं आमिसलुद्धचित्त ।
उप्पयवि जाहिं जा गयणमग्गु, अन्नि पक्खि सहु जं जुजुझु लग्गु ।
जुज्झंतह पयडियसाहसाहं, अवरुप्परपरवसमाणसाहं ।

ततो निजपशुः पातितः खटखन्, प्रेक्षमाणस्य मारितस्त[1]डफडन् ।
द्वितीयं भीतं दृष्ट्वा तस्य मुखम्, मांमागच्छ रक्ष भद्र ! त्वम् ।
तव वाहनोऽहमुपकारं स्मर, मां रक्षित्वा प्रत्युपकारं कुरु ।
दृष्ट्वा तरलतारकनयनम्, विस्तरितमरणभयखिन्नमनसम् ।
पशुं प्रेक्ष्य कोडिकृतमरणम्, किल कस्य न पूरिता गलसरणी ।
ततः प्रभणितस्तं प्रति चारुदत्तः, यो भद्र ! भवार्णवयानपात्रम् ।
सुसमर्थो रक्षणे तव रम्यः, जिनभाषितः सम्प्रति देवधर्मः ॥
उपशमे मनो ददस्व, मनसि परिभावय, पूर्वकृतं परिणमितं तव ।
इति पञ्चाणुव्रतानि, कृतकर्मव्रतम्, एव शरणं सम्यक्त्वयुतम् ॥ १४ ॥ ६१३ ॥
सोऽपि हु शुभभावनां भावयन्, निस्त्रिंशेन विनाशित उत्त्रसन् ।
ताभ्यां तादृशौ लिप्तौ तावमेध्येन, एकैकायां भ्रस्त्रायां प्रविष्टौ मध्ये ।
भूमौ भ्रमन् भारण्डः प्राप्तः उत्क्षिपत्यामिषलुब्धचित्तः ।
उत्पत्यते याति यावद्गगनमार्गम्, अन्येन पक्षिणा सह योद्धुं लग्नः ।
युध्यमानस्य प्रकटिसाहसस्य, परस्परपरवशमानसस्य ।

---

१. तडफडंतु (दे.) तरफडतुं

जहिं पोट्टलि अच्छइ चारुदत्तु, सो खिविबि सरोवरनीरि पत्तु ।
नीसरिउ तासु जलधोयगत्तु, परिभमण लग्गु वीसत्थचित्तु ।
पुणरवि य तासु हुय जीवियास, पासट्ठियजीवह जम्म तास ।
रमणीयपएसिहिं, पयडविसेसहिं, भमडंतइं जलडुंगरिणि ।
गुरुसिहरसमग्गउ, गयणि विलग्गउ, एगु महीहरु दिट्ठु तिणि ॥१५॥६१४॥
रायंतु रुक्खेहिं साहोडयक्खेहिं हिंताल-तालेहिं जंबीरसालेहिं ।
बोरी-करंजेहिं नारंगसज्जेहिं बब्बूलझिल्लेहिं (.....) ।
सोहंजणक्खेहिं दीसंतदक्खेहिं सामा-कयंवेहिं खज्जूर-निंबेहिं ।
मंदारु-गुंदेहिं कोरिंट-कुंदेहिं पुन्नाग-नागेहिं कप्पुर-पुगेहिं ।
इय पसरियसाहेहिं, सीयलछाएहिं, सो गिरि सहइ समुन्नएहिं ।
फलपावणपउणेहिं, संसियसउणेहिं, जिम्व विउसयणु सकन्नएहिं ॥१६॥६१५॥
जा चडइ उवरि विम्हइयचित्तु, ता पेच्छइ चारणमुणि पवित्तु ।
तो भावसारु वंदियउ साहु, पारेवि झाणु किउ धम्मुलाहु ।
भो चारुदत्त ! किम्व एत्थ आउ ?, माणुसहं एहु जमगम्मु ठाउ ।

यत्र [१]पोट्टल्यामासते चारुदत्तः, स सृत्वा सरोवरनीरे प्राप्तः ।
निःसृत्य तस्या जलधौतगात्रः प्ररिभ्रमितुं लग्नो विश्वस्तचित्तः ।
पुनरपि च तस्य भूता जीविताशा, पार्श्वस्थितजीवस्य जन्म तस्य ।
रमणीयप्रदेशैः प्रकटविशेषैः, भ्राम्यन्ते जलपर्वताः ।
गुरुशिखरसमग्रो, गगने विलग्नः, एको महीधरो दृष्टस्तेन ॥ १५ ॥ ६१४ ॥
राजमानो वृक्षैः शाखोटजाख्यैः, हिन्ताल-तालै र्जम्बीरशालैः ।
बदरी-करञ्जै र्नारङ्गसज्जैं, बब्बुलझिल्लैः (.....) ।
शोभञ्जनाख्यै दृश्यमानदक्षैः, श्यामा-कदम्बैः खर्जूर-निम्बैः ।
मन्दारु-गुन्दैः कोरिण्ट-कुन्दैः, पुन्नाग-नागैः कर्पूर-पूगैः ॥
इति प्रसरितशाखाभिः, शीतलछायाभिः, स गिरी राजते समुन्नतैः ।
फलप्रापणप्रगुणैः शंसितशकुनैर्यथा विद्वज्जनः स्वकर्णैः ॥ १६ ॥ ६१५ ॥
यावदारोहत्युपरि विस्मितचित्तः, तावत्प्रेक्षते चारणमुनिं पवित्रम् ।
ततो भावसारं वन्दित्वा साधुम्, पारयति ध्यानं कृतो धर्मलाभः ।
भो चारुदत्त ! कथमत्रागतः ? मनुष्यस्यैतद्यदगम्यं स्थानम् ।

---

१. पोट्टलि (दे.) पोटली

मूलह पभिइ जिम्व तासु वित्तु, तिम्व कहिय सयल अप्पणिय वत्त ।
मुणिराउ वि अक्खइ नियपउत्ति, तसु भाणुसेट्ठितणयह सजुत्ति ।
जो मोइउ कीलयबंधणाउ, सो हं तहु पत्थिउ काणणाउ ।
रिउमाणु मलेविणु पत्तु गेहिं, जोग्गय निएवि वड्ढियसिणेहि ।
पव्वइउकामि अप्पणइ रज्जि, अहिसित्तु पियरि सुहजणणिसज्जि ॥
नियपउ पालंतह, दुट्ठ दलंतह, सिट्ठलोय रक्खणखमहु ।
जयसेण मणोरम, रूवमणोरम दुन्नि भज्ज संजाय महु ॥१७॥६१६॥
दुइ पुत्त (ग्रन्थाग्रम् ८०००) मणोरमदेवि जाय, गुणमहि(म) विढत्तजणाणुराय ।
सिहजसु पढमु विक्कमि अकीवु, बीयह अभिहाणु वराहगीवु ।
जयसेणह पुण गंधव्वसेण, हुए धूय वित्तगंधव्वएण ।
पत्थावि समप्पिवि सुयह रज्जु, पव्वइउ जाउ वयधरणसज्जु ।
परिहरिय सयल सावज्ज कज्जु, इह आइउ आयावणह अज्जु ।
इह कुंभ-कंबुदीवहं पहाणु, एहु पव्वउ कक्कोडयभिहाणु ।
इय जाय ताहं आलोव जाव, विज्जाहर दोन्नि पराय ताव ।

मूलस्य प्रभूति र्यथा तस्य वृत्तम्, तथा कथिता सकलात्मनो वार्ता ।
मुनिराजोऽप्याख्याति निजप्रवृत्तिम्, तस्य भानुश्रेष्ठितनयस्य सयुक्तिम् ।
यो मोचितः कीलकबान्धनात्, सोऽहं तदा प्रस्थितः काननात् ।
रिपुमानं मलित्वा प्राप्तो गृहे, योग्यतां दृष्ट्वा वर्धितस्नेहः ।
प्रव्रजितुकाम्यात्मनो राज्ये, अभिषिञ्चय पितरि सुखजननीसज्जे ।
निजपदं पालयतो दुष्टं दलयतः, शिष्टलोकं रक्षणक्षमस्य ।
जयसेना मनोरमा रुपमनोरमे द्वे भार्ये सञ्जाते मम ॥ १७ ॥ ६१६ ॥
द्वौ पुत्रौ मनोरमादेव्या जातौ, गुणमहिमार्जितजनानुरागौ ।
सिंहयशाः प्रथमो विक्रम्यकृपः, द्वितीयोडभिधानो वराहग्रीवः ।
जयसेनायाः पुन र्गन्धर्वसेना भूता दुहिता वृत्तागन्धर्वकेन ।
प्रस्तावे समर्प्य सुतस्य राज्यम्, प्रवजितो जातो व्रतधारणसज्जः ।
परिहृतसकलसावद्यकार्यः इहागत आतापनाया अद्य ।
इह कुम्भ-कम्बुद्वीपस्य प्रधानः एष पर्वतः कर्कोटकाभिधानः ।
इति यावत्तमालोकयावो यावत् विद्याधरौ द्वौ परागतौ तावत् ।

मुणिपुत्त नाय अणुहारिरूव, जाणाविय साहम्मियसरूवु ।
मुणि जीवियदावय, वंदहु-सावय, संभमि वंदण विहिय तसु ।
उवयारु कु किज्जउ ? किं तुह दिज्जउ ? भुवणि न बिज्जउ अवर जसु ॥१८॥६१७॥
जावऽच्छहिं इम्व ते तिणि समाणु, तावेगु गयणि आइउ विमाणु ।
पणावन्नरयणमयभित्तिभाउ, आबद्धरुइरसुरइंदचाउ ।
ओलंविरमुत्ताहारतारु, नं सिद्धिधामु लोयग्गसारु ।
विलसंतचमरु नं विंज्झरन्नु, सुविभत्तथंभु नं मयपवन्नु ।
सुइचित्तकम्मु जारिसय सुयणु, उल्लेयसारु नं साहुरयणु ।
जसु सरयसरोवरु आहरणू, कमलालउ सच्छरसाहरणू ।
सरयब्भसुब्भधयबडसणाहु, दप्पुद्धरि नं उब्भविउबाहु ।
किं वहुयइं वायावित्थरेण ?, रमणीयवत्थु न समाणु तेण ॥
तसु मज्जह सुरवरु, चलकुंडलवरु, निग्गउ चंगिमनिव्वडिउ ।
(तो सो) मुणि मिल्लिवि, नयपहु पोल्लिवि, चारुदत्तपाइहि[1] पडिउ ॥१९॥६१८॥
नय-विणय-रूवरेहाजुएहिं, पुच्छिज्जइ विज्जाहरसुएहिं ।

मुनिपुत्रं ज्ञात्वानुहारिरुपम्, ज्ञापयित्वा साधर्मिकस्वरुपम् ।
मुनिजीवितदायकं वन्दस्व श्रावकम्, सम्भ्रमेण वन्दनं विहितं तस्य ।
उपकारः कः क्रियते ? किं तव दीयते ? भुवने न द्वितीयोऽपरो यस्य ॥ १८ ॥ ६१७ ॥
यावदासन्त इत्थं ते त्रयः समानम्, तावदेकं गगन आगतं विमानम् ।
पञ्चवर्णरत्नमयभित्तिभागम्, आबद्धरुचिरसुरेन्दचापम् ।
अवलम्बितमुक्ताहारतारम्, इव सिद्धधाम लोकाग्रसारम् ।
विलसच्चमरमिव विन्ध्यारण्यम्, सुविमलस्तम्भमिव मदप्रपन्नम् ।
शुभचित्रकर्म यादृशं सुतनुः, उल्लोचकसारमिव साधुरत्नम् ।
यस्य शरदसरोवरमाभरणम्, कमलालयं स्वच्छरसाहरणम् ।
शरदाभ्रध्वजपटसनाथं, दर्पोद्धरमिवोर्ध्वितबाहुम् ।
किं बहुना ? वाचाविस्तरेण ? रमणीयवस्तु न समानं तेन ॥
तस्य मध्यस्य सुरवरः, चलत्कुण्डलवरो निर्गतश्चङ्गिमानिष्पन्नः ।
तदा स मुनिं मुक्त्वा, नयपन्थानं प्रोल्लङ्घ्य चारुदत्तपादयोः पतितः ॥ १६ ॥ ६१८ ॥
नय-विनय-रुपरेखायुक्ताभ्यां पृच्छयते विद्याधरसुताभ्याम् ।

---

१. पायहिं रं० ।

भो भद्द ! भत्तिवड्ढंतपणउ, मुणि मिल्लिवि आयह किं पणउ ? ।
हिमवंत धरहिं जिम्व सुरसरिया, तिंव नीइवि सग्गह नीसरिया ।
आयन्नहु विज्जाहरसुयहो !, नीसेसकुवासणमणिमुयहो ! ।
वाणारसि नामिं इह नयरि, परिवारिय जा पुरिगुणनियरि ।
तत्थ य सुभद्द-सुलसाभिहाण, पव्वाइय वेय-सुइप्पहाण ।
अवरू परिवायगु जन्नवक्कु, तहिं अत्थि वियाणियवेयवक्कु ।
तिं वेयवियारिं सुलसजिया, तसु पासि दासि जिम्ब सा उ ठिया ॥
सो तीयऽणुरत्तउ, हुयउ पमत्तउ, कामपिसाइं भोलियउ ।
जइ वा जिणु मेल्लिवि, बाणेहिं पेल्लिवि, मयणि भुवण धंधोलियउ ॥२०॥६१९॥
तो तीए गब्भसंभूइ हुया, उप्पन्नि पुत्ति लज्जाए मुया ।
पिप्पलहे हिट्ठि परिचत्तसुया, सहु कंतिं नासिवि कहिंवि गया ।
बालह मुहि पडियउं पिंपफलू, आसायइ सो तं छुहवियलू ।
संपत्त कुओ वि सुभद्द तहिं, पिप्पलतलि मुक्कउ बालु जहिं ।
विन्नायउ वइयरु तीए सहू, संगोविउ एहु सुउ ससहि महू ।

भो भद्र ! भक्तिवर्धमानो मुनिं मुक्त्वागतः किं प्रणतः ? ।
हिमवद्गृहाद् यथा सुरसरित् तथा नीतिरपि स्वर्गान्निसृता ।
आकर्णयतं विद्याधरसुतौ ! निःशेष कुवासनामणिमुक्तौ ।
वाणारसि नामेह नगरि, परिवारिता या पुरिगुणनिकरेण ।
तत्र च सुभद्रा सुलसाभिधाने, प्रव्राजिके वेद-श्रुतिप्रधाने ।
अपरो परिव्राजको याज्ञवल्क्यः, तत्रास्ति विजानीतवेदवाक्यः ।
तेन वेदविचारिणा सुलसाजिता, तस्यपार्श्वे दासीमिव सा तु स्थिता ।
स तस्यामनुरक्तो, भूतः प्रमत्तः कामपिशाचेन वञ्चित्वा ।
यदि वा जिनं मुक्त्वा, बाणैःप्रेरयित्वा, मदनेन भुवनं मोहितम् ॥ २० ॥ ६१९ ॥
तदा तस्या गर्भसम्भूति र्भूता, उत्पन्ने पुत्रे लज्जया मुक्तः ।
पिष्पलकस्याधः परित्यक्तसुता, सह कान्तेन नंष्ट्वा कुत्रापिगता ।
बालस्य मुखे पतितं पिष्पफलम्, आश्वादयति स तं क्षुधाविफलः ।
सम्प्राप्ता कुतोऽपि सुभद्रा तत्र पिष्पलतले मुक्तो बालो यत्र ।
विज्ञातो व्यतीकरस्तया सर्वः, संगोप्यैषः सुतः शंस्यते मम ।

किउ पिप्पलाउ गुणनाउं तसू, हुयउ वेयविसारउ लद्धजसू ।
नियजम्मु मुणिवि अहिमाणधणि, दुवि वाइं पराइय जणय तिणि ।
पिइमेह पयट्टिय जन्न जणि, उच्छलिउ करंतउ मारि हणि ॥
अहिमाणि.....विणु, जणय हणेविणु, पाव वेय वित्थरिय तिणि ।
अन्नाणिं मूढउ, माणारूढउ, कवणु पावु जं न करइ जणि ॥२१॥६२०॥
तसु पच्छइ वद्दलि सीसु हूउ, सु अणेग करेविणु जन्नसुउ ।
पसु मारिवि पावि नरइ गउ, उव्वट्टिवि नरयह हुयउ अऊ ॥
सो पंच वार पसुमेहि हऊ, छट्ठइ भवि टंकणविसइ गऊ ।
तो रुद्दत्ति मारिउ वराउ, जिणधम्मवसिण दिवि देउ जाउ ।
इणि कारणि एहु मह धम्मगुरु, आवह पसाइं हउं हुयउ सुरू ।
गुरु दुप्पडियारउ होइ जई, कुलि जायउ तसु संभरइ जई ।
विज्जाहर रंजिय बिंति बे वि, सुकयन्नु भावु तारिसु मुणेवि ।
अम्हहिं वि उवकिउ एहु तणउ, आइं जीवाविउ जिं जणउ ॥
अह अवसरपत्तउ, सुरिं विन्नत्तउ, दिज्जउ पहु ! आएस महु ।

कृतं पिष्पलादं गुणनाम तस्य, भूतो वेदविशारदो लब्धयशाः ।
निजजन्म मुणित्वाभिमानधनेन, द्वयो र्वादयोः पराजितो जनकस्तेन
पितृमेघः प्रवर्तितो यज्ञो जने, उच्छलितः कुर्वन् मारि र्वधम् ।
अभिमानिना ज्ञात्वा जनकं हत्वा, पापवेदा विस्तारितास्त्रयः ।
अज्ञानेन मुढो मानारुढः, कवणं पापं यन्नकरोति जनः ॥ २१ ॥ ६२० ॥
तस्य पश्चाद्वार्दलः शिष्योऽभूत, सोऽनेकं कारयित्वा यज्ञसूत्रम् ।
पशुं मारयित्वा पापी नरके गतः, उद्वर्त्य नरकादभूदजः ।
स पञ्च वारा पशुमेघे हतः, षष्टे भवे टङ्कणविषये गतः ।
ततो रुद्रदत्तेन मारितो वराकः, जिनधर्मवशेन दिवि देवो जातः ।
अनेन कारणेन एष मम धर्मगुरुः, एतस्य प्रसादेनाहमभवं सुरः ।
गुरू र्दुष्प्रतिचारितो भवति जगति, कुले जातस्तस्य स्मरति यदि ।
विद्याधरौरञ्जितौ ब्रुतो द्वावपि, सुकृतज्ञभावस्तादृशो मुणित्वा ।
आवाभ्यामप्युपकृत एष तनुकः, आयात्य जीवयितो यज्जनकः ।
अथावसरप्राप्तः सूरिं विज्ञापयति, दीयते प्रभो ! आदेशो मम ।

संभरियउ एज्जसु, जिणुसुमरिज्जसु, पडिवज्जिवि उप्पइउ नहु ॥२२॥६२१॥
अह तेहिं अदंसणि हुयइ सुरि, निउ चारुदत्तु अप्पणइ पुरि ।
तहिं विहियदाण-सम्माण-विणय, ठिय कइवय दिण वड्ढंतपणय ।
पत्थावि तेहिं वरविभवजुओ, संपाविउ चंपहिं भाणुसुओ ।
स वसंतेण सुक्किलवसणा उब्बद्धवेणि छुल्लियदसणा ।
जप्पभिइ विउत्त सुभद्दसुया, तप्पभिइ मित्तवइगेहि ठिया ।
सुहि-सयण-कलत्तदुगेण जुओ, पुणरवि य लच्छिकुलभवणु हुओ ।
जे संपय-विवयहं हेउभाव, सन्निहिय ति जीवह पुन्न पाव ।
जिम्व उदय-पयाव-ऽत्थमण सूरि, तिंव आयइं सव्वह भविय दूरि ॥
जिम्व (जिय) आयह, तिव जिय जायह, सव्वह संपय विवय जणि ।
एउ मुणिवि सयाणहु, तत्तवियाणहु, हरिस विसाय न करहिं मणि ॥२३॥६२२॥
सोहयहियओ भावट्टियाए बहुहाव-भावनिउणाए । तडुवियसवणजुयलो विम्हरियप्पा सुणइ जक्खो ॥६२३॥
जावऽज्ज वि न समप्पइ दुण्ह वि रसियाण ताण चरियमिमं । घडियाहरए ताव य पहया चउपोरिसी नयरे ॥६२४॥
एत्थंतरम्मि य रवी मिलंतचक्कणमंचिओ चडिओ । भावट्टियाए चरियं व चाहिउं उदयगिरिसिहरे ॥६२५॥

स्मृत आयाहि, जिनः स्मर्तव्यः प्रतिपाद्योत्पतितो नभसि ॥ २२ ॥ ६२१ ।
अथ ताभ्यामदर्शनी भूते सुरे, नीतश्चारुदत्त आत्मनः पुरिम् ।
तत्र विहित दान-सन्मान-विनयः, स्थितः कतिपयान् दिनान् वर्धमानपुण्यः ।
प्रस्तावे ताभ्यां वरविभवयुतः, सम्प्रापितश्चम्पायां भानुसुतः ।
सा वसन्तसेना शुक्लवसना, उद्बद्धवेणी क्षुद्रदशना ।
यत्प्रभृति र्वियुक्ता सुभद्रासुता, तत्प्रभृति र्मित्रवतीगृहे स्थिता ।
सखा-स्वजन-कलत्रद्विकेन युतः, पुनरपि च लक्ष्मीकुलभवनो भूतः ।
ये संपद्विपदो हेतुभावाः सन्निहितेति जीवस्य पुण्यपापाः ।
यथोदय-प्रतापास्तमनं सूर्ये, तथायतिं सर्वथा भविता दूरे ।
यथा जीव आगतस्तथा जीवो याति, सर्वथा संपद्विपदौ जने ।
एतन्मुणित्वा सज्ञानाः तत्त्वविज्ञानाः । हर्ष-विषादं न कुरुत मनसि ॥ २३ ॥ ६२२ ॥
स हृतहृदयो भावभट्टिकया बहुहावभावनिपूणया । विस्तीर्णश्रवणयुगलो विस्मृतात्मा शृणोति यक्षः ॥ ६२३ ॥
यावदद्यापि न समाप्यते द्वयोरपि रसिकयोस्तयोश्चरित्रमिदम् । घटिकागृहे तावच्च प्रहता चतुःपोरिसी नगरे ॥ ६२४ ॥
अत्रान्तरे च रवि र्मिलच्चक्राणामञ्चित आरुढः । भावभट्टिकायाश्चरित्रमिव वाञ्छितुमुदयगिरिशिखरे ॥ ६२५ ॥

एत्थंतरम्मि सव्वो सकोउओ नायरो जणो पत्तो । जक्खाययणे अक्खयदेहं भावट्टियं नियइ ॥६२६॥
पुव्वुत्तविहाणेणं पमोयसंभारमुव्वहंतेण । पउरजणेणं पत्ता पवेसिया भाणुभवणम्मि ॥६२७॥
महईए विभूईए वद्धावणयं पयट्टियं नयरं । पत्थावम्मि सपणयं पणमित्ता पउरलोएण ॥६२८॥
पुट्ठाइ तं महासइ ! कहमुव्वरिया इमाओ जक्खाओ ? । भणियं निरहंकारं तीए वि हु ओणयमुहीए ॥६२९॥
देव-गुरूण पसाया महासईणं च सीलमहिमाए । उवसमिओ मह जक्खो रुट्ठो परमेस लोयस्स ॥६३०॥
भणियं च कीसमिमिणा कलंकमारोवियं असंतं ते ? । किं वा वि हु तुह जणओ तइया णेणं पराभविओ ? ॥६३१॥
ता एयं पुरलोयं पभायसमयम्मि सिक्खविस्समहं । तत्तो य मए चिंतियमहो ! कहं एस परिकुविओ ? ॥६३२॥
मा होउ मन्निमित्तयमेसोऽणत्थो पुरम्मि एयाओ । कह कह वि मए पणमिय कारविओ सो ववत्थमिमं ॥६३३॥
जइ एसो पुरलोओ मज्झमवाणउब्भवेण तेल्लेण । टिल्लणि कुणइ मुंचामि नऽन्नहा भणियमेएण ॥६३४॥
तं निसमिउं जणेणं दिवसम्मि न किंचि काउमलमेसो । उप्पाडिऊण निहओ चउहट्टे नायरसएण ॥६३४॥
उक्कीरिऊण घाणयकरणिवरमवाणदेसमेयस्स । परिपीलिऊण तिलनियरमेवमुप्पाइयं तेल्लं ॥६३६॥
विहियाणि सव्वलोएण नियघरभालेसु तेल्लटिल्लणि । एयं सव्वं किर कूडकवडभरियाए तीए कयं ॥६३७॥
तथा हि-
अणुभूयं विसयसुहं पभूयमप्पाणयं च सुज्झवियं । विग्गोविओ य सव्वो पिउपरिभवकारओ लोगो ॥६३८॥

अत्रान्तरे सर्वः सकौतुको नागरो जनः प्राप्तः । यक्षायतनेऽक्षयदेहां भावभट्टिकां पश्यति ॥ ६२६ ॥
पूर्वोक्तविधानेन प्रमोदसम्भारमुद्वहता । पौरजनेन प्राप्ताः प्रवेशिता भानुभवने ॥ ६२७ ॥
महत्या विभूत्या वर्धापनकं प्रवर्तितं नगरे । प्रस्तावे सप्रणयं प्रणम्य पौरलोकेन ॥ ६२८ ॥
पृष्टा त्वं महासती ! कथमुद्धृतास्माद्यक्षात् ? । भणितं निरहंकारं तयापि हु अवनतमुख्या ॥ ६२९ ॥
देव-गुरुणां प्रसादान्महासतीनां च शीलमहिम्ना । उपशमितो मया यक्षो रूष्टः परमेष लोकस्य ॥ ६३० ॥
भणितं च कथमनेन कलङ्कमारोपितमसन्तं ते ? । किं वापि हु तव जनकस्तदाऽनेन पराभूतः ? ॥ ६३१ ॥
तत एतत्पुरलोकं प्रभातसमये शिक्षयिष्येऽहम् । ततश्च मया चिन्तितमहो ! कथमेष परिकुपितः ? ॥ ६३२ ॥
मा भवतु मन्निमित्तमेषोऽनर्थः पुरे एतस्मात् । कथं कथमपि मया प्रणभ्य कारितः स व्यवस्थामिमाम् ॥ ६३३ ॥
यद्येष पुरलोको ममापानोद्भवेन तैलेन । तिलकानि करोति मुञ्चामि नान्यथा भणितमेतेन ॥ ६३४ ॥
तन्निशम्य जनेन दिवसे न किञ्चित्कर्तुमेषः । उत्क्षिप्य निहतश्चतुर्हट्टे नागरशतेन ॥ ६३५ ॥
उत्कीर्य घ्राणककरणिवरमपानदेशमेतस्य । परिपीड्य तिलनिकरमिवोत्पादितं तैलम् ॥ ६३६ ॥
विहितानि सर्वलोकेन निजकभालेषु तैलतिलकानि । एवं सर्वं किल कूटकपटभृतया तया कृतम् ॥ ६३७ ॥
तथा हि -
अनुभूतं विषयसुखं प्रभूतमात्मानं च शोधितम् । विगोपितश्च सर्व : पितृपरिभवकारको लोकः॥ ६३८ ॥

जक्खो महप्पभावो अपमाणं कारिओ पुरसमक्खं । अवरो वि जो विरूवो वसीकओ सो वि किं बहुणा ? ॥६३९॥
पढमं पि हु विहियमिमं असहंतीए पराभवं पिउणो । माणधणाए भणियं तहेव निव्वाहियमिमीए ॥६४०॥
जओ-अभिमाणवज्जियाणं ठाणे ठाणे पराभवहयाणं । काउरिसाणं ताणं न य इहलोगो न परलोगो ॥६४१॥
तहा-अवि उड्ढं चिय फुट्टंति माणिणो न य सहंति अवमाणं । अत्थवणम्मि वि रविणो किरणा ऊड्ढं चिय फुरंति ॥६४२॥
किंच-वियसंतकमलवणसंडमंडियं भमरमणहरुग्गीयं । अभिमाणधणस्स तणं व सरवरं रायहंसस्स ॥६४३॥
तहा-देसं मुयंति जीयं चयंति पियवंधवं पि न गणंति । अभिमाणधणा पुरिसा रज्जब्भंसं पि हु सहंति ॥६४४॥
अह अन्नया कयाई विचित्तकम्मक्खओवसमजोगा । अंतरिउवग्गं पि वियंभिओ तीए अभिमाणो ॥६४५॥
अभिमाणेण किमिमिणा बहुएण वि अविसए पउत्तेण ? । जइ जाणिऊण जिप्पइ किं पि हु तो जायए लट्ठं ॥६४६॥
इय सुहपरिणामाए दिट्ठो तीए समंतभद्दगुरू । नमिऊणं सो पुट्ठो अभिमाणो कत्थ कायव्वो ? ॥६४७॥
भणियं च तेण-
राग-द्दोस-कसाए भद्दे ! अभिमाणओ जिणसु एए । जित्तेसु जेसु सुहिया होहिसि जम्मंतरसएसु ॥६४८॥
इय सुणिऊणं तीए भणियं भयवंत ! तुह समीवम्मि । मोयाविऊण पियरो तुह वुत्तमहं करिस्सामि ॥६४९॥
तो सा अम्मा-पियरो मायोवेउं खमाविउं पउरे । महईए विभूईए पव्वइया गुरुसमीवम्मि ॥६५०॥
पव्वाविऊण गुरुणा समप्पिया सुव्वयाए गणिणीए । उद्धरियसव्वसल्ला विहरइ सा गुरुसमीवम्मि ॥६५१॥

यक्षो महाप्रभावोऽपमानं कारितः पुरसमक्षम् । अपरोऽपि यो विरुपो वशीकृतः सोऽपि किं बहुना ? ॥ ६३९ ॥
प्रथममपि हु विहितमिममसहमानया पराभवं पितुः । मानधनया भणितं तथैव निर्वाहितमनया ॥ ६४० ॥
यतः-अभिमानवर्जितानां स्थाने स्थाने पराभवहतानाम् । कापुरुषाणां तेषां न चेहलोको न परलोकः ॥ ६४१ ॥
तथा-अप्युर्ध्वं चैव स्फुटन्ति मानिनो न च सहन्तेऽपमानम् । अस्तापनेऽपि रवेः किरणा उर्ध्वं चैव स्फुरन्ति ॥६४२॥
किंच-विकसत्कमलवनखण्डमण्डितं भ्रमरमनोहरोद्गीतम् । अभिमानधनस्य तृणमिव सरोवरं राजहंसस्य ॥ ६४३ ॥
तथा-देशं मुञ्चन्ति जीवं त्यजन्ति प्रियबन्धवमपि न गणयन्ति । अभिमानधनाः पुरुषा राज्यभ्रंशमपि हु सहन्ते ॥६४४॥
अथान्यदा कदाचीद्विचित्रकर्मक्षयोपशमयोगात् । आन्तरारिपुवर्गं प्रति विजृम्भितस्तस्या अभिमानः ॥ ६४५ ॥
अभिमानेन किमनेन बहुनाप्यविषये प्रयुक्तेन ? । यदि ज्ञात्वा जीयते किमपि हुं तदा जायते सुन्दरम् ॥ ६४६ ॥
इति शुभपरिणामया दृष्टस्तया सम्मतभद्रगुरुः । नत्वा स पृष्टोऽभिमानः कुत्र कर्तव्यः ? ॥ ६४७ ॥
भणितं च तेन-
राग-द्वेष-कषायान् भद्रे ! अभिमानाज्जयैतान् । जीतेषु येषु सुखिता भविष्यसि जन्मान्तरशतेषु ॥ ६४८ ॥
इति श्रुत्वा तया भणितं भगवन्तः ! तव समीपे । मोचयित्वा पितरं तवोक्तमहं करिष्यामि ॥ ६४९ ॥
तदा साम्मा-पितरौ मोचयित्वा क्षमयित्वा पौरान् । महत्या विभूत्या प्रव्रजिता गुरुसमीपे ॥ ६५० ॥
प्रव्राज्य गुरुणा समर्पिता सुव्रताया गणिन्याः । उद्धरितसर्वशल्या विहरति सा गुरुसमीपे ॥ ६५१ ॥

पंचसमिया तिगुत्ता जिइंदिया जियपरीसह-कलाया । विसयनिउत्तऽभिमाणा विसेसओ तवसमाउत्ता ॥६५२॥

तथा हि-

छट्ठ-ऽट्ठम-दुवालसेहिं मास-ऽद्धमासखमणेहिं । तह सोसविओ अप्पा जह रागाई वि सोसविया ॥६५३॥

तत्तो य निक्कलंकं सामन्नं पालिऊण बहुकालं । सुरलोयं संपत्ता तओ चुया पाविही मोक्खं ॥६५४॥

कह तीए तारिसओ परिणामो भवनिबंधणं आसि ? । कह संपइ सिवहेऊ ? अहो ! विचित्ताणि कम्माणि ॥६५५॥

जह एयाओ बहुकूड-कवडदोसाण मंदिरमणज्जा । तह पायं सव्वा वि हु विवेइणा ता विवज्जाओ ॥६५६॥

(॥ भावभट्टिकाख्यानकं समाप्तम् ॥७३॥)

एतासु निर्धृणपुरन्ध्रिषु राक्षसीषु, मायाधनासु च न विश्वसनीयमेव ।
एत्ता हि मुग्धजनमात्मवशं विधाय, संसारदुःखजलधौ खलु पातयन्ति ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे
व्यसनशतजनकयुवतिविश्वासवर्णनस्त्रयोविंशतितमोऽधिकारः समाप्तः ॥२३॥

पञ्चसमितात्रिगुप्ता जितेन्द्रिया जितपरीषहकषाया । विषयनिवृत्ताभिमाना विशेषतस्तपः समायुक्ता ॥ ६५२ ॥

तथा हि - षष्ठा-ऽष्टम-दशम-द्वादशै मासाऽर्धमासक्षपणैः । तथा शोषित आत्मा यथा रागादयोऽपि शोषिताः ॥६५३॥

ततश्च निष्कलङ्कं श्रामण्यं पालयित्वा बहुकालम् । सुरलोकं संप्राप्तास्ततश्च्युता प्राप्स्यति मोक्षम् ॥ ६५४ ॥

कथं तस्यास्तादृशः परिणामो भवनिबन्धनमासीत् ? । कथं सम्प्रति शिवहेतुः ? अहो ! विचित्राणि कर्माणि ॥ ६५५ ॥

यथैताः बहुकूट-कपटदोषाणां मन्दिरमनार्याः । तथा प्रायः सर्वा अपि हु विवेकिना ततो विवर्ज्याः ॥ ६५६ ॥

॥ भावभट्टिकाख्यानकं समाप्तम् ॥ ७३ ॥

●●●

પૂજ્યપાદ્ આચાર્યદેવ ઓંકારસૂરીશ્વરજી મહારાજ જ્ઞાનમંદિર ગ્રંથાવલીમાં પ્રાપ્ય પુસ્તકો...

પૂ. આચાર્યદેવ મુનિચન્દ્રસૂરિજી મ. સંપાદિત - સંકલિત પ્રેરિત ગ્રંથો

- વીર નિર્વાણ સંવત ઔર જૈન કાલગણના : લે. પં.શ્રી કલ્યાણવિજયજી ગણિ
- શ્રમણ ભગવાન મહાવીર : પં. શ્રી કલ્યાણવિજયજી ગણિ (હિન્દી)
- જૈન સાહિત્યનો સંક્ષિપ્ત ઈતિહાસ: લે. મોહનલાલ દેસાઈ
- જૈન સંસ્કૃત સાહિત્યનો ઈતિહાસ ભાગ ૧-૨-૩ : લે. હીરાલાલ ૨. કાપડિયા
- પાઈઅ ભાષાઓ અને સાહિત્ય - હીરાલાલ કાપડિયા
- વ્યવહાર સૂત્ર ભાગ-૧ થી ૬, વ્યવહાર સૂત્ર પ્રતાકારે ભાગ-૧ થી ૭
- દસ વૈકાલિક સૂત્ર : પૂ. આ. ભદ્રંકરસૂરિજી મ.સા.ના વિવેચન સાથે
- પ્રસંગવિલાસ ■ પ્રસંગ અંજન ■ પ્રસંગસિદ્ધિ (હિન્દી) ■ પ્રસંગ રંગ ■ પ્રસંગ સરીતા ■ પ્રસંગકિરણ (હિન્દી)
- પ્રસંગ કલ્પલત્તા ■ હીર સૌભાગ્ય (સટીક) ■ પ્રવચન સારોદ્ધાર વિષમપદ વ્યાખ્યા
- દસસાવગચરિયં ■ ધર્મરત્નકરંડક ■ કથારત્નાકર ■ પ્રભાવકચરિત્ર (ગુજરાતી ભાષાંતર)
- ઉપમિતિ કથોદ્ધાર કર્તા : પં. શ્રી હંસરત્નવિજયજી ગણિ ■ ઉવાઈયસુત્તમ્ ■ પ્રસંગયાત્રા ■ પ્રસંગ સરિતા
- સુરસુંદરી ચરિયં (સંસ્કૃત છાયા સાથે) - સંપાદિકા સા. મહાયશાશ્રીજી મ.,
- પ્રમાણનયતત્વાલોક (વિવેચન સા. મહાયશાશ્રીજી મ.)
- ચૈત્યવંદન ચતુર્વિંશતિકા - સંપાદિકા સા. મહાયશાશ્રીજી મ.,
- કર્મગ્રંથ : ઉપશમ શ્રેણિ, ક્ષપક શ્રેણિ, શાંતિનાથ ચરિત્ર સાનુવાદ, દાનોપદેશ-માલા સવિવેચન રમ્યરેણુ,

પૂ. આચાર્યદેવ યશોવિજયસૂરીશ્વરજી મહારાજની વાચનાઓ...

- દરિસણ તરસિએ ભાગ ૧-૨
- આપ હિ આપ બુઝાય
- મેરે અવગુણ ચિત્ત ન ધરો
- પરમ ! તારા માર્ગે
- અનુભૂતિનું આકાશ
- ધ્યાન અને કાયોત્સર્ગ
- પ્રવચન અંજન જો સદ્‌ગુરુ કરે
- સમાધિશતક ભાગ-૧ થી ૪
- બિછુરત જાયે પ્રાણ
- પ્રગટ્યો પૂરન રાગ
- ઋષભ જિનેશ્વર પ્રિતમ માહરો
- આત્માનુભૂતિ
- રોમે રોમે પરમ પર્શ
- માણ્યું તેનું સ્મરણ
- એકાન્તનો વૈભવ
- સમુંદ સમાના બુંદ મેં
- સો હિ ભાવ નિર્ગ્રંથ
- આતમજ્ઞાની શ્રમણ કહાવે
- પ્રભુનો પ્યારો સ્પર્શ
- અસ્તિત્વનું પરોઢ
- પ્રભુના હસ્તાક્ષર
- રસો વૈ સઃ
- સાધનાપથ

: સંપર્ક :

- આ. શ્રી ઓંકારસૂરિ આરા. ભવન ગોપીપુરા, સુરત ૧, ટેલી : ૨૪૨૬૫૩૧
- શ્રી વિજય ભદ્ર ચે. ટ્રસ્ટ, ભીલડીયાજી, ૩૮૫૫૩૦, ટેલી : ૦૨૭૪૪/૨૩૩૧૨૯
- આ. શ્રી ઓંકારસૂરિ જ્ઞાનમંદિર, વાવપથકની વાડી, દશા પોરવાડ સોસા., પાલડી, અમદાવાદ, ૩૮૦૦૦૭, ટેલી : ૨૬૫૮૬૨૯૩.

■ ■ ■

પ્રભુવાણી પ્રસાર સ્થંભ (યોજના-૧,૧૧,૧૧૧)

૧. શ્રી સમસ્ત વાવ પથક શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ-ગુરુમૂર્તિ પ્રતિષ્ઠા-સ્મૃતિ
૨. શેઠશ્રી ચંદુલાલ કકલચંદ પરીખ પરિવાર, વાવ
૩. શ્રી સિદ્ધગિરિ ચાતુર્માસિ આરાધના (સં. ૨૦૫૭) દરમ્યાન થયેલ જ્ઞાનખાતાની આવકમાંથી.
હસ્તે : શેઠશ્રી ધુડાલાલ પુનમચંદભાઈ હેક્કડ પરિવાર, ડીસા, બનાસકાંઠા
૪. શ્રી ધર્મોત્તેજક પાઠશાળા, શ્રી ઝીંઝુવાડા જૈન સંઘ, ઝીંઝુવાડા
૫. શ્રી સુઈગામ જૈન સંઘ, સુઈગામ
૬. શ્રી વાંકડિયા વડગામ જૈન સંઘ, વાંકડિયા વડગામ
૭. શ્રી ગરાંબડી જૈન સંઘ, ગરાંબડી
૮. શ્રી રાંદેરરોડ જૈન સંઘ-અડાજણ પાટીયા, રાંદેરરોડ, સુરત
૯. શ્રી ચિંતામણી પાર્શ્વનાથ જૈન સંઘ પાર્લા (ઈસ્ટ), મુંબઈ
૧૦. શ્રી આદિનાથ તપાગચ્છ શ્વેતાંબર મૂ.પૂ.જૈન સંઘ, કતારગામ, સુરત
૧૧. શ્રી કૈલાસનગર જૈન સંઘ, કૈલાસનગર, સુરત
૧૨. શ્રી ઉચોસણ જૈન સંઘ, સમુબા શ્રાવિકા આરાધના ભવન, સુરત જ્ઞાનખાતેથી
૧૩. શ્રી વાવ પથક જૈન શ્વે. મૂ.પૂ. સંઘ, અમદાવાદ
૧૪. શ્રી વાવ જૈન સંઘ, વાવ, બનાસકાંઠા
૧૫. કુ. નેહલબેન કુમુદભાઈ (કટોસણ રોડ)ની દીક્ષા પ્રસંગે થયેલ આવકમાંથી
૧૬. શ્રી આદિનાથ શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, નવસારી
૧૭. શ્રી ભીલડીયાજી પાર્શ્વનાથ જૈન દેરાસર પેઢી, ભીલડીયાજી
૧૮. શ્રી નવજીવન જૈન શ્વે. મૂ.પૂ. સંઘ, મુંબઈ
૧૯. શ્રી જશવંતપુરા જૈન સંઘ - શ્રાવિકા બહેનોના જ્ઞાનદ્રવ્યમાંથી

પ્રભુવાણી પ્રસારક (યોજના-૬૧,૧૧૧)

૧. શ્રી દિપા શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, રાંદેરરોડ, સુરત
૨. શ્રી સીમંધરસ્વામી મહિલા મંડળ, પ્રતિષ્ઠા કોમ્પલેક્ષ, સુરત
૩. શ્રી શ્રેણીકપાર્ક જૈન શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક સંઘ, ન્યૂ રાંદેરરોડ, સુરત
૪. શ્રી પુણ્યપાવન જૈન સંઘ, ઈશિતા પાર્ક, સુરત
૫. શ્રી શ્રેયસ્કર આદિનાથ જૈન સંઘ, નીઝામપુરા, વડોદરા
૬. શ્રી અમરોલી જૈન સંઘ - અમરોલી, સુરત

પ્રભુવાણી પ્રસાર અનુમોદક (યોજના - ૩૧,૧૧૧)

૧. શ્રી મોરવાડા જૈન સંઘ, મોરવાડા
૨. શ્રી ઉમરા જૈન સંઘ, સુરત
૩. શ્રી શત્રુંજય ટાવર જૈન સંઘ, સુરત

४. શ્રી ચૌમુખજી પાર્શ્વનાથ જૈન મંદિર ટ્રસ્ટ
શ્રી જૈન શ્વેતાંબર તપાગચ્છ સંઘ ગઢસિવાના (રાજ.)
૫. શ્રીમતી તારાબેન ગગલદાસ વડેચા-ઉચોસણ
૬. શ્રી સુખસાગર અને મલ્હાર એપાર્ટમેન્ટ સુરતની શ્રાવિકાઓ તરફથી
૭. રવિજ્યોત એપાર્ટમેન્ટ, સુરતની શ્રાવિકાઓ તરફથી
૮. અઠવાલાઈન્સ જૈન સંઘ, પાંડવબંગલો, સુરત શ્રાવિકાઓ તરફથી
૯. શ્રી આદિનાથ તપાગચ્છ શ્વે.મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, કતારગામ, સુરત
૧૦. શ્રીમતી વર્ષાબેન કર્ણાવત, પાલનપુર
૧૧. શ્રી શાંતિનિકેતન સરદારનગર જૈન સંઘ, સુરત
૧૨. શ્રી પાર્શ્વનાથ જૈન સંઘ, ન્યુ રામારોડ, વડોદરા
૧૩. પાંડવ બંગલો (અઠવાલાઈન્સ) સુરતની આરાધક બહેનો તરફથી, સુરત

પ્રભુવાણી પ્રસાર ભક્ત (યોજના - ૧૫,૧૧૧)

૧. શ્રી દેસલપુર (કંઠી) શ્રી પાર્શ્વચંદ્રગચ્છ
૨. શ્રી ધ્રાંગધ્રા શ્રી પાર્શ્વચંદ્રસૂરીશ્વરગચ્છ
૩. શ્રી અઠવાલાઈન્સ જૈન સંઘ, સુરત શ્રાવિકા ઉપાશ્રય

વાવ નગરે પૂજ્ય આચાર્ય ભગવંત ઓંકારસૂરિ મહારાજાની ગુરૂ મૂર્તિ પ્રતિષ્ઠા સ્મૃતિ

૧. રૂા.૨,૧૧,૧૧૧ શ્રી વાવ શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ
૨. રૂા.૧,૧૧,૧૧૧ શ્રી વાવ પથક શ્વે. મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, અમદાવાદ
૩. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી સુઈગામ જૈન સંઘ
૪. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી બેણપ જૈન સંઘ
૫. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી ઉચોસણ જૈન સંઘ
૬. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી ભરડવા જૈન સંઘ
૭. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી અસારા જૈન સંઘ
૮. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી ગરાંબડી જૈન સંઘ
૯. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી માડકા જૈન સંઘ
૧૦. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી તીર્થગામ જૈન સંઘ
૧૧. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી કોરડા જૈન સંઘ
૧૨. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી ઢીમા જૈન સંઘ
૧૩. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી માલસણ જૈન સંઘ
૧૪. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી મોરવાડા જૈન સંઘ
૧૫. રૂા. ૩૧,૦૦૦ શ્રી વર્ધમાન શ્વે.મૂ.પૂ.જૈન સંઘ, કતારગામ દરવાજા, સુરત
૧૬. રૂા. ૧૧,૧૧૧ શ્રી વાસરડા જૈન સંઘ, સેવંતીલાલ મ. સંઘવી

• • •



KIRIT GRAPHICS : 079-25330095